मजदूरी नीति
एवं
सामाजिक सुरक्षा

(Labour Policy & Social Security)



प्रो. सी. एम. चौधरी

बी. ए. ऑनर्स, एम. ए., एम. कॉम.,
डी. सी. एस-एल., आर. ई. एस.

आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक
भूतपूर्व प्राध्यापक, वाणिज्य संकाय
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

सहायक
प्रकाश जैन



रिसर्च : दिल्ली

TOPICS FOR STUDY

1 Characteristics of Labour Market Labour demand and supply Wage theories Marginal productivity, institutional and bargaining theories Exploitation of Labour, Causes of wage differentials

2 Wage and productivity Economy of high wages Labour's share in national Income distribution Methods of incentive wage payment *Systems of wage payment in India State regulation of wages in U K,* U S A and India Wages of Industrial and agricultural workers in India Standard of living of workers in India Wage policy employment and economic development

3 Organisations, functions and achievements of Employment Service Organisation in the U K, U.S A in general Methods of labour recruitment in India Employment Service Organisation in India Manpower planning, concept and techniques Manpower planning in India

4 Organisation and financing of social security, Social security in the U K, U S A and U S S R in general, Position of Social security in India

5 Salient features of present factory legislation in India Housing of labour in India Labour welfare facilities provided by employers, trade unions and Government

Published by P Jain for Research Publications in Social Sciences New Delhi
Printed at Hema Printers, Jaipur

अनुक्रमणिका

APPENDIX

1 श्रम-बाजार की विशेषताएँ, श्रम की माँग एवं पूर्ति

(CHARACTERISTICS OF LABOUR MARKET, LABOUR DEMAND AND SUPPLY)

'श्रम' उत्पादन का एक सक्रिय (Active) और महत्त्वपूर्ण साधन है। एक देश मे विभिन्न प्रकार के प्रचुर प्राकृतिक साधन बेकार होगे यदि श्रम द्वारा उनका समुचित प्रयोग न किया जाए। कैरनक्रास के शब्दो मे, "यदि भूमि अथवा पूंजी का उचित प्रयोग नही होता तो केवल इन साधनो के स्वामियो को थोड़ी आय की हानि होगी। किन्तु यदि श्रम का उचित प्रयोग नही होता (अर्थात् वह बेरोजगार रहता है अथवा उससे अत्यधिक कार्य लेकर उसका शोषण किया जाता है) तो इससे न केवल पुरुषो और स्त्रियों मे हीनता तथा निर्धनता का प्रसार होता है वरन् सामाजिक जीवन के स्वरूप मे ही गिरावट आती है।" श्रम के बढ़ते हुए महत्त्व ने ही 'श्रम अर्थशास्त्र' (Labour Economics) का विकास किया है और आज अर्थशास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप मे इसका अध्ययन किया जाता है। श्रम अर्थशास्त्र के अन्तर्गत श्रम सम्बन्धी समस्याएँ, सिद्धान्त और नीतियाँ सन्निहित हैं। आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया मे श्रम के योगदान मे वृद्धि करना किसी भी सरकार का मुख्य दायित्व है। उपयुक्त मात्रा मे निपुण श्रम-शक्ति देश को विभिन्न क्षेत्रों मे उन्नति के शिखर पर पहुँचाने की कुंजी है। एक देश की सम्पन्नता बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर है कि वहाँ के श्रम का किस तरह सृजनात्मक कार्यों मे अधिकतम उपयोग किया जाता है।

प्राचीन समय मे श्रम के सम्बन्ध मे दो दृष्टिकोणो की प्रधानता थी। प्रथम, वस्तु दृष्टिकोण (Commodity Approach)—जिसके अन्तर्गत श्रम को वस्तु की भाँति खरीदा और बेचा जा सकता है। श्रमिक को कम पारिश्रमिक देकर उसकी सहायता से अधिकतम लाभ अर्जित करना पूंजीपतियो का उद्देश्य रहा। द्वितीय, उदारतावादी दृष्टिकोण (Philanthrophic Welfare Approach)—जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को एक निम्न वर्ग और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल माना जाता है और

इसीलिए उनकी मदद करना धनिक वर्ग अपना कर्त्तव्य समझता है। आज के युग मे मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण (Human Relation Approach) प्रधानता पाता जा रहा है, परम्परागत विचारधारा (Traditional Approach) का महत्त्व समाप्त हो रहा है। भारत मे पचवर्षीय योजनाओ मे जो श्रम-नीति अपनाई गई है वह मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण पर आधारित है। देश की पाँचवी योजना मे व्यूह-रचना इस प्रकार की गई है कि सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे श्रम-जनित उत्पादकता बढाने के निश्चित प्रयासो को निरन्तर बल मिले। "इस सम्बन्ध मे योजना मे अच्छे भोजन, पोषण तथा स्वास्थ्य के स्तर, शिक्षा तथा प्रशिक्षण के उच्च स्तर, अनुशासन तथा नैतिक आचरण मे सुधार और अधिक उत्पादनशील तकनीकी तथा प्रबन्धात्मक कार्यों की परिकल्पना की गई है।"[1]

श्रम का अर्थ और महत्त्व
(Meaning and Importance of Labour)

श्रम-बाजार और श्रम की माँग एव पूर्ति के विवेचन पर आने से पूर्व श्रम के अर्थ, महत्त्व और उसकी विशेषताओ पर दृष्टिपात कर लेना प्रासगिक होगा। अर्थशास्त्र मे श्रम का अभिप्राय उस शारीरिक और मानसिक प्रयत्न से है जो आर्थिक उद्देश्य से किया जाए। कोई भी कार्य चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, जिसके बदले मे मौद्रिक पारिश्रमिक मिले, श्रम कहलाता है। इस दृष्टि से मजदूर, प्रबन्धक, वकील, अध्यापक डॉक्टर, नौकर आदि सभी के प्रयत्न श्रम के अन्तर्गत आ जाते है। मार्शल की परिभाषा के अनुसार "श्रम से हमारा अर्थ मनुष्य के उस मानसिक और शारीरिक प्रयास से है जो अंशत या पूर्णतया, कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त, किसी लाभ की दृष्टि से किया जाए।"[2] इस प्रकार, श्रम के लिए दो बातो का होना आवश्यक है—(क) मानवीय श्रम मे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के प्रयत्न सम्मिलित हैं, एव (ख) केवल वे ही प्रयत्न सम्मिलित हैं जिनके उद्देश्य आर्थिक हैं।

श्रम का महत्त्व आज के युग मे स्वय स्पष्ट है। समाचार-पत्रो को उठा लीजिए श्रम-सम्बन्धी सूचनाओ की प्रमुखता पाई जाती है। श्रम के बढते हुए महत्त्व पर प्रो॰ गैलब्रे थ ने कहा था—"आजकल हमे अपने औद्योगिक विकास का अधिकाँश, अधिक पूँजी विनियोग से नही बल्कि मानवीय प्रसाधन मे उन्नति करने से उपलब्ध होता है। इस प्रसाधन से हमे विनियोग की अपेक्षा कही अधिक प्रतिफल मिलता है।[3] पर्याप्त और कुशल श्रम के माध्यम से साधनो का अधिकतम उपयोग करके अर्थ-व्यवस्था को सम्पन्न और सफल बनाया जा सकता है। श्रमिको की सहायता से देश की विभिन्न योजनाएँ पूरी की जाती हैं। श्रम के आर्थिक महत्त्व को इन बिन्दुओ मे रखा जा सकता है—

1 पाँचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण (1974–79) भारत सरकार योजना आयोग (जनवरी, 1973) पेज 54
2 *Galbraith* 'Productivity' Spring Number 1968, p 510.
3 *Marshall* : Principles of Economics, p. 54

1. अधिक उत्पादन की माँग (Demand for Increased Production)—आधुनिक युग मे उत्पादन मे तेजी से वृद्धि करने की माँग जोर पकड़ रही है। औद्योगिक विकास हेतु उत्पादन मे वृद्धि होना आवश्यक है। औद्योगिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्वो मे श्रम की कार्यकुशलता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत में राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि हेतु आन्दोलन चलाने के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) की भी स्थापना की गई है।

2. तीव्र औद्योगीकरण (Rapid Industrialisation)—वर्तमान युग औद्योगीकरण का युग है। विश्व मे तीव्र औद्योगीकरण की होड सी लग गई है। कृषि प्रधान देशों, जैसे—चीन, भारत, पाकिस्तान आदि ने भी अपनी-अपनी अर्थ-व्यवस्थाओ का तीव्र औद्योगीकरण करने की विभिन्न योजनाओ के क्रियान्वयन का मार्ग अपनाया है। तीव्र औद्योगीकरण द्वारा देशवासियो के जीवन-स्तर को उन्नत बनाया जा सकता है। उत्पादन के साधनो मे श्रम और पूँजी महत्त्वपूर्ण है। लेकिन श्रम सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पादन का साधन है। इसके सक्रिय सहयोग के बिना उत्पादन की कोई भी क्रिया सुचारु रूप मे नही चलाई जा सकती।

3. आधुनिकीकरण (Modernisation)—वर्तमान युग मे गला-काट प्रतिस्पर्धा (Cut throat competition) का बोलबाला है। इस प्रतिस्पर्धा मे वही देश सफल हो सकता है जिसने तीव्र औद्योगीकरण के साथ-साथ उत्पादन के साधनो का आधुनिकतम उपकरणो, विधियो के साथ उपयोग किया है। आधुनिकतम उत्पादन के तरीको से वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर निम्न लागत पर किया जा सकता है और वस्तु की किस्म भी अच्छी होती है। इसके लिए श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण, नवीनीकरण, विवेकीकरण और प्रमापीकरण का सहारा लेना नितान्त आवश्यक है। विवेकीकरण व आधुनिकीकरण से श्रम प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप श्रम अधिक जागरूक हो गया है।

4. प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी (Participation of Labour in Management)—प्राचीन समय मे औद्योगिक लाभ तथा उद्योग-धन्धों के प्रबन्ध का कार्य पूँजीपतियो व प्रबन्धको के हाथ में था। उस समय 'अँगूठे का नियम' (Rule of Thumb) का बोलबाला था। वर्तमान समय मे इस विचारधारा में परिवर्तन किया गया है। अब औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) का विचार औद्योगिक क्षेत्र मे पनपने लगा है। इसके अन्तर्गत श्रम को केवलमात्र उत्पादन का एक साधन ही नही समझा जाता बल्कि उसको औद्योगिक प्रजातन्त्र के अन्तर्गत प्रबन्ध के क्षेत्र मे भी महत्त्वपूर्ण भागीदार समझा जाने लगा है। भारत सरकार ने भी अपनी श्रम नीति मे एक नया अध्याय श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र मे प्रबन्धकों के साथ भागीदारी देकर जोड दिया है। श्रमिकों को प्रबन्ध मे भागीदारी न केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे ही दी है बल्कि निजी क्षेत्र के उद्योगो मे भी यह भूमिका प्रदान की गई है।

5. औद्योगिक शान्ति की आवश्यकता (Need for Industrial Peace)—तीव्र औद्योगीकरण के माध्यम से देश का तीव्र आर्थिक विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश मे औद्योगिक वातावरण कैसा है। औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि उत्पादन के साधनो के सक्रिय सहयोग पर निर्भर है। उत्पादन के साधनो मे श्रम और पूंजी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन दोनो साधनो मे यदि सक्रिय सहयोग नही होगा तो उत्पादन मे बाधा पडेगी। मालिक और मजदूरो म अच्छे सम्बन्ध नही होने पर आए दिन हडतालें, तालाबन्दी, घेराव, धीमी गति से कार्य करना आदि औद्योगिक उत्पादन मे बाधाएँ डालते हैं। इस आपसी मतभेद को दूर कर, स्वच्छ एव मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने सम्बन्धी चुनौती का सामना प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार के सामने है।

6. श्रम कानूनों की बाढ (Plethora of Labour Laws)—श्रमिको के कार्य की दशाओ एव उनके जीवन-स्तर को उन्नत करने की ओर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organisation) एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। प्रत्येक देश मे इस सगठन द्वारा निर्धारित प्रस्तावो को लागू करने के लिए सरकार को श्रम कानूनो मे सशोधन करने तथा नए कानून बनाने पडते हैं। सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र मे भी कुछ वर्षों मे सशोधन हुए हैं ताकि श्रमिक व उसके आश्रितो को भविष्य की अनिश्चितता का सामना नही करना पडे।

7 श्रमिकों की राजनीति मे रुचि (Interest of Labour in Politics)—किसी भी देश मे श्रमिको का बाहुल्य होना स्वाभाविक है। वे अपने मताधिकार द्वारा देश की राजनीति को प्रभावित करते हैं। इग्लैण्ड मे श्रमिको की सरकार बनी है। हमारे देश मे भी श्रमिक नेता विभिन्न दलो की ओर से चुनाव जीत कर ससद् तथा विधान-सभाओ मे श्रमिको का हित देखते है।

श्रम की विशेषताएँ
(Characteristics of Labour)

श्रम उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण एव आवश्यक साधन है। यह अन्य साधनो की तुलना मे भिन्न है। इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो कि अन्य साधनो मे नही पाई जाती हैं। इन विशेषताओ के कारण ही श्रम सम्बन्धी विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। श्रम की प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. श्रम उत्पादन का सक्रिय साधन (Active Factor)—उत्पादन के अन्य साधन जैसे भूमि व पूंजी निष्क्रिय (Passive) साधन हैं। वे अपने आप उत्पादन नही कर सकते। लेकिन श्रम बिना अन्य साधनो की सहायता से भी उत्पादन कर सकता है।

2. श्रम को श्रमिक से पृथक् नहीं किया जा सकता (Labour is inseparable from the Labourer)—उत्पादन के अन्य साधनो को उनके स्वामियो से पृथक् किया जा सकता है, जैसे भूमि को भू-स्वामी तथा पूंजी को पूंजीपति से पृथक् किया

जा सकता है, लेकिन श्रम को श्रमिक से पृथक् नही किया जा सकता। यदि एक श्रमिक अपना श्रम बेचना चाहता है तो उसे स्वय को जाकर कार्य करना पड़ेगा।

3. श्रमिक श्रम बेचता है लेकिन स्वय का मालिक होता है (Labourer sells his labour but he himself is his master) श्रमिक अपना श्रम बेचता है। वह अपने को नही बेचता तथा जो भी गुण व कुशलता उसमे होने है, उनका वह मालिक होता है। श्रम पर किया गया विनियोग (प्रशिक्षण व दक्षता) इस दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है।

4. श्रम नाशवान है (Labour is perishable)—श्रम ही एक ऐसा साधन है जिसका सचय नही किया जा सकता। यदि एक श्रमिक एक दिन कार्य नही करता है तो उसका उस दिन श्रम सदैव के लिए चला जाता है। इसी कारण श्रमिक अपना श्रम बेचने के लिए तैयार रहता है।

5. श्रमिक की सौदाकारी शक्ति दुर्बल (Labour has got weak bargaining power)—श्रमिक अपना श्रम बेचता है तथा श्रम के क्रेता पूँजीपति होते हैं। मालिकों की तुलना मे श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति कमजोर होती है क्योंकि श्रम की प्रकृति नाशवान है, वह प्रतीक्षा नही कर सकता, वह आर्थिक दृष्टि से दुर्बल होता है, वह अज्ञानी, अशिक्षित व अनुभवहीन होता है। श्रम सगठन दुर्बल होते हैं, बेरोजगारी पाई जाती है। इन्ही बातो के कारण श्रमिकों को निम्न मजदूरी देकर पूँजीपति उनका शोषण करते हैं।

6. श्रम की पूर्ति में तुरन्त कमी करना सम्भव नहीं (Supply of labour cannot be curtailed immediately) –मजदूरी मे कितनी ही कमी क्यो न करदी जाए, श्रम की पूर्ति तुरन्त घटायी नही जा सकती। श्रम की पूर्ति मे तीन रूपो मे कमी की जा सकती है—जनसख्या को कम करना, कार्यक्षमता मे कमी करना तथा श्रमिकों को एक व्यवसाय मे दूसरे व्यवसाय मे स्थानान्तरित करना। इसमे समय लगेगा।

7. श्रम पूँजी से कम उत्पादक (Labour is less productive than capital)—श्रम को अधिक उत्पादन हेतु पूँजी का सहारा लेना पड़ता है। पूँजी की तुलना में श्रम कम उत्पादक होता है। मशीन से अधिक उत्पादन सम्भव होता है।

8. श्रम पूँजी से कम गतिशील (Labour is less mobile than capital)- श्रम मानवीय साधन होने के कारण कम गतिशील होता है। यह वातावरण, फैशन, आदत, रुचि, धर्म, भाषा आदि तत्वो से प्रभावित होता है जबकि पूँजी नही।

9. श्रम उत्पादन का साधन ही नहीं बल्कि साध्य भी (Labour is not only a factor of production but is also an end of production)—श्रम न केवल उत्पादन मे एक साधन के रूप मे योग देता है बल्कि यह अन्तिम उत्पादित वस्तुओं का उपभोग भी करता है तथा उत्पादन सम्बन्धी समस्याओं का भी इससे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। श्रम की निर्धनता, आवास समस्या, बेकारी की समस्या आदि भी उसे प्रभावित करती हैं।

10. श्रम मानवीय साधन (Labour is human factor)—श्रम एवं सजीव उत्पादन का साधन होने के कारण यह न केवल आर्थिक पहलू से प्रभावित होता है बल्कि नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं का भी इस पर प्रभाव पडता है। इसलिए श्रम समस्याओं के अध्ययन मे इन सभी का समुचित समावेश करना होगा।

11. श्रम मे पूंजी का विनियोग (Capital investment in labour)—अन्य उत्पादन के साधनो के समान श्रम की कार्यक्षमता मे वृद्धि करनी पडती है। श्रम की कार्यक्षमता ही उसके जीवन-स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। परम्परागत नियोजक (Traditional Employers) श्रम की कार्यकुशलता मे वृद्धि पर किए गए व्यय का अपव्यय (Wastage) समझते । लेकिन आधुनिक नियोजक (Modern Employers) श्रम की कार्यकुशलता मे वृद्धि करने के लिए कई कल्याणकारी कार्य (Welfare activities) और शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर व्यय करते हैं। इससे श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप न केवल श्रमिको को ही लाभ होता है बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होती है तथा नियोजको (Employers) को लाभ प्राप्त होता है। इस तरह के व्यय को 'मानवीय पूंजी' (Human Capital) अथवा मानवीय साधनो पर विनियोग (Investment in Human Factors) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कार्य की दशाओ मे सुधार, आवास व्यवस्था मे सुधार, शिक्षा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओ मे वृद्धि आदि सम्मिलित है। यही कारण है कि भारत सरकार ने भी श्रमिको की शिक्षा हेतु एक केन्द्रीय बोर्ड (Central Board for Workers' Education) की स्थापना सन् 1958 मे की है।

निष्कर्षत, श्रम के साथ एक वस्तु के समान व्यवहार नही करना चाहिए क्योंकि वस्तु की विशेषताएँ श्रम की विशेषताओ से भिन्न होती हैं। यही कारण है कि वर्तमान समय मे कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना से श्रम के सम्बन्ध मे परम्परागत विचारधारा (Traditional Approach) जो कि वस्तुगत दृष्टिकोण (Commodity Approach) कहलाता था उसका महत्व अब समाप्त हो गया है। इसके साथ ही आधुनिकतम दृष्टिकोण, जिसे कि मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण (Human Relation Approach) कहा जाता है, का मार्ग धीरे-धीरे प्रशस्त हो रहा है। भारत मे विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ मे श्रम नीति मे नए-नए अध्याय जोडकर इसी विचारधारा की पुष्टि की जा रही है।

श्रम की माँग एवं पूर्ति
(Demand & Supply of Labour)

श्रम की मांग (Demand of Labour)—श्रम की माँग किसी वस्तु या सेवा के उत्पादको द्वारा की जाती है क्योकि श्रम की सहायता से उत्पादन कार्य सम्भव होता है। दूसरे शब्दो मे, श्रम की माँग उसकी उपयोगिता के कारण से नही की जाती है, बल्कि श्रम की उत्पादकता पर ही उसकी माँग निर्भर करती है अर्थात्

श्रम की माँग एक व्युत्पन्न माँग (Derived Demand) है। जिस वस्तु का उत्पादन श्रम की सहायता से किया जाता है उस वस्तु की माँग पर श्रम की माँग निर्भर करती है। यदि वस्तु की माँग अधिक है तो श्रम की माँग भी अधिक होगी अन्यथा नहीं। एक फर्म श्रम की उस समय तक माँग करती रहती है जब तक कि श्रम को दी जाने वाली मजदूरी उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity) से कम रहती है। एक दी हुई मजदूरी दर पर विभिन्न उत्पादकों द्वारा जितनी मात्रा में श्रम की माँग की जाती है उसके योग को श्रम की कुल माँग (Total Demand for Labour) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, एक उद्योग की विभिन्न फर्मों के माँग वक्रों को मिलाकर सम्पूर्ण उद्योग का जो माँग वक्र बनेगा वही श्रम की माँग को बताएगा। श्रम की माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. श्रम की उत्पादकता और उसको दिया जाने वाला पारिश्रमिक - श्रम की मजदूरी से यदि उसकी सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Productivity or VMP) अधिक होता है तो श्रम की माँग अधिक होगी।

2. उत्पादन की मात्रा —यदि किसी वस्तु का अधिक उत्पादन किया जाता है और उसमें श्रमिक अधिक लगाए जाते हैं तो श्रम की अधिक माँग की जाएगी।

3. उत्पादन विधियाँ (Production Techniques)—जिस वस्तु का उत्पादन पूँजीगत उत्पादन विधि द्वारा होता है, उसमें मशीनें अधिक लगाई जाती हैं तथा श्रम की माँग कम की जाती है।

4. आर्थिक विकास का स्तर—ऊँची दर से आर्थिक विकास करने हेतु श्रम की अधिक माँग की जाती है तथा धीमी गति से विकास करने पर श्रम की माँग कम होती है।

5. उत्पादन के अन्य साधनों का पुरस्कार (Remuneration) तथा श्रम के प्रतिस्थापन की सम्भावना—यदि उत्पादन के अन्य साधन महँगे है तथा श्रम को उनकी जगह लगाकर उत्पादन सम्भव होता है तो श्रम की माँग अधिक होगी। इसके विपरीत अन्य साधन सस्ते तथा श्रम के स्थानापन्न सम्भव न होने पर श्रम की माँग कम ही होगी।

एक उद्योग में श्रम की माँग विभिन्न फर्मों के माँग वक्र का योग होती है। उद्योग में श्रम का माँग वक्र (Demand Curve of Labour) बाईं से नीचे दाईं ओर गिरता है जो मजदूरी तथा श्रम की माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है अर्थात् ऊँची मजदूरी पर कम श्रम की माँग की जाती है तथा नीची मजदूरी पर अधिक श्रम की माँग होगी। श्रम की माँग अल्पकाल में बेलोचदार होती है जबकि दीर्घकाल में यह लोचदार होती है।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)— इसका अर्थ विभिन्न मजदूरी दरों पर किसी देश की कार्यशील जनसंख्या (Working Population) का कार्य के कुल घण्टों (Total working hours) पर कार्य करने के लिए तैयार होता है। किसी भी देश में श्रम की पूर्ति अनेक तत्त्वों पर निर्भर करती है, जैसे-मजदूरी का स्तर, देश

की कार्यशील जनसख्या, श्रमिको की कार्यकुशलता, कार्य करने के घण्टो की सख्या और देश की जनसख्या मे वृद्धि की दर आदि । देश की जनसख्या मे वृद्धि होने पर तथा कार्यशील जनसख्या का भाग अधिक होने पर श्रम की पूर्ति मे वृद्धि होगी तथा कार्यकुशलता मे वृद्धि होने पर भी श्रम की पूर्ति के गुणात्मक पहलू (Qualitative Aspects) पर भी प्रभाव पडेगा । श्रम के कार्य आराम अनुपात (Work-Leisure Ratio) तथा श्रमिक सघो (Trade Un ons) का भी श्रम की पूर्ति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।

श्रम की पूर्ति निम्नलिखित प्रमुख तत्त्वो पर निर्भर करती है—

1. मजदूरी दर (Wage Rate)—यदि मजदूरी ऊँची होती है तो अधिक श्रमिक कार्य करना चाहेगे और परिणामस्वरूप श्रम की पूर्ति एक उद्योग से दूसरे उद्योग की ओर होगी । यही कारण है कि श्रम की पूर्ति और मजदूरी दर मे सीधा सम्बन्ध होता है । इसके विपरीत निम्न मजदूरी दर पर कम श्रमिक कार्य करना चाहेगे और श्रम की पूर्ति कम होगी ।

2. श्रमिको की कार्यकुशलता—कार्यकुशलता अधिक होने पर उत्पादन पर वैसा ही प्रभाव होगा जैस कि श्रम की पूर्ति बढान पर अधिक उत्पादन सम्भव होगा । इसके विपरीत कार्यकुशलता कम होने पर अधिक श्रमिक लगाने के बावजूद भी उत्पादन अधिक प्राप्त नही किया जा सकेगा ।

3 कार्य एव आराम अनुपात (Work & Leisure Ratio)—यदि श्रमिक कम आराम और अधिक कार्य करना चाहता है तो श्रम की पूर्ति बढेगी और यदि अधिक आराम व कम कार्य करता है तो श्रम की पूर्ति घटेगी । मजदूरी बढने पर श्रमिक अधिक आराम भी कर सकता है या अधिक कार्य कर सकता है । यह मजदूरी बढने का प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitution effect of increased wage rate) कहलाता है । इस स्थिति म मजदूरी मे वृद्धि होने पर श्रम का पूर्ति वक्र दाएँ ऊपर की ओर उठेगा क्योकि श्रमिक मजदूरी बढने के कारण अधिक कार्य करेगा । दूसरी ओर मजदूरी बढने पर श्रमिक अधिक आरामतलब भी हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप श्रम पूर्ति वक्र ऊपर उठने की बजाय बाईं ओर झुका हुआ (Backward Bending) होगा और यह मजदूरी वृद्धि का आय प्रभाव (Income Effect) कहा जाएगा ।

अल्पकाल की तुलना मे दीर्घकाल मे श्रम की पूर्ति अधिक लोचदार होती है क्योकि—

(i) जनसख्या के आकार मे वृद्धि होती है, और

(ii) श्रम की कार्यकुशलता मे वृद्धि से श्रम की पूर्ति बढ जाती है ।

श्रम बाजार
(Labour Market)

श्रम बाजार वह बाजार है जहाँ पर श्रम का क्रय-विक्रय किया जाता है अर्थात् श्रम को बेचने वाले (श्रमिक) व श्रम को खरीदने वाले (मालिक-नियोजक) श्रम का

सौदा करते हैं। श्रम के क्रेता तथा विक्रेता के सम्बन्ध एक वस्तु के क्रेता-विक्रेता की भाँति अस्थायी नहीं होते है। क्रेता-विक्रेता जो कि श्रम का सौदा करते हैं, व्यक्तिगत तत्वों से काफी प्रभावित होते हैं।

श्रम बाजार की विशेषताएँ
(Characteristics of Labour Market)

श्रम बाजार जिसमें श्रम की माँग और पूर्ति वाले पक्षों का मध्ययन किया जाता है, वे स्थानीय होते है और इस बाजार की निम्नलिखित विशेषताएँ हमे देखने को मिलती है-

1. श्रम मे गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग को गतिशील नही हो पाता है। परिणामस्वरूप मजदूरी मे भिन्नताएँ पायी जाती है तथा मालिक भी उसको कम मजदूरी देकर उसका आर्थिक शोषण करने मे सफल हो जाता है। गतिशीलता मे कमी श्रम की अशिक्षा, मनभिज्ञता, भाषा, धर्म, रीति-रिवाज आदि कारणों का परिणाम होती है।

2 श्रम बाजार मे श्रम सघो के सुदृढ होने वाले स्थानों को छोडकर क्रेताधिकारी (Monopsomy) की स्थिति देखने को मिलती है। जहाँ श्रम सघ सुदृढ होते हैं, वे अपनी पूर्ति पर नियन्त्रण करके अधिक मजदूरी लेने मे सफल हो सकते है और इस तरह एकाधिकारी (Monopoly) की स्थिति उत्पन्न कर सकते है। लेकिन व्यावहारिक जीवन मे हमे यह स्थिति अपवाद के रूप मे मिल सकती है। अधिकाँशत श्रम बाजार मे क्रेताधिकारी (Monopsomy) की स्थिति देखने को मिलेगी। इसमे प्रबन्धक मालिक सगठित होकर श्रम का क्रय करते हैं तथा उसको कम मजदूरी पर खरीदते है।

3 श्रम बाजार एक अपूर्ण बाजार होता है जिसमे सामान्य मजदूरी (Normal wages) देखने को नही मिलती है। मजदूरी की विभिन्नताएँ देखने को मिलती है।

4 विकासशील देश जहाँ जनाधिक्य पाया जाता है और रोजगार के साधनो का अभाव है वहाँ पर श्रम बाजार मे क्रेताधिकारी (Monopsomy) का अधिक तत्व पाया जाएगा। इसके विपरीत एक विकसित और जनाभाव वाले देश मे श्रम बाजार मे विक्रेताधिकारी (Monopoly) का तत्व देखने को मिलेगा।

भारतीय श्रम बाजार
(Indian Labour Market)

भारत एक विकासशील और जनाधिक्य वाला (Overpopulated) राष्ट्र है जहाँ पर भारी बेरोजगारी भी है। इस विशेषता का प्रभाव यहाँ के श्रम बाजार पर भी पड़ता है। भारतीय श्रम बाजार की निम्नलिखित विशेषताएँ हमे देखने को मिलती हैं—

1. भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे विभिन्न क्षेत्रो मे अर्द्ध-बेरोजगारी (Under-employment) देखने को मिलती है। कृषि क्षेत्र मे देश की 80% जनसख्या लगी हुई है लेकिन प्रो. नर्कसे के अनुसार अर्द्ध-विकसित या विकासशील देशो मे 15 से 20% तक कृषि क्षेत्र मे छिपी हुई बेरोजगारी (Disguised-unemployment)

देखने को मिलती है। यहाँ तक कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) शून्य (Zero) है। गैर कृषि क्षेत्र में भी बेरोजगारी विद्यमान है।

2 भारतीय श्रम बाजार की दूसरी विशेषता यह है कि श्रम की पूर्ति सभी नौकरियों की संख्या से अधिक होते हुए भी कुछ नौकरियों के लिए श्रम का अभाव है, जैसे तकनीकी व सुपरवाइजरी पदों के लिए अधिक श्रमिक नहीं मिल पाते है।

3 अस्थिर श्रम शक्ति (Unstable labour force) भी भारतीय श्रम बाजार की एक विशेषता है जिसमे श्रमिक औद्योगिक कार्य हेतु तैयार नहीं होते क्योंकि वे अधिकांशत ग्रामीण क्षेत्रो म कार्य करना व रहना पसन्द करते हैं। अत श्रमिको को ग्रामीण क्षेत्रो से शहरी क्षेत्रो की ओर आकर्षित करना तथा एक स्थायी औद्योगिक श्रम शक्ति तैयार करना भी एक समस्या बन गई है।

4 भारतीय श्रम जनसख्या (Labour Population) म अधिकांश श्रमिक युवक हैं। इस प्रकार के श्रमिको के लिए सामाजिक विनियोग (Social Investment) शिक्षा प्रशिक्षण, चिकित्सा सुविधाएँ आदि के रूप मे करना पड़ेगा।

श्रम बाजार का मजदूर पक्ष
(The Employee side of the Labour Market)

श्रम बाजार भी अन्य बाजारो की भाँति है, लेकिन जब भी हम श्रम का अध्ययन करते हैं तब हमे यह ध्यान रखना होगा कि हम कार्य करने वाले मानवीय पक्ष का अध्ययन कर रहे हैं। इसम श्रम की माँग और पूर्ति दोनो पक्षो को ध्यान मे रखते हुए अध्ययन करना पडेगा। श्रम बाजार के मजदूर पक्ष मे हम श्रम की पूर्ति पक्ष (Supply side of Labour–Employee) का अध्ययन करते है।

श्रम शक्ति क रूप मे सक्रिय भाग लेने की प्रवृत्ति जिसे श्रम शक्ति प्रवृत्ति (Labour force propensity) भी कहा जाता है, न केवल जनसख्या की वृद्धि की दर द्वारा ही प्रभावित होती है बल्कि जनसख्या वृद्धि के स्रोतो तथा इसके आयु एव लिंग वितरण (Age and Sex distribution) द्वारा भी प्रभावित होती है।

सामाजिक रीति रिवाज भी जनसख्या के काय करने वाले अनुपात को प्रभावित करते हैं। विकसित देशो मे शिक्षा के अधिक प्रसार के कारण श्रम शक्ति के रूप मे जनसख्या का भाग कम होने लगता है जबकि एक विकासशील देश (जैसे, भारत) मे जहाँ जनसख्या का अधिकांश भाग अशिक्षित होता है श्रम शक्ति मे जनसख्या का अनुपात काय के रूप मे लगेगा।

व्यावसायिक परिवर्तन (Occupational shifts) साधनो का आवण्टन (Allocation of resources) तकनीकी परिवतन (Technological changes) आदि भी श्रम शक्ति मे जनसख्या के लगाए जाने वाले भाग को प्रभावित करते हैं। उदाहरणत एक विकासशील देश मे जहाँ श्रम प्रधान उत्पादन के तरीके (Labour intensive techniques of production) अपनाए जाते है वहाँ श्रम की अधिक माँग होगी।

श्रम की व्यावसायिक गतिशीलता तथा भौगोलिक गतिशीलता (Occupational and Geographical mobilities of labour) मे वृद्धि मजदूरी बढाने से की जा सकती है, लेकिन मजदूरी मे वृद्धि के अतिरिक्त जो अधिक प्रभावशाली तत्त्व

इसमें बाधक हैं, वे हैं—सामाजिक रीति-रिवाज, परिवार व स्थान से लगाव धर्म भाषा, रहन-सहन, खान-पान। अब आधुनिकता एवं शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ गतिशीलता में वृद्धि हो रही है।

प्रबन्ध और श्रम बाजार
(Management & Labour Market)

प्रबन्धक या नियोजक श्रम की माँग करता है। श्रम की सहायता से भौतिक उत्पादन करता है। एक गतिशील अर्थ-व्यवस्था में नियोजक श्रम की माँग करने से पूर्व यह अनुमान लगायेगा कि कितना उत्पादन उसे करना है। साथ ही उस वस्तु की माँग, उत्पादन लागत, उस वस्तु का बाजार लाभ आदि सभी विषयों पर निर्णय करके श्रम की एक निश्चित संख्या को रोजगार प्रदान करेगा।

प्रबन्धक व्यवसाय के संगठन के विषय में भी निर्णय लेगा कि संगठन का आधार तथा प्रकार क्या होगा ? संगठन-Staff या Line या Staff & Line अथवा क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation) में से कोई भी अपनाया जा सकता है।

संदेशवाहन (Communication), कार्य करने वाली टीम, नियोजकों का संगठन या संघ (Association of Employers), नियोजकों की श्रमिकों की भर्ती (Recruitment), चयन (Selection), प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training Programme), सामिक व्यवहार (Personnel Practices) आदि के सम्बन्ध में भी एक निश्चित नीति का निर्धारण करना पड़ेगा। इन सबका प्रभाव न केवल व्यवसाय के संगठन पर ही पड़ता है बल्कि ये दोनों पक्षों—मालिक व मजदूर पक्ष-को भी प्रभावित करते है। इन सबके अनुकूल व सफल होने पर सम्पूर्ण व्यवसाय या उद्योग सफल होगा जिससे न केवल दोनों पक्ष बल्कि उपभोक्ता, समाज व राष्ट्र भी लाभान्वित होंगे।

इस प्रकार, श्रम की विशेषताएँ, श्रम बाजार की विशेषताएँ, मालिक और मजदूर दृष्टिकोण व व्यवहार तथा व्यवसाय का संगठन व ढाँचा एक दूसरे पर पूर्ण रूप से आश्रित हैं। ये एक दूसरे को पूर्ण रूप से प्रभावित करते है। अन दी हुई स्थिति या दशाओं में उचित नीतियों व कार्यक्रमों की सहायता से किसी भी उद्योग को सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

भारत में श्रमिकों का विभाजन
(Distribution of Working Population in India)

सन् 1971 में भारत में श्रमिकों की संख्या लगभग 18.04 करोड़ या देश की कुल जनसंख्या की लगभग 32.92 प्रतिशत थी। श्रमिकों की इस संख्या का केवल 10 प्रतिशत भाग संगठित क्षेत्र में कार्यरत था और शेष भाग परम्परा से चले आ रहे व्यवसायों में व्यस्त था। परम्परागत व्यवसायों में रत श्रमिकों में अधिकांश कृषक और कृषि श्रमिक थे, जिनका प्रतिशत क्रमशः 42.34 और 26.33 था। पृष्ठ 12 पर सारणी में कार्य और लिंग के आधार पर श्रमिकों का बँटवारा दिखाया गया है।

श्रमिकों [illegible] विभाजन (1971)[1]

श्रेणी	पुरुष		महिलाएँ		कुल योग	
	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
कुल जनसख्या	28,39,36,614	51 82	26,40,13,195	48 18	54,79 49,809	100 00
कुल श्रमिक	14,90,75,136	52 50	3,12,98,263	11 85	18,03,73,399	32 92
(1) कृषक	6,89,10,236	38 20	92 66,471	5 14	7,81,76,707	43 34
(2) कृषि मजदूर	3,16 94,984	17 57	1,57,94,399	8 76	3,74,89,383	26 33
(3) पशु-पालन, वन, मछली पकड़ना, शिकार, बागान, फल-उद्यान और सम्बद्ध कार्यों में लगे श्रमिक	35,13,848	1 95	7,82,953	0 43	42,96,801	2 38
(4) पाषाण खनन और उत्खनन	7,98,696	0 44	1,24,066	0 07	9,22,762	0 51
(5) वस्तु-निर्माण, परिष्करण, सर्विस और मरम्मत						
(क) गृह-उद्योग	50,20 893	2 78	13,30 821	0 74	63,51,714	3·52
(ख) [illegible]	98,50,808	5 46	8,64,997	0 48	1,07,15,805	5 94
(6) निर्माण	20 11,831	1·12	2,03,477	0 11	22,15,308	1 23
(7) वाणिज्य और व्यापार	94,82,044	5 26	5,56,199	0 31	1,00,38 243	5 57
(8) परिवहन भण्डारण और सचार	42,55,257	2·36	1,45 944	0 08	44,01,201	2·44
(9) अन्य सेवाएँ	1,35,36,539	7 50	[illegible] 28,936	1 24	1 47,65,475	8 74
गैर-श्रमिक	13,48,61,478	47 50	23,27,14,932	88 15	36,75,76,410	67 08

1. भारत 1976, पृष्ठ 371.

तथापि भारत की अर्थ-व्यवस्था के विश्वस्त आँकड़े केवल सगठित क्षेत्र के बारे मे उपलब्ध है। श्रमिकों के कल्याण के लिए सरकार द्वारा पास किए गए अधिकांश कानून इसी क्षेत्र मे श्रमिको की भलाई के लिए है। इन श्रमिकों के लिए अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ भी चल रही है। इनमे फैक्ट्री एक्ट, मजदूरी अधिनियम और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ जैसे कर्मचारी राज्य बीमा योजना, कर्मचारी भविष्य-निधि योजना, श्रमिकों और उनके परिवारो के लिए मृत्यु राहत और परिवार पेंशन सम्मिलित है। कुछ नियम कानून असगठित क्षेत्र के लिए भी बनाए गए है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 इस क्षेत्र के बहुत से श्रमिक वर्गों पर भी लागू होता है।

श्रम एक समवर्ती विषय है। श्रम कानून केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों दोनों के द्वारा बनाए जाते है और सचालित होते है। सामान्यत श्रम कानूनो को क्रियान्वित करना राज्य सरकारो की जिम्मेदारी होती है तथापि कुछ केन्द्रीय क्षेत्रो मे काम करने वाले श्रमिक जैसे रेलवे, बन्दरगाह, खान, बैंकिंग और बीमा कम्पनियाँ सीधे केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र मे आते है।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था के सगठित क्षेत्र मे सर्वाधिक श्रमिक फैक्ट्रियों में काम करते हैं। सन् 1972 मे चालू फैक्ट्रियो मे जिनके आँकड़े उपलब्ध हैं, प्रतिदिन का अनुमानित औसत रोजगार 53 8 (अस्थायी) लाख था। सन् 1971 के दैनिक रोजगार आंकडो के अनुसार महाराष्ट्र मे फैक्ट्री कर्मचारियो की सख्या सबसे अधिक है (10,50,000) और इसके पश्चात् पश्चिम बगाल (8,39,000) और तमिलनाडू (4,60,000) का नम्बर आता है।

सन् 1971 मे खानो मे काम करने वाले श्रमिको की प्रतिदिन औसत सख्या 6,31,000 थी (2,56,000 भूगर्भीय, 1,96,00 खान-मुख तथा 1,80,000 भू-तलीय)। सन् 1952 के खान अधिनियम के अन्तर्गत कोयला खानो मे काम करने वालो की सख्या उसी वर्ष के दौरान 3,82,000 थी जिनमे 2,28,000 भू-गर्भीय थे तथा 43,000 खान-मुख पर और 1,11,000 भूतल पर काम करते थे।[1]

भारत में श्रम की स्थिति
(Labour Position in India)

भारत मे श्रम की स्थिति मे शनैः-शनैः उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय की सन् 1976-77 की रिपोर्ट मे बताया गया है कि 1976–77 वर्ष के दौरान औद्योगिक सम्बन्धो की स्थिति मे उल्लेखनीय सुधार हुआ। हड़तालों तथा तालाबन्दियो के कारण नष्ट हुए श्रम दिनो की सख्या मे भारी कमी हुई। सन् 1975 मे 219 लाख श्रम दिनो की हानि हुई थी, जबकि सन् 1976 मे 114 8 लाख (अन्तिम) श्रम दिनो की हानि हुई। सन् 1975 मे केन्द्रीय क्षेत्र मे 11·5 लाख श्रम दिनों की हानि हुई थी, जबकि सन् 1976 मे केवल 3 7 लाख श्रम दिनो की हानि हुई। सन् 1976 के दौरान सरकारी क्षेत्र मे नष्ट हुए श्रम दिनो

1. भारत 1975, पृष्ठ 330.

जो मूल्य है वही मजदूरी है। प्रो फेल्प्स (Prof Phelps) के अनुसार, 'व्यक्तिगत सेवाओं के लिए दिया जाने वाला मूल्य ही मजदूरी है।" प्रो के एन वैद के अनुसार एक श्रमिक को किसी कार्य की मात्रा करने पर मुद्रा के रूप में पारिश्रमिक दिया जाता है।[1]

प्रो सक्सेना के अनुसार मजदूरी एक प्रसंविदा आय (Contract Income) है जो कि मालिक व मजदूर दोनों के बीच निश्चित की जाती है, जिसके अन्तर्गत श्रमिक मुद्रा या वस्तु के बदले अपना श्रम बेचता है। मजदूरी की एक विस्तृत परिभाषा में वे सभी पारिश्रमिक, जिन्हें मुद्रा में व्यक्त किया जा सकता है और जो कि रोजगार के प्रसंविदे के अनुसार एक श्रमिक को देय होते हैं।"[2] इस प्रकार मजदूरी में यात्रा भत्ता प्रोविडेन्ट फण्ड में दिया गया योगदान, किसी मकान सुविधा या कल्याणकारी सेवाओं हेतु दिया जाने वाला द्रव्य का भाग शामिल नहीं किया जाता है। अर्थशास्त्र में मजदूरी शब्द व्यापक है तथा इसके अन्तर्गत न केवल विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक ही सम्मिलित किया जाता है बल्कि फर्मों तथा फैक्ट्रियों के मैनेजर, उच्च अधिकारी, सरकारी अफसरों को दिया जाने वाला वेतन, व्यावसायिक लोगों (Professional People) जैसे वकील, अध्यापक, डाक्टर आदि को दिया जाने वाला पुरस्कार (Remuneration), बोनस (Bonus), रोयल्टी (Royalty) तथा कमीशन (Commiss on) आदि को शामिल किया जाता है।

मौद्रिक मजदूरी एवं वास्तविक मजदूरी (Money Wages and Real Wages)

नकद या मौद्रिक मजदूरी वह मजदूरी है जो श्रमिक को उसके श्रम के बदले में मुद्रा के रूप में प्रदान की जाती है जैसे 3 रुपये प्रति घण्टा, 10 रुपये प्रति दिन, 300 रुपये प्रति माह आदि। लेकिन नकद मजदूरी से हमें श्रमिक की वास्तविक आर्थिक स्थिति का पता नहीं लगता और इसलिए उसकी मौद्रिक मजदूरी के साथ-साथ उसकी वास्तविक मजदूरी के विषय में भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

वास्तविक मजदूरी (Real Wages) वह मजदूरी है जिसके अन्तर्गत श्रमिक को उसकी सेवाओं के बदले कितनी वस्तु तथा सेवाएँ प्राप्त होती हैं अर्थात् श्रमिक की मौद्रिक मजदूरी के द्वारा श्रमिक कितनी वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीद सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक श्रमिक को अपनी नकद मजदूरी से अधिक वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त होती हैं और वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को आसानी से पूरा कर लेता है तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उसकी वास्तविक मजदूरी ऊँची है। इसके विपरीत यदि अधिक नकदी मजदूरी के बावजूद भी वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं

1 *Vaid K N* , State and Labour in India, p 89
2 *Saxena R C* Labour Problem and Social Welfare, p 512

को पूरा नही कर पाता है तो हम कह सकते है कि उसकी मौद्रिक आय की वास्तविक क्रय-शक्ति कम है। मुद्रा-स्फीति के अन्तर्गत मुद्रा की क्रय-शक्ति गिरने के कारण श्रमिक अधिक मौद्रिक आय की माँग करते है जबकि मुद्रा-अपस्फीति (Deflation) के अन्तर्गत मुद्रा की क्रय-शक्ति अधिक होने के परिणामस्वरूप श्रमिकों को आर्थिक कठिनाइयो का सामना नही करना पड़ता है। वर्तमान समय मे भारत मे बढती हुई कीमते इस बात की द्योतक हैं कि श्रमिको की वास्तविक मजदूरी (Real Wages) में गिरावट आ रही है।

वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करने वाले तत्त्व

एक व्यक्ति की वास्तविक आर्थिक स्थित का ज्ञान उसकी नकद मजदूरी से नही बल्कि उसकी वास्तविक मजदूरी से होता है। विभिन्न व्यवसायो मे वास्तविक मजदूरी भिन्न-भिन्न पाई जाती है। वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित तत्त्व होते हैं—

1. मुद्रा की क्रय-शक्ति (Purchasing Power of Money)--यह वास्तविक मजदूरी को निर्धारित या प्रभावित करती है। यदि कीमतें नीची है तो अधिक वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदी जा सकेंगी, जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक मजदूरी अधिक होगी। इसके विपरीत ऊँची कीमतो पर वस्तुओ व सेवाओ के मिलने पर मुद्रा की क्रय-शक्ति कम होने के कारण वास्तविक मजदूरी कम होगी।

2. अतिरिक्त आय (Extra Earnings)—यदि किसी व्यक्ति को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है तो उसकी वास्तविक आय बढेगी। उदाहरणत एक प्राध्यापक को उसकी किताब पर मिलने वाली रोयल्टी तथा श्रमिको व मैनेजरो को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इससे उनकी वास्तविक आय बढ़ेगी।

3. अन्य सुविधाएँ (Other Facilities)— किसी भी व्यक्ति या श्रमिक को मिलने वाली नि शुल्क चिकित्सा सुविधाएँ, सस्ते मकान, बच्चो की नि शुल्क शिक्षा आदि भी वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि करने वाले तत्त्व हैं।

4. कार्य की दशाएँ अच्छी होने पर, कार्य रुचिकर होने पर, कार्य की नियमितता आदि से भी वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि होती है। यदि कार्य की दशाएँ अच्छी नहीं हैं, कार्य रुचिपूर्ण नही है, कार्य अस्थायी है, तो मौद्रिक मजदूरी अधिक होने पर भी वास्तविक मजदूरी कम होगी।

5. प्रशिक्षण का समय तथा व्यय— व्यावसायिक सेवाओ (Professional Services) जैसे डॉक्टर, इजीनियर, आदि के लिए प्रशिक्षण पर व्यय करना पड़ता है तथा इसमें समय भी लगता है। अत. वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करते समय इस प्रकार वे प्रशिक्षण हेतु किया गया व्यय तथा अवधि को भी ध्यान मे रखना पडता है।

6. भावी उन्नति के अवसर—जिस व्यवसाय या उद्योग मे भविष्य मे उन्नति के अधिक अवसर है तो प्रारम्भ मे कम नकद मजदूरी होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक होगी।

मजदूरी का महत्त्व (Importance of Wages)

मजदूरी सम्बन्धी प्रश्न न केवल श्रमिक के जीवन-स्तर तथा उनकी प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि करने के रूप म ही महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह उत्पादन मे वृद्धि के लिए भी आवश्यक है। श्रमिक का जीवन-स्तर, उसकी कार्यकुशलता सभी मजदूरी पर निर्भर करती है। मजदूरी श्रमिको को उनकी सेवाओ के लिए किया जाने वाला भुगतान है और यह उनकी आय है। दूसरी ओर नियोजक श्रमिकों की सहायता स उत्पादन क्रियाओ का सम्पादन करते हैं और उनके लिए यह उत्पादन लागत का एक अग माना जाता है। श्रमिक समाज का एक महत्त्वपूर्ण अग है। अब प्राचीन दृष्टिकोण—वस्तु दृष्टिकोण (Commod ty Approach) बिल्कुल समाप्त-सा हो गया है। अब श्रमिक अपने कर्त्तव्यो तथा अधिकारो के प्रति सजग हो गया है तथा नियोजको से सौदा करने मे पीछे नही है। अब श्रमिक को उद्योग मे एक साझेदार के रूप मे माना जाने लगा है। मजदूरी मे न केवल आर्थिक पहलू ही आते हैं बल्कि यह कई गैर-आर्थिक पहलुओ को भी प्रभावित करने वाला प्रश्न है जिसका अध्ययन श्रमिक अपनी आय के दृष्टिकोण से तथा नियोजक (Employers) अपनी उत्पादन-लगत के दृष्टिकोण से करते हैं। मजदूर आर्थिक मजदूरी तथा नियोजक आर्थिक लाभ चाहने वाले उद्देश्यो मे फँसे हुए हैं। इन दोनो पक्षो के उद्देश्य एक दूसरे के विपरीत हैं। प्रो जीन मार्कल के अनुसार श्रमिक यह चाहते है कि मजदूरी को एक वस्तु का मूल्य नही माना जाना चाहिए बल्कि एक आय मानी जानी चाहिए, ताकि वे उद्यमियो के माध्यम से अपनी सेवाएँ देकर एक पूर्व-निर्धारित जीवन व्यतीत कर सके।[1]

प्रो पन्त के अनुसार मजदूरी का उपभोग, रोजगार एव कीमतो पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है।[2] अत किसी भी देश में श्रमिको के लिए एक प्रभावपूर्ण एव प्रगतिशील मजदूरी नीति निर्धारण के लिए मजदूरी की समस्या का पूर्ण अध्ययन आवश्यक है।

मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त (Theories of Wage Determination)

मजदूरी की समस्याओ को दो भागो मे बाँटा जा सकता है अर्थात् सामान्य मजदूरी की समस्या (Problem of general wages) और तुलनात्मक मजदूरी की समस्या (Problem of relative wages)। सामान्य मजदूरी की समस्या का सम्बन्ध इस बात से है कि राष्ट्रीय आय मे से उत्पादन के साधन के रूप मे श्रम को किस आधार पर हिस्सा दिया जाए। दूसरी ओर तुलनात्मक या सापेक्ष मजदूरी की समस्या इस बात का अध्ययन करती है कि विभिन्न स्थानो, समय तथा श्रमिको की

1 *Jean Marchal* Wage Theory and Social Groups in Dunlop, J T (Ed). The Theory of Wage Determination, p 149
2 *Pant S C.*, Indian Labour Problems, p 166-67

मजदूरी किस आधार पर निर्धारित की जाएगी। सामान्य मजदूरी निर्धारण किन आधारों पर हो, इसका अध्ययन मजदूरी के सिद्धान्तो (Theories of wages) के अन्तर्गत किया जाता है। अत यहाँ सक्षेप मे उन सभी मजदूरी के सिद्धान्तो का अध्ययन करना है, जो विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा भिन्न-भिन्न कालो मे प्रतिपादित किए गए है।

मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त अथवा लौह सिद्धान्त (Subsistance Theory of Wages or the Iron Law of Wages)

सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों (Physiocrats) ने किया था। उन्होने फ्रांस मे उस समय श्रमिक के जीवन निर्वाह की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए इस सिद्धान्त का निर्माण किया। यह सिद्धान्त 19वी शताब्दी मे सभी लोगो द्वारा माना गया। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रिकार्डो ने भी आगे चलकर माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त के आधार पर इस सिद्धान्त का समर्थन किया। समाजवादी अर्थशास्त्रियो ने भी इसी सिद्धान्त के आधार पर पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की कड़ी आलोचना की और कार्ल मार्क्स ने अपने शोषण के सिद्धान्त (Theory of Exploitation) पर आधारित किया। जर्मन अर्थशास्त्री लसाले (Lassalle) ने इसे 'लौह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) का नाम दिया।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रमिक व उसके परिवार के जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम साधनो के आधार पर होता है। मजदूरी इतनी होनी चाहिए जिससे श्रमिक को निर्वाह हेतु न्यूनतम राशि प्राप्त हो सके। जीवित रहने के लिए आवश्यक राशि के बराबर मजदूरी दी जानी चाहिए। यदि मजदूरी इस न्यूनतम जीवन निर्वाह व्यय से अधिक दी जाती है तो श्रमिको को शादी करने का प्रोत्साहन मिलेगा और उनके परिवारो मे तथा श्रमिक सख्या मे वृद्धि होगी और इसके परिणामस्वरूप मजदूरी गिरकर जीवन निर्वाह के बराबर हो जाएगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी न्यूनतम जीवन निर्वाह से कम दी जाती है तो शादियाँ और जन्म-दर हतोत्साहित होंगे और कम पोषण से मृत्यु-दर बढेगी और फलस्वरूप श्रमिको की पूर्ति मे गिरावट आने से मजदूरी मे वृद्धि होगी और पुन मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर हो जाएगी।

आलोचना (Criticism)—यह सिद्धान्त बड़ा ही निराशावादी है और स्पष्टत माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त पर आधारित है। यह आधार ही गलत है कि मजदूरी मे वृद्धि के साथ-साथ जनसख्या मे भी वृद्धि होगी। योरोपीय देशो का उदाहरण हमारे सामने है कि वहाँ मजदूरी और आय बढ़ने के साथ-साथ जनसख्या मे वृद्धि होने के स्थान पर जीवन-स्तर उन्नत हुआ है और जनसख्या मे कमी हुई है।

1 यह सिद्धान्त श्रम की पूर्ति पक्ष पर आधारित है। इसमे श्रम की माँग-पक्ष की उपेक्षा की गई है। किसी भी वस्तु के मूल्य निर्धारण मे जिस प्रकार पूर्ति और माँग दोनो का होना आवश्यक है उसी प्रकार मजदूरी निर्धारण मे भी दोनो पक्षो का होना जरूरी है। अत मजदूरी निर्माण का यह सिद्धान्त एक-पक्षीय (One-sided theory of wage determination) है।

2 यह सिद्धान्त विभिन्न व्यवसायो मे पाई जाने वाली मजदूरी की विभिन्नताओ (Wage d fferenuals) के कारणो की व्याख्या करने मे पूर्ण रूप से असफल रहा है ।

3 यह सिद्धान्त मजदूरी मे वृद्धि से श्रमिक की कार्यकुशलता मे वृद्धि और उत्पादन मे वृद्धि के सम्बन्ध की उपेक्षा करता है । जब श्रमिको की मजदूरी बढेगी तो इससे उनका जीवन-स्तर उन्नत होगा तथा परिणामस्वरूप श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि के माध्यम से राष्ट्रीय उत्पादन बढेगा ।

4 जीवन निर्वाह से अधिक मजदूरी देने से श्रमिको की जनसख्या मे वृद्धि होगी और मजदूरी वापिस गिरकर जीवन निर्वाह व्यय के बराबर हो जाएगी—यह वास्तविकता से परे की बात है । आज हमारे सम्मुख विभिन्न विकसित देशो का उदाहरण है कि वहाँ मजदूरी मे वृद्धि करने से जीवन-स्तर मे वृद्धि हुई है न कि जनसख्या मे वृद्धि ।

5 यह सिद्धान्त उत्पादन के तरीकों मे सुधार, श्रमिक सघो तथा आविष्कारो आदि के कारण मजदूरी मे वृद्धि होने के कारणो की व्याख्या करने मे असमर्थ है । आधुनिक समय मे श्रमिक सघो, उत्पादन रीतियो मे सुधार तथा विभिन्न आविष्कारो के कारण भी समय-समय पर मजदूरी दरो मे परिवर्तन करने पडते है ।

6 जीवन निर्वाह के स्तर को भी ज्ञात करना कठिन है क्योकि विभिन्न श्रमिको व उनके परिवारो का जीवन निर्वाह-स्तर उनकी आवश्यकताओ, सदस्य सख्या आदि के कारण भिन्न-भिन्न होता है ।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
(The Standard of Living Theory of Wages)

यह सिद्धान्त जीवन निर्वाह सिद्धान्त का एक सुधरा हुआ रूप है । 19वी शताब्दी के अन्त मे 'जीवन निर्वाह' के स्थान पर 'जीवन-स्तर' का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त माना जाने लगा । इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी श्रमिक के जीवन निर्वाह के आधार पर निर्धारित न करके उसके जीवन स्तर के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए । जिस प्रकार के जीवन-स्तर व्यतीत करने के श्रमिक अभ्यस्त हो गए है उसके अनुसार ही उनको मजदूरी दी जानी चाहिए । श्रमिक उनके जीवन-स्तर से नीची मजदूरी स्वीकार नही करेंगे । ऊँचा जीवन-स्तर श्रमिक की कार्यकुशलता मे वृद्धि करता है, अत मजदूरी अधिक होनी चाहिए । मजदूरी के जीवन-स्तर के बराबर होने से एक ओर श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होने से उत्पादन मे वृद्धि होगी तथा श्रमिको को सौदा करने की शक्ति (Bargaining Power) मे भी वृद्धि होगी क्योकि श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि और उच्च जीवन-स्तर से जनसख्या पर नियन्त्रण रखा जा सकेगा ।

आलोचना—1. इस सिद्धान्त मे श्रम की माँग पक्ष की उपेक्षा की गई है । श्रम की पूर्ति को ध्यान मे रखकर ही मजदूरी निर्धारण करना एक पक्षीय है ।

2 जीवन-स्तर के अनुसार मजदूरी दी जाए अथवा मजदूरी के आधार पर जीवन-स्तर निर्धारित किया जाए-यह निश्चय करना कठिन है। वास्तविक जीवन में श्रमिकों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए मजदूरी में वृद्धि करना आवश्यक है।

3 जैसा जीवन-स्तर हो उसी के आधार पर मजदूरी का निर्धारण किया जाए-यह भी गलत है क्योंकि केवल ऊँचा जीवन-स्तर ही नहीं बल्कि श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होने पर ही मजदूरी में वृद्धि सम्भव हो सकती है।

4 जीवन-स्तर स्वयं एक परिवर्तनशील तत्त्व है। इसमें समय-समय पर परिवर्तन होने के कारण मजदूरी में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। लेकिन इस विषय में इस सिद्धान्त में कुछ भी नहीं कहा गया है।

मजदूरी कोष सिद्धान्त
(The Wage Fund Theory)

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रारम्भ में कई प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का हाथ रहा, लेकिन अन्तिम रूप देने वाले प्रो. जे. एस. मिल (J. S. Mill) ही माने जाते हैं। प्रो. मिल के अनुसार मजदूरी जनसंख्या तथा पूँजी के अनुपात पर निर्भर करती है। यहाँ जनसंख्या का सम्बन्ध श्रमिकों की संख्या से है, जो कि कार्य करने के लिए तैयार है। पूँजी का एक भाग श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान करने हेतु रखा जाता है। मजदूरी में वृद्धि तभी सम्भव होती है जबकि मजदूरी कोष में वृद्धि की जाए अथवा श्रमिकों की संख्या में कमी हो। सिद्धान्त में मजदूरी कोष को निश्चित माना है। इसमें वृद्धि या कमी सम्भव नहीं है। मजदूरी 'मजदूरी कोष' (Wage Fund) में से दी जाती है जो कि पूँजीपति द्वारा निश्चित किया जाता है तथा जिसे स्थिर माना गया है। दूसरी ओर श्रमिकों की संख्या प्राकृतिक कारणों पर निर्भर है। अतः मजदूरी की सामान्य दर (The general wage rate) मजदूरी कोष में श्रमिकों की संख्या का भाग लगाने से ज्ञात की जा सकती है।

$$\text{मजदूरी दर} = \frac{\text{मजदूरी कोष}}{\text{श्रमिकों की संख्या}}$$

उदाहरणत. यदि मजदूरी कोष 1000 रु है तथा श्रमिकों की संख्या 200 है तो मजदूरी दर 5 रु होगी।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी में वृद्धि तब तक सम्भव नहीं जब तक कि जनसंख्या नियन्त्रण द्वारा श्रमिक अपनी संख्या पर नियन्त्रण नहीं करते। यदि किसी उद्योग विशेष में मजदूरी दर में वृद्धि हो जाती है तो दूसरे उद्योगों में मजदूरों को कम मजदूरी मिलेगी क्योंकि मजदूरी कोष स्थिर या निश्चित है।

आलोचना– 1. यह सिद्धान्त मजदूरी कोष को दिया हुआ मानता है। मजदूरी कोष पहले ही निर्धारित नहीं होता है। इसमें परिवर्तन होता रहता है।

2 मजदूरी में वृद्धि मजदूरी कोष तथा मजदूरों की संख्या के आधार पर सम्भव न होकर श्रमिक की कार्यकुशलता में वृद्धि के परिणाम स्वरूप उत्पादन में वृद्धि होने से होती है।

3 यह मान्यता कि यदि मजदूरी अधिक दी जाएगी तो पूंजीपतियो का लाभ कम हो जाएगा, गलत है । वस्तुस्थिति यह है कि मजदूरी बढने से श्रमिक की कार्य कुशलता म वृद्धि होती है, उत्पादन बढता है और परिणामस्वरूप न केवल श्रमिक की मजदूरी ही बढती है, बल्कि पूंजीपतियो का लाभ भी बढता है ।

4 यह मान्यता भी कि मजदूरी मे वृद्धि होने से श्रमिको की सख्या मे वृद्धि होगी, गलत है । मजदूरी मे वृद्धि होने से जीवन-स्तर ऊँचा होगा और फलस्वरूप जनसख्या म अधिक वृद्धि नही होगी ।

5 यह सिद्धान्त श्रमिको की कार्य-कुशलता में भिन्नता के कारण मजदूरी में पाए जाने वाले अन्तरो (Differences) की व्याख्या करने मे असमर्थ रहा है ।

6 इस सिद्धान्त ने सुदृढ़ श्रमिक सघो (Strong Trade Unions) द्वारा सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) से मजदूरी में वृद्धि करा लेने की परिस्थितियो की पूर्ण उपेक्षा की है । जिन उद्योगो मे मजबूत श्रमिक सघ हैं, वे मजदूरी बढाने म सफल हो गए हैं ।

मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त
(The Residual Claimant Theory of Wages)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया । वाकर के अनुसार श्रमिक उद्योग के अवशिष्ट उत्पादन (Residual Product) का अधिकारी होता है । उद्योग के उत्पादन मे से उत्पादन के अन्य साधनों का लगान, ब्याज तथा लाभ का भुगतान करने के पश्चात् जो अवशिष्ट भाग बचता है वह मजदूरो को मजदूरी के रूप म वितरित कर दिया जाता है । लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण कुछ निश्चित नियमो द्वारा होता है, परन्तु मजदूरी निर्धारण मे कोई निश्चित सिद्धान्त काम मे नही लाया जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार यदि श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है, तो श्रमिको की मजदूरी भी बढेगी ।

मजदूरी=कुल उत्पादन—लगान+ब्याज+लाभ

आलोचना—1 यह सिद्धान्त श्रमिको की माँग-पक्ष का अध्ययन करता है न कि पूर्ति पक्ष (Supply side) का । मजदूरी निर्धारण मे दोनो पक्षो का होना आवश्यक है । अत यह सिद्धान्त एक-पक्षीय (One-side Theory) है ।

2 इस सिद्धान्त के अनुसार सबसे बाद मे भुगतान मजदूर को मजदूरी के रूप मे किया जाता है पर यह गलत है । वास्तविक जीवन मे सबसे पहले भुगतान श्रमिक को किया जाता है तथा अन्त मे अवशिष्ट का अधिकारी (Residual Claimant) साहसी अथवा उद्यमी होता है ।

3 यह सिद्धान्त श्रमिक सघो की मजदूरी को बढाने के प्रयासो की उपेक्षा करता है ।

4 जब लगान, ब्याज तथा लाभ के लिए निश्चित सिद्धान्त काम मे लाए जाते हैं तो फिर मजदूरी निर्धारण हेतु क्यो नही इन्हीं सिद्धान्तो का उपयोग किया जाता है, यह बताने म सिद्धान्त असमर्थ है ।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(The Marginal Productivity Theory of Wages)

यह सिद्धान्त उत्पादन के सभी साधनों का मूल्य-निर्धारण के काम मे लाया जाता है। जब वितरण के अन्तर्गत इस सिद्धान्त द्वारा सभी उत्पादन के साधनों का मूल्य निर्धारित किया जाता है तब इसे वितरण का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Distribution) कहा जाता है। श्रमिक का पारिश्रमिक निर्धारित करने मे इसे मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक को दिया जाने वाला पारिश्रमिक (Remuneration) उसके सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) के बराबर होना चाहिए। यदि सीमान्त उत्पादकता अधिक है तो पारिश्रमिक भी अधिक होगा और यदि सीमान्त उत्पादकता कम है तो पारिश्रमिक भी कम होगा। सीमान्त उत्पादकता किसी उद्योग मे एक अतिरिक्त श्रमिक को लगाने से कुल उत्पादन (Total Production) मे जो वृद्धि होगी, वही सीमान्त उत्पादकता होगी। उदाहरणत 100 श्रमिको द्वारा किसी वस्तु की 4000 इकाइयों का उत्पादन किया जाता है तथा 101 श्रमिक उसी उद्योग मे लगाने पर उत्पादन बढ़ कर 4050 इकाइयाँ हो जाता है तो ये 50 इकाइयाँ सीमान्त उत्पादन हुआ।

मजदूर को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य (Value of Marginal Productivity; i e V M P) के बराबर होती चाहिए। यदि श्रमिक को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम (W < V M P) दी जाती है तो श्रमिक का शोषण होता है तथा इससे अधिक (W > V M P) होने पर साहसी को हानि उठानी पड़ेगी। अत दीर्घकाल मे मजदूरी (Wages) श्रमिक के सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर (W = V M P) होगी।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है जो निम्नांकित है--

1 श्रम की सभी इकाइयाँ समरूप (Homogeneous) होती है। सभी इकाइयाँ कार्य-कुशलता मे समान होती है। उनमे अन्तर नहीं होता है।

2. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) की मान्यता पर आधारित है। साधनों का पूर्ण गतिशील, बाजार दशाओं का पूर्ण ज्ञान, उद्योग में प्रवेश व छोड़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता आदि इसके अन्तर्गत आते है।

3 साधन की इकाइयो मे पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitution) की स्थिति विद्यमान होती है।

4. साधन की मात्रा मे दूसरे साधन के साथ वृद्धि अथवा कमी करना सम्भव है। एक साधन की मात्रा अधिक अथवा कम की जा सकती है।

5 यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार (Full Employment) की मान्यता पर आधारित है। सभी साधनों को रोजगार मिला हुआ होता है।

6. यह सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) पर आधारित है। इसका अर्थ यह है कि किसी साधन की मात्रा गैर-आनुपातिक रूप से बढ़ाने से कुल उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होती है।

7. उत्पादन के साधन के रूप में श्रम पूर्ण गतिशील (Perfect Mobile) होता है। जहाँ अधिक मजदूरी है वहाँ श्रमिक कम मजदूरी वाले उद्योग को छोड़कर आ जाएँगे।

8. दीर्घकाल में ही मजदूरी श्रम के सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (W=V M P) के बराबर होगी। अल्पकाल में इसमें असन्तुलन (Disequilibrium) हो सकता है।

9. किसी भी उत्पादन के साधन की सीमान्त उत्पादकता उसकी अतिरिक्त इकाई लगाने से ज्ञात की जा सकती है।

आलोचना—इस सिद्धान्त की प्राय ये आलोचनाएँ की जाती हैं—

1. यह मानना कि श्रम की सभी इकाइयाँ समरूप होती हैं, गलत है। वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि कार्य-कुशलता के आधार पर श्रम के तीन भेद किए गए हैं—कुशल (Skilled), अर्द्ध-कुशल (Semi-skilled) और अकुशल (Un-skilled)।

2. सिद्धान्त द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को लेकर चलना भी अव्यावहारिक है क्योंकि व्यवहार में हमें अपूर्ण प्रतियोगिता ही देखने को मिलती है। बाजार की अपूर्णताएँ (Market Imperfections) जैसे बाजार की दशाओं का पूर्ण ज्ञान न होना, कृत्रिम बाधाएँ आदि हमें देखने को मिलती हैं।

3. कोई भी साधन पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitute) नहीं है। एक साधन की विभिन्न इकाइयों में असमानताएँ पाई जाती हैं तथा विभिन्न साधनों में भी स्थानापन्न एक सीमा तक ही सम्भव है।

4. यह मानना कि एक साधन की मात्रा में वृद्धि अथवा कमी दूसरे साधन के साथ सम्भव है, गलत है क्योंकि एक सीमा के पश्चात् साधन की मात्रा में वृद्धि या कमी से विभिन्न साधनों के बीच असन्तुलन उत्पन्न करके उत्पादन को सुचारु रूप से चलाने में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

5. पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित यह सिद्धान्त व्यावहारिकता से दूर है क्योंकि धनी से धनी अथवा विकसित से विकसित देश में भी 5 से 7 प्रतिशत बेरोजगारी पाई जाती है। वास्तव में पूर्ण रोजगार से कम (Less than full employment) की स्थिति हमें देखने को मिलती है।

6. इस सिद्धान्त द्वारा यह मानना कि हमेशा उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू रहता है, असत्य प्रतीत होता है क्योंकि उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) भी उत्पत्ति के प्रारम्भिक काल में लागू होता है। इसके पश्चात् उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns) लागू होता है तथा अन्तिम स्थिति में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

7. पूर्ण गतिशीलता की मान्यता सही नहीं है क्योंकि श्रमिक न केवल उत्पादन का साधन ही है, बल्कि वह एक मानव भी है। अतः मजदूरी में वृद्धि करने मात्र से ही मजदूर कम मजदूरी से अधिक मजदूरी वाले स्थान की ओर गतिशील नहीं होता है बल्कि वह अन्य तत्त्वों जैसे भाषा, स्थान, वातावरण, धर्म, जान-पहचान, वेशभूषा, रीति-रिवाज आदि से भी प्रभावित होता है, अतः उसमें गतिशीलता नहीं पाई जाती है।

8. यह सिद्धान्त मजदूरी का निर्धारण केवल दीर्घकाल में ही करता है। अल्पकालीन मजदूरी निर्धारण इससे असम्भव है। जैसा कि प्रो. कीन्स ने कहा है कि हमारी अधिकांश आर्थिक समस्याएँ अल्पकालीन हैं। दीर्घकाल में हम सब मर जाते हैं और कोई समस्या नहीं रहती है।

9. कुछ उत्पादन के साधनों की सीमान्त उत्पादकता मापना सम्भव नहीं है। साहसी या प्रबन्धक उत्पादन के साधन के रूप में एक-एक ही होते हैं। किसी भी उद्योग में दूसरा प्रबन्धक या साहसी लगाया नहीं जा सकता है। अतः साहसी या संगठनकर्ता की सीमान्त उत्पादकता मापने में यह सिद्धान्त असफल रहा है।

10. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण में श्रमिकों की माँग का ध्यान में रखता है। लेकिन मजदूरी को प्रभावित करने में श्रमिक की पूर्ति भी महत्त्व रखती है। अतः यह सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण का एक-पक्षीय सिद्धान्त (One-sided Theory) है।

मजदूरी का बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(The Discounted Marginal Productivity Theory of Wages)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो टाउसिग (Prof Taussig) ने किया। प्रो टाउसिग ने मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना करते हुए अपना मजदूरी का सिद्धान्त दिया जिसके अन्तर्गत श्रमिक को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम दी जाती है क्योंकि मजदूरी का भुगतान उत्पादित वस्तु की बिक्री के पूर्व ही उद्योगपति को करना पड़ता है। उद्योगपति अग्रिम रूप में भुगतान करते समय वर्तमान ब्याज दर पर बट्टा काट कर मजदूर को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम देता है। इसलिए इसे बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी निम्न प्रकार दी जाएगी -

मजदूरी की सामान्य दर = सीमान्त उत्पादकता—वर्तमान ब्याज दर से बट्टा

इस प्रकार पूँजीपति जब भी मजदूरी का भुगतान करता है तब वह वर्तमान ब्याज की दर के आधार पर सीमान्त उत्पादकता में से बट्टा काट कर ही श्रमिक को मजदूरी चुकाता है क्योंकि वर्तमान में श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु के बिक्री करने में समय लगता है जबकि मजदूरी का भुगतान पहले ही करना पड़ता है।

आलोचना—इस सिद्धान्त की निम्नांकित आलोचना की गई है—

1. यह सिद्धान्त 'धुँधला एवं अमूर्त' (Dim and Abstract Theory)

कहा जाता है क्योंकि व्यावहारिक जीवन मे मजदूरी निर्धारण मे इस सिद्धान्त की कोई उपयोगिता नही है ।

2 उत्पादन के अन्य साधनो जैसे पूंजी भूमि तथा साहसी का क्रमश ब्याज, लगान तथा लाभ अथवा हानि के रूप मे किए जाने वाले भुगतान मे से बट्टा क्यो नही काटा जाता है ? मजदूरी का भुगतान करते समय ही बट्टा क्यो काटा जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर हमे इस सिद्धान्त म नही मिलता है ।

3 इस सिद्धान्त म श्रम की पूर्ति (Supply of Labour) को निश्चित या दिया हुआ मानकर मजदूरी का निर्धारण किया जाता है जो कि एक-पक्षीय सिद्धान्त का एक नमूना है । दोनो पक्षो के बिना मजदूरी का निर्धारण सही तौर पर सभव नही हो पाता है ।

4 इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त पर सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सभी आलोचनाएँ लागू होती हैं ।

मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मजदूरी का मांग व पूर्ति का सिद्धान्त

यद्यपि मजदूर एक मानवीय उत्पादन का साधन (Human Factor of Production) है न कि एक वस्तु फिर इसका मूल्य निर्धारित करते समय हमे श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति दोनो को ध्यान म रखना पडेगा । प्रो० मार्शल के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रम की मांग और पूर्ति की शक्ति पर आधारित होगा जो कि भिन्न भिन्न देशो म भिन्न भिन्न पाई जाती है ।

किसी भी उद्योग मे मजदूरी का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहाँ पर श्रम की मांग इसके पूर्ति वक्र को काटती है।

श्रमिक की मांग (Demand for Labour)— श्रमिक की मांग नियोजक या उद्योगपति द्वारा उत्पादन करने हेतु की जाती है । उत्पादक श्रम की मांग करते समय उसके सीमान्त उत्पादकता क मूल्य (Value of Marginal Productivity or V M P) को ध्यान म रखता है । प्रत्येक उत्पादक श्रम की उस समय तक मांग करता रहेगा जहाँ तक कि श्रम का दिया जाने वाला पारिश्रमिक उसम सीमान्त उत्पादकता के 50 के बराबर (W=VMP) होता है । कोई भी उत्पादक श्रमिक को उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक पारिश्रमिक देने का तैयार नही होगा क्योकि इससे उसको हानि उठानी पडेगी ।

श्रम की मांग एक व्युत्पन्न मांग (Derived Demand) है । अत जिस वस्तु की मांग अधिक है तो श्रमिक की भी अधिक मांग की जाएगी । इसके विपरीत श्रमिक की मांग कम होगी ।

श्रम की मांग अन्य उत्पादन के साधनो की कीमतो द्वारा प्रभावित होती है । यदि अन्य साधनों की कीमतें अधिक हैं तो श्रमिक की मांग अधिक होगी अन्यथा कम ।

श्रमिक की माँग तकनीकी दशाओं (Technical Conditions) द्वारा भी प्रभावित होती है। यदि उत्पादन का श्रम गहन तरीका (Labour Intensive Technique of Production) अपनाया जाता है तो श्रमिकों की मांग अधिक होगी और पूंजी गहन उत्पादन के तरीके (Capital Intensive Technique of Production) के अन्तर्गत श्रमिकों की मांग कम होगी।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)—श्रम की पूर्ति का अर्थ है विभिन्न मजदूरी दरों पर कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या से अलग-अलग मजदूरी दर पर कितने-कितने श्रमिक कार्य करने हेतु तैयार होंगे। सामान्यतः श्रम की पूर्ति और मजदूरी दर में सीधा सम्बन्ध (Direct Relation) होता है अर्थात् अधिक मजदूरी पर अधिक श्रमिक तथा कम मजदूरी पर कम श्रमिक कार्य करने हेतु तैयार होंगे।

दीर्घकाल में मजदूरी श्रमिक के सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होगी। अल्पकाल में यह कम अथवा अधिक हो सकती है। मजदूरी सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों के बराबर ($W=MP=AP$) होगी। यह पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में ही होगी।

मजदूरी का सौदाकारी सिद्धान्त (Bargaining Theory of Wages)

प्रो० सिलवरमैन (Prof Silverman) के अनुसार सामान्यतः मजदूरी श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के बराबर होती है। लेकिन यह पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है जो कि व्यवहार में नहीं पाई जाती है। अतः वास्तविक मजदूरी का निर्धारण श्रमिकों व नियोजकों की सौदाकारी शक्तियों (Bargaining Powers of the Workers and Employers) द्वारा निर्धारित होता है। सीमान्त उत्पादन का मूल्य मजदूरी की अधिकतम सीमा निर्धारित करता है। यदि अपूर्ण प्रतियोगिता और श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति (Bargaining Power of Workers) दुर्बल है तो मजदूरी सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम होगी।

प्रो. रघुराजसिंह के अनुसार आधुनिक अर्थ-व्यवस्थाओं में सामान्यतः मजदूरी तीन तरीकों से निश्चित की जाती है।[1] ये तरीके हैं—व्यक्तिगत सौदाकारी, सामूहिक सौदाकारी और कानूनी नियमन।

व्यक्तिगत सौदाकरी (Individual Bargaining) के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक अपने नियोजक से व्यक्तिगत रूप से मजदूरी का सौदा करता है। एक व्यक्ति की सौदा करने की शक्ति कमजोर होने से उसे उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम मजदूरी मिलेगी और इस प्रकार व्यक्तिगत सौदाकारी के अन्तर्गत शोषण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

सामूहिक सौदाकरी (Collective Bargaining) के अन्तर्गत श्रम के क्रेता (नियोजक) तथा विक्रेता (श्रमिक) सामूहिक रूप से मिलकर मजदूरी निर्धारण का

1. *Raghu Raj Singh* : Movement of Industrial Wages in India, p. 27.

कार्य करते है। इसके अन्तर्गत मालिक शुरू मे न्यूनतम मजदूरी देना चाहेगा जबकि श्रमिक अधिकतम मजदूरी का प्रस्ताव रखेंगे। इसके अन्तर्गत वास्तविक मजदूरी दर का निर्धारण श्रमिको और नियोजको की सौदाकारी शक्ति तथा उनकी दक्षता पर आधारित होता है। जो पक्ष जितना अधिक सुसगठित तथा सुदृढ (Well-organised and strong) होगा उतनी ही सफलता उसे अधिक मिलेगी। एक विकासशील देश (जैसे भारत) मे सुसगठित तथा सुदृढ श्रमिक सघो का अभाव होने से यहाँ के श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति दुर्बल होने पर उनका शोषण होता है तथा मजदूरी दर नियोजको या मालिको के अधिक अनुकूल है। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत निर्धारित वास्तविक मजदूरी किसी भी उद्योग या व्यवसाय म वहाँ के श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर हो सकती है तथा नही भी हो सकती है।

कभी-कभी नियोजक तथा श्रमिक सामूहिक सौदाकारी द्वारा मजदूरी-निर्धारण म असफल हो जाते हैं तब मजदूरी का निर्धारण ऐच्छिक सुलह अथवा पचफैसले (Arbitration) के आधार पर होता है। यह निर्धारण दोनो की सहमति तथा समझौते पर आधारित होने के कारण दोनो पक्षो की सौदेकारी शक्ति तथा कुशलता को प्रदर्शित करता है। पचफैसले के अन्तर्गत जो भी पच नियुक्त होता है यह मजदूरी निर्धारित करते समय न केवल दोनो पक्षो की सौदेकारी शक्ति व कार्य-कुशलता को ही ध्यान मे रखती है वल्कि वह उद्योग या नियोजक की भुगतान क्षमता, श्रमिको की जीवन निर्वाह लागत, श्रमिको की उत्पादकता वर्तमान म पाई जाने वाली मजदूरी दरे और राष्ट्रीय हित आदि बातो को भी ध्यान मे रखता है।

इसके अतिरिक्त मजदूरी निर्धारण का कार्य किसी वैधानिक मण्डल द्वारा भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, हमारे देश मे विभिन्न उद्योगो के लिए समय-समय पर वेतन मण्डल (Wage Boards) नियुक्त किए हैं तथा उनकी सिफारिशों के आधार पर सरकार ने मजदूरी निश्चित की है। ये मण्डल मजदूरी निर्धारित करते समय देश के औद्योगिक स्तर, आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक पहलुओ को ध्यान मे रखते हुए मजदूरी निर्धारित करते हैं।

मजदूरी का सौदाकारी सिद्धान्त सवप्रथम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वेब्स ने प्रतिपादित किया था। इसके बाद स ही यह सिद्धान्त श्रमिक सघो का मूलभूत सिद्धान्त बन गया। प्रो मिलिस एव मोन्टगोमरी (Prof Millis & Montgomery) के अनुसार मजदूरी, कार्य के घण्टे और कार्य की दशा में दोनो पक्षो की सापेक्षिक सौदेकारी शक्ति का मामला है। सुसगठित प्रयासों के माध्यम से मजदूरी, कार्य के घटो तथा अन्य महत्त्वपूर्ण श्रम प्रसविदो और उनके प्रशासन मे महत्त्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है।[1]

मूल्य, मी. के न्यूनी. के., विशेषत रूप से सीमा. की मजदूर, अदेरी. के. मजदूरत्, मे. री. सौदेकारी सिद्धान्त ने मजदूरी दरों तथा अल्पकालीन मजदूरी विभिन्नताओ के निर्धारण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

1 *Millis H A & Montgomery R A* Organised Labour, ■ 36

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रमिक अपनी मजदूरी बढ़वाने में असमर्थ थे। लेकिन आधुनिक समय में समाजवादी विचारधारा और सुसंगठित तथा सुदृढ़ श्रमिक संघों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नियोजक (Employer) अपनी इच्छानुसार कार्य की दशाएँ, काम के घंटे, मजदूरी, संगठन का प्रशासन आदि निर्धारित नहीं कर सकता। अब श्रमिक एक वस्तु की तरह क्रय नहीं किया जा सकता। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं को मानकर चलते थे जो कि व्यवहार में नहीं पाई जाती हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिकों को सुसंगठित तथा सुदृढ़ होना चाहिए और मजदूरी में कमी करने के किसी भी दबाव का डट कर मुकाबला करना चाहिए। सामूहिक सौदे द्वारा ही श्रमिक अपनी मजदूरी, कार्य के घंटे, कार्य की दशाओं आदि में महत्त्वपूर्ण सुधार करवाने में सफल हो सकते हैं। यह सिद्धान्त 'संगठन ही शक्ति है' (Union is Strength) पर आधारित है।

प्रो कीन्स की 1936 में 'सामान्य सिद्धान्त' नामक पुस्तक के प्रकाशित होने से प्रो वेब्स के सौदाकारी सिद्धान्त को एक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक सहारा मिला।

आलोचना—मजदूरी के सौदेकारी सिद्धान्त की भी उसी प्रकार से आलोचना की गई है जिस प्रकार से मजदूरी के सीमान्त उत्पादन की—

1. यह प्रश्न किया गया है कि क्या मजदूरी निर्धारण करने में सौदेकारी सिद्धान्त उपयुक्त एवं वांछनीय प्रभाव डालता है? मजदूरी निर्धारित करते समय उद्योग की भुगतान-क्षमता, विभिन्न उद्योगों में पाई जाने वाली मजदूरी दरें, सहकारी नीति आदि तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

2. नियोजक (Employers) इस सिद्धान्त की आलोचना करते हैं क्योंकि साधन-बाजार (Factor Market) में प्रतियोगिता के अभाव की मान्यता पर यह सिद्धान्त आधारित है। हम देखते हैं कि इन्जीनियरिंग, वैज्ञानिक और अन्य तकनीकी पदों के लिए कर्मचारी प्रायः नहीं मिल पाते हैं।

3. सामूहिक सौदेकारी द्वारा मजदूरी में इतनी शीघ्र वृद्धि नहीं हो पाती है जितनी कि व्यक्तिगत सौदेकारी में—यह मान्यता भी गलत है क्योंकि व्यवहार में हम देखते हैं कि व्यक्तिगत सौदेकारी के अन्तर्गत श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम मजदूरी मिलती है जबकि सामूहिक सौदेकारी के अन्तर्गत यदि सुदृढ़ एवं सुसंगठित (Strong and well-organised) श्रमिक हैं तो मजदूरी कभी भी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम नहीं हो सकती है।

4. सामूहिक सौदेकारी के आधार पर हुए मजदूरी निर्धारण के समझौते की भी आलोचना की गई है क्योंकि सामूहिक सौदेकारी सिद्धान्त द्वारा निर्धारित मजदूरी जरूरी नहीं है कि सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर हो अथवा उद्योग की भुगतान क्षमता, राष्ट्रीय नीति आदि के अनुकूल हो। इस सिद्धान्त द्वारा हुए समझौते को सही नहीं मान सकते। चाहे इसे साधनों के कुशल आवण्टन, मूल्य-स्थिरता अथवा समान कार्य हेतु समान मजदूरी को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाए।

5 सामूहिक सौदेबारी सिद्धान्त के अन्तर्गत हुए मजदूरी समझौतों की सामाजिक तथा आर्थिक लागतें (Socal and economic costs of wage dispute settlements) भी होती हैं जो कि राष्ट्रीय प्रगति मे बाधक होती हैं—जैसे हड़तालें, ताला-बन्दियाँ, मध्यस्थता, पचफैसला, आदि। इनको भी ध्यान मे रखकर इस सिद्धान्त की उपयुक्तता का अध्ययन करना होगा।

6 सौदेबारी सिद्धान्त की सबसे प्रभावपूर्ण दुर्बलता इसका अवसरवादी गुण (Opportunistic Character) है। यह अपने आप मे मजदूरी-निर्धारण का एक पूर्ण सिद्धान्त (Complete Theory) नही है क्योंकि यह दीर्घकालीन रूपरेखाएँ प्रस्तुत नही करता। जब दोनो पक्ष सगठित हों और मजदूरी का निर्धारण सौदेबारी सिद्धान्त के आधार पर हो जाए तो फिर आगे क्या कार्यक्रम होगा—इसे बताने मे यह सिद्धान्त असफल रहा है।

प्रो कीन्स के अनुसार मजदूरी न केवल सौदेबारी शक्ति द्वारा ही निर्धारित की जाए, बल्कि इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित बातें भी ध्यान मे रखनी होंगी—

1 एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति (A National Wages Policy),
2 एक स्थिर नकदी मजदूरी स्तर (A Stable Money Wage Level),
3 दीर्घकाल मे बढ़ता हुआ नकदी मजदूरी स्तर (A rising money wage level in the long run)।

श्रमिक शोषण की विचारधारा
(Concept of 'Exploitation of Labour')

श्रमिक शोषण की विचारधारा समाजवादी अर्थशास्त्रियो की देन है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Das Capital' म पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था को श्रमिक शोषण क लिए उत्तरदायी बताया है। उन्होंने इसी विचारधारा के आधार पर मूल्य का बचत सिद्धान्त (Surplus Theory of Value) प्रतिपादित किया है। इसके अन्तगत श्रमिक को पूँजीपति उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम मजदूरी देकर उसका शोषण करते हैं। साथ ही पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे जो लाभ है वह श्रमिको के शोषण का परिणाम माना है।

श्रमिको का शोषण श्रमिको व मालिको की असमान सौदेबारी शक्ति के कारण होता है क्योंकि श्रमिक प्राय विकासशील देशो मे सुदृढ तथा सुसगठित नही होने के कारण उनकी मोलभाव करने की शक्ति (Bargaining Power) कमजोर होती है और उनको जो मजदूरी दी जाती है वह उनके कुल उत्पादन मे किए गए योगदान (Contribution to total production) के मूल्य से कम होती है और इस तरह उनका शोषण होना रहता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री (Classical Economists) वस्तु बाजार (Commodity Market) तथा साधन बाजार (Factor Market) मे पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को मान कर चले थे। अत उस समय किसी भी साधन के शोषण होने का प्रश्न नही उत्पन्न होता था। लेकिन हम वास्तविक जीवन मे देखते हैं कि न तो वस्तु,

बाजार और न ही साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है। व्यवहार में अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण साधन के शोषण की स्थिति उत्पन्न होती है।

साधारणव्यक्ति की दृष्टि में जब लाभ अधिक हो और मजदूरी काफी कम, तो श्रम का शोषण माना जाता है। अर्थशास्त्रियों ने श्रमिक का शोषण विभिन्न रूपों में परिभाषित किया है। प्रो पीगू के अनुसार जब श्रमिक को उसके सीमान्त भौतिक उत्पादन के मूल्य (Value of Marginal Physical Product) से कम मजदूरी दी जाती है तो श्रमिक शोषण होगा जबकि श्रीमती जॉन रोबिन्सन (Mrs Joan Robinson) ने श्रमिक के शोषण को सीमान्त विशुद्ध उत्पादकता (Marginal Net Productivity) के रूप में परिभाषित किया है। इसमें सीमान्त विशुद्ध उत्पादकता से अर्थ है—सीमान्त भौतिक उत्पादकता को फर्म के सीमान्त आगम (Marginal Revenue or M R) से गुणा किया जाना। श्रीमती रोबिन्सन के अनुसार श्रमिक का शोषण श्रम बाजार की अपूर्णताओं के कारण होता है जबकि प्रो पीगू की श्रम शोषण सम्बन्धी विचारधारा व्यापक है। उनके अनुसार श्रमिक का शोषण न केवल श्रम बाजार की अपूर्णताओं का परिणाम है, बल्कि इस शोषण में वस्तु बाजार की अपूर्णताओं का भी हाथ है। वस्तु बाजार में जब अपूर्ण प्रतियोगिता होती है तो सीमान्त आगम कीमत से कम (Marginal Revenue is less than Price or $MR < P$) होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत श्रमिक शोषण के अध्ययन हेतु हमें सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity) को ध्यान में रखना चाहिए। वास्तविक व्यवहार में हमें पूर्ण प्रतियोगिता न केवल साधन बाजार (Factor Market) में बल्कि वस्तु बाजार (Commodity Market) में भी देखने को नहीं मिलती है। यदि नियोक्ता सभी उत्पादन के साधनों को उनके सीमान्त उत्पादन के मूल्य (Value of Marginal Product) के बराबर भुगतान कर देता है तो स्वयं उसका शोषण होगा। श्रमिकों के शोषण के कारणों का अध्ययन अग्रलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1 अपूर्ण वस्तु बाजार (Imperfect Commodity Market) के कारण श्रमिक का शोषण होता है क्योंकि प्रत्येक उत्पादन के साधन का सीमान्त आगम उत्पादन इसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम ($MRP < VMP$ or Marginal Revenue Product is less than Value of Marginal Product) होता है। इस प्रकार का शोषण सभी साधनों का होता है। जहाँ तक कुछ सीमा तक एकाधिकारी तत्व की स्थिति देखने को मिलेगी, श्रमिकों का शोषण भी होता रहेगा। इस स्थिति में मजदूरी बढ़ाने से शोषण समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा करने से रोजगार तथा उत्पादन में कमी आ जाएगी। इस कमी का कारण मजदूरी बढ़ाने से उद्योग की उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। इस शोषण को समाप्त करने के लिए एकाधिकारी द्वारा उतना उत्पादन करना होगा जो कि उसकी औसत लागत तथा कीमत दोनों को बराबर (Average Cost=Price) करता

हो। यदि मजदूरी नीची है तो हम यह नहीं कह सकते कि श्रमिक शोषण होता है। यह तभी कहा जा सकता है जबकि श्रमिक की उत्पादकता को ध्यान में रखा जाए। उत्पादकता कम होने पर मजदूरी भी कम होगी और इसे हम श्रमिक के शोषण के नाम से नहीं पुकार सकते।

2 श्रम बाजार (Labour Market) के अपूर्ण होने की स्थिति में भी श्रम का शोषण होता है क्योंकि इसके अन्तर्गत नियोक्ता मिलकर श्रम के क्रय हेतु समझौता कर लेते हैं। यह शोषण उस स्थिति में भी सम्भव है जहाँ पर श्रम की पूर्ति पूर्ण लोचदार से कम होती है। श्रम की पूर्ति पूर्ण लोचदार से कम उस स्थिति में हो सकती है—जब श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग में गतिशील न हो और चालू मजदूरी-दरों पर कार्य करने को तत्पर न हो।

जहाँ क्रेताधिकार (Monopsomy) की स्थिति श्रम बाजार में विद्यमान होती है वहाँ श्रमिक का शोषण होता है। श्रमिक-संघ क्रेताधिकारियों पर मजदूरी बढ़ाने हेतु दबाव डाल सकते हैं लेकिन उनको अधिक सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि अधिक दबाव डालने पर श्रमिकों के रोजगार पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

3 श्रमिकों की भिन्नता (Heterogeneity of Labour) के कारण भी श्रमिकों का शोषण सम्भव होता है क्योंकि श्रमिकों को अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—जैसे कुशल, अर्द्ध कुशल एवं अकुशल। कार्य-कुशलता के आधार पर विभिन्न वर्गों वाले श्रमिकों को अलग-अलग पारिश्रमिक दिया जाता है। एक ही वर्ग जैसे कुशल में भी कितने ही श्रमिक होते हैं। सबसे घटिया दक्षता वाले श्रमिक को जितनी मजदूरी दी जाती है और उतनी ही उससे अधिक दक्षता रखने वाले श्रमिक को दी जाती है तो यह भी श्रमिक-शोषण को उत्पन्न करता है।

आधुनिक विचारधारा

उपरोक्त मजदूरी निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोई भी मजदूरी-निर्धारण का सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण एवं व्यावहारिक नहीं है। इस तरह किसी भी राष्ट्र में मजदूरी निर्धारण सम्बन्धी कार्य एक जटिल विषय है। प्राचीन समय में मजदूर को एक वस्तु की भाँति समझकर मजदूरी का निर्धारण कर दिया जाता था लेकिन अब समाजवादी विचारधाराओं तथा कल्याणकारी राज्य की भूमिका ने मजदूरी निर्धारण सम्बन्धी विचार को पूर्ण रूप से बदल दिया है। अब श्रमिक के वस्तु दृष्टिकोण के स्थान पर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है। अब श्रमिक का सम्बन्ध नियोक्ता के साथ मालिक मजदूर का न रहकर सहभागिता (Partnership) का सम्बन्ध हो गया है। औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) के विकास से श्रमिक उद्योग के प्रशासन में भी हाथ बँटाते हैं। अधिकांश देशों में मजदूरी निर्धारण में कई महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रभाव डालते हैं—जैसे श्रम की उत्पादकता, श्रमिकों व नियोक्ताओं की सौदेबारी शक्ति, सरकारी विधान एवं हस्तक्षेप, आर्थिक विकास का

स्तर, राष्ट्रीय आय, जीवन निर्वाह लाभ, उद्योग की भुगतान क्षमता,, सामाजिक लाभ नियोक्ता का उपभोग और विनियोग एवं उसकी एकाधिकार तत्त्व की स्थिति आदि। मजदूरी निर्धारित करते समय इन बातों को ध्यान में रखना पड़ेगा।

मजदूरी में अन्तर के कारण (Causes of Wage Differentials)

मजदूरी से सम्बन्धित समस्या सापेक्षिक मजदूरी (Relative Wages) है। इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों, विभिन्न रोजगारों, विभिन्न स्थानों में मजदूरी में अन्तर होने के कारणों का अध्ययन किया जाता है। भिन्न-भिन्न व्यवसायों में मजदूरी की दर समान नहीं होती है। एक ही व्यवसाय और विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी में पाए जाने वाले कारणों का अध्ययन करना उचित होगा। वे तत्त्व जिनके कारण विभिन्न व्यवसायों, विभिन्न रोजगारों तथा स्थानों में मजदूरी में अन्तर पाया जाता है, निम्नांकित हैं—

1. **कार्यकुशलता में अन्तर (Differences in Efficiency)**—एक ही व्यवसाय तथा विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी में भिन्नता का कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता में अन्तर का पाया जाना है। श्रमिक कुशल (Skilled), अर्द्ध-कुशल *(Semi-skilled) एवं अकुशल (Unskilled)* होते हैं। *यह कार्यकुशलता का* अन्तर जन्मजात गुणों (Inborn qualities), शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कार्य की दशाओं आदि के कारण से होता है। अतः जब कार्यकुशलता अलग-अलग होगी तो मजदूरी में अन्तर होना भी स्वाभाविक है।

2. **बाजार की अपूर्णताएँ (Market Imperfections)**—श्रम का पूर्ण गतिशील न होना, एकाधिकारी तत्त्व तथा सरकारी हस्तक्षेप आदि बाजार की अपूर्णताओं को उत्पन्न करते हैं। इन्हीं अपूर्णताओं के कारण मजदूरी में अन्तर पाए जाते हैं। किसी व्यवसाय में सुदृढ़ श्रम संघ का होना सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, श्रमिकों में भौगोलिक गतिशीलता का अभाव एवं श्रम की गतिशीलता में सामाजिक तथा संस्थागत बाधक तत्त्व आदि के कारण बाजार की अपूर्णताएँ पाई जाती हैं। परिणामस्वरूप मजदूरी में अन्तर देखने को मिलते हैं।

3. **किसी व्यवसाय को सीखने की लागत अथवा कठिनाई** के कारण किसी व्यवसाय विशेष में श्रमिकों की पूर्ति उनकी मांग की तुलना में कम होती है। परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी अन्य वर्गों से अधिक होगी और मजदूरी में अन्तर पाए जाएंगे। उदाहरणतः डॉक्टर व इंजीनियर को एक साधारण स्नातक से अधिक वेतन मिलता है।

4. **कार्य की प्रकृति (Nature of Work)**—कुछ कार्य स्थायी होते हैं तथा कुछ सामयिक (Seasonal) होते हैं। स्थायी कार्यों में लगे श्रमिकों की मजदूरी दर कम होती है जबकि अस्थायी प्रकृति वाले कार्यों में लगे श्रमिकों को प्रायः अधिक मजदूरी दी जाती है। ये सभी कारण मजदूरी में अन्तर को जन्म देते हैं।

5 भावी उन्नति में अन्तर (Differences in Future Prospects) के कारण भी मजदूरी में अन्तर पाए जाते हैं। जिस व्यवसाय या उद्योग में श्रमिकों को भविष्य में उन्नति के अधिक अवसर होते हैं, उसमें श्रमिक प्रारम्भ में कम मजदूरी पर भी काम करने को तैयार हो जाते हैं। इसके विपरीत जिन व्यवसायों में भावी उन्नति के आसार कम अथवा नहीं होते हैं, उनमें प्रारम्भ में श्रमिकों को ऊँची मजदूरी का भुगतान किया जाता है। अतः इस भिन्नता के कारण अलग-अलग व्यवसायों में मजदूरी में अन्तर देखने को मिलेंगे।

6. रोजगार का समाज में स्थान (Social Esteem of Employment)—निम्न कार्य के लिए अधिक मजदूरी देकर श्रमिकों को आकर्षित करना पड़ता है क्योंकि समाज में ऐसे कार्य करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता है जबकि समाज में अच्छी निगाह से देखे जाने वाले रोजगार के लिए कम मजदूरी देने पर भी श्रमिक कार्य करने हेतु तैयार हो जाएँगे।

7. व्यवसाय की जोखिम (Risk of Occupation)—जिन व्यवसायों में कार्य अधिक खतरनाक अथवा जोखिमपूर्ण होते हैं, उनमें कार्य करने वालों को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है जबकि दूसरी ओर आसान कार्य करने वालों को कम मजदूरी दी जाती है। श्रमिक व सैनिक दोनों की मजदूरी में अन्तर मुख्यतः इसी कारण पाया जाता है।

8 निर्वाह लागत (Cost of Living)—जिन स्थानों या शहरों में जीवन निर्वाह लागत अधिक होती है वहाँ पर कार्य करने वालों को ऊँचा वेतन दिया जाता है जबकि दूसरी ओर सस्ते जीवन निर्वाह लागत वाले शहरों में मजदूरी कम दी जाती है। इस प्रकार जीवन निर्वाह लागत मजदूरी में अन्तर उत्पन्न करती है।

मजदूरी में विभिन्नता एक पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण देन है। इस अर्थ-व्यवस्था का अर्थ-तन्त्र ही ऐसा है जो कि मजदूरी में अन्तर तथा आर्थिक असमानता को जन्म देने में सहायक होता है। फिर भी विभिन्न श्रमिकों की कार्य-कुशलता की विभिन्नताओं के कारण मजदूरी में अन्तर होना परमावश्यक (Inevitable) है। एक अमेरिका जैसी स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था में मजदूरी का निर्धारण बाजार दशाओं के आधार पर होने के कारण मजदूरी की विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में भी मजदूरी में पाई जाने वाली विभिन्नताओं को अभी समाप्त नहीं किया जा सका है, यद्यपि इन देशों में उत्पादन के सभी साधन सरकारी स्वामित्व में हैं तथा निजी सम्पत्ति के अधिकार को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है।

मजदूरी में अन्तर श्रमिकों के शारीरिक और मानसिक गुणों के अलग-अलग होने का परिणाम है। श्रमिकों में मौलिक तथा प्राप्त गुणों के अन्तर के कारण उनकी दक्षता भी अलग-अलग होती है और स्वाभाविक है कि उनको मजदूरी भी अलग-अलग दी जाएगी। विभिन्न श्रमिकों की उत्पादन-क्षमता भी इससे अलग-अलग होगी।

मजदूरी-अन्तरों के प्रकार
(Types of Wage Differentials)

मजदूरी में अन्तरों को इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है[1]—

1. रोजगार बाजार की अपूर्णताओं (Imperfections of the Employment Market) के कारण भी मजदूरी में अन्तर उत्पन्न होते है। श्रमिक को कार्य की जानकारी का न होना, श्रमिक की भौगोलिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता का अभाव आदि मजदूरी में अन्तर को प्रोत्साहन देते हैं।

2. लिंग, आयु आदि के कारण भी मजदूरी में अन्तर पाया जाता है। स्त्री को पुरुष से कम मजदूरी दी जाती है और बालक को वयस्क से कम मजदूरी दी जाती है।

3. व्यावसायिक मजदूरी में अन्तर (Occupational Wage Differentials)—व्यवसायों को भी मानसिक तथा शारीरिक कार्य करने वालों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। रोजगार बाजार में कितनी ही पूर्णताएँ क्यों न हों फिर भी व्यावसायिक मजदूरी में अन्तर मिलेंगे। किसी एक उद्योग के प्रबन्धक को वेतन तथा इसी संस्थान के विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्षों को मिलने वाला वेतन अलग-अलग होता है। शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी भी मानसिक कार्य करने वाले श्रमिकों से अलग होगी।

---

1. *Bhagoliwal, T. N.* : Economics of Labour & Social Welfare, p. 252.

3 मजदूरी और उत्पादकता, ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता, राष्ट्रीय आय वितरण में श्रम का भाग, प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ, भारत में मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ

(WAGES AND PRODUCTIVITY, ECONOMY OF HIGH WAGES, LABOUR SHARE IN NATIONAL INCOME DISTRIBUTION, METHODS OF INCENTIVE WAGE PAYMENT, SYSTEMS OF WAGE PAYMENT IN INDIA)

मजदूरी और उत्पादकता
(Wages and Productivity)

मजदूरी को प्रभावित करने मे उत्पादकता का महत्वपूर्ण स्थान है । जब भी मजदूरी मे वृद्धि की जाती है तो यह सोचा जाता है कि उत्पादकता मे भी वृद्धि होगी अथवा नही । यद्यपि उत्पादकता के आधार पर ही मजदूरी मे वृद्धि करना वांछनीय होगा, लेकिन स्वय उत्पादकता को मापना बडा कठिन है । किसी वस्तु के उत्पादन मे उत्पादन के विभिन्न साधनो का सहयोग होता है । एक साधन द्वारा एक वस्तु के उत्पादन मे कितना योगदान रहा है, वह उस साधन की उत्पादकता होती है । श्रम की एक इकाई द्वारा कितना उत्पादन किया जाता है वही उसकी उत्पादकता है । रोजगार की दी हुई मात्रा के साथ राष्ट्रीय आय की मात्रा श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करती है । उत्पादन को अधिकतम करने हेतु हमे मानवीय शक्ति को रोजगार देकर उससे अधिकतम उत्पादन करना होगा । अधिक रोजगार होने के बावजूद भी उत्पादन अधिकतम सम्भव नही हो पाता यदि श्रमिको की उत्पादकता कम है ।

उत्पादन के यन्त्रो, उत्पादन के तरीको, प्रबन्ध-कुशलता, अन्य साधनो की पूर्ति आदि को दिया हुआ मानकर चलें तो हम कह सकते है कि श्रमिक उत्पादकता उसकी कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। कार्यकुशलता तथा उत्पादकता मे सीधा सम्बन्ध है। यदि कार्यकुशलता अच्छी है तो उत्पादकता मे वृद्धि होगी अन्यथा नहीं।

उत्पादकता की परिभाषा
(Definition of Productivity)

उत्पादकता किसी वस्तु के उत्पादन की मात्रा और एक या अधिक उत्पादन के साधनो का अनुपात बताती है, जो कि मात्रा मे ही मापी जाती है।[1] इस विचार के अनुसार उत्पादकता विभिन्न प्रकार की होती है, जैसे—*श्रम उत्पादकता, पूंजी उत्पादकता, शक्ति उत्पादकता एवं कच्चे माल की उत्पादकता, आदि।*

प्रो. गाँगुली (Prof. H C Ganguli) के अनुसार उत्पादकता का अर्थ सामान्यतया किसी सृजन करने की शक्ति या क्षमता से होता है (Productivity usually means possession or rise of the power to create)। उत्पादकता को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है[2]—

$$\text{श्रम उत्पादकता} = \frac{\text{धन का उत्पादन (Output of Wealth)}}{\text{श्रम साधन (Input of Labour)}}$$

उपयोग और महत्त्व
(Uses and Significance)

श्रम उत्पादकता के उपयोग व महत्त्व को निम्न रूपो मे देखा जा सकता है—

1. *किसी भी देश मे विकास और प्रगति की दर एक लम्बे समय तक किस* तरह परिवर्तित रही है। उत्पादकता को किसी भी समाज की उन्नति का बैरोमीटर कहा जा सकता है। अधिक उत्पादकता है तो इससे उत्पादन मे वृद्धि होगी और राष्ट्रीय आर्थिक विकास की दर मे वृद्धि होगी।

2. उत्पादकता सूचकांको की सहायता से विभिन्न सरकारी, व्यावसायिक एवं श्रम संघ नीतियो जिनका सम्बन्ध उत्पादन, मजदूरी, मूल्य, रोजगार, कार्य के घण्टो और जीवन-निर्वाह से होता है, निर्धारण आसानी से किया जा सकता है।

3. मजदूरी दरो के सम्बन्ध मे सौदा करने की सुविधा उत्पादकता के कारण ही सम्भव होती है *क्योंकि उत्पादकता मे वृद्धि होते ही श्रमिक मजदूरी मे वृद्धि करने* की मांग कर सकते हैं।

4. उत्पादकता की सहायता से हम विभिन्न उद्योगों की उत्पादकता का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते है तथा यह पता लगा सकते हैं कि साहसी निम्न उत्पादकता उद्योग से अधिक उत्पादकता उद्योग में अपनी पूंजी निवेश करता है अथवा नहीं।

1. *Beri, G C.*: Measurements of Production & Productivity in Indian Industry, p. 90.
2. *Ganguli, H. C.*: Industrial Productivity and Motivation, p. 1.

5 उत्पादकता से हमे यह भी पता चलता है कि किसी औद्योगिक इकाई मे वित्तीय, प्रबन्धकीय एव प्रशासकीय एकीकृत नीति का उसकी उत्पादकता पर क्या प्रभाव पडता है ।

6 उत्पादकता सूचकांको के सहारे किसी भी औद्योगिक इकाई मे विवेकीकरण (Rationalisation) तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management) की योजनाओ के लागू करने से निकले परिणाम ज्ञात किए जा सकते हैं ।

7 कारखाना प्रबन्धक उत्पादकता के माध्यम से नवीन मजदूरी भुगतान तथा प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतानो की सफलता के बारे मे भी जानकारी प्राप्त कर सकता है ।

श्रम की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors affecting the Productivity of Labour)

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि श्रम उत्पादकता किन-किन तत्त्वो से प्रभावित होती है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organisation) के अनुसार श्रम की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्वो को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है[1]—

1 सामान्य तत्त्व (General Factors)—श्रम उत्पादकता को प्रभावित करने मे सामान्य तत्त्व महत्त्वपूर्ण है । सामान्य तत्त्वो के अन्तर्गत जलवायु, कच्चे माल का भौगोलिक वितरण आदि आते हैं । जहाँ गर्म जलवायु होती है वहाँ के श्रमिक लम्बे समय तक कार्य नही कर पाते हैं तथा उनकी कार्य क्षमता कम होने से उत्पादकता भी कम होती है । भारतीय श्रमिक योरोपीय श्रमिक की तुलना मे कम उत्पादकता देता है क्योकि हमारे देश की जलवायु गर्म है । जहाँ कच्चा माल आसानी से और शीघ्र सुलभ होता है वहाँ श्रमिक उत्पादकता अधिक होगी और इसके विपरीत कम उत्पादकता होगी ।

2 संगठन एव तकनीकी तत्त्व (Organisation & Technical Factors)—श्रम की उत्पादकता उद्योग के सगठन तथा उसमे काम लाई गई तकनीकी द्वारा भी प्रभावित होती है । इसके अन्तर्गत कच्चे माल की किस्म (Quality of raw material), प्लाण्ट की स्थिति एव सरचना, मशीनो एव औजारो की घिसावट आदि आते हैं ।

3 मानवीय तत्त्व (Human Factors)—मानवीय तत्त्वो से भी श्रम की उत्पादकता प्रभावित होती है । मानवीय तत्त्वो के अन्तर्गत श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध, कार्य की सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक दशाएँ, श्रम सघ व्यवहार आदि आते हैं । जिस सस्थान मे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध अच्छे एव मधुर होते हैं वहाँ हडताल, ताला-बन्दियाँ, धीमे कार्य की प्रवृत्तियाँ आदि न होने से श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि होती है । इसके

1 *Beri, G C* Measurements of Production & Productivity in Indian Industry, p 9

विपरीत बातें होने पर श्रम की उत्पादकता घटती है। कार्य की दशाएँ अच्छी होने पर तथा श्रम समस्याओं को मानवीय दृष्टिकोण से देखने पर श्रमिकों की मनोदशा और समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ने से श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि होती है। श्रमिक संघों का व्यवहार भी अच्छा होने पर उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

श्रम-उत्पादकता की माप (Measurement of Labour Productivity)– श्रम उत्पादकता को कई तरीकों से मापा जा सकता है। किसी उद्योग में एक ही उत्पादन (Single Product) होने पर श्रम उत्पादकता ज्ञात करना आसान है। उत्पादकता मापने हेतु निम्नलिखित समीकरण काम में लाया जाएगा[1] –

$$P = \frac{q}{m}$$

P का अर्थ है उत्पादकता, q उत्पादन की मात्रा या इकाइयों तथा m मानव घण्टों की संख्या को प्रदर्शित करता है। *दो समयों (Two Periods) में उत्पादकता* में हुए परिवर्तनों को इस प्रकार लिख सकते हैं – $\frac{q_1/q_0}{m_1/m_0}$ इसमें $_0$ और $_1$ आधार वर्ष एवं चालू वर्ष को प्रदर्शित करते हैं।

लेकिन उपरोक्त समीकरण द्वारा मापी गई उत्पादकता वास्तविक जीवन में मापी जाने वाली उत्पादकता से आसान है। वास्तविक जीवन में उत्पादकता मापना आसान नहीं है क्योंकि एक ही उद्योग द्वारा एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। विभिन्न वस्तुओं की भौतिक मात्रा तथा आकार अलग-अलग होते हैं। इस समस्या को दो विधियों द्वारा हल किया जा सकता है—

1. उत्पादन के साथ-साथ रोजगार के सूचकांक आधार तथा चालू वर्षों के लिए तैयार किए जा सकते हैं और इनके आधार पर चालू वर्ष में आधार वर्ष के आधार पर हुए उत्पादकता के परिवर्तन के अनुपात को मापा जा सकता है। चालू वर्ष में हुए उत्पादकता के परिवर्तन को निम्न प्रकार ज्ञात किया जाएगा—

$$\frac{P_1/P_0}{E_1/E_0}$$

इस सूत्र में P तथा E उत्पादन सूचकांक तथा रोजगार सूचकांक को प्रदर्शित करते हैं।

2. श्रम-उत्पादकता मापने की दूसरी विधि के अन्तर्गत प्रति मानव घण्टा उत्पादन (Output per man-hour) का विपरीत (Reciprocal) उपयोग करके उत्पादकता मालूम की जा सकती है। इस प्रकार उत्पादन की प्रति इकाई पर किया गया मानव घण्टों का व्यय ज्ञात किया जाता है अर्थात् एक वस्तु की एक इकाई के उत्पादन में कितने मानव घण्टों (Man-hours) का व्यय हुआ। इसे हम 'इकाई श्रम जरूरत' (Unit Labour Requirement) के नाम से भी पुकार सकते हैं।

1. *Beri, G. C.* : Measurements of Production & Productivity in Indian Industry, p. 93.

श्रम-उत्पादकता की आलोचना
(Criticism of Labour Productivity)

1 यदि हम श्रम-उत्पादकता का अध्ययन करते है तो इससे श्रम को ही उत्पादन बढाने के लिए अनावश्यक महत्त्व दिया जाता है जबकि उत्पादन मे वृद्धि हेतु न केवल श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि करना आवश्यक है, बल्कि उत्पादन के अन्य साधनो के महत्त्व को भी स्वीकार करना है।

2 किसी भी सस्थान, फर्म अथवा उद्योग से प्राप्त कुल उत्पादन को श्रम के रूप मे व्यक्त नही कर सकते हैं। उद्योग अथवा फर्म की कार्यकुशलता भी भौतिक उत्पादन और श्रम प्रयासो के अनुपात के रूप मे मापना कठिन है।

3 प्रति व्यक्ति घण्टे की उत्पादकता का सूचकांक मानकर चलना भी उचित नही है क्योंकि यह अन्तर-साधन एव उत्पादन कुशलता मे परिवर्तन को भी बताते है।

4 अविकसित देशो मे अपनी श्रम उत्पादकता जानने, इसे मापने आदि के सम्बन्ध म स्पष्ट जानकारी का अभाव है। अत वहाँ इस विचारधारा का सही एव उचित उपयोग सम्भव नही हो सकता।

5 श्रम उत्पादकता के सूचकांको की सहायता से सरकारी नीतियो का निर्धारण केवल एक अनुमान मात्र है। जिस आधार पर सूचकांक तैयार किए जाते हैं, वे अपने आप मे सही नही है।

उत्पादकता विचारो के प्रकार
(Types of Productivity Concepts)

उत्पादकता सम्बन्धी विचार विभिन्न सदर्भों तथा अर्थों मे काम मे आते है—

1. भौतिक उत्पादकता (Physical Productivity)—जब किसी उत्पादन के साधन का उत्पादन मे जितना योगदान है उसे भौतिक रूप मे व्यक्त करते है तो वह भौतिक उत्पादकता कहलाती है, जैसे प्रति मानव घण्टा तीन मीटर कपडा, आदि।

2. मूल्य उत्पादकता (Value Productivity) उत्पादकता समरूप (Homogeneous) नही होने पर तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन से तुलना सम्भव नही होने पर उन वस्तुओं की भौतिक मात्रा को बाजार मूल्यो पर गुणा करके मूल्य मे व्यक्त करते है तो वह मूल्य उत्पादकता कहलाएगी, उदाहरणत 3 मीटर कपडा, 4 किलो सूत आदि का मूल्य ज्ञात करके उत्पादकता के रूप मे व्यक्त करना।

3. औसत उत्पादकता (Average Productivity)- जब कुल उत्पादकता (Total Productivity) मे श्रम की लगाई गई इकाइयो का भाग लगाया जाएगा तो हमे औसत उत्पादकता प्राप्त होगी। उदाहरणर्थ, कुल उत्पादकता 500 इकाइयाँ हैं तथा श्रमिक सख्या 100 है तो औसत उत्पादकता 5 इकाइयाँ होगी।

4. सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity)—किसी वस्तु के उत्पादन मे श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के लगाने पर कुल उत्पादकता मे जो वृद्धि

होनी है, वही सीमान्त उत्पादकता होगी, जैसे 100 श्रमिकों की कुल उत्पादकता 500 इकाइयां हैं तथा 101 श्रमिकों की 510 इकाइयाँ तो सीमान्त उत्पादकता 10 इकाइयां होगी।

भारत में श्रम उत्पादकता एवं उत्पादकता आन्दोलन (Labour Productivity & Productivity Movement in India)

हमारे देश में उत्पादकता सम्बन्धी विचार नया नहीं है। कई सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं एवं संगठनों ने उत्पादकता को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर किया है। फिर उत्पादकता के सम्बन्ध में उद्योगों में उस समय अधिक ध्यान दिया गया जब सन् 1952 और सन् 1954 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O) की टीमें हमारे देश में आईं। इन टीमों ने अहमदाबाद और बम्बई की सूती वस्त्र मिलों तथा कलकत्ता के कुछ इंजीनियरिंग संस्थानों को अपना कार्य-क्षेत्र चुना। विभिन्न प्रबन्धकों तथा श्रम-संघ नेताओं को यह बताया गया कि थोड़े से परिवर्तनों के माध्यम से उत्पादकता के तरीकों में उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। श्रम सम्बन्धी तथा कच्चे माल के उपयोग के सम्बन्ध में भी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गए। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के इस मिशन के कार्य तथा सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय ने बम्बई में सन् 1955 में उत्पादकता केन्द्र (Productivity Centre) की स्थापना की। इस केन्द्र द्वारा कार्य-अध्ययन पाठ्यक्रम, उच्च प्रबन्धकीय सेमीनार एवं कार्यक्रम, संयुक्त श्रम प्रबन्ध कार्य अध्ययन विभिन्न उद्योगों में रखे जाते हैं।

हमारे देश में उत्पादकता सम्बन्धी सही आँकड़ों का अभाव है। हमारे उत्पादकता सूचकांक अधिकांश विकसित देशों के उद्योगों के सूचकांकों से कम है। इस दिशा में हमें सूचकांक तैयार करने चाहिएँ जिससे हम न केवल अन्य देशों के उद्योगों के सूचकांकों से तुलना कर सकें बल्कि विश्व-बाजार में सफलता प्राप्त कर सकें। हमारे देश में विभिन्न उद्योगों में बड़े पैमाने पर उत्पादकता आन्दोलन को प्रोत्साहित करने हेतु सन् 1956 में भारत सरकार के व्यापार एवं उद्योग मन्त्रालय ने एक टीम 6 सप्ताह के अध्ययन हेतु जापान में भेजी। इस टीम की रिपोर्ट सन् 1957 में प्रकाशित की गई। टीम की सिफारिशों के आधार पर सन् 1958 में एक राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council or N P C) की स्थापना की गई। इसका गठन एक स्वायत्त संगठन के रूप में हुआ है जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 60 है। इन सदस्यों में नियोक्ताओं, श्रमिकों, सरकार और अन्य लोगों के प्रतिनिधि होते हैं। बम्बई, मद्रास, बंगलौर और कानपुर जैसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों पर राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के अन्तर्गत प्रादेशिक निदेशालय (Regional Directorates) स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के तहत देश में विभिन्न उद्योगों में उत्पादकता समितियां गठित की गई हैं तथा सन् 1966 में भारत उत्पादकता वर्ष (India Productivity Year 1966) मनाया

गया। आजकल हमारे देश में 47 स्थानीय परिषदें तथा बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, बंगलौर व लुधियाना में 6 क्षेत्रीय परिषदें हैं।

भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए हमारे देश की गरीबी दूर करने हेतु विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ाना होगा। आज हमें कम से कम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने वाली योजनाओं को प्राथमिकताएँ देनी होंगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि उत्पादकता आन्दोलन के परिणामस्वरूप देश में उत्पादन में जब वृद्धि होती है तो इस बढ़े हुए उत्पादन के लाभों का हिस्सा किस तरह से प्राप्त किया जाए। यदि सभी बढ़े हुए उत्पादन के लाभ को श्रमिकों में वितरित कर दिया जाता है तो इससे विभिन्न उद्योगों में मजदूरी में भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाएँगी। इस तरह से इसके हिस्से का वितरण श्रमिकों, मालिकों और उपभोक्ताओं में सन्तुलित रूप से किया जाना चाहिए। यदि इसके लाभों का वितरण श्रमिकों व मालिकों पर छोड़ दिया जाता है तो दोनों पक्ष समाज के अन्य वर्गों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिए एक उचित तरीका यह है कि इसका वितरण तीनों पक्षों में—श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि, मालिकों के प्रतिफल में वृद्धि और समाज को अच्छी किस्म व कम कीमत पर वस्तुओं की उपलब्धि के रूप में किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा नियुक्त त्रिपक्षीय समिति ने उत्पादकता के लाभों के वितरण के लिए निम्न मार्गदर्शक तत्त्व दिए हैं—

1. इस योजना के अन्तर्गत केवल प्रबन्धकों और श्रमिकों के बीच में ही लाभ की सहभागिता का वितरण नहीं होना चाहिए बल्कि इसका हिस्सा उपभोक्ताओं और समाज को भी मिलना चाहिए।

2 इसके अन्तर्गत निरन्तर आर्थिक विकास की उन्नति का समझौता नहीं किया जाना चाहिए।

3 इस योजना की क्रियाशीलता में किसी तरह का व्यक्तिगत प्रभाव नहीं होना चाहिए।

4 इस प्रकार की योजना के लागू करने से पूर्व इसका प्रकाशन करना आवश्यक है।

लाभों की सहभागिता के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक ने सन् 1964 में एक स्टीरिंग ग्रुप नियुक्त किया। इस ग्रुप ने मजदूरी आय और कीमत नीतियों के सम्बन्ध में अध्ययन किया और एक आय नीति के सम्बन्ध में निम्न मार्गदर्शक तत्त्वों की सिफारिश की—

1 नकद मजदूरी में परिवर्तन के निर्धारण हेतु अर्थ व्यवस्था की दीर्घ कालीन गतिशील औसत उत्पादकता को ध्यान में रखना होगा।

2 मजदूरी आय समायोजन हेतु हमें अधिकतम सीमा उत्पादकता की प्रवृत्ति को ध्यान में रखना होगा।

3. विभिन्न क्षेत्रों और उद्योगों में मजदूरी और नकद आय का समायोजन अर्थ-व्यवस्था में होने वाली उत्पादकता की दर के अनुसार होना चाहिए। जिससे, उद्योग अथवा क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि की दर के अनुसार ही समायोजन या नियमन सम्भव होगा।

4 उत्पादकता से जुड़ी हुई मजदूरी योजनाओं में इस बात का ध्यान रखना होगा कि उत्पादकता में हुई वृद्धि का लाभ समाज को भी अच्छी किस्म तथा निम्न कीमत वाली वस्तुओं के रूप में प्राप्त हो।

ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता
(Economy of High Wages)

साधारणत यह समझा जाता है कि नीची मजदूरी सस्ती होती है किन्तु यह धारणा हमेशा सही नहीं होती। कारण यह है कि नीची मजदूरी पाने वाले श्रमिकों की कार्य-कुशलता कम होती है, जिससे उत्पादन कम होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत ऊँची रहती है। इस तरह नीची मजदूरी वास्तव में ऊँची मजदूरी होती है।

इसके विपरीत, ऊँची मजदूरी की दशा में श्रमिकों की कार्य-क्षमता बढ़ती है, उत्पादन बढ़ता है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम पड़ती है। इस प्रकार ऊँची मजदूरी वास्तव में 'सस्ती' मजदूरी होती है।

किसी भी वस्तु का उत्पादन 'मजदूरी पर व्यय' (Outlay on wages) तथा उत्पादन के सम्बन्ध को दृष्टि में रखता है। इस विचार को आधुनिक अर्थ-शास्त्री 'मजदूरी की लागत' (Wage costs) कहते हैं। ऊँची नकदी मजदूरी (High money wages) के कारण यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं तो उत्पादक को वास्तव में मजदूरी की लागत नीची पड़ती है। इसके विपरीत यदि नीची नकदी मजदूरी देने पर श्रमिक कम उत्पादन करते हैं तो उत्पादन कम होता है और यह नीची नकदी मजदूरी ऊँची मजदूरी में परिवर्तित हो जाती है क्योंकि उत्पादन लागत बढ़ जाती है। अत उत्पादक नीची द्राव्यिक मजदूरी के स्थान पर नीची मजदूरी लागत (Low wage-costs) पर ध्यान रखता है। अत. यह कहा जाता है कि यदि ऊँची नकदी मजदूरी से मजदूरी लागत नीची आती है तो यह उत्पादक को प्राप्त होने वाली मितव्ययिता होगी। इसे ही ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता (Economy of High Wages) कहा जाता है। ऊँची मजदूरी निम्न कारणों से मितव्ययितापूर्ण होती है-

1. ऊँची मजदूरी से श्रमिकों का जीवन-स्तर उठता है, उनकी कार्य-क्षमता बढ़ती है, उत्पादन बढ़ता है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम आती है। दूसरे शब्दों में नीची मजदूरी-लागत (Low wage-costs) आती है।

2. ऊँची मजदूरी देने से मालिक को अच्छे श्रमिक बाजार से प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन अधिक होता है और उत्पादन लागत कम होने से नीची उत्पादन-लागत पड़ती है।

3 ऊँची मजदूरी होने से श्रमिकों और मालिकों के बीच मधुर सम्बन्धों को

है। हड़तालें, ताला बन्दी, धीमे कार्य की प्रवृत्ति आदि को कोई ...। श्रमिक रुचि लगाकर उत्पादन करते हैं और इसके परिणाम- ...मत और अधिक होता है जिससे नीची मजदूरी लागत पड़ती है। ऊंची मजदूरी देने से उत्पादन अधिक होता है तथा नीची मजदूरी- (Low wage-costs) आती है और इसी के फलस्वरूप बचतें या मितव्ययिता प्राप्त होती है।

मजदूरी भुगतान की रीतियाँ
(Methods of Wage payments)

मजदूरी श्रम को उत्पादन के साधन के रूप मे दिया जाने वाला पारिश्रमिक है। मजदूरी भुगतान का तरीका श्रमिको की आमदनी को प्रभावित करता है। अलग-अलग देशो मे मजदूरी भुगतान करने की भिन्न-भिन्न रीतियाँ हैं। एक आदर्श मजदूरी भुगतान प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि वह दोनो पक्षो-श्रमिको व मालिकों-के अनुकूल हो। इसके साथ ही उत्पादन मे वृद्धि करने हेतु श्रमिको को प्रेरणात्मक भुगतान देने का भी प्रावधान हो। इसमे औद्योगिक झगडो को दूर करने तथा उद्योग की सफलता हेतु दोनो पक्षो मे मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करने का गुण भी होना जरूरी है।

मजदूरी के भुगतान की विभिन्न रीतियाँ पायी जाती हैं फिर भी मजदूरी के भुगतान की रीतियो को मोटे तौर पर दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है— (1) समय के अनुसार मजदूरी, और (2) कार्य के अनुसार मजदूरी।

1 समयानुसार मजदूरी
(Time Wage System)

यह मजदूरी भुगतान का सबसे प्राचीन तरीका है। इसके अन्तर्गत मजदूर को मजदूरी का भुगतान समय के अनुसार, जैसे प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह के हिसाब से किया जाता है। प्रत्येक श्रमिक को यह विश्वास रहता है कि उसे एक निश्चित समय पश्चात् निश्चित मजदूरी प्राप्त हो जाएगी। इसके अन्तर्गत कार्य की मात्रा तथा किस्म (Quality) के सम्बन्ध मे कोई शर्तें नहीं रखी जाती है। मालिक द्वारा इस तरीके के अन्तर्गत भुगतान उस स्थिति मे किया जाता है जबकि कार्य को न तो मापा जा सकता है और न ही उसका निरीक्षण सम्भव होता है तथा कार्य की माप के स्थान पर कार्य की किस्म को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के लाभ (Advantages of Time Wage System)—इस पद्धति के अनुसार भुगतान करने के निम्न लाभ हैं—

1. सरल प्रणाली—यह पद्धति अत्यन्त सरल होने से श्रमिक व नियोजको को आसानी रहती है। भारतीय श्रमिक अधिकांशत अशिक्षित होने के कारण यह प्रणाली विशेष रूप से उपयोगी है।

2. लोकप्रिय प्रणाली—यह प्रणाली श्रमिको के प्रत्येक वर्ग तथा उनके सगठनो द्वारा पसन्द की जाती है। इसके अन्तर्गत सभी श्रमिक वर्गों मे एकता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

3. निश्चितता एवं नियमितता—इस पद्धति के अन्तर्गत मजदूरी के भुगतान में निश्चितता तथा नियमितता पायी जाती है। प्रत्येक श्रमिक को निश्चित वेतन नियमित रूप से मिलने का विश्वास रहता है। आय की निश्चितता तथा नियमितता के कारण प्रत्येक श्रमिक अपने आय तथा व्यय में समायोजन द्वारा एक निश्चित जीवन-स्तर बनाए रखने का प्रयास करता है।

4. उत्पादन के साधनों का उचित उपयोग— इस पद्धति में कार्य सुचारु रूप से एवं तसल्ली से होने के कारण यन्त्र, औजार, कच्चे माल आदि साधनों का उपयोग ढंग से होता है।

5. प्रशासनिक व्यय कम एवं आसानी से पूर्ण इस पद्धति में निरीक्षण करने की अधिक आवश्यकता नहीं होती है तथा उस पर व्यय अधिक नहीं करने से प्रशासनिक व्यय भी कम होता है तथा आसानी से प्रशासन किया जा सकता है।

6 विभिन्न रुकावटों के अन्तर्गत उत्पादन होने पर भी यह पद्धति लाभपूर्ण है। प्राकृतिक कारणों जैसे वर्षा आदि के कारण कार्य में रुकावट आने पर कार्य बन्द हो जाता है। उस स्थिति में यह पद्धति उचित होती है।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के दोष (Demerits of Time Wage System)—समयानुसार मजदूरी पद्धति के अन्तर्गत हमें निम्न दोष देखने को मिलते हैं—

1. कुशल श्रमिकों को कोई प्रेरणा नहीं—इस पद्धति के अनुसार श्रमिक मन लगाकर तथा ईमानदारी से काम नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें यह मालूम रहता है कि एक निश्चित मजदूरी नियमित रूप से मिल जाएगी चाहे वे कम काम करें अथवा अधिक।

2. कुशल-अकुशल सब बराबर—इस पद्धति के अनुसार चाहे कुशल श्रमिक हो अथवा अकुशल सभी को समान मजदूरी मिलती है। परिणामस्वरूप कुशल श्रमिक भी कम रुचि रख कर कार्य करने लगते हैं और उनकी कार्य-क्षमता घट जाती है।

3. अकुशलता को प्रोत्साहन—कुशल श्रमिक व अकुशल श्रमिक दोनों को समान मजदूरी मिलने का अर्थ है कि अकुशल श्रमिक को पुरस्कृत किया जाता है और कुशल श्रमिक को दण्डित किया जाता है। इससे अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है।

4. काम-चोरी—जब निश्चित मजदूरी नियमित रूप से मिलती है तो श्रमिक एक दिए हुए काम को एक लम्बे अर्से के बाद समाप्त करता है। वह काम से जी चुराता है।

5. श्रम-पूँजी संघर्ष—इस पद्धति के अनुसार भुगतान करने से अकुशल व कुशल दोनों प्रकार के श्रमिकों को समान मजदूरी दी जाती है जिससे कुशल श्रमिक हड़ताल, धीमे काम की प्रवृत्ति का सहारा लेते हैं।

निष्कर्ष—समयानुसार मजदूरी के गुण-दोषों को देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन कार्यों को मापा नहीं जा सकता—जैसे चित्रकारी का कार्य, अध्यापक व डॉक्टर का कार्य आदि, उनमें यह पद्धति उपयुक्त है।

2 कार्यानुसार मजदूरी पद्धति (Piece Wage System)

कार्यानुसार मजदूरी भुगतान के लाभ—कार्यानुसार दी जाने वाली मजदूरी पद्धति के निम्नांकित लाभ हैं—

इस पद्धति के अन्तर्गत मजदूर को उसके कार्यानुसार मजदूरी जाती है चाहे उसमें कितना ही समय क्यों नहीं लगे। जब मालिक कम लागत पर अधिक उत्पादन की मात्रा चाहता है, तब यह पद्धति अपनाई जाती है। कार्य की मात्रा ही मजदूरी के भुगतान का आधार होता है। जो श्रमिक अधिक कार्य करता है उसे अधिक मजदूरी दी जाती है तथा जो कम कार्य करता है उसको कम मजदूरी मिलती है।

1 **योग्यतानुसार भुगतान**—अधिक कार्य करने वाले योग्य श्रमिक को अधिक मजदूरी का भुगतान तथा कम कार्य करने वाले अयोग्य मजदूर को कम मजदूरी का भुगतान किया जाता है।

2 **प्रेरणात्मक पद्धति**—अधिक कार्य करने वाले को अधिक मजदूरी देकर प्रोत्साहन दिया जाता है। इससे कार्यकुशल श्रमिकों को अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

3 **अधिक उत्पादन**—श्रमिकों को कार्यानुसार मजदूरी मिलने से वे अधिक समय तक कार्य करते हैं जिससे उत्पादन में अधिक वृद्धि होती है।

4 **उत्पादन-व्यय कम**—इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पादन अधिक करने के कारण प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है और परिणामस्वरूप श्रमिकों व समाज के सदस्यों को कम कीमत पर वस्तु सुलभ हो जाती है।

5 **समय का सदुपयोग**—इस पद्धति के अन्तर्गत श्रमिक अपने खाली समय में इधर-उधर घूमने की बजाय अपने आप को कार्य में लगा रखता है जिससे उसके समय का सदुपयोग भी होता है और उसे अधिक मजदूरी भी प्राप्त हो जाती है।

6. **श्रमिक-मालिकों में मधुर सम्बन्ध**—कार्य की मात्रा के अनुसार श्रमिकों को भुगतान प्राप्त होता है। इसलिए वे धीमे कार्य करने की प्रवृत्ति तथा हड़ताल आदि करने का प्रयास नहीं करते। दोनों पक्षों में प्रायः मधुर सम्बन्ध रहते हैं।

7. **श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि**—कार्यानुसार मजदूरी मिलने के कारण जहाँ भी अधिक मजदूरी मिलेगी श्रमिक वहीं जाकर कार्य करना अधिक पसन्द करेगा। समयानुसार मजदूरी की तुलना में कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के अन्तर्गत श्रमिकों में अधिक गतिशीलता पायी जाती है।

8 **श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार**—कार्यानुसार मजदूरी मिलने के कारण अधिक मजदूरी अधिक कार्य करने वाले व्यक्तियों को मिलती है। उनका जीवनस्तर ऊँचा उठता है और कार्य क्षमता बढ़ती है।

9. **निरीक्षण व्यय में कमी**—इसके अन्तर्गत निश्चित कार्य की मात्रा तथा किस्म निश्चित होने से कार्य का निरीक्षण आदि करने की जरूरत नहीं होने से निरीक्षण व्यय कम होता है।

10 उपभोक्ता वर्ग को लाभ—उत्पादन अधिक होता है। उत्पादन लागत कम आती है। परिणामस्वरूप वस्तुओं की कीमत भी कम होती है। इससे उपभोक्ता वर्ग को लाभ होता है।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के दोष (Demerits of Piece Wage System)—इस पद्धति के निम्नलिखित दोष हैं—

1 मजदूरी में कटौती—कभी-कभी यह देखने में आता है कि जब श्रमिक अधिक कार्य करके अधिक पारिश्रमिक प्राप्त करने लगता है तो नियोक्ता मजदूरी दर में कटौती करके पारिश्रमिक में से कटौती कर लेते हैं।

2 स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव—'अधिक कार्य अधिक मजदूरी' के लोभ में श्रमिक अधिक कार्य करने लगते हैं। वे अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखते। बाद में इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक बीमार रहने लग जाता है। उसकी कार्यक्षमता घटने लगती है।

3. उत्पादन की निम्न किस्म—श्रमिक अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लोभ में अधिक कार्य तेजी से करता है। इसमें उत्पादन की मात्रा में तो वृद्धि होती है, लेकिन उत्पादन की किस्म बढ़िया के स्थान पर घटिया आने लगती है।

4 मजदूरी की अनियमितता तथा अनिश्चितता—श्रमिक की मजदूरी निश्चित तथा नियमित नहीं होती है। बीमार होने पर अथवा कारखाना बन्द होने पर श्रमिक को कुछ भी मजदूरी नहीं मिलती है।

5. कलात्मक तथा बारीकी वाले कार्यों में अनुपयुक्त—यह पद्धति कलात्मक कार्यों जैसे चित्रकारी, खुदाई तथा अन्य बारीकी वाले कार्यों में उपयुक्त नहीं है।

6. श्रमिक-संघों पर विपरीत प्रभाव—कार्यानुसार मजदूरी देने के कारण श्रमिक 'अधिक कार्य अधिक मजदूरी' के लोभ में पड़े रहते हैं। वे अपने संगठन के लिए समय नहीं निकाल पाते। इसका परिणाम सुदृढ़ एवं सुसंगठित श्रमिक-संघों का अभाव होता है।

7 श्रमिकों में पारस्परिक एकता का अभाव—कार्यानुसार मजदूरी के अन्तर्गत श्रमिक कुशल, अर्द्ध-कुशल एवं अकुशल वर्गों में बँट जाते हैं। वे प्रायः एक-दूसरे के नजदीक नहीं आते हैं। उनमें आर्थिक असमानता उत्पन्न हो जाने से प्रायः परस्पर स्नेह तथा एकता नहीं हो पाती है।

जब कम लागत पर अधिक उत्पादन करना होता है तथा योग्यतानुसार वेतन दिया जाना हो वहाँ पर कार्यानुसार मजदूरी भुगतान पद्धति उचित है।

प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की रीतियाँ (Methods of Incentive Wage Payments)

मजदूरी भुगतान कार्यानुसार तथा समयानुसार दो रूपों में किया जाता है। लेकिन इन दोनों तरीकों द्वारा दी गई मजदूरी की आलोचना समय-समय पर विभिन्न वैज्ञानिक प्रबन्ध विशेषज्ञों ने की है। इन दोनों ही रीतियों के अपने-अपने लाभ तथा दोष हैं। इन दोनों ही रीतियों के मिलाने से एक प्रगतिशील मजदूरी पद्धति का

प्रादुर्भाव हुआ है जिसे प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति (Progressive Wage System) अथवा मजदूरी भुगतान की प्रेरणात्मक रीति (Incentive System of Wage Payments) कहा जाता है।

इस मिश्रित प्रणाली (कार्यानुसार मजदूरी तथा समयानुसार मजदूरी) के अन्तर्गत श्रमिक को निश्चित न्यूनतम मजदूरी के अतिरिक्त और भी भुगतान किया जाता है जिसे अधिलाभांश (Bonus) अथवा प्रीमियम (Premium) कहते हैं। इसमें प्रमाप उत्पादन (Standard Output) के लिए एक निश्चित मजदूरी दी जाती है। इससे अधिक कार्य करने पर बढ़ती हुई दर से अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाता है जिससे योग्यता को पुरस्कार मिल सके तथा कार्य की किस्म में भी गिरावट नहीं आए।

उदाहरणार्थ यदि एक कार्य 3 दिन में करना है और मजदूरी 4 रु प्रतिदिन दी जाती है तथा कार्य 2 दिन में पूरा कर लिया जाता है तो श्रमिक को दो दिन की मजदूरी 8 रु तथा एक दिन बचाने के लिए 2 रु और मिलेंगे। अतः कुल मजदूरी 10 रु होगी जो कि औसत मजदूरी 4 रु से अधिक है। प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की रीतियों का वर्गीकरण मजदूरी प्रेरणात्मक पद्धति में पाए जाने वाले महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के आधार पर किया गया है।[1] ये तत्त्व हैं—

1 उत्पादन की इकाइयाँ (Units of Output)
2 प्रमाप समय (Standard Time)
3 कार्य में लगा समय (Time Worked)
4 बचाया गया समय (Time Saved)।

किसी भी प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की पद्धति अपनाते समय मजदूरी निर्धारण में यह बात ध्यान में रखनी पड़ेगी कि उत्पादन की इकाइयाँ कितनी हैं, समय कितना दिया गया है, कितना समय लगा और कितना समय बचा आदि।

प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की विभिन्न रीतियाँ या पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1 टेलर पद्धति (Taylor Piece Work Plan)— इसका प्रतिपादन वैज्ञानिक प्रबन्धक के जनक श्री एफ डब्ल्यू टेलर ने किया। इसमें दो प्रकार की कार्यानुसार दरों को सम्मिलित किया गया है—एक औसत उत्पादन से अधिक तथा दूसरी औसत उत्पादन तथा उससे कम उत्पादन करने पर दी जाने वाली मजदूरी। इन दरों में काफी अन्तर पाया जाता है।

उदाहरण के लिए 8 इकाई प्रतिदिन प्रमाप उत्पादन (Standard Output) तय किया गया है। इतना या इससे अधिक उत्पादन के लिए प्रति इकाई दर 1 रुपया हो सकती है, परन्तु 8 इकाई (प्रमाप इकाई) से कम उत्पादन होने पर प्रति इकाई दर 75 पैसे हो सकती है। अतः 8 इकाइयों का उत्पादन करने वाले को 8 रुपये 10 इकाइयाँ उत्पादन करने वाले को 10 रु लेकिन 7 इकाइयों का उत्पादन करने वाले को 75 पैसे प्रति इकाई के हिसाब से 5 रु 25 पैसे मिलेंगे।

1 *Flippo E B* Principles of Personnel Management, p 302

इस प्रकार टेलर पद्धति कुशल श्रमिकों के लिए विशेष रूप से प्रेरणात्मक है, क्योंकि ऊँची दर के द्वारा उनको अपने परिश्रम का पुरस्कार मिलता है, परन्तु अकुशल श्रमिकों को यह पद्धति दण्डित करती है। यह आय में असमानता को बढ़ावा देती है। वर्तमान समय में इस पद्धति का एक ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है क्योंकि आय की असमानता के स्थान पर 'आय की समानता' पर अधिक जोर दिया जाने लगा है।

2. हैल्से प्रीमियम पद्धति (Halsey Premium System)—इस पद्धति का प्रतिपादन प्रो एफ ए हैल्से द्वारा किया गया था। इस पद्धति में कार्यानुसार तथा समयानुसार मजदूरी भुगतान की रीतियों के लाभों का मिश्रण है तथा इनके दोषों को छोड़ दिया गया है। इसमें एक प्रमाप उत्पादन निश्चित समय में पूरा करना होता है। यदि कोई श्रमिक दिए हुए कार्य को निश्चित अवधि से पूर्व ही समाप्त कर लेता है तो उसे बचाए हुए समय (Time Saved) के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाता है। यदि किसी कार्य हेतु 10 घण्टे निश्चित किए गए हैं और कार्य 8 घण्टे में पूरा कर लिया जाता है तो श्रमिक को 8 घण्टे के पारिश्रमिक के अतिरिक्त बचाए गए समय (2 घण्टे) के लिए दर का 50% भुगतान किया जाएगा। यदि 10 रु. प्रति घण्टा समय मजदूरी है तो प्रीमियम $\frac{1}{2}$ (दर $\times$ बचाया गया समय) के बराबर अर्थात् $\frac{1}{2}$ $(10 \times 2) = 10$ रु होगा तथा मजदूरी $8 \times 10 = 80$ रु. अर्थात् कुल भुगतान $80 + 10 = 90$ रु. किया जाएगा।

इस पद्धति के अन्तर्गत बचाए गए समय के लिए निश्चित दर पर प्रीमियम दिया जाता है तथा मजदूर को समयानुसार मजदूरी की भी गारण्टी रहती है जिससे नियोक्ताओं को भी अधिक मजदूरी का भुगतान नहीं करना पड़ता है।

इस पद्धति की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि मालिक किसी कार्य के करने का प्रमाप (Standard) अधिक रख देता है जो कि पूरा करना सम्भव नहीं हो। उस स्थिति में श्रमिकों को हानि उठानी पड़ती है। इसलिए कार्य का प्रमाप उचित एवं वैज्ञानिक प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए।

3. शत-प्रतिशत समय प्रीमियम योजना (The 100 Percent Time Premium Plan)—जहाँ समय अथवा कार्य अध्ययन द्वारा समय प्रमाप (Time Standards) निर्धारित किए जा सकते हैं वहाँ श्रमिकों को उनके द्वारा बचाए गए समय (Time Saved) के लिए शत-प्रतिशत दर पर प्रीमियम दिया जाता है।

उदाहरण के लिए 10 घण्टे किसी कार्य हेतु निश्चित किए जाते हैं तथा समय दर (Time Rate) 10 रु प्रति घण्टा है। कार्य 8 घण्टे में पूरा किया जाता है तथा समय 2 घण्टे बचाता है तो उसको 8 घण्टों के 80 रु. मजदूरी तथा 2 घण्टे बचाने के कारण 20 रु प्रीमियम के रूप में अर्थात् कुल भुगतान 100 रुपये किया जाएगा।

इस योजना में भी समयानुसार मजदूरी की गारण्टी दी जाती है तथा बचाए गए समय (Time Saved) हेतु भी दर वही रखी जाती है। कुशलता को इससे अधिक प्रेरणा मिलती है।

4 रोवन योजना (Rowan Plan)—इस पद्धति के प्रतिपादन का श्रेय श्री जेम्स रोवन को है। इसके अन्तर्गत समय के आधार पर मजदूर को न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी दी जाती है। एक प्रमाप समय किसी कार्य को पूरा करने हेतु निश्चित कर दिया जाता है। यदि दिए हुए समय से पूर्व ही कार्य कर लिया जाता है तो बचाए गए समय के लिए कुल समय के अनुपात मे भुगतान किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कार्य 10 घण्टो मे पूरा करना है और वह कार्य 6 घण्टो मे पूरा कर लिया जाता है, बचाया हुआ समय 4 घण्टे है और समय दर 10 रु प्रति घण्टा है तो इसके अन्तर्गत प्रीमियम होगा—

$$\frac{\text{बचाया गया समय (Time Saved)}}{\text{दिया गया समय (Time Allowed)}} \times \text{लिया गया समय (Time Taken)} \times \text{दर}$$

$$\frac{4}{10} \times 6 \times 10 = 24 \text{ रु}$$

अत श्रमिक को 60 रु (6×10) मजदूरी तथा 24 रु प्रीमियम अर्थात् कुल 84 रु प्राप्त होंगे।

इस पद्धति के अन्तर्गत हैल्से पद्धति की तुलना मे अधिक प्रीमियम प्राप्त होता है। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब बचाया गया समय (Time Saved) दिए हुए समय (Time Allowed) का 50% से कम हो। यदि बचाया हुआ समय 50% है तो दोनो मे समान तथा 50% से अधिक होने पर हैल्से पद्धति के अन्तर्गत अधिक प्रीमियम प्राप्त होगा।

5 इमरसन योजना (Emerson Plan)—इसका प्रतिपादन प्रो इमरसन ने किया। यह पद्धति रोवन पद्धति के अनुसार कार्य-क्षमता के सूचकांक तथा किए गए कार्य के समय के मूल्य पर आधारित है। इसमे सूचकांक प्रमाप समय (Standard Time) मे लिए गए वास्तविक समय का भाग लगाकर ज्ञात करते है। उदाहरण के लिए 36 प्रमाप समय के घण्टो का कार्य 40 घण्टो मे होता है तो कार्य-क्षमता या कार्यकुशलता 90 प्रतिशत होगी। विभिन्न कार्यकुशलताओ के लिए विभिन्न प्रीमियम की दरें निर्धारित की जाती हैं। कम से कम 65% तक की कार्यकुशलताओ को प्रीमियम दिया जाता है। इस प्रकार की पद्धति उन छोटे कर्मचारियों के लिए लागू की जाती है जिनकी कार्य क्षमता बहुत कम होती है तथा जो शत-प्रतिशत प्रीमियम योजना के प्रमाप को प्राप्त नही कर सकते हैं।

6 गैण्ट की कार्यभार एव बोनस पद्धति (Gantt Task and Bonus System)—इस पद्धति का प्रतिपादन श्री हेनरी एल गैण्ट ने किया था। इसके अन्तर्गत हैल्से योजना के समान धीरे-धीरे काम करने वाले श्रमिको को प्रति घण्टा की दर से और तेज काम करने वाले मजदूरो का इकाई दर से मजदूरी दी जाती है। साथ ही टेलर पद्धति के समान यह प्रमाप (Standard) तक पहुँचने मे समर्थ और असमर्थ मजदूरो मे निश्चित रूप से भेद करती है। गैण्ट योजना सब योजना की प्रति घण्टा दर की गारण्टी देता है। यदि दिए हुए समय मे कार्य पूरा नही किया जाता

है तो मजदूरी तो दी जाएगी लेकिन उसको बोनस प्राप्त करने का कोई अधिकार नही होगा । यह बोनस 20 से 25% तक होता है जो कि दिन के अन्त मे काम मे लाया जाता है ।

उदाहरण के लिए किसी कारखाने मे एक श्रमिक को 8 घण्टे कार्य करना होता है । मजदूरी 2 रु प्रति घण्टा है तथा काम भी 8 घण्टे मे पूरा होने वाला होता है । यदि श्रमिक उस कार्य को 8 घण्टे मे पूरा कर लेता है तो उसको 20% बोनस उसकी कुल मजदूरी का दिया जाएगा । 8 घण्टे की मजदूरी 2 रु प्रति घण्टा के हिसाब से 16 रु तथा 20% बोनस मे 3 रु 20 पैसे अर्थात् कुल 19 रु 20 पैसे मिलेंगे । यदि 8 घण्टे मे उस कार्य को पूरा नही करता है तो उसे केवल 16 रु मजदूरी के रूप मे मिलेंगे लेकिन बोनस नही मिलेगा ।

7. परिवर्तन पैमाना पद्धति (Sliding Scale System)—इस पद्धति के अन्तर्गत मजदूरी मे परिवर्तन वस्तुओं की कीमतो तथा जीवन-निर्वाह लागत एव लाभो मे परिवर्तन के साथ किए जाते है । यदि वस्तुओ की कीमतो, जीवन-निर्वाह लागत तथा लाभो मे वृद्धि होती है तो उसी अनुपात मे भी मजदूरी मे वृद्धि की जाती है । यह पद्धति नियोक्ताओ द्वारा, उन वस्तुओ मे जिनकी कीमतो मे अधिक परिवर्तन होते है, चाही जाती है । फिर भी इस पद्धति का कई कारणो से विरोध किया जाता है । कीमतो मे होने वाले परिवर्तन को सन्तोषप्रद तरीके से मापना कठिन है क्योकि कीमतो मे परिवर्तन कई कारणो से होते रहते है । साथ ही बाजार की शक्तियो पर मजदूरी-निर्धारण हेतु श्रमिको को नही छोडा जा सकता । इसके अतिरिक्त नियोक्ता तथा श्रमिक अपने-अपने फायदे के लिए कीमतो मे परिवर्तन लाने का प्रयास करेंगे ।

मजदूरी भुगतान के तरीको का श्रमिको की आय स्वय उनकी दक्षता, राष्ट्रीय लाभांश एव आर्थिक कल्याण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है । प्रो पीगू के अनुसार यदि उत्पादन मे हुई वृद्धि का वितरण श्रमिको मे उनके योगदान के अनुसार किया जाता है तो इससे उनके आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है । यह उस स्थिति मे ही सम्भव है जब मजदूरी का भुगतान सामूहिक सौदेबारी के नियन्त्रण मे कार्यानुसार किया जाए ।

एक अच्छी प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Good Incentive Wage System)

किसी भी फर्म या उद्योग द्वारा एक प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति लागू करते समय उत्पादन, बचाया गया समय, लिया गया समय और प्रमाप समय आदि आधारभूत तत्त्वों को शामिल किया जाता है। इस प्रकार किसी भी योजना मे निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिए—

1. कोई भी पद्धति सरल, समझने योग्य तथा श्रमिको द्वारा गणना के योग्य होनी चाहिए ।

2. उत्पादन तथा कार्यकुशलता मे वृद्धि के साथ-साथ आमदनी मे प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तन होना चाहिए ।

3 श्रमिको को तुरन्त उनकी आय प्राप्त होनी चाहिए।

4 कार्य प्रमापो (Work Standards) को सुव्यवस्थित अध्ययन के पश्चात् निश्चित करना चाहिए।

5 किसी भी परिवर्तन पर प्रेरणात्मक मजदूरी की गारण्टी की जानी चाहिए।

6 श्रमिको को आधार घण्टा दर की गारण्टी दी जानी चाहिए। यदि दिया हुआ प्रमापी कार्य पूरा नही होता है तो श्रमिको को पुन प्रशिक्षण देना चाहिए।

7. प्रेरणात्मक पद्धति उद्योग तथा सस्थान के लिए मितव्ययी होनी चाहिए। जिससे न केवल उत्पादन मे ही वृद्धि हो बल्कि उत्पादकता मे वृद्धि हो और प्रति इकाई लागत मे कमी हो।

8. श्रमिको के स्वास्थ्य तथा कल्याण पर विपरीत प्रभाव नही पडना चाहिए।

9. तकनीकी परिवर्तनो या योजना मे परिवर्तन करने हेतु इस प्रकार की योजना लोचपूर्ण होनी चाहिए।

10. प्रेरणात्मक पद्धति से श्रमिको मे सहयोग, एकता एव भ्रातृत्व की भावना को बढ़ावा मिलना चाहिए।

किसी भी प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की योजना को जल्दबाजी मे लागू नही करना चाहिए। इससे सस्थान अथवा उद्योग को लाभ होने के स्थान पर हानि होने के ही अधिक अवसर होंगे। अत इस प्रकार की योजना को लागू करने से पूर्व प्रमाप कार्य, प्रमाप समय, दक्षता आदि का सुव्यवस्थित ढग से अध्ययन करना चाहिए तथा इसे योजनाबद्ध तरीके से लागू करना चाहिए जिससे कि वांछनीय लाभ प्राप्त किए जा सकें।

प्रेरणात्मक मजदूरी योजना की बुराइयो के सम्बन्ध में सावधानियाँ (Precautions against ill-effects of Incentive Wage System)

सभी प्रेरणात्मक योजनाएँ लाभपूर्ण नही होती हैं। उनमे कुछ खामियाँ भी होती हैं जिनको लागू करते समय हमे ध्यान मे रखना चाहिए। वे निम्नलिखित हैं—

1. श्रमिको की यह आदत बन जाती है कि प्रेरणात्मक योजना के अन्तर्गत वे उत्पादन की ओर ध्यान अधिक देते हैं जबकि उत्पादन की किस्म की ओर ध्यान नही देते। घटिया किस्म की वस्तु उत्पादित करने से बाजार मे उसकी बिक्री अधिक नही हो सकेगी तथा जिस सस्थान मे योजना लागू की गई है वह उसी के लिए घातक सिद्ध होगी। इस बुराई को दूर करने हेतु उत्पादन पर जाँच तथा निरीक्षण लागू करना होगा।

2 कभी-कभी प्रेरणात्मक योजनाओ को लागू करने से उनमे परिवर्तनशीलता का अभाव पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप नवीन उत्पादन की रीतियो, मशीनो, आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण आदि के लाभ प्राप्त नही हो पाते। अत इन परिवर्तनो को लागू करने हेतु प्रेरणात्मक योजना मे लोच का गुण पाया जाना चाहिए।

3. प्रेरणात्मक योजना के अन्तर्गत श्रमिक 'अधिक कार्य अधिक मजदूरी' के लोभ से कार्य करते रहते हैं और प्राय सुरक्षा सम्बन्धी नियमों का ध्यान नहीं रखते। परिणामस्वरूप दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं। दुर्घटनाओं को कम करने हेतु भी श्रमिकों पर निगरानी रखनी पड़ती है।

4. अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लोभ से अधिक कार्य करने से श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और इससे उनकी कार्य-क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके लिए प्रेरणात्मक आय की अधिकतम सीमा निश्चित करनी चाहिए।

5 अधिक दक्ष श्रमिक को अधिक तथा कम दक्ष श्रमिक को कम मजदूरी का भुगतान किया जाता है। इससे आय की असमानता बढ़ती है। इस असमानता के कारण अधिक दक्ष तथा कम दक्ष श्रमिकों में आपस में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो जाती है और उनमें एकता का अभाव पनपता है। आय सम्बन्धी अन्तर यदि वैज्ञानिक ढंग से चलाई गई योजनाओं के परिणामस्वरूप होता है तो फिर श्रमिकों को आपस में किसी तरह की ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए। इसके लिए श्रमिक संघों का दायित्व है कि वे अपने सभी सदस्यों के बीच मधुर सम्बन्ध एवं एकता की भावना पैदा करें।

6. भुगतान के प्रेरणात्मक तरीकों को कभी भी अच्छे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों का प्रतिस्थापन (Substitute) नहीं समझना चाहिए। अतः अच्छे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों का होना भी आवश्यक है।

लाभ-अंश-भागिता
(Profit-sharing)

प्राचीन आर्थिक विचारधारा के अन्तर्गत लाभ पर सम्पूर्ण अधिकार पूँजीपति का माना जाता था। मार्क्स के अनुसार 'लाभ चोरी की हुई मजदूरी है' तथा वर्तमान समय में समाजवादी विचारधारा तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो जाने से किसी भी संस्थान या उद्योग में उत्पन्न लाभ पर न केवल साहसी का ही अधिकार माना जाता है बल्कि यह समझा जाने लगा है कि बिना श्रमिकों के सहयोग के लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता। लाभ में से श्रमिकों को भी हिस्सा दिया जाना चाहिए।

लाभ-अंश-भागिता की योजना सर्वप्रथम फ्रान्सीसी चित्रकार श्री एम. लेक्लेयर (M. Leclayer) ने सन् 1820 में आरम्भ की। इसके अनुसार यदि लाभ का कुछ हिस्सा श्रमिकों को दे दिया जाए तो इससे और अधिक लाभ एवं बचत होती है।

अर्थ (Meaning)—लाभ-अंश-भागिता के अन्तर्गत नियोजक श्रमिकों को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त लाभ में से कुछ हिस्सा देता है यदि दोनों पक्षों के बीच समझौते पर आधारित होता है। किसी भी संस्थान में प्राप्त लाभ औद्योगिक प्रणाली का अभिन्न अंग है और श्रमिकों के शोषण को समाप्त करने हेतु इस योजना के महत्व पर जोर दिया गया है।

लाभ-अंश भागिता की वांछनीयता
(Desirability of Profit-sharing)

लाभ अंश भागिता की योजना से सामाजिक लाभ (Social Justice) प्रदान किया जा सकता है। किसी भी संस्थान में जो लाभ प्राप्त होता है वह श्रमिकों के कारण से होता है और यदि हम इस लाभ में से श्रमिकों को कुछ भी नहीं दें तो यह उनके प्रति अन्याय होगा।

यदि लाभ का हिस्सा श्रमिकों को न देकर पूँजीपति या साहसी रख लेता है तो इससे श्रमिकों व मालिक के सम्बन्ध मधुर नहीं रहते। इससे आए दिन हड़ताल, धीमी गति से कार्य करने की प्रवृत्ति से औद्योगिक उत्पादन में गिरावट आती है। अतः अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने तथा उत्पादन में वृद्धि करने हेतु लाभ अंश भागिता योजना का होना आवश्यक है।

लाभ अंश भागिता में श्रमिकों को मजदूरी के अतिरिक्त लाभ में से हिस्सा मिलता है जिससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और इसके परिणाम स्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होगी। इससे अच्छी योग्यता वाले श्रमिक आकर्षित होते हैं।

लाभ अंश भागिता योजना की सीमाएँ
(Limitations of Profit sharing Scheme)

लाभ अंश भागिता योजना की कुछ सीमाएँ हैं जो निम्नांकित हैं—

1 श्रम संघ नेताओं द्वारा इस योजना का विरोध किया जाता है क्योंकि श्रमिक नेताओं का कहना है कि इस योजना से श्रम संघों को दुर्बल बनाया जाता है। इससे श्रमिक मालिकों पर आश्रित होते हैं।

2 इस योजना के अन्तर्गत लाभ के लोभ में श्रमिक अधिक श्रम करते हैं। अतः उनकी कार्यकुशलता घटती है और निम्न वास्तविक मजदूरी मिलती है।

3 श्रमिकों को दिया जाने वाला हिस्सा आसानी से मालूम नहीं किया जा सकता है। लाभ अंश भागिता की गणना एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग अलग आधारों पर होगी। इससे श्रमिकों में कम हिस्सा तथा अधिक हिस्सा पाने वाले दो वर्ग होंगे। इससे औद्योगिक संघर्ष उत्पन्न होते हैं।

4 श्रमिकों को मिलने वाला हिस्सा अधिक नहीं होने के कारण वे मालिकों की ईमानदारी में अविश्वास करने लगते हैं और इस प्रकार की योजना में अधिक रुचि नहीं लेते।

5 मालिक भी इसका विरोध करते हैं। उनका कहना है कि जब श्रमिकों को उद्योग के लाभ में से हिस्सा दिया जाता है तो हानि होने पर श्रमिकों द्वारा हानि का भार भी वहन करना चाहिए। वे इस योजना को एक पक्षीय योजना बताते हैं।

6 इस योजना के अन्तर्गत दोनों पक्ष अपना अपना महत्त्व बताते हैं कि लाभ उनके प्रयासों का परिणाम है और इससे उनमें आपस में झगड़ा उत्पन्न हो जाता है।

7 श्रमिकों को जब उद्योग के लाभ में से हिस्सा दिया जाने लगता है तो वे सुस्ती से कार्य करते हैं जिससे उत्पादन में गिरावट आती है।

इस प्रकार की योजना पूर्ण रूप से कहीं भी सफल नहीं हुई है क्योंकि इसकी कई सीमाएं हैं। फिर भी हम कह सकते हैं कि इस प्रकार की योजना की सफलता के लिए एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता है जिसमें दोनों पक्ष (श्रमिक व मालिक) एक दूसरे पर विश्वास करते हैं। यह कहना कि इससे औद्योगिक विवाद नहीं होंगे, बिलकुल सही नहीं है। यह जरूर है कि इस योजना के लागू करने से कुछ सीमा तक विवादों को कम किया जा सकता है।

भारत में लाभांश (बोनस) योजना : इतिहास और ढांचा[1]

सही अर्थों में बोनस के भुगतान की प्रथा का प्रादुर्भाव प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में हुआ था। इस प्रश्न पर विचार-विमर्श के दौरान ह्वाइटले आयोग ने यह मत व्यक्त किया था—

"हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि अपनी कार्यकुशलता के मौजूदा स्तर के अनुसार, कामगर को पहले किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के कारोबार में होने वाले लाभ में सदा ही उचित भाग मिला है या उसे अब मिलता है, लेकिन जब तक उसका संगठन उतना दुर्बल रहेगा, जितना कि आज है, तब तक इस बात का सदा खतरा बना रहेगा कि उसे उद्योग के कारोबार में (मुनाफे का) उचित भाग पाने में सफलता न मिले। समय-समय पर इस बात के सुझाव दिए गए हैं कि लाभ बांटने की योजनाओं को आमतौर पर लागू करने से इस मुश्किल को आसान किया जा सकता है, लेकिन इस आन्दोलन ने भारत में जरा भी प्रगति नहीं की और औद्योगिक विकास की मौजूदा स्थिति में ऐसी योजनाओं के लाभदायक या प्रभावी सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है।"

युद्ध बोनस

सन् 1914–18 के युद्धकाल में वस्तुओं के दाम बढ़ गए थे। नतीजा यह हुआ कि वास्तविक तनख्वाहें तो कम हो गईं और दूसरी ओर व्यापार में लाभ बहुत बढ़ गए। उस समय मजदूरों ने अतिरिक्त पैसे के लिए आन्दोलन किया। कुछ तो इसलिए कि वे अपने वेतन और वास्तविक तनख्वाहों के बीच अन्तर कम करना चाहते थे और कुछ इसलिए भी कि उद्योगों द्वारा उस दौर में कमाए गए अतिरिक्त मुनाफों में भी हिस्सा बांटने का उनका इरादा था। इस स्थिति में कुछ औद्योगिक इकाइयों को अपने मजदूरों को 'युद्ध बोनस' देने पर मजबूर कर दिया।

उस समय दिया जाने वाला बोनस दो तरह का था—(1) यह मालिकों द्वारा सद्भावना प्रदर्शन के रूप में केवल ग्रेच्युटी या अनुग्रह राशि के नाम पर दिया जाता था, (2) यह या तो महंगाई भत्ते के बदले दिया जाता था या वार्षिक अर्जित अवकाश के स्थान पर मिलता था।

1. भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सन्दर्भ सामग्री के आधार।

मजदूरों का अधिकार

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान युद्धकालीन बोनस का अर्थ ऐसा भुगतान समझा जाने लगा जो कि युद्ध के दौरान कमाए गए अतिरिक्त मुनाफे में से मजदूरों को दिया जाता था। इंडियन लेबर कॉन्फ्रेंस (1943) मुनाफा बाँटने के बारे में बोनस पर विचार विमर्श करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि बोनस के प्रश्न पर महँगाई भत्ते के सवाल से अलग विचार करना चाहिए और यह एक ऐसा सवाल है जिसे मालिकों का अपने कर्मचारियों से बातचीत करके तय करना है। उनके मालिकों ने स्वेच्छा से बोनस दिया, पर इस सवाल पर अनेक विवाद भी भारत रक्षा अधिनियम के अधीन अदालतों में उठाए गए। अदालतों का कहना था कि श्रम और पूँजी के सहयोग से ही मुनाफे हुए हैं, इसलिए मजदूरों को अधिकार है कि वे किसी समय विशेष में अतिरिक्त लाभ में हिस्सा बाँटने की माँग करें। अभी तक भी बोनस का दावा एक कानूनी अधिकार नहीं था। केवल उसे मजदूरों को सन्तुष्ट रखने की दृष्टि से न्याय, तर्क और सद्भावना के सिद्धान्तों के आधार पर स्वीकार किया गया था।

बम्बई उच्च न्यायालय का फैसला

यह स्थिति तब तक चलती रही जब तक इस प्रश्न पर बम्बई उच्च न्यायालय ने यह निर्णय नहीं दे दिया कि बोनस की माँग मजदूर का अधिकार है। उसने कहा—"बोनस एक ऐसा भुगतान है जो किसी मालिक द्वारा कर्मचारियों को एक स्पष्ट या निहित समझौते के अधीन किए गए काम के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक के रूप में दिया जाए।"

बोनस विवाद समिति

बम्बई के सूती कपड़ा मिल कामगरों को सन् 1920, 1921 व 1922 के लिए सन् 1921, 1922 व 1923 में भी बोनस दिया गया था। सन् 1923 के लिए बोनस न देने के विरोध में जनवरी, 1924 के अन्त में एक आम हड़ताल हुई थी। इसके फलस्वरूप बम्बई उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर नार्मन मैक्लीड की अध्यक्षता में एक बोनस विवाद समिति स्थापित की गई थी।

विचारार्थ विषय

समिति को निम्नलिखित विषयों पर विचार करना था—

(1) बम्बई की सूती कपड़ा मिलों द्वारा अपने कर्मचारियों को सन् 1919 से दिए गए बोनस की प्रकृति और आधार पर विचार करना और इस बात की घोषणा करना कि क्या इस बारे में कर्मचारियों का कोई पारम्परिक, कानूनी या साम्यता का दावा बन गया है ? और (2) सन् 1917 से आलोच्य अवधि तक हर वर्ष के लिए मिलों द्वारा कमाए गए मुनाफों की जाँच करना ताकि उनकी तुलना सन् 1923 में हुए मुनाफों से की जा सके और मिल मालिकों की इस मान्यता पर मत दिया जा सके कि पिछले वर्षों की तरह सन् 1923 में बोनस देने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि सन् 1923 में सूती वस्त्र उद्योग ने कुल मिलाकर जो मुनाफा कमाया है उसके आधार पर बोनस नहीं दिया जा सकता।

समिति से कहा गया था कि वह इस बारे मे कोई निर्णय या अमल के लिए सुझाव न दे बल्कि केवल तथ्य संग्रह तक ही सीमित रहे।

समिति के निष्कर्ष

मिल मजदूरो को पांच वर्षों तक जो बोनस दिया गया था उसकी प्रकृति और आधार की जांच-परख करने के बाद कमेटी ने यह घोषित किया कि मिल मजदूरो को वार्षिक बोनस के भुगतान का कोई ऐसा पारम्परिक, कानूनी या तर्कसंगत दावा नही बनता जिसे अदालत मे सही ठहराया जा सके। सन् 1917 के बाद के वर्षों मे हुए मुनाफो की जांच-परख करने और सन् 1923 मे हुए मुनाफो से उसकी तुलना करने के बाद समिति ने कहा कि सन् 1923 के लिए सूती वस्त्र उद्योगो ने कारोबार किया है, उससे मिल मालिको की यह बात सही ठहरती है कि उसके आधार पर कोई बोनस नही दिया जा सकता।

वैसे समिति का विचार यह था कि मजदूरो ने अपने मालिको के विरुद्ध जो दावा किया है, उसकी सही प्रवृत्ति को देखते हुए यह मालिको और मजदूरो के बीच सौदेबाजी का प्रश्न बन गया था, जिसमे तर्क या न्याय व औचित्य के सिद्धान्तो के अनुरूप भी सोच-विचार किया जा सकता है। यह सवाल इस बात को निश्चित करने का नही है कि इन दोनो के बीच अनुबन्ध का स्वरूप क्या है।

अहमदाबाद की समस्या

सन् 1921 मे अहमदाबाद मे भी उद्योग के सामने ऐसी ही समस्या उठ खडी हुई थी। बोनस की विस्तृत शर्तों पर विवाद हो गया था। स्वर्गीय प मदन मोहन मालवीय जी की मध्यस्थता से ही इस समस्या का हल निकला था। मालवीय जी ने कहा था—

"मेरी स्पष्ट मान्यता यह है कि अगर किसी मिल को अच्छा लाभ होता है, तो मजदूरो को आमतौर पर हर वर्ष के अन्त मे एक मास के वेतन के बराबर बोनस दिया जाना चाहिए, क्योकि मजदूरो के निष्ठापूर्ण सहयोग से ही मिल ऐसा मुनाफा कमा पाती है। अगर फायदा बहुत ज्यादा हुआ हो तो मिल मालिको को चाहिए कि मजदूरो को ज्यादा बोनस दे।"

स्वैच्छिक भुगतान

दूसरा विश्वयुद्ध छिडने पर समस्त उद्योगो को अनिवार्य सेवाएँ (रख-रखाव) अध्यादेश के तहत ले आया गया था। असामान्य युद्धकालीन परिस्थितियों के कारण कुछ कम्पनियो ने बहुत अधिक मुनाफे कमाए और औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिको ने खुद इस बात को अच्छा समझा कि मजदूरो को खुश व संतुष्ट रखा जाए।

सन् 1941 से 1945 तक बम्बई के मिल मालिक संघ की सदस्य मिलो ने स्वेच्छा से बोनस घोषित किया। सन् 1941 मे यह रकम कर्मचारियो की वार्षिक बेसिक आय का 1/8वां भाग और सन् 1942 से 1945 तक 1/6वां भाग थी।

बहुत से मामलो मे बोनस अदायगी कर दी गई, पर साथ ही यह भी कहा गया कि बोनस देने की बात अधिक मुनाफा होने से सम्बन्धित है। कुछ मामलो में

तो स्वयं मजदूरों या कर्मचारियों ने यह स्वीकार कर लिया कि अगर कम्पनी को कोई खास मुनाफा न हुआ हो तो वे लोग बोनस के रूप में उसका हिस्सा पाने के अधिकारी नहीं होंगे। उस समय बोनस को 'बख्शीश' के रूप में समझा जाता था।

श्रमिक अधिकार

बोनस के बारे में पहले समझा जाता था कि यह मालिक द्वारा अपने कर्मचारियों को अपनी मनमर्जी से दी जाने वाली मुक्त व स्वैच्छिक भेंट है, लेकिन यह विचार पुराना पड़ गया। किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान में काम करने वाले सभी लोगों का सहयोग ही औद्योगिक संस्थानों को ठीक व फलता फूलता रखने के लिए जरूरी माना जाने लगा। अब उद्योगों के बारे में केवल व्यावसायिक दृष्टिकोण से ही नहीं सोचा विचारा जाता था, इसका मानवीय पक्ष भी विचारणीय हो गया था। उद्योग क्षेत्र में शान्ति बनाए रखने की बात पर बल दिया जाने लगा था। बम्बई के मुख्य न्यायाधीश एम सी छागला ने कहा था—(1) मजदूरों को किसी साल विशेष में हुए ज्यादा मुनाफों में हिस्सा माँगने का अधिकार है और (2) ज्यादा मुनाफे को बाँटने का अच्छा तरीका तनख्वाहें बढ़ाना नहीं, बल्कि वार्षिक बोनस देना है। श्री छागला की इस बात से महाराष्ट्र के ही नहीं, अन्य राज्यों के न्यायाधीशों ने भी सहमति प्रकट की, लेकिन बोनस की परिभाषा निश्चित करने के लिए कोई फार्मूला तैयार करने की दिशा में कोशिश नहीं की गई।

'अनजाने सागर की यात्रा'

अप्रैल, 1948 में आयोजित इंडियन लेबर कॉन्फ्रेंस ने मुनाफा बाँटने के विषय पर विचार-विमर्श करते हुए कहा था कि यह मामला इस प्रकार का है कि इस पर विशेषज्ञों द्वारा विचार किया जाना चाहिए। भारत सरकार ने मुनाफा बाँटने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की। समिति से कहा गया कि वह सरकार को निम्नलिखित बातों के लिए सिद्धान्त तय करने में अपनी सलाह दे—(अ) श्रमिकों को उचित तनख्वाहें, (आ) उद्योगों में निवेशित पूँजी पर उचित लाभ, (इ) संस्थानों के रख-रखाव और विस्तार के लिए पर्याप्त संचित कोष की व्यवस्था और (ई) अधिशेष लाभ में मजदूरों के हिस्से का निर्धारण। इसे आम तौर पर (आ) व (इ) में किए गए उत्पादन प्रावधानों के अनुरूप तालमेल बैठाते हुए (कम या ज्यादा) तय किया जाना था।

समिति कोई ऐसी प्रक्रिया तय नहीं कर सकी, जिसके आधार पर मुनाफे में कर्मचारियों के हिस्से की बात को उत्पादन के साथ तालमेल बैठाकर कम या ज्यादा तय किया जा सके। समिति का विचार था—"इसलिए बड़े पैमाने पर मुनाफे में बँटवारे का प्रयोग करना एक अनजान-अनदेखे सागर की यात्रा पर निकलने जैसा होगा।"

समिति ने सुझाव दिया कि कुछ सुव्यवस्थित उद्योगों में मुनाफा बाँटने की बात प्रायोगिक तौर पर लागू की जा सकती है। ये उद्योग हैं—(1) सूती वस्त्र, (2) जूट, (3) इस्पात (मुख्य उत्पाद), (4) सीमेंट, (5) टायर उत्पादन और (6) सिगरेट उत्पादन।

मुनाफा बाँटने का प्रयोग करने या सुझाव देने के पीछे औद्योगिक शान्ति बनाए रखने की भावना ही काम कर रही थी। समिति का यह भी कहना था कि अधिशेष लाभ का अनुमान लगाने और उसे कानून के अनुसार बाँटा गया है, इस बात को प्रमाणित करने की पूरी जिम्मेदारी कम्पनियों के वैध रीति से नियुक्त लेखा परीक्षकों पर डाल दी जानी चाहिए।

केन्द्रीय परामर्शदात्री परिषद् ने उक्त समिति की रिपोर्ट पर विचार किया, लेकिन इस दिशा में कोई समझौता नहीं हो सका। व्यवहार रूप में मुनाफे के बँटवारे की प्रक्रिया समय-समय पर औद्योगिक अदालतों व न्यायाधिकरण द्वारा बोनस अदायगी के निर्णय देने के रूप में चलती रही। लेकिन उनके पचाटों में इसके लिए कोई समरूप या स्पष्ट आधार उभर कर सामने नहीं आ सका।

श्रमिक अपीलो ट्रिब्यूनल फार्मूला

इस पृष्ठभूमि में, थोड़े समय तक चले श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल (एल ए. टी) ने बोनस भुगतान के सिद्धान्त तय किए थे। सन् 1950 में सूती कपड़ा उद्योग के विवाद पर अपने फैसले में श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल ने श्रमिकों को बोनस देने से सम्बन्धित मुख्य सिद्धान्तों का प्रारूप सामने रखते हुए कहा था—

"इसे (बोनस को) अब अनुग्रह भुगतान नहीं माना जा सकता क्योंकि यह बात मानी जा चुकी है कि अगर बोनस के दावे का प्रतिरोध किया जाए तो उससे ऐसा औद्योगिक विवाद उभरता है जिसका फैसला वैध रूप से गठित औद्योगिक न्यायालय या ट्रिब्यूनल को करना होता है।"

सन् 1952 में एक दूसरे मामले में इसने बोनस का परिमाण निश्चित करने वाले आधारों की व्याख्या करते हुए कहा था—

"इस ट्रिब्यूनल की लगातार यह नीति रही है कि श्रमिकों के लिए ऐसी वेतन दर या मान तय की जाए जो वेतनों की आम दशा-दिशा के अनुरूप होने के साथ-साथ कम्पनी की भुगतान क्षमता के अनुकूल भी हो और अगर सम्भव हो तो इसे मुनाफे के अधिशेष में से बोनस देकर उसे आर्थिक लाभ पहुँचाया जाए। इन मामलों को किन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर निश्चित करना होगा, न कि आधारहीन बातों पर। क्योंकि अगर हम सिद्धान्त से अलग हट जाते हैं तो श्रमिक निर्णयों में एकरूपता नहीं रहेगी और अनिश्चित आधारों पर फैसले देना औद्योगिक सम्बन्धों के लिए खतरनाक सिद्ध होगा।"

पहले मामले के सन्दर्भ में निश्चित किए गए फार्मूले के अनुसार, जो कि 'पूर्ण पीठ फार्मूलो' (फुल बैंच फार्मूला) के नाम से जाना गया सकल लाभ में से निम्नलिखित खर्चों की व्यवस्था करने के बाद ही बँटवारे के लिए अधिशेष निश्चित किया जाएगा। ये है—

(1) टूटे-फूटे के लिए प्रावधान,
(2) पुनर्वास के लिए संचित कोष,
(3) चुकता पूँजी पर 6% लाभ, और
(4) कार्य पूँजी पर चुकता पूँजी की तुलना में कम दर पर लाभ;

को अन्तिम रूप दिया उसमे विभिन्न पक्षो द्वारा दिए गए सुझावो का भी ध्यान रखा गया था। इसे 29 मई, 1965 को बोनस भुगतान अध्यादेश, 1965 के नाम से जारी किया गया था। 25 सितम्बर, 1955 को बोनस भुगतान अधिनियम 1965 ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

बोनस विधेयक को सांविधानिक चुनौती

29 मई, 1965 को बोनस अध्यादेश जारी होने के तुरन्त बाद ही विभिन्न उच्च न्यायालयो म इस विधेयक के महत्त्वपूर्ण प्रावधानो की सांविधानिक वैधता को चुनौती देते हुए अपीलें दायर की गईं। कानून की सांविधानिक वैधता को सर्वांग चुनौती देते हुए सविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय मे दो रिट पेटीशन और बम्बई के औद्योगिक न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध एक दीवानी अपील दायर की गई। पूरे अधिनियम की आलोचना की गई। खासतौर पर धारा 10, जिसके तहत लाभ न होने की स्थिति मे भी न्यूनतम बोनस भुगतान का प्रावधान था, धारा 33, जिसका सबध कुछ अनिर्णीत विवादो पर अधिनियम को लागू करने से था, और धारा 34 (2) को जिसका सम्बन्ध बोनस की मौजूदा ऊँची दरो को सरक्षण देने से था, चुनौती दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने 5 अगस्त, 1966 को दिए गए अपने फैसले मे धारा 10 की सांविधानिक वैधता को उचित ठहराया था। अधिकतम बोनस या सैट ऑन या अग्रिम देना व सेट ऑफ या मुजरा प्रणाली से सम्बन्धित प्रावधानो को बरकरार रखा गया। लेकिन धारा 33 और 34 (2) और साथ ही धारा 37 को भी (जो अधिनियम के प्रावधानो की व्याख्या करने मे आने वाली कठिनाइयो को दूर करने का अधिकार सरकार को देती है), सांविधानिक दृष्टि से अवैध घोषित कर दिया।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से बनी स्थिति से निपटने की कठिनाई

फैसले के तुरन्त बाद मजदूरो ने प्रतिवेदन दिया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निरस्त घोषित प्रावधानो (विशेषकर उच्चतर बोनस की मौजूदा स्थिति को सरक्षण देने वाले) को फिर स बहाल किया जाए। दूसरी ओर मालिको का कहना था कि यथास्थिति बनाए रखी जाए।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद दूसरी स्थिति पर स्थायी श्रम समिति और इसके बाद गठित द्विपक्षीय समिति द्वारा विचार किया गया। लेकिन फिर भी पक्षो के बीच विभिन्न प्रस्तावो पर कोई समझौता नही हो सका और विरोधी प्रस्ताव पेश किए गए।

सन् 1969 मे बोनस अधिनियम मे सशोधन

मेटल बॉक्स कम्पनी और इसके कर्मचारियो के बीच बोनस विवाद पर सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि धारा 6 (सी) के अधीन देयकर राशि का हिसाब लगाते समय बोनस अधिनियम के तहत दिए गए बोनस को सकल लाभ से घटाया नही जाएगा। इस फैसले के फलस्वरूप यह हुआ कि कर के नाम पर घटाई जाने वाली रकम वास्तविक देय कर से ज्यादा बैठ जाती थी और बोनस देने पर

आयकर के अधीन मालिक को मिलने वाली कर छूट की पूरी रकम उसकी जेब में जाती थी। यह बात सरकार की रीति-नीति के विपरीत ठहरती थी। मजदूर तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 34(2) को रद्द किए जाने से पहले ही दुखी थे। मेटल बॉक्स कम्पनी के मामले मे दिए गए नए फैसले से और अधिक उद्वेलित और बेचैन हो गए। क्योंकि इन दोनो निर्णयो से उन्हे मिलने वाली बोनस राशि पर दुष्प्रभाव पड़ा था। इसलिए 10 जनवरी 1969 को एक अध्यादेश जारी करके अधिनियम की धारा 5 मे संशोधन कर दिया गया। इस संशोधन मे यह स्पष्टीकरण दिया गया था कि किसी लेखा वर्ष मे मालिक को मिलने वाली कर छूट राशि को बाद वाले लेखा वर्ष के उपलब्ध अधिशेष मे जोड़ना होगा। इस प्रकार कर छूट की राशि अब (अर्थात् लेखा वर्ष 1968 से आगे) मालिक और उनके लिए कर्मचारियो के बीच 40 60 के अनुपात मे बाँटी जाएगी। बाद मे एक संसदीय अधिनियम ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशें

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें दी है—

वार्षिक बोनस देने की प्रणाली अस्तित्व मे आ गई है। उसने अपना स्थान बना लिया है और भविष्य मे भी सम्भवत जारी रहेगी। जहाँ तक बोनस के परिमाण को तय करने का प्रश्न है, उसे सामूहिक सौदेबाजी के जरिए तय किया जा सकता है। लेकिन ऐसे समझौतो को आधार बनाने वाले फार्मूले को कानूनी होना होगा। सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम को अधिक समय तक आजमा कर देखना चाहिए। कुछ कम्पनियो ने, जो बोनस अधिनियम पारित होने से पहले बोनस दिया करती थी, अब बोनस देना बन्द कर दिया है, क्योंकि यह अधिनियम उन पर लागू नही होता। इन कम्पनियों को केवल इसी बात पर बोनस की अदायगी बन्द नही करनी चाहिए। सरकार को चाहिए कि ऐसी कम्पनियो के संदर्भ मे अधिनियम मे उचित संशोधन करने की सभावना पर विचार करे।

यह तय किया गया कि बोनस पुनरीक्षण समिति की रिपोर्ट मिलने के बाद इस मामले पर विचार किया जाए।

बोनस पुनरीक्षण समिति का गठन

बोनस भुगतान अधिनियम मे संशोधन करने के लिए 19 अगस्त, 1966 को श्री चित्त बसु द्वारा राज्यसभा मे बोनस भुगतान (संशोधन) विधेयक, 1966 के नाम से एक विधेयक प्रस्तुत किया गया। उनके द्वारा प्रस्तावित संशोधनों के मुख्य उद्देश्य थे—

(1) अधिनियम की धारा 10 के अधीन देय न्यूनतम बोनस को लेखा वर्ष मे अर्जित वेतन मजदूरी के 4% से बढ़ाकर वार्षिक प्राप्तियो का 1/12 करना,

(2) अधिनियम की धारा 11 को हटाना जो अधिकतम बोनस को लेखा वर्ष के वेतन/मजदूरी के 20% तक सीमित करती है, और

(3) धारा 32 द्वारा अलग किए गए सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानो के अलावा उन सभी सार्वजनिक प्रतिष्ठानो पर इस अधिनियम को लागू करना, जो कम्पनियो और निगमो की तरह चलाए जाते हैं।

मत्रालय से परामर्श करके और मन्त्रिमण्डल के निर्देशानुसार इस विधेयक का विरोध करने और यह आश्वासन देने का फैसला किया गया कि सरकार उचित समय पर स्वय एक उचित विधेयक पेश करेगी ताकि सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम को ऐसी व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता न करने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियो पर लागू किया जा सके, जो वर्तमान मे अधिनियम की धारा 20 के अधीन इससे अछूती रह गई हैं। उक्त विधेयक को राज्यसभा ने 26 मार्च, 1971 को अस्वीकृत कर दिया। बहस के दौरान श्रम मन्त्री ने यह आश्वासन दिया कि सरकार अतीत के अनुभवो को देखते हुए कानूनी बोनस भुगतान की पूरी योजना का पुनरीक्षण करेगी।

पिछले पैरे मे उल्लिखित आश्वासन के अनुरूप 28 अप्रेल, 1978 को एक समिति स्थापित की गई जिस पर सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम के व्यवहार के पुनरीक्षण की जिम्मेदारी थी। उसका स्वरूप व विचार क्षेत्र निम्नलिखित था—

1. **स्वरूप**—अध्यक्ष एव सदस्य—(1) श्री एन एन भट्ट, (2) श्री हरीश महिन्द्रा, (3) श्री आर पी बिलीमोरिया, (4) श्री जी रामानुजन, (5) श्री सतीश लुम्बा, (6) श्री महेश देसाई, (7) डॉ एस एल पुनेकर।

2. **विचार क्षेत्र**—बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 के सचालन की समीक्षा करना और उसमे प्रस्तावित योजना मे उचित सशोधन सुझाना और खासतौर पर निम्नलिखित पर सुझाव देना—

(1) क्या उन सस्थानो पर (कारखानो के अलावा) जहाँ 20 स कम श्रमिक काम करते हैं इस अधिनियम को लागू करना चाहिए। और यदि हाँ, तो रोजगार की किस सीमा तक ? क्या इन छोटे सस्थानो मे बोनस भुगतान के लिए अलग फार्मूला होना चाहिए ?

(2) क्या न्यूनतम बोनस (4%) की सीमा को बढाने का मामला बनता है ! यदि हाँ तो किस स्तर तक वृद्धि की जाए ?

(3) क्या बोनस भुगतान की वर्तमान उच्च सीमा और सेट ऑन या अग्रिम भुगतान और सेट ऑफ या मुजरा प्रणाली मे किसी फेरबदल की जरूरत है ? यदि हाँ, तो इस परिवर्तन की दिशा क्या होगी ?

(4) क्या समूचे बोनस भुगतान को किसी न किसी रूप मे सस्थान मे उत्पादन मे/उत्पादकता से सयुक्त कर दिया जाना चाहिए ?

(5) क्या वर्तमान 4% न्यूनतम बोनस जारी रहे और उत्पादन/उत्पादकता की समुचित योजना के अध्ययन से इसे और बढाने का प्रावधान भी किया जाना चाहिए ?

(6) किसी भी सम्बन्धित/अनुषंगी मामले पर विचार करना और सुझाव देना।

समिति अपनी सिफारिशों को अन्तिम रूप देने से पहले राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर उनके सम्भावित प्रभाव का भी सावधानीपूर्वक आंकलन करेगी।

बोनस पुनरीक्षण समिति की अन्तरिम रिपोर्ट

बोनस पुनरीक्षण समिति ने 13 सितम्बर, 1972 को न्यूनतम बोनस, इसके भुगतान के तरीके, न्यूनतम बोनस में वृद्धि का उत्पादन/उत्पादकता से सम्भावित सम्बन्ध, प्रसार आदि प्रश्नों के बारे में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। समिति के निष्कर्ष इस विषय पर प्रस्तुत दो अलग-अलग रिपोर्टों में सन्निहित थे। एक रिपोर्ट अध्यक्ष, डॉ एस. डी. पुनेकर, श्री एन एस भट्ट और हरीश महिंद्रा की तरफ से पेश की गई थी और दूसरी रिपोर्ट पेश करने वाले थे श्री आर डी बिलीमोरिया, श्री महेश देसाई, श्री जी रामानुजम और श्री सतीश लुम्बा।

समिति द्वारा प्रस्तुत दोनों रिपोर्टों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद निम्नलिखित कदम उठाए गए—

(1) बोनस अधिनियम के तहत आने वाले श्रमिकों को मिलने वाले न्यूनतम कानूनी बोनस को 4% से बढ़ाकर लेखा वर्ष 1971-72 के लिए $8\frac{1}{3}$% कर दिया गया।

(2) बोनस भुगतान अधिनियम के तहत आने वाले समस्त व्यक्तियों को $8\frac{1}{3}$% तक पूरा भुगतान नकद किया जाए। जहाँ कथित लेखा वर्ष में दिए जाने वाले बोनस की रकम $8\frac{1}{3}$% से अधिक हो और कथित लेखा वर्ष में दिए जाने वाले भुगतान और सन् 1970-71 लेखा वर्ष में किए गए भुगतान के बीच अगर कोई अन्तर (अनुकूल अर्थात् धन) हो, (यानी जहाँ यह भुगतान $8\frac{1}{3}$% से अधिक रहा हो) तो देश की मौजूदा आर्थिक स्थिति को देखते हुए इसे कर्मचारियों के भविष्य निधि खाते में जमा करा दिया जाएगा।

उपर्युक्त (1) और (2) में निहित व्यवस्थाओं को गैर प्रतियोगी सार्वजनिक क्षेत्र प्रतिष्ठानों पर भी लागू किया जाएगा।

यह आधिकारिक आदेश जारी कर दिए जाएँ कि अधिनियम में औपचारिक संशोधन होने तक, उन सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को भी (जिन्हें इस समय बोनस भुगतान अधिनियम की धारा 20 की व्यवस्था के चलते, बोनस देने से छूट मिली हुई है) उपर्युक्त आधार पर सन् 1971 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए भुगतान करना चाहिए, और

सरकार ने मालिकों के केन्द्रीय संगठन से कहा कि वे अपने सदस्य संस्थानों को यह सलाह दें कि उन्हें 'वाडिलकर फार्मूले' के नाम से प्रचलित फार्मूले के सन्दर्भ में कर्मचारियों को दिए गए अग्रिम धन की वसूली करने पर जोर नहीं देना चाहिए।

बाद में एक संसदीय अधिनियम ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

सन् 1972-73 के लिए न्यूनतम बोनस

सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम में सितम्बर, 1973 में फिर संशोधन किया गया और यह व्यवस्था कर दी गई कि सन् 1972 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए तनख्वाह या मजदूरी के 8⅓% की दर से न्यूनतम बोनस का भुगतान किया जाए, तथा कुछ फार्मूले मामलों में, बोनस के एक अंश को कर्मचारियों के भविष्य निधि खाते में जमा कर दिया जाए। लेकिन श्रमिकों की ओर से ऐसे प्रतिवेदन प्राप्त हुए हैं कि उन्हें प्राप्य बोनस की राशि नकद दी जानी चाहिए और सरकार ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करने का निश्चय किया। तदनुसार 14 दिसम्बर, 1973 को अधिनियम में संशोधन कर दिया गया।

सन् 1973–74 के लिए न्यूनतम बोनस

15 जुलाई, 1974 को हुई अपनी बैठक में राजनीतिक मामलों की मन्त्रिमण्डलीय समिति ने हमारे नोट पर विचार विमर्श किया, जो सन् 1973 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के बारे में न्यूनतम देय बोनस भुगतान से सम्बन्धित था। समिति ने फैसला किया कि कोई अध्यादेश जारी करने के बजाय, यह कहीं अधिक अच्छा रहेगा कि मालिकों के प्रमुख प्रतिनिधि संघों को अनौपचारिक रूप से सन् 1973-74 लेखा वर्ष के लिए 8⅓% की दर से न्यूनतम बोनस का भुगतान करने की सलाह दी जाए। केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने इस सम्बन्ध में 22 जुलाई, 1974 को एक बैठक आयोजित की। राज्य सरकारों से भी कहा गया कि वे राज्य के मालिक संगठनों को सन् 1973-74 लेखा वर्ष के लिए 8⅓% की दर से न्यूनतम बोनस भुगतान करने की सलाह दें। उनसे यह भी कहा गया कि वे यही सलाह सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को भी दें। बाद में बोनस भुगतान अधिनियम में 11 सितम्बर, 1974 को संशोधन करके उसमें सन् 1973 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए न्यूनतम बोनस के भुगतान की व्यवस्थाएँ जोड़ दी गईं।

बोनस पुनरीक्षण समिति द्वारा अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना

बोनस पुनरीक्षण समिति ने 14 अक्तूबर, 1974 को नई दिल्ली में अपनी अन्तिम रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत कर दी थी।

बोनस भुगतान (संशोधन) अध्यादेश सन् 1975 का जारी होना

बोनस पुनरीक्षण समिति द्वारा अपनी अन्तिम रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों के बारे में विभिन्न स्तरों पर काफी विस्तार से विचार विमर्श किया जाए। गत सितम्बर के मध्य में सरकार द्वारा इन सिफारिशों पर निर्णय लिए गए और उन निर्णयों के अनुरूप 25 सितम्बर, 1975 को बोनस भुगतान (संशोधन) अध्यादेश जारी कर दिया गया।

'न्यूनतम बोनस की जो दर इस अधिनियम के तहत 4% है उसे सन् 1974 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए भी बरकरार रखा गया है। लेकिन अल्प वेतन पाने वाले मजदूरों को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से कुल न्यूनतम बोनस की राशि क्रमश 40 रुपये और 25 रुपये से बढ़ाकर 100 रुपये और

60 रुपये कर दी गई है। बाद के वर्षों के लिए न्यूनतम बोनस का भुगतान 4 वर्ष के चक्र में उपलब्ध अधिशेष पर आधारित होगा। अगर अधिशेष बहुत कम है तब भी न्यूनतम बोनस का भुगतान किया जाएगा। लेकिन अगर कोई अधिशेष नहीं है तो कोई बोनस देय नहीं होगा।"

हर वर्ष त्योहारों के अवसर पर बोनस को लेकर बहुत अधिक औद्योगिक विवाद खड़े हो जाते थे और परिस्थितियों के दबाव में सामने उस अवसर पर तदर्थ फैसले कर लिए जाते थे। इस कारण इस मामले पर स्थिरता लाने की तुरन्त आवश्यकता को देखते हुए, जैसा कि बोनस आयोग ने भी कहा था और किसी वजह से ही बोनस के बारे में कानून लागू करने की आवश्यकता महसूस की गई थी, अधिनियम की धारा 34(3) को निकाल दिया गया। जिन संस्थानों पर बोनस कानून लागू होता था, उनमें मालकर अधिनियम के तहत कटौतियों की अनुमति केवल बोनस कानून के अधीन दिए गए बोनस पर ही प्रदान की गई थी।

बैंकों को बोनस की श्रेणी से अलग कर दिया गया। बैंकों, जीवन बीमा निगम, भारतीय आम बीमा निगम, बन्दरगाह व डाक तथा अन्य गैर प्रतियोगी सार्वजनिक संस्थानों में बोनस के बदले अनुग्रह भुगतान की अनुमति दी गई। इस भुगतान की अधिकतम दर 10% रखी गई।

अधिनियम में मौजूदा 20% की वर्तमान अधिकतम सीमा बरकरार रखी गई। यह भी व्यवस्था की गई कि अधिनियम के तहत अगर कर्मचारी अपने मालिकों से लाभ पर आधारित वार्षिक देय बोनस की अदायगी के बारे में कोई समझौता करते हैं, तो उस स्थिति में भी बोनस 20% से ज्यादा नहीं होगा।

अधिनियम से सरकार को यह अधिकार भी मिला है कि वह कम से कम दो महीने का नोटिस देकर ऐसे किसी भी संस्थान को, जिसमें 10 से कम कर्मचारी काम नहीं करते, अपनी अधिसूचना में उल्लिखित लेखा वर्ष के लिए अधिनियम के प्रावधानों को लागू कर सकती है यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान कानून गैर-कारखाना इकाइयों के सन्दर्भ में उन्हीं संस्थानों पर लागू होता था, जहां कम से कम 20 व्यक्ति काम करते हों।

बोनस : अन्तरिम फैसला (अगस्त, 1977)[1]

18 अगस्त को जनता पार्टी की कार्यकारिणी की सिफारिश पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने यह फैसला किया कि सन् 1976 के वर्ष का बोनस आपातकाल से पहले की तरह 8·33 प्रतिशत से कम नहीं होगा। इन्दिरा सरकार ने बोनस का विलम्बित अदायगी स्वीकार करते हुए न्यूनतम बोनस का प्रतिशत 8·33 निश्चित किया था। लेकिन आपातकाल लागू होने पर महँगी कृषि नीति को सन्तुलित करने, मुद्रा प्रसार पर अंकुश लगाने और सार्वजनिक क्षेत्र का घाटा कम करने के लिए न्यूनतम बोनस समाप्त कर दिया गया। जनता पार्टी ने चुनाव घोषणापत्र में पुरानी दर से बोनस का वादा किया था।

1. दिनमान, अगस्त-सितम्बर 1977.

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के फैसले के अनुसार प्रत्येक प्रतिष्ठान को, चाहे उसने सन् 1976 म मुनाफा कमाया हो या घाटा दिखाया हो, निर्धारित दर से बोनस देना होगा। दूसरी ओर अधिकतम सीमा बाँध दी गई है। यह है कुल वेतन का 20%। केवल उन कम्पनियों को इस जिम्मेदारी से मुक्त किया जा सकेगा जो यह बोझ नही उठा सकते, लेकिन इसके लिए उन्हें विशेष अनुमति प्राप्त करनी होगी। सार्वजनिक क्षेत्र के वे प्रतिष्ठान जिनका कि कार्यक्षेत्र पर एकाधिकार है, जैसे कोल इण्डिया और इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज, अपने कर्मचारियो को बोनस कानून के आधार पर रकमें प्रदान करेंगे। यह कानून बैंकों पर भी लागू होगा। लेकिन बीमा कम्पनियाँ तथा विभागीय प्रतिष्ठान जैसे रेलवे और डाक तार इस देनदारी से मुक्त रहेंगे।

उद्योगपतियो के प्रवक्ताओं ने कहा है कि इस फैसले के प्रतिष्ठानो पर जो बोझ पड़ेगा उसे हलका करने के लिए रियायती दर पर ऋण मिलने तथा ऐसी ही अन्य सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए।

इस फैसले से अनुमान है कि देश में बोनस की शक्ल मे कोई ढाई अरब रुपये की अदायगियाँ की जाएँगी, जबकि इस व्यवस्था के अभाव म इसकी आधे से भी कम रकम बोनस के रूप मे अदा की जाती थी।

इसके पहले जुलाई म अनिवार्य जमा योजना मे रकम की दूसरी किस्त नकद वापस करने का फैसला किया गया था। यह रुपया भी तीन अरब 36 करोड़ बैठना ▌। इस तरह बोनस और अनिवार्य जमा योजना दोनो की अदायगी मिलाकर कोई 5 अरब रुपए की मुद्रा पूर्ति बढ़ जाएगी। लेकिन सरकार का अनुमान है कि दो कारणों से महँगाई पर विशेष असर नही पड़ेगा। एक तो इसलिए कि मार्च, 1977 से 22 जुलाई, 1977 तक मुद्रा की पूर्ति केवल 3 8% बढ़ी है जबकि सन् 1976 की इसी अवधि मे यह 8 2 प्रतिशत बढ़ी थी। दूसरे सरकार ने इस आशा से कि आकर्षक ब्याज देन पर श्रमिक वर्ग बोनस और अनिवार्य जमा का सारा पैसा खर्च न करके राष्ट्रीय बचत पत्रो मे लगाने की सोच सकता है। सरकार ने पाँच वर्ष के विशेष राष्ट्रीय विकास पत्र जारी किए हैं। इन बचत पत्रो मे जो रुपया लगाया जाएगा उस पर 13% की दर से ब्याज मिलेगा। दूसरे शब्दो म 100 रुपये का बचत पत्र खरीदने वाले को पाँच वर्ष बाद 165 रुपये मिल सकेंगे। लेकिन इन विशेष बचत पत्रो मे कितना रुपया लगाया जाएगा इसके बारे मे वित्त मन्त्रालय को आशा है कि यह रकम अधिक से अधिक एक अरब तक हो सकती है।

बोनस सम्बन्धी यह फैसला इस अर्थ मे अन्तरिम फैसला माना गया कि सन् 1977 के लिए समग्र राष्ट्रीय नीति के सन्दर्भ मे फैसला किया जाएगा। श्रम मन्त्री श्री रवीन्द्र वर्मा ने आशा व्यक्त की कि केन्द्र सरकार शीघ्र ही मजदूरी, आमदनी और भावों के बारे मे राष्ट्रीय नीति तय करेगी और उसी के सन्दर्भ मे सन् 1977 के बारे मे निर्णय लिया जाएगा। इस नीति की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक समिति गठित की जा चुकी है जो निकट भविष्य मे अपनी रिपोर्ट पेश कर देगी।

19 अगस्त को प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने आकाशवाणी और दूरदर्शन से *श्रमिकों के नाम एक सन्देश प्रसारित किया और* कहा कि सरकार ने बोनस सम्बन्धी जो फैसला किया है वह श्रमिक वर्ग में सरकार के विश्वास के आधार पर और उनके अधिकारों के स्वीकार के रूप में किया। उन्होंने श्रमिक वर्ग से अपील की कि अनिवार्य जमा योजना और बोनस की अदायगियों की अधिक से अधिक सम्भव रकम वे देश के विकास कार्यों में लगाएँ और इस तरह महँगाई का दबाव रोकने में सरकार की सहायता करें।

मजदूरी और राष्ट्रीय आय
(Wages and National Income)

मजदूरी श्रम को दिया जाने वाला पारिश्रमिक है। अन्य बातें समान रहने हुए राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर मजदूरी बढ़ेगी तथा इसमें कमी आने पर मजदूरी भी कम होगी। राष्ट्रीय आय में से श्रमिकों को दिया जाने वाला भाग स्वतन्त्रता के पश्चात् बढ़ा है। प्रो बी एन दत्तार के अनुसार सन् 1947 से 1957 की अवधि में राष्ट्रीय आय में श्रमिकों (सगठित श्रमिक) का हिस्सा स्थिर ही रहा। दूसरा *अध्ययन शिवमग्गी (Shivmaggi) द्वारा किया गया था जो कि सन् 1951-61 की* अवधि से सम्बन्धित है। इस अध्ययन को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन में प्रकाशित किया गया था। इसके अनुसार "राष्ट्रीय आय में कारखाना मजदूरी का हिस्सा प्रथम पचवर्षीय योजना में 3 4% था और वह दूसरी पचवर्षीय योजना में बढ़कर सन् 1961 में 4 4% हो गया।"[1] सन् 1951-61 की अवधि में राष्ट्रीय आय में कारखानों से प्राप्त आय 640 करोड़ रुपयों से 1540 करोड रुपये हो गई। इस अवधि में रोजगार 35% बढ़ा। इस अवधि में प्रति कारखाना श्रमिक की वार्षिक नकद औसत आमदनी और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय चालू मूल्यों पर क्रमश 38% और 22% बढ़ी। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एक औसत भारतीय निवासी की तुलना में कारखाने के मजदूर की आर्थिक स्थिति सुधरी है।

जहां तक मजदूरी और लाभ का सम्बन्ध है इस विषय में प्रो. पालेकर (Prof S. A. Palekar) ने सन् 1939 से 1950 की अवधि का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के अनुसार श्रमिक को उत्पादन के मूल्य का केवल 4% मिला जबकि निर्माताओं को श्रमिकों को मिलने वाले हिस्से से तीन गुना लाभ मिला। यह सन् 1939 की तुलना में बताया गया है। यद्यपि निर्माताओं द्वारा चोर बाजारी *में कमाए गए लाभ को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है। निर्माणकारी उद्योगों* की गणना (Census of Manufacturing Industries) के अनुसार सन् 1949-*50 की तुलना में सन् 1958 में श्रमिकों की मजदूरियाँ जो कि निर्माणकर्ताओं द्वारा* मूल्य में जोड़ी गईं, 50% से गिर कर 40% रह गईं। इस तरह से मूल्यों के योग के प्रतिशत के रूप में मजदूरी सन् 1960 की तुलना में 1964 में 40% से घट कर 36 5% रह गई। राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) के अनुसार भी यह गिरावट और भी अधिक रही।

1. *Pant, S C* : Indian Labour Problems, 1965, p 215

मजदूरी का प्रमापीकरण
(Standardisation of Wages)

हमारे देश के श्रमिको की एक महत्त्वपूर्ण समस्या उनकी मजदूरी मे प्रमापीकरण का प्रभाव है। एक ही उद्योग तथा एक ही औद्योगिक केन्द्र पर एक ही प्रकार के व्यवसाय मे विभिन्न मजदूरी की दरे पायी जाती है। इस प्रकार मजदूरी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे ही भिन्न नही होती है बल्कि एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक कारखाने से दूसरे कारखाने तथा एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे भी मजदूरी की दरें भिन्न-भिन्न पायी जाती है। मजदूरी स्तर बम्बई, प बगाल, दिल्ली आदि स्थानो पर ऊँचा है जबकि असम और उडीसा मे यह नीचा है। इस प्रकार श्रमिको की मूल मजदूरी (Basic wages) म ही अन्तर नही पाया जाता है बल्कि उनके महँगाई भत्ते तथा जीवन निर्वाह लागत म भी भिन्नता पायी जाती है।

मजदूरी मे प्रमापीकरण के अभाव के कारण ये मजदूरी की विभिन्न दरें कई दोषो को उत्पन्न करने वाली होती हैं—

1 एक उद्योग स दूसरे उद्योग, एक औद्योगिक केन्द्र से दूसरे औद्योगिक केन्द्र मे मजदूरी मे विभिन्नता के कारण श्रमिको मे प्रवासी प्रवृत्ति (Migratory tendency in workers) देखने को मिलती है। कम मजदूरी वाले उद्योग को छोडकर श्रमिक अधिक मजदूरी वाले उद्योग मे चले जाते हैं। इससे स्थायी श्रम-शक्ति (Stable labour force) के मार्ग म बाधा उत्पन्न होती है।

2 एक ही औद्योगिक केन्द्र पर एक उद्योग मे कम और दूसरे उद्योग मे अधिक मजदूरी होने के कारण कम मजदूरी वाले श्रमिको के दिमाग मे असतोष घर कर जाता है जिससे हडतालो, धीमे कार्य करने की आदत आदि को प्रोत्साहन मिलता है जो आगे औद्योगिक झगडो को जन्म देते हैं।

3. मजदूरी मे भिन्नताओ के कारण अलग अलग वर्गों के लिए प्रशासन, प्रबन्ध एव सगठन का अलग-अलग ढाँचा तैयार किया जाता है। अलग अलग प्रशासन, प्रबन्ध एव सगठन के कारण समय, धन एव श्रम का अपव्यय होता है।

इन दोषो को ध्यान मे रखते हुए हमे मजदूरी की भिन्नताओ को समाप्त करना पडेगा। मजदूरी के प्रमापीकरण के अन्तर्गत हम यह देखते हैं कि एक ही उद्योग मे समान कार्य करने वाले श्रमिको को समान ही मजदूरी दी जाए। इसका अर्थ यह नही है कि सभी श्रमिको को समान मजदूरी दी जाए। इसका अर्थ है कि श्रमिको को उचित और वांछनीय मजदूरी दी जानी चाहिए जिसे कि समान रूप से क्रियान्वित किया जा सके।

मजदूरी का प्रमापीकरण तभी सम्भव हो सकता है जबकि श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधि सहयोग और सद्भावना के वातावरण मे परस्पर मिलकर निश्चित प्रमापीकरण का स्तर तय करें। एक हद तक मजदूरी के प्रमापीकरण की समस्या को मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी द्वारा दूर किया जा सकता है।

4

ब्रिटेन, अमेरिका और भारत में मजदूरी का राजकीय नियमन; भारत में औद्योगिक एवं कृषि मजदूरों की मजदूरी; भारत में श्रमिकों का जीवन-स्तर

(STATE REGULATIONS OF WAGES IN U.K., U.S.A AND INDIA; WAGES OF INDUSTRIAL AND AGRICULTURAL WORKERS IN INDIA; STANDARD OF LIVING OF WORKERS IN INDIA)

मजदूरी का राजकीय नियमन
(State Regulations of Wages)

श्रमिक को अपना श्रम बेचने के लिए स्वय को उपस्थित करना पडता है। पहले साहसी आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक दृष्टि अच्छी स्थिति मे होने के कारण रोजगार की शर्तों आदि का निर्धारण स्वय करता था और परिणामस्वरूप श्रमिक का बहुत अधिक शोषण होता था। हमारे देश मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने से हस्तशिल्पी व कृषि श्रमिको मे बेरोजगारी फैल गई। उस समय मजदूरी को निश्चित करने हेतु कोई श्रम सघ भी नही थे। इससे मजदूरी के निम्न स्तर पाए जाते थे।[1] 19वी शताब्दी के अन्त मे पूंजीपतियो ने मजदूरी-निर्धारण मे 'वस्तु दृष्टिकोण' (Commodity Approach) को छोड दिया। इसके स्थान पर श्रम उत्पादन तथा सामूहिक सौदाकारी को आधार नही माना गया। बीसवी सदी मे श्रमिक को एक मानवीय साधन माना गया और कल्याणकारी राज्य की धारणा के विकास के साथ सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु मजदूरी-निर्धारण मे विभिन्न सरकारो ने हस्तक्षेप आरम्भ किया।[2]

1 *Giri, V. V.* : Labour Problems in Indian Industry, p. 220
2 *Vaid, K. N.* : State and Labour in India, p. 89

मजदूरी के तीन आर्थिक कार्य हैं[1]—

1 मजदूरी उद्योग के उत्पादन को आय के रूप मे श्रमिको में वितरित करती है। समाज का अधिकांश हिस्सा श्रमिको का है।

2 मजदूरी लागत के रूप मे अर्थ-व्यवस्था मे साधनो को विभिन्न उत्पादन स्रोतो म आवण्टन करने की क्रिया को प्रभावित करती है।

3 मजदूरी कीमत स्तर एव रोजगार (Price Level and Employment) को निर्धारित करती है।

मजदूरी निर्धारण करने के सिद्धान्तो की आवश्यकता (Need for Principles of Wage Fixation)

हमारे देश मे मजदूरी निर्धारण हेतु सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है क्योंकि यहाँ की परिस्थितियाँ विभिन्न विकसित देशो जैसे अमेरिका, इग्लैण्ड से भिन्न हैं।

1 हमारे श्रमिको के असगठित और अशिक्षित होने तथा अस्थायी श्रम शक्ति (Unstable labour force) आदि के कारण नियोक्ताओ की तुलना मे श्रमिको की सौदाकारी शक्ति कमजोर (Weak bargaining power of workers) है।[2] इसस उनका शोषण किया जाता है। अत इस दुर्बल सामूहिक सौदाकारी की स्थिति म मजदूरी-निर्धारण मे सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है।

2 कुछ उद्योगो अथवा सस्थानो म श्रमिको को बहुत ही कम मजदूरी दी जाती है क्योकि श्रमिको की पूर्ति उनकी माँग की तुलना मे अत्यधिक होती है। इस शोषण को समाप्त करने हेतु मजदूरी का नियमन सरकार द्वारा नितान्त आवश्यक है।

3 आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) बनाए रखने हेतु भी मजदूरी का नियमन सरकार द्वारा आवश्यक है। विकसित देशो की समस्या प्रभावपूर्ण माँग का कम होना तथा भारत जैसे विकासशील देशो मे प्रभावपूर्ण माँग की अधिकता (Excess of Effective Demand) का पाया जाना है। विकसित देशो मे मजदूरी बढाकर अर्थात् अधिक क्रय शक्ति वाले लोगो से कम क्रय शक्ति वाले लोगो की ओर क्रय शक्ति का स्थानान्तरण करके आर्थिक स्थिरता रखी जा सकती है। अधिक ऊँची मजदूरी के कारण उत्पादकता मे वृद्धि, अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध, माँग और कीमतो की स्थिरता, अधिक लाभ, अधिक विनियोग, राष्ट्रीय साधनो का अत्यधिक उपयोग आदि रूपो मे लाभ प्राप्त होता है।

4 सामाजिक न्याय (Social Justice) प्रदान करने हेतु भी सरकारी नियमन आवश्यक है। सभी श्रमिको को उनके उत्पादन मे योगदान के अनुसार मजदूरी दी जानी चाहिए। समान कार्य के लिए समान मजदूरी दी जाए।

1 *Srivastava, G L* Collective Bargaining & Labour Management Relations in India p 315

2 *Vaid K N* State & Labour in India, p 89

तैयार किए जा सकते हैं तथा कीमतो मे होने वाले परिवर्तनो को इस आधार पर मालूम किया जा सकता है और उसी के अनुसार न्यूनतम मजदूरी मे परिवर्तन किए जा सकते हैं।

प्रो के एन. वैद के अनुसार "पर्याप्त मजदूरी को प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य समाज का उद्देश्य है, जबकि सभी के लिए न्यूनतम मजदूरी देना सरकार की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी है।"[1]

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय विभिन्न तत्त्वो को सन्तुलित रूप से काम लेना होगा। उदाहरणार्थ, मानवीय आवश्यकताएँ, परिवार के कमाने वालो की सख्या, निर्वाह लागत और समान कार्य हेतु दी जाने वाली मजदूरी दरें आदि को ध्यान मे रखकर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना उचित एव वांछनीय होगा।

जुलाई, 1957 मे भारतीय श्रम सम्मेलन मे सर्वप्रथम न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के आधार के बारे मे सर्वप्रथम प्रस्ताव पास किया गया और यह बताया गया कि न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण मानवीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए आवश्यकताओ पर आधारित न्यूनतम मजदूरी (Need-based Minimum Wages) निर्धारित करनी चाहिए। इस सम्मेलन मे न्यूनतम मजदूरी समितियो (Minimum Wage Committees), वेतन मण्डलो (Wage Boards) और प्राधिकरणो (Adjudicators) आदि मजदूरी-निर्धारण करने वाली मशीनरी हेतु न्यूनतम मजदूरी के लिए निम्न आधार स्वीकार किए गए—[2]

1 श्रमिक के परिवार मे तीन उपभोग इकाइयो (Three consumption units) को शामिल करना चाहिए। श्रमिक की पत्नी तथा उसके बच्चो द्वारा अर्जित आय को ध्यान मे नही रखना चाहिए।

2 डॉ आयकरोड द्वारा बताई गई कैलोरीज के आधार पर ही भोजन या खाद्य की आवश्यकता (Food requirements) के बारे मे गणना करनी होगी।

3 कपडे की आवश्यकता (Clothing requirements) के अन्तर्गत प्रति इकाई उपभोग 18 गज होना चाहिए और कुल मिलाकर 72 गज कपडा प्रति वर्ष दिया जाना चाहिए।

4 मकान किराया सरकारी औद्योगिक गृह-योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली सुविधा के आधार पर दिया जाना चाहिए।

5. ईधन, बिजली तथा अन्य व्यय की मदों के लिए न्यूनतम मजदूरी का 20% रखा जाना चाहिए।

इसके साथ ही प्रस्ताव मे यह बताया गया कि यदि इन आधारो पर निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से यदि कही मजदूरी कम है तो इसके लिए वहाँ के सम्बन्धित अधिकारियो को इसके बारे मे स्पष्टीकरण देना होगा। जहाँ तक उचित मजदूरी का

1. *Vaid K N* State and Labour in India, p. 90.
2 *Saxena, R C* : Labour Problems and Social Welfare, p. 550

प्रश्न है उसके लिए वेतन मण्डलो को उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट को ध्यान मे रख कर मजदूरी का निर्धारण करना होगा ।

यह प्रस्ताव सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया क्योंकि सर्वप्रथम न्यूनतम मजदूरी-निर्धारण के लिए ठोस प्रस्ताव पास कर स्वीकार किए गए। मजदूरी मण्डल (Wage Boards) मजदूरी निर्धारित करते समय इन प्रस्तावो को ध्यान मे रखते हैं।

पर्याप्त मजदूरी
(Living Wage)

अर्थ—पर्याप्त मजदूरी, मजदूरी का वह स्तर है जो किसी श्रमिक की अनिवार्य व आरामदायक आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो । मजदूरी से श्रमिक अपनी तथा अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओ को पूरा करने मे समर्थ होता है ताकि एक सभ्य समाज के नागरिक के रूप मे आराम से जीवन व्यतीत कर सके ।

इस प्रकार पर्याप्त मजदूरी वह मजदूरी है जो कि श्रमिक व उसके परिवार की भोजन, कपडा व मकान सम्बन्धी आवश्यकताओ को ही पूरा नही करती है बल्कि इससे बच्चो की शिक्षा, अस्वास्थ्य से सुरक्षा, सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति और वृद्धावस्था हेतु बीमा आदि के लिए भी सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं ।[1]

क्वीन्सलैण्ड औद्योगिक समझौता तथा पचनिर्णय अधिनियम (Queensland Industrial Conciliation and Arbitration Act) के अनुसार एक पुरुष श्रमिक को कम से कम इतना पारिश्रमिक (Remuneration) अवश्य देना चाहिए जिससे कि वह स्वय, अपनी स्त्री तथा तीन बच्चो के परिवार को उचित आराम के साथ रखने मे समर्थ हो सके । यहाँ यह माना गया है कि पुरुष श्रमिक को ही अपने परिवार के अन्य सदस्यो की आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करना पडता है ।

उत्तरप्रदेश श्रम जाँच समिति, 1946 (U P Labour Enquiry Committee, 1946) के अनुसार पर्याप्त मजदूरी वह मजदूरी का स्तर है जिसके अन्तर्गत श्रमिक का पारिश्रमिक उतना पर्याप्त होना चाहिए कि वह जीवन निर्वाह पर व्यय करने के उपरान्त इतना धन बचा ले कि अन्य सामाजिक आवश्यकताओ जैसे—यात्रा, मनोरजन, दवा, पत्र-व्यवहार आदि की सन्तुष्टि कर सके ।

उचित मजदूरी समिति, 1948 (Fair Wage Committee, 1948) के अनुसार पर्याप्त मजदूरी के अन्तर्गत पुरुष श्रमिक व उनके परिवार की न्यूनतम आवश्यकताएँ, जैसे—भोजन, वस्त्र और मकान आदि ही पूरी न हो बल्कि यह इतनी होनी चाहिए कि इससे बच्चो की शिक्षा, बीमारी से रक्षा, सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति और वृद्धावस्था सहित अन्य दुर्भाग्यपूर्ण अवस्थाओ मे बीमा आदि पूरे हो सकें । समिति ने यह भी सिफारिश की कि पर्याप्त मजदूरी निर्धारित करने समय राष्ट्रीय आय और उद्योग की भुगतान क्षमता को भी ध्यान मे रखा जाए । इसके साथ ही पर्याप्त मजदूरी के लक्ष्य को पूरा करना अन्तिम लक्ष्य (Ultimate Goal)

1 *Vaid, K. N* : State and Labour in India, p. 90

होना चाहिए। उचित मजदूरी समिति ने मजदूरी-निर्धारण की अधिकतम या उच्च सीमा पर्याप्त मजदूरी तथा निम्नतम सीमा न्यूनतम मजदूरी निश्चित की।

उचित मजदूरी (Fair Wages)—उचित मजदूरी की समस्या काफी महत्त्वपूर्ण है जिसके बारे मे विभिन्न देशो के अर्थशास्त्रियो ने विचार किया है। युद्धोत्तर काल मे श्रमिको व मालिको के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने हेतु कई प्रयास किए गए। इसके लिए श्रमिको एव मालिको के व्यवहार तथा दृष्टिकोण मे परिवर्तन ही आवश्यक नही है बल्कि श्रमिको को भी कुछ पारिश्रमिक के रूप मे अधिक मिलना चाहिए जिससे कि आपसी सद्भावना व सहयोग का वातावरण तैयार किया जा सके। लाभ सहभागिता (Profit Sharing) तथा उचित मजदूरी सम्बन्धी विचार इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण है। सन् 1947 मे औद्योगिक सम्मेलन में एक औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution) पास किया गया था जिसमे श्रमिको को उचित मजदूरी दिलाने की सिफारिश की गई। इस प्रस्ताव को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए भारत सरकार ने उचित मजदूरी-निर्धारण एव क्रियान्वयन हेतु सन् 1948 मे एक उचित मजदूरी समिति (Fair Wage Committee) नियुक्त की। इसकी रिपोर्ट सन् 1949 मे प्रकाशित की गई। इस समिति की सिफारिशो के आधार पर एक बिल तैयार किया गया और इसे सन् 1950 मे ससद् मे पेश किया गया, लेकिन यह पास नही किया जा सका।

उचित मजदूरी समिति के अनुसार उचित मजदूरी की न्यूनतम सीमा न्यूनतम मजदूरी तथा उच्चतम सीमा पर्याप्त मजदूरी को माना जाना चाहिए। उच्चतम सीमा का निर्धारण उद्योग की भुगतान-क्षमता (Capacity of Industry to Pay) के आधार पर होना चाहिए। उद्योग की भुगतान-क्षमता निम्न तत्त्वो पर निर्भर करती है—

1. श्रम की उत्पादकता (Productivity of Labour),

2. उसी उद्योग अथवा पडोसी उद्योग मे प्रचलित मजदूरी दर (Prevailing rates of wages in the same or neighbouring localities),

3 राष्ट्रीय आय का स्तर एव इसका वितरण (Level of National income and its distribution), और

4 देश की अर्थ-व्यवस्था मे उद्योग का स्थान (Place of the Industry in the economy of the country)।

उचित मजदूरी समिति के अधिकांश सदस्यो का मत था कि उचित मजदूरी का निर्धारण न्यूनतम मजदूरी तथा पर्याप्त मजदूरी के बीच मे होना चाहिए। उचित मजदूरी को पर्याप्त मजदूरी को प्राप्त करने का एक प्रगतिशील कदम माना गया है (Fair wage is a step towards progressive realisation of the living wage)।

प्रो. पीगू (Prof. A. C. Pigou) के अनुसार "जिस प्रकार के व्यक्तियो के बीच जो एक दूसरे के समान नही हैं, उसी प्रकार मजदूरी के सम्बन्ध मे उचित से

हमारा आशय यह है कि आकस्मिक लाभ तथा हानियो को ध्यान मे रखते हुए, जो कुशलता के अनुपात मे, किसी एक व्यक्ति की कुशलता का माप उसके वास्तविक उत्पादन से किया जाए ।"[1]

उचित मजदूरी का निर्धारण
(Determination of Fair Wages)

उचित मजदूरी समिति की सिफारिश के अनुसार उचित मजदूरी न्यूनतम व पर्याप्त मजदूरी की सीमाओ मे निर्धारित की जाएगी और यह सीमा उद्योग की भुगतान-क्षमता पर निर्भर करती है तथा स्वय उद्योग की भुगतान-क्षमता श्रमिक की कार्यक्षमता उद्योग मे प्रचलित मजदूरी दरो, राष्ट्रीय आय का स्तर एव वितरण तथा अर्थ-व्यवस्था मे उद्योग का स्थान आदि पर निर्भर करती है ।

कठिनाइयाँ (Difficulties)—उचित मजदूरी-निर्धारण करने के आधार उचित मजदूरी समिति ने दिए है लेकिन इस निर्धारण मे कई कठिनाइयाँ आती हैं जो निम्नलिखित हैं—

उद्योग की भुगतान-क्षमता के निर्धारण मे कठिनाई (Difficulty in determining the capacity to pay of the Industry)—उचित मजदूरी समिति के अनुसार उचित मजदूरी की अधिकतम सीमा उद्योग की देय क्षमता (Capacity of Industry to Pay) पर आधारित होनी चाहिए । सैद्धान्तिक रूप से यह सही है कि उद्योग की देय क्षमता के आधार पर ही उचित मजदूरी की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाए । नियोक्ता इस बात का विरोध करते हैं तथा कहते हैं कि उद्योगो की देय क्षमता कम होने से अधिक मजदूरी नही दी जा सकती । दूसरी ओर श्रमिको का कथन है कि अधिक मजदूरी देने से श्रमिको की कार्यकुशलता बढती है, उत्पादन बढता है, प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है, वस्तु की माँग बढती है, बाजार विस्तृत होता है और परिणामस्वरूप उद्योग की भुगतान क्षमता बढती है । किन्तु उद्योग की देय क्षमता का निर्धारण करना एक कठिन समस्या है । उचित मजदूरी समिति के अनुसार "उद्योग की देय क्षमता का निर्धारण करने के लिए किसी विशिष्ट इकाई अथवा देश के समस्त उद्योगो की क्षमता को आधार मानना त्रुटिपूर्ण होगा । न्यायोचित आधार तो यह होगा कि किसी निर्धारित क्षेत्र के किसी विशिष्ट उद्योग की क्षमता को आधार माना जाए, तथा जहाँ तक सम्भव हो सके, उस क्षेत्र की समस्त सम्बन्धित औद्योगिक इकाईयों के लिए समान मजदूरी निर्धारित करनी चाहिए । स्पष्टत मजदूरी निर्धारण करने वाले बोर्ड के लिए प्रत्येक औद्योगिक इकाई की देय क्षमता का माप करना सम्भव न होगा ।"

उद्योग की देय-क्षमता को मापने के लिए उद्योग का लाभ-हानि, उद्योग का क्रय मूल्य, उत्पादन की मात्रा, बेरोजगारी आदि को ध्यान मे रखना पडेगा, सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सही है, लेकिन व्यवहार मे इसे लागू करना कठिन है । उचित मजदूरी

1 *Pigou, A C* Economics of Welfare, p 551.

समिति के अनुसार उचित मजदूरी अपने आप में ही उचित होनी चाहिए। वर्तमान स्तर पर न केवल रोजगार का स्तर बना रहे बल्कि मजदूरी स्तरो से उत्पादन-क्षमता भी बनाई रखी जा सके। इस महत्त्वपूर्ण विचार को ध्यान मे रखकर ही वेतन मण्डलो (Wage Boards) को उद्योग की देय-क्षमता का अनुमान लगाना होगा। किसी एक विशिष्ट इकाई अथवा देश के सभी उद्योगो की भुगतान देय-क्षमता को आधार मानना भी गलत होगा। किसी विशिष्ट प्रदेश मे किसी विशिष्ट उद्योग की देय-क्षमता एक अच्छी कसौटी हो सकती है और जहां तक सम्भव हो सके उस प्रदेश मे उद्योग की समस्त इकाइयो मे एक ही मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए।

2. औद्योगिक उत्पादकता के निर्धारण मे कठिनाई—उचित मजदूरी समिति के कथनानुसार श्रम-उत्पादकता तथा मजदूरी मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी उद्योग की उत्पादकता न केवल श्रमिकों की उत्पादकता पर ही निर्भर है बल्कि इसके अतिरिक्त अन्य तत्त्व जैसे—प्रबन्ध-कुशलता, वित्तीय व तकनीकी क्षमता आदि भी इसे प्रभावित करते हैं। अतः उत्पादकता का अध्ययन करते समय समस्त तत्त्वो को ध्यान मे रखना होगा। वर्तमान मजदूरी का स्तर श्रमिक की कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए पर्याप्त नही है। अतः न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करके पर्याप्त मजदूरी की ओर बढना होगा जिससे श्रमिकों की कार्यक्षमता मे वृद्धि हो सके और उत्पादन बढे।

3. उचित मजदूरी को लागू करने मे कठिनाई—समयानुसार मजदूरी देते समय श्रमिको की कार्यक्षमता को ध्यान मे रखकर ही मजदूरी का निर्धारण किया जाता है, लेकिन यह जरूरी नही है कि प्रत्येक श्रमिक उस नियत कार्यक्षमता के अनुसार ही कार्य करे। इसके अनुसार अधिक कार्यकुशल को अधिक और कम कार्यकुशल को कम मजदूरी मिलनी चाहिए लेकिन यह व्यवहार मे नही पाया जाता है। जिन उद्योगो मे कार्य की दशाएँ अच्छी हैं तथा जिनमे खराब दशाएँ है तो मजदूरी भी अलग-अलग होनी चाहिए लेकिन ऐसा नही हो पाता है।

अतः उचित मजदूरी निर्धारित करते समय हमे राष्ट्रीय आय के स्तर और इसके वितरण को भी ध्यान मे रखना होगा। प्रचलित मजदूरी दरें भी ध्यान में रखनी होंगी। लेकिन असगठित श्रमिको की प्रचलित मजदूरी बहुत ही नीची हो तो इसे बढाना होगा। यह वृद्धि श्रमिको की कार्यकुशलता को ध्यान मे रखकर करनी होगी।

प्रो. वी वी सिंह के कथनानुसार 'किसी भी देश मे वास्तविक मजदूरी स्तर उस देश के आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर करता है। फिर भी मजदूरी-नियमन और मजदूरी-निर्धारण मशीनरी को ऐसा मजदूरी-ढाँचा तैयार करना होगा जो उचित हो और देश की आर्थिक दिशा के स्तर के अनुसार हो।'[1]

1 *Singh V B* : An Introduction to the Study of Indian Labour Problems, p. 87

भारत में मजदूरी का राजकीय नियमन (State Regulation of Wages in India)

हमारे देश में प्रारम्भिक औद्योगीकरण की स्थिति में श्रमिकों की मजदूरी माँग और पूर्ति के सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होती थी। उस समय एक सगठित मजदूर आन्दोलन का अभाव था जिसके परिणामस्वरूप श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी का स्तर निम्न था। धीरे-धीरे श्रमिकों के सगठन बनने लगे और इन्होंने श्रमिकों के कार्य तथा रहने की दशाओं को सुधारने हेतु मजदूरी में वृद्धि करने हेतु जगह-जगह विरोध किया। फिर भी प्रथम महायुद्ध तक किसी पक्ष द्वारा अथवा सरकार द्वारा मजदूरी नियमन की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

सन् 1937 में जब प्रान्तीय सरकारों का गठन हुआ तब मजदूरी नियमन की ओर ध्यान दिया गया। दूसरे महायुद्ध तथा इसके पश्चात् मजदूरी से सम्बन्धित विवादों को निपटाने के लिए प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों ने औद्योगिक न्यायालय तथा अधिकरणों की स्थापना की।

सन् 1947 में औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution, 1947) पास किया गया क्योंकि उस समय में औद्योगिक विवादों में काफी वृद्धि हुई थी। श्रमिकों व नियोक्ताओं के सम्बन्ध सुधारने पर जोर दिया गया जिससे कि उत्पादन में वृद्धि हो सके। परिणामस्वरूप उचित मजदूरी समिति और लाभ-अश-भागिता समिति का गठन किया गया जिसमें श्रमिकों, मालिकों और सरकार के प्रतिनिधि त्रिपक्षीय रूप में भाग लेते हैं।[1]

मार्च, 1948 में न्यूनतम वेतन अधिनियम बना, जो कृषि क्षेत्र में, अवधि वृद्धि सम्बन्धी कई सशोधनों के कारण लम्बे समय तक लागू नहीं किया जा सका। तीसरे सशोधन द्वारा कृषि क्षेत्र में, इस कानून के कार्यान्वयन की अन्तिम अवधि 31 दिसम्बर, 1959 निर्धारित की गई। इस प्रकार कानून के मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाने में लगभग 13 वर्ष लग गए।

भारत में मजदूरी के नियमन और निर्धारण के लिए जो प्रमुख वैधानिक व्यवस्थाएँ मौजूद हैं, उन पर विस्तार से पृथक्-पृथक् शीर्षकों में प्रकाश डालने से पूर्व यह उचित होगा कि प्रमुख व्यवस्थाओं के सारांश को जान लिया जाए, जो भारत सन् 1976 के अनुसार निम्नवत् है—

उजरतों का नियमन—"मजदूरी का भुगतान मजदूरी भुगतान अधिनियम सन् 1936 तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, सन् 1948, जैसा कि उसका बाद में सशोधन हुआ, से नियन्त्रित होता है। मजदूरी भुगतान (सशोधन), सन् 1976 अधिनियम समूचे भारत पर लागू होता है और फैक्ट्री अधिनियम, सन् 1948 में परिभाषित जो भी व्यक्ति किसी भी कारखाने या रेलवे में काम करता है और औसतन 1000 रु प्रतिमास से कम मजदूरी और वेतन पाता है, वह इसके अन्तर्गत आता है।

1 *Giri V V* Labour Problems in Industry p 220-21

इस अधिनियम के अधीन वेतन का भुगतान कर्मचारी की लिखित अनुमति प्राप्त करने के बाद चैक देकर या कर्मचारी के बैंक खाते मे जमा करके किए जाने के राजपत्र मे अधिसूचित कोषो के लिए कटौती करने से पहले भी कर्मचारी की लिखित स्वीकृति लेने की व्यवस्था है।"

श्रमिको द्वारा कमाई गई मजदूरी को मालिक रोक नही सकते, न ही वे अनधिकृत रूप से कटौतियो को ही कर सकते है। इस अधिनियम के अन्तर्गत जिन औद्योगिक सस्थानो मे 1,000 से कम श्रमिक काम करते है, उन्हे सम्बन्धित अवधि की मजदूरी को एक हफ्ते के अन्दर तथा कुछ अन्य परिस्थितियो मे 10 दिन के अन्दर प्रदा करनी पड़ती है। केवल उन्ही कृत्यो या अवहेलनाओ के लिए जुर्माने किए जाते है जो सम्बद्ध सरकार द्वारा मान्य है। कुल जुर्माने की राशि काम की अवधि मे दी जाने वाली मजदूरी के एक रुपये के पीछे तीन पैसे से अधिक नही हो सकती। जुर्माना किस्तो मे, या जिस त्रुटि के लिए वह किया गया है, उसकी तिथि के 60 दिन के बाद वसूल नही किया जा सकता। अगर मजदूरी की अदायगी देर से की जाती है या गलत कटौतियाँ की जाती है तो मजदूर या उनके सघ अपने दावे प्रस्तुत कर सकते है। अनुसूचित रोजगारो मे समयोपरि भुगतान न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, सन् 1948 के अनुसार किया जाता है।

न्यूनतम मजदूरी —भारत मे मालिक कर्मचारियो को कैसी भी शर्तों पर जो कि कर्मचारियो को मजूर हो, रख सकते हैं किन्तु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के अन्तर्गत जरूरत से ज्यादा काम लेने और श्रमिक का शोषण करने की मनाही है। इसके लिए केन्द्रीय या राज्य सरकार ही अनुसूचित रोजगारो में कर्मचारियो की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर सकती है। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो और केन्द्रीय सरकार ने अपने-अपने क्षेत्रो मे मजदूरी की दरें निश्चित और अधिसूचित कर दी हैं।

अधिनियम उपयुक्त अन्तर के बाद पूर्वनिर्धारित मजदूरी को सशोधित करने का प्रावधान करता है। 1973 मे केन्द्र सरकार ने न्यूनतम मजदूरी को इन अनुसूचित व्यवसायों मे सशोधित किया . (i) भवन निर्माण और अन्य निर्माण कार्य, पाषाण खण्डन और पत्थर की पिसाई आदि, (ii) कृषि और (iii) मैंगनीज, बैराइट्स और जिप्सम की खानें।

सन् 1974 मे पहली बार कई राज्य सरकारो और सघीय क्षेत्र प्रशासनो ने कुछेक अनुसूचित व्यवसायो के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित की अथवा उसमे सशोधन किया। आन्ध्र प्रदेश ने चलचित्र व्यवसाय के लिए न्यूनतम वेतन निर्धारित किया। बिहार मे तापसह भट्ठियो, तापसह ईंटो और चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के उद्योगो के लिए, उड़ीसा मे होटलो, रेस्तराओ, जलपान-गृहो, दुकानो और व्यापारिक प्रतिष्ठानो तथा सिनेमा उद्योग के लिए, उत्तर प्रदेश मे काँच, काँच उत्पादनो तथा चूड़ी उद्योग के लिए और दिल्ली मे कबाड़ो, प्लास्टिक रबड़ और पी. वी. सी. तथा केबिल उद्योगों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की गई। असम,

आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक, केरल, पंजाब, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और संघीय क्षेत्र दिल्ली में भी कुछेक अनुसूचित रोजगारों में न्यूनतम वेतन की दरों को संशोधित किया गया है।

समान पारिश्रमिक—आपात् स्थिति की घोषणा के बाद 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक वैधानिक नियम पारित किए गए हैं जिनसे समाज के कमजोर वर्गों को लाभ हो सके। 26 सितम्बर, 1975 को जारी किए गए एक अध्यादेश जो 11 फरवरी, 1976 को एक अधिनियम बन गया, के द्वारा पूरे देश में स्त्री और पुरुष कर्मचारियों को समान पारिश्रमिक देने की व्यवस्था हुई।

इस अधिनियम के अन्तर्गत एक ही या एक जैसे कार्य के लिए स्त्री और पुरुष कर्मचारियों को समान वेतन या पारिश्रमिक के भुगतान की व्यवस्था है। इससे नौकरियों में या तत्सबद्ध मामलों में औरतों के खिलाफ लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव पर अंकुश लगा है। यह अंकुश वहाँ लागू नहीं होगा जहाँ स्त्रियों की नियुक्ति किसी चालू कानून के द्वारा या किसी कानून के अन्तर्गत निषिद्ध या प्रतिबंधित है। स्त्रियों को रोजगार देने के अवसरों में वृद्धि के लिए राज्यों द्वारा सलाहकार समितियों के गठन की व्यवस्था की गई है।

भारत में मजदूरी के नियमन और निर्धारण की प्रमुख वैधानिक व्यवस्थाएँ जिनका हम विस्तार से विवेचन करेंगे, ये हैं—

(क) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, सन् 1948 (विभिन्न संशोधनों सहित)
(ख) अधिकरण के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(ग) वेतन मण्डलों के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(घ) मजदूरी भुगतान अधिनियम, सन् 1936 (संशोधनों सहित)
(ङ) अन्य व्यवस्थाएँ यथा—(i) श्रमजीवी पत्रकारों और गैर-पत्रकारों के लिए मजदूरी बोर्ड, (ii) पुरुष और महिला श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक आदि।

(क) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, सन् 1948
(Minimum Wages Act, 1948)

अधिनियम का उद्गम (Evolution)

हमारे देश में एक शताब्दी से कार्य की दशाओं तथा कार्य के घण्टों पर सरकार का नियन्त्रण रहा है, लेकिन मजदूरी के नियमन का प्रयास देश की आजादी के पश्चात् ही किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I L O) की न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी कन्वन्शन, सन् 1928 को हमारे देश में लागू करने के लिए शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने पहले न्यूनतम मजदूरी तथा असंगठित श्रमिकों वाले उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए मशीनरी नियुक्त करने की सिफारिश की थी। सन् 1944 में रेगे-कमेटी (Rege Committee or Labour Investigation Committee) की नियुक्ति की जिसने 35 उद्योगों के बारे में अपनी रिपोर्ट पेश की। इस समिति ने भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की

व्यवस्था हेतु सिफारिश की। श्रम स्थायी समिति (Labour Standing Committee) की कई बैठकों में इस विषय पर विचार-विमर्श तत्पश्चात् 1946 में न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी बिल पेश किया गया लेकिन विधान सम्बन्धी परिवर्तनों ने इसमें देरी लगा दी और अन्त में मार्च, 1948 में यह अधिनियम पास किया गया। 6 फरवरी, 1948 को न्यूनतम वेतन विधेयक, नए रूप में, बाबू जगजीवनराम द्वारा विधेयक संविधान निर्मात्री परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत हुआ।

बिल के विवेचन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए बाबूजी ने कहा— जिन नियोजनों में मजदूर अपने को संगठित करने की दशा में नहीं हैं, अपनी शिकायतें दूर नहीं कर सकते, नियोजकों से अपनी माँगें नहीं मनवा सकते उनके लिए ऐसे विधेयक की बड़ी आवश्यकता है। यह विधान उन उद्योगों के लिए इतना वांछनीय नहीं है जहाँ मजदूर अधिक संख्या में नियोजित हैं और जहाँ मजदूर आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं को संगठन बनाने की सुगमता तथा सुविधाएँ हैं, जितना कि उन मजदूरों के लिए जो ग्रामीण क्षेत्रों में बिखरे पड़े हैं जहाँ मजदूर कार्यकर्त्ता पहुँचने व संगठित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं तथा जिनके लिए वे कोई वास्तविक कार्य नहीं कर पाते। इन सब का यह अनिवार्य परिणाम है कि उद्योगों की बड़ी संख्या में, विशेषकर उनमें जो ग्रामीण क्षेत्रों अथवा छोटे नगरों में स्थापित हैं मजदूर काम में लगे श्रम के अनुकूल मजदूरी नहीं पाते। ऐसे उद्योगों को हम लोकसभा में कमर-तोड़ (स्वेटेड) उद्योग कहते हैं। कमर तोड़ उद्योगों में लगे मजदूरों की दशा को सुधारने के लिए कुछ करने हेतु यह बिल व्यवस्था करता है। अनुसूची जिसमें उद्योगों के नाम उल्लिखित हैं, पूर्ण नहीं है। मैं कहूँगा कि उक्त सूची केवल उदाहरणात्मक है। प्रान्तीय सरकारें जितने उद्योगों को अपने हाथों में लेना यथासम्भव समझती हैं अनुसूची में सम्मिलित कर सकती हैं। पहली अनुसूची (नियोजनों) के लिए इस कानून के प्रावधानों के कार्यान्वयन के लिए दो वर्ष रख रहे हैं। दूसरी सूची के लिए (जिसमें खेतिहर मजदूरों का सम्बन्ध है) तीन वर्षों की अवधि रखी जा रही है। यह विधेयक बड़ा आवश्यक है इसे कानूनों की पंजिका में बहुत पहले सम्मिलित हो जाना चाहिए था।"

बहस का उत्तर देते हुए बाबू जगजीवनराम ने बताया कि "खेतिहर मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी की दरों के निर्धारण के बिना औद्योगिक विकास तथा उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं।" उनके ही शब्दों में "अभी तक हम कृषि के क्षेत्र में इस बात पर जोर देते रहे हैं कि किसानों के लिए, सिंचाई, उत्तम कोटि के औजारों, खाद की उपलब्धि, तथा बेहतर बीजों की सुविधा हो, किन्तु अभी तक बिना उनकी ओर ध्यान दिए काश्तकारों को मिली सभी सुविधाएँ उत्पादन की वृद्धि में सहायक न होंगी।" भूमि के दो प्लाट देखें। एक उस व्यक्ति का जो खेत काश्त करता है तथा दूसरा उस व्यक्ति का जो मजदूरी पर आदमी लगा कर खेती कराता है "उस खेत में, बाबू जगजीवनराम के अनुसार, जिसमें कृषक स्वयं काश्त करता है। कम से कम एक मन अन्न ज्यादा पैदा होता है। हम कल्पना नहीं कर सकते कि (दूसरे में काश्त

करा कर) हम सालाना में कितनी बड़ी क्षति उठा रहे हैं। यह इसलिए होता है कि खेतिहर मजदूरों की मजदूरी बहुत कम है। वे खेत के उत्पादन में किसी प्रकार की कोई दिलचस्पी नहीं लेते, उन्हें उससे कोई मतलब नहीं। खेत में चाहे अधिक अन्न हो अथवा सूखा पड़े। वह जानता है कि उसको दिन भर के कठिन परिश्रम के लिए डेढ़ सेर अथवा दो सेर से अधिक अनाज नहीं मिलता है। हल में लगी हुई जमीन से अधिक वह जमीन उत्पादन देती है, जिसमें हल गहरा चला हो। अगर मजदूर को हल को धँसा कर चलाने में वही मजदूरी मिलती है जितना जमीन को उसके द्वारा खरोंचने में तो वह क्यों अधिक शक्ति लगा कर हल जोते? वह सब अधिक श्रम क्यों करे?" जगजीवनराम बाबू की दृष्टि में यह बिल क्रान्तिकारी था क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उसके बन जाने पर देश गल्ले के मामले में निर्भर हो जाएगा।"

श्री जगजीवनराम को न्यूनतम वेतन बिल प्रस्तुत कर, 'देश में सामाजिक क्रान्ति' के पहले प्रयास के सृष्टा बनने पर, श्री रंगा ने बधाई दी। बिल पर बोलते हुए, उन्होंने कहा, "मुझे कुल मिलाकर इतना ही कहना है कि यह बिल इतना क्रान्तिकारी है कि उसके लिए किसी भी सरकार को, विशेषकर हमारी सरकार को अभिमान हो सकता है।"

कानून की सृष्टि और उसका लागू होना

6 फरवरी, 1948 को (विधायिक) संविधान निर्मात्री परिषद् ने दिन भर की बहस के उपरान्त बिल को स्वीकार किया। 15 मार्च, 1948 को यह कानून बना। कृषि क्षेत्र में उसका कार्यान्वयन तीन वर्षों बाद अर्थात् मार्च, 1951 में होना था।

अवधि वृद्धि सम्बन्धी प्रथम संशोधन—विधायिका संविधान निर्मात्री परिषद् में, 6 फरवरी, 1948 को सुने गए भाषणों से श्रम आन्दोलन में नई भावनाएँ जगी थी। खेतिहर मजदूरों के बीच जाकर उन्हें संगठित करने के लिए अनेक श्रमिक नेता प्रेरित हुए थे। उन्हें विश्वास था कि दिसम्बर, 1951 तक न्यूनतम वेतन कानून, कृषि क्षेत्र में, अनिवार्य रूप से कार्यान्वित होने लगेगा। वे एक-एक दिन गिन रहे थे। प्रतीक्षा का समय पूरा हो भी न पाया था कि संसद् के समक्ष 24 मार्च, 1951 को भारत सरकार की ओर से एक संशोधन प्रस्तुत हुआ। उस पर बहस हुई। वह स्वीकार हुआ। न्यूनतम वेतन कानून के क्रियान्वयन की अन्तिम तिथि तीन वर्ष और बढ़ गई। इस प्रकार खेतिहर मजदूरों के लिए गए प्रयासों को भी धक्का लगा। वे भी तीन वर्ष पीछे पहुँच गए। अब वह 31 दिसम्बर, 1954 हुई। सरकार का पक्ष प्रस्तुत करते हुए बाबू जगजीवनराम ने कहा था कि "हमारे देश में लगभग चार करोड़ लोग खेतिहर मजदूरी का काम करते हैं और उनकी मजदूरी का निर्धारण एक भीषण कार्य है। हम उनकी दशाओं की जाँच करा रहे हैं। 800 ग्रामों में की गई जाँच के परिणाम हमारे पास हैं। उनकी हम गणना करा रहे हैं। अधिकतर प्रादेशिक सरकारों ने कुछ और समय माँगा है। इसलिए इस संशोधन के द्वारा क्रियान्वयन की अवधि तीन वर्ष और बढ़ाई जा रही है।" संसद् में संशोधन पर बहस

हुई। राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह उठी तथा विलीन हो गई।

अवधि-वृद्धि सम्बन्धी दूसरा संशोधन—न्यूनतम वेतन कानून की बढ़ाई गई अवधि पूरी भी न हो पाई थी कि तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री वी वी गिरी ने उक्त अवधि को और अधिक बढ़ाने की मांग करते हुए लोकसभा के सम्मुख 15 दिसम्बर, 1954 को एक दूसरा संशोधन रख दिया। उस संशोधन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए श्री गिरी ने कहा था कि "कृषि में न्यूनतम मजदूरी की दरों का निर्धारित करने में घनघोर कठिनाइयाँ हैं, तथा उनका अनुभव प्रायः सभी प्रदेशों को हुआ है। इसलिए सम्भवतः कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी की दरों के निर्धारण को क्रमिक होना पड़ेगा। कार्यान्वयन के प्रथम चरण में यह आवश्यक है कि खेतिहर मजदूरी का निर्धारण कृषि में केवल नियोजन के निर्दिष्ट वर्गों अथवा क्षेत्रों तक सीमित रहे।" गिरी साहब के इस दृष्टिकोण से, राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के नेता श्री कामाख्या प्रसाद त्रिपाठी ने अपनी असहमति व्यक्त की थी।

यह दूसरा संशोधन राष्ट्र के 1954 वर्ष का एक कानून बन गया।

तीसरा संशोधन—आबिद अली जी ने लोकसभा के सम्मुख कानून के कार्यान्वयन की अवधि में वृद्धि करने वाले तीसरे संशोधन को 7 सितम्बर, 1957 को लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया। आबिद भाई ने तीन तर्क उपस्थित किए थे। प्रथम यह कि रजवाड़ों के राज्य के भारत में विलीनीकरण से नए प्रदेशों का जन्म हुआ। वे भारतीय गणतन्त्र में सम्मिलित हुए। जो विलम्ब से जन्मे वे यदि कानूनों का विलम्ब से कार्यान्वयन करें तो उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए संशोधन कर उन्हें समय देना आवश्यक है। दूसरे यह कि प्रथम पंचवर्षीय योजना, बम्बई में सन् 1954 में केन्द्रीय सलाहकार परिषद् द्वारा स्वीकार किए गए तदर्थ एक संकल्प तथा भारतीय श्रम सम्मेलन का मत है कि कृषि में न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का कार्य शनैः शनैः हो। ऐसा करने के लिए कार्यान्वयन की अवधि बढ़ानी होगी। तीसरे यह कि भारतीय सरकार के श्रम विभाग द्वारा होने वाली जाँच देश के 3600 ग्रामों में आवश्यक वस्तुओं के फुटकर मूल्यों की जाँच कर चुकी थी। उसके आधार पर खेतिहर मजदूरों के व्यय सूचकांकों की गणना हो रही थी। संशोधन स्वीकार हुआ। देश के साढ़े तीन करोड़ मजदूर देखते रहे। इस प्रकार न्यूनतम वेतन कानून के कार्यान्वयन की अन्तिम अवधि 31 दिसम्बर, 1959 निर्धारित हुई।

न्यूनतम वेतन कानून के क्रियान्वयन में देश व प्रदेशों की सरकारों को मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाने में ही 13 वर्ष लग गए।

न्यूनतम वेतन अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरियों का निर्धारण

ऊपर की कहानी न्यूनतम वेतन अधिनियम के लागू होने की है। अब हमें उसके अन्तर्गत निर्धारित होने वाली मजदूरी की दरों आदि की जानकारी अपेक्षित है।

भारत मे मालिक कर्मचारियो को कुछ ऐसी शर्तों पर, जो कि कर्मचारियो को मन्जूर हो, रख सकते हैं, किन्तु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत जरूरत से ज्यादा काम लेने और श्रमिक का शोषण करने की मनाही है। इसके लिए केन्द्रीय या राज्य सरकार ही अनुसूचित रोजगारो मे कर्मचारियो की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर सकती है। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारो और केन्द्रीय सरकार ने अपने-अपने क्षेत्रो म मजदूरी की दरें निश्चित और अधिसूचित की हैं। जैसा कि आर सी सक्सेना ने लिखा है कि "इस अधिनियम का उद्देश्य अत्यन्त कठोर श्रम कराने वाले उद्योगो अथवा जहाँ श्रमिको का अधिक शोषण होता है, उस शोषण को दूर करना है। अधिनियम की मुख्य बातें इस प्रकार है[1]—

अनुसूची मे रोजगार को जोडना—इस अधिनियम की धारा 27 'सगत सरकार' को अनुसूची म और अधिक रोजगार जोडने का अधिकार देती है। इन शक्तियो का प्रयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुसूची मे अब तक निम्नलिखित रोजगार जोडे गए हैं—

1 भवनो की देखभाल और हवाई अड्डों का निर्माण तथा उनकी देखभाल,
2 जिप्सम खानें,
3 बराइटीज खानें,
4 बॉक्साइट खानें,
5 मैंगनीज खानें,
6. चीनी मिट्टी की खानें,
7 क्यानाइट खानें,
8 ताम्र खानें,
9 चिकनी मिट्टी की खानें,
10 मैग्नेसाइट खानें,
11 पत्थर खानें,
12 गेरू की खानें,
13 स्टीटाइट सेलखडी और टैल्क सहित खानें,
14 एस्बेस्टोस खानें,
15 अग्नि मिट्टी की खानें,
16 सफेद मिट्टी की खानें,
17 क्वार्टजाइट क्वार्टज और सिलिका की खानें।

इसी प्रकार राज्य सरकारो ने भी अनुसूची मे ऐसे कई और रोजगार जोडे हैं।

मजदूरी की न्यूनतम दरों का निर्धारण—अधिनियम के अन्तर्गत 'सगत सरकार' (राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार) निम्न मजदूरी दरें निर्धारित कर सकती हैं —

1 भारत सरकार श्रम मन्त्रालय रिपोर्ट, 1974-75 और 1976-77.

1 समयानुसार मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित की जा सकती है जिसे 'न्यूनतम समय दर' (Minimum Time Rate) कहते है।

2 कार्यानुसार मजदूरी की न्यूनतम दर उन श्रमिकों के लिए निश्चित की जाएगी जो कि कार्य के आधार पर मजदूरी प्राप्त करते है। यह दर 'न्यूनतम कार्य दर' (Minimum Piece Rate) कहलाती है।

3 वह मजदूरी दर जो कि समय के आधार पर कार्य करने वाले श्रमिको के लिए एक गारन्टीड समयानुसार मजदूरी निश्चित करती है, इसे गारन्टीड समयानुसार दर (Guaranteed Time Rate) कहते है।

4 विभिन्न व्यवसायो, श्रमिको आदि को अतिरिक्त कार्य करने हेतु 'अतिरिक्त समय दर' (Over-time Rate) दी जाएगी। यह चाहे समयानुसार कार्य करने वाले अथवा कार्यानुसार कार्य करने वाले श्रमिक हो, पर लागू होगी।

मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित अथवा सशोधित करते समय विभिन्न अनुसूचित रोजगारो, एक ही अनुसूचित रोजगार की विभिन्न क्रियाओं, प्रौढ, युवा, बाल और काम सीखने वाले तथा विभिन्न स्थानो हेतु भिन्न-भिन्न न्यूनतम मजदूरी दरें होंगी।

न्यूनतम मजदूरी दरें घण्टे के आधार पर, प्रतिदिन के आधार पर, महीने के आधार पर, किसी अन्य बडी अवधि के आधार पर निश्चित की जा सकती हैं।

एक न्यूनतम मजदूरी दर मे इन बातों का समावेश किया जा सकता है—

1 मजदूरी की एक आधार दर (A basic rate of wages) और निर्वाह लागत भत्ता (A cost of living allowance)। निर्वाह लागत भत्ते मे जीवन निर्वाह लागत सूचकांको के आधार पर परिवर्तन होते रहेंगे तथा यह सम्बन्धित श्रमिको पर ही लागू होगा।

2 बिना निर्वाह लागत भत्ते अथवा निर्वाह लागत भत्ते सहित एक आधार दर (A basic rate with or without the cost of living allowance) और अनिवार्य वस्तुओं की पूर्ति से प्राप्त छूट का मूल्य नकदी के रूप मे।

3 सभी को सम्मिलित करके दी जाने वाली दर (An all-inclusive rate) इस अधिनियम के अनुसार सभी मजदूरी नकदी मे दी जाएगी। फिर यदि सरकार उचित समझती है तो कुछ भाग वस्तु के रूप मे भी दिया जा सकता है।

4 समितियो के परामर्श व सम्बन्धित व्यक्तियों के विचारो पर सोच-विचार करने के पश्चात् उपयुक्त सरकार (राज्य अथवा केन्द्र) सरकारी गजट मे सूचना निकाल कर प्रत्येक अनुसूचित रोजगार के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित कर सकती है।

5 सलाहकार समितियाँ (Advisory Committees) दरों का सशोधन करने हेतु नियुक्त की जा सकती हैं और एक सलाहकार मण्डल (Advisory Board) की स्थापना करने का भी अधिनियम मे प्रावधान है। यह मण्डल विभिन्न समितियो के कार्यों का समन्वय करता है तथा न्यूनतम मजदूरी दरों के निर्धारण तथा सशोधन के विषय मे सरकार को सलाह भी देता है।

6 जैसा कि कहा जा चुका है एक केन्द्रीय सलाहकार मण्डल (Central Advisory Board) केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित करने का प्रावधान है जो कि राज्य सरकारो व केन्द्रीय सरकारो को सलाह देने तथा विभिन्न राज्यो की समितियो व मण्डलो के कार्यों के समन्वय का कार्य भी करता है। इन सभी समितियो और मण्डलो मे श्रमिको, नियोक्ताओ और सरकार के प्रतिनिधियो के साथ-साथ स्वतन्त्र व्यक्तियो को शामिल किया जाता है।

न्यूनतम मजदूरी का भुगतान—इस अधिनियम मे मजदूरी भुगतान के निम्न प्रावधान है—

1 न्यूनतम मजदूरी नकदी मे दी जाएगी। यदि परिस्थितियो की देखभाल कर सरकार मजदूरी वस्तु मे दिलाती है तो यह सम्भव हो सकेगा।

2 जिन उद्योगो पर यह अधिनियम लागू होगा वहाँ न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी नही दी जाएगी। यह कानून का उल्लघन माना जाएगा।

3 यदि श्रमिक निश्चित समय से अधिक कार्य करता है तो उसे औसत मजदूरी की दुगुनी दर के बराबर अतिरिक्त समय का भुगतान (ओवरटाइम) दिया जाएगा।

अधिनियम के दोष

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम श्रमिको के हितो की रक्षा मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है तथापि इसमे कुछ निम्नलिखित दोष विचारणीय हैं—

1 अधिनियम के अन्तर्गत समय-समय पर यद्यपि अनेक रोजगार सम्मिलित किए गए है तथापि इसका औद्योगिक क्षेत्र अभी बहुत सकुचित है। अनेक महत्त्वपूर्ण और असगठित उद्योगो का समावेश होना आवश्यक है।

2. अधिनियम के प्रयोग मे शिथिलता है। राज्य सरकारो द्वारा अधिनियम का प्रयोग जिस ढग से हुआ है यदि एक राज्य मे किसी उद्योग को इस अधिनियम के अन्तर्गत लिया जाता है तो दूसरे राज्य मे उसे छोड दिया जाता है। यह स्थिति श्रमिको मे असन्तोष का एक कारण बनती है।

3 अधिनियम मे कुछ असगत छूटें दी गई हैं। उदाहरणार्थ ऐसी छूट दी जाना उचित प्रतीत नही होता कि उस उद्योग मे न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित करने की आवश्यकता नही है जिसमे सम्पूर्ण राज्य म 1000 से अधिक श्रमिक काम कर रहे हो।

4 परामर्शदात्री समिति को अधिक प्रभावशाली बनाया जाना आवश्यक है। समितियो के कार्यों से अभी तक ऐसा प्रतीत हुआ है कि दरो के निर्धारण मे मानो उनका कोई विशेष हाथ न रहा हो।

5 अधिनियम के अनुसार 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' के निर्धारण की व्यवस्था नही है।

6. ऐसे प्रमुख व्यवसायो पर अधिनियम लागू नहीं होता जिनके श्रमिको की दशा बहुत खराब है।

7 एक ही राज्य के विभिन्न भागों और विभिन्न राज्यों में मजदूरी की दरों में समानता नहीं है, एकीकरण का अभाव है।

केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिनियम का कार्यान्वयन

मजदूरी निर्धारण—श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1976-77 के अनुसार केन्द्रीय सरकार द्वारा निम्नलिखित श्रेणियों की खानों में रोजगार के बारे में अधिनियम के अधीन न्यूनतम मजदूरी के आरम्भिक निर्धारण सम्बन्धी प्रस्ताव अधिसूचित किए गए हैं —

(i) चीनी मिट्टी, (ii) चिकनी मिट्टी, (iii) सफेद मिट्टी, (iv) ताम्बा, (v) क्रोमाइट, (vi) पत्थर, (vii) कायनाइट, (viii) स्टिय टाइट (सोपस्टोन और सेल्क सहित) (ix) गेरू, (x) एसबेस्टोस (xi) अग्नि मिट्टी और (xii) अभ्रक (आन्ध्र प्रदेश, बिहार, राजस्थान और तमिलनाडु को छोड़कर) अन्य राज्यों में निर्धारित मजदूरी दरें, जिसमें सब कुछ शामिल है और जो सभी रोजगारों के लिए समान हैं, इस प्रकार हैं—

अकुशल श्रमिक	5 80 रुपये प्रतिदिन
अर्द्ध कुशल श्रमिक	7 25 रुपये प्रतिदिन
कुशल श्रमिक	8 70 रुपये प्रतिदिन
लिपिक श्रमिक	8 70 रुपये प्रतिदिन

केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिनियम के अधीन मजदूरी दर में संशोधन—अधिनियम समुचित सरकार से अपेक्षा करता है कि वह पांच वर्षों से अनधिक अन्तरालों पर निर्धारित की गई मजदूरी की न्यूनतम दरों की पुनरीक्षा करे और यदि आवश्यक हो तो उनमें संशोधन करे। जहाँ तक केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध है, निम्नलिखित रोजगारों के सम्बन्ध में संशोधित न्यूनतम मजदूरी दरें अधिसूचित (दर्शायी गई तारीखों को) की गई हैं :—

(i) बेराइटिस खानें	(21 मई, 1976)
(ii) जिप्सम खानें	(21 मई, 1976)
(iii) मैंगनीज खानें	(25 मई, 1976)
(iv) आन्ध्र प्रदेश, बिहार, राजस्थान और तमिलनाडु के राज्यों में अभ्रक खानें	(28 मई, 1976)
(v) बौक्साइट खानें	(29 मई, 1976)
(vi) कृषि	(8 सितम्बर, 1976)

केन्द्रीय सरकार ने अनुसूचित रोजगारों अर्थात् (i) सड़कों का निर्माण और अनुरक्षण कार्य या भवन-निर्माण कार्य, (ii) पत्थर तोड़ने-पत्थर पीसने और (iii) भवनों का अनुरक्षण तथा रनवे का निर्माण व अनुरक्षण के सम्बन्ध में मजदूरी में संशोधन के प्रस्तावों को मार्च 1976 में अधिसूचित किया।

(ı) मैसर्स बर्न स्टैन्डर्ड कम्पनी लिमिटेड, (ıı) मैसर्स सेलम मेग्नेसाइट (प्राइवेट) लिमिटेड और (ııı) मैसर्स डालमिया मेग्नेसाइट कारपोरेशन लिमिटेड की तमिलनाडु के सेलम जिले मे स्थित मैग्नेसाइट माइन्स और केलसिनेशन तथा रिफ्रेक्टरी मेकिंग प्लाण्ट्स के रोजगार को अधिसूचना सख्या सा॰ का॰ 775 (ई॰) तारीख 4 दिसम्बर, 1976 द्वारा भारत के रक्षा और आन्तरिक सुरक्षा नियम, 1971 के अधीन लाया गया और इसके साथ-साथ उक्त नियमो के अधीन ऐसे रोजगार के लिए मूल वेतन और महँगाई भत्ता अधिसूचना सख्या 776 (ई॰), तारीख 4 दिसम्बर, 1976 द्वारा निर्धारित किया गया। तथापि चूँकि उपर्युक्त *तीन कम्पनियो की मेग्नेसाइट खानो मे प्रचलित मजदूरी बहुत कम है*, इसलिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के अधीन सम्पूर्ण रोजगार के लिए न्यूनतम मजदूरी दरें निर्धारित करने हेतु कार्यवाही आरम्भ की गई है।

1976 मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारण सशोधन की उल्लेखनीय विशेषता मैगनीज और अभ्रक खानो मे नियोजित सभी वर्गों क भूमिगत श्रमिको के लिए 20 प्रतिशत अधिक मजदूरी का निर्धारण है। सभी रोजगारों मे किशोर श्रमिको, अर्थात् 18 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी को सभी वर्गों के वयस्क श्रमिको की मजदूरी दरो के 70 प्रतिशत से बढाकर 80 प्रतिशत कर दिया गया है। यह भी निर्णय किया गया है कि विकलांगो को 70 प्रतिशत के स्थान पर अधिसूचित मजदूरी का 100 प्रतिशत दिया जाएगा।

कृषि उद्योग मे न्यूनतम मजदूरी

आपात् स्थिति की घोषणा और 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम आरम्भ किए जाने के बाद तथा श्रम मत्री सम्मेलन (*जुलाई, 1975*) के 26वें अधिवेशन मे लिए गए निर्णय के अनुसरण मे, लगभग सभी राज्यो ने 1976 के दौरान या उसके बाद कृषि मे न्यूनतम मजदूरी दरो मे सशोधन किया। असम और महाराष्ट्र न सशोधन करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना आरम्भ कर दिया है। पश्चिम बगाल और पजाब मे न्यूनतम मजदूरी दरो को उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के साथ लिंक करने की पद्धति है और बिहार ने खाद्यान्न की मात्रा के अनुसार मजदूरी दरे अधिसूचित की हैं, जिससे कीमतो मे वृद्धि के कारण मजदूरी दरो का अपक्षरण नहीं होता। केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले कृषि उद्योग के रोजगार के सम्बन्ध मे भी सितम्बर, 1976 मे न्यूनतम मजदूरी दरें अधिसूचित की। सशोधित मजदूरी दरें जो क्षेत्रो के अनुसार भिन्न भिन्न है, नीचे दी गई है [1]—

अकुशल श्रमिक	4 45 रुपये से 6 5 रुपये प्रतिदिन
अर्द्धकुशल श्रमिक	5 56 रुपये से 8 12 रुपये प्रतिदिन
कुशल लिपिक श्रमिक	7 12 रुपये से 10 40 रुपये प्रतिदिन
उच्च कुशलता प्राप्त श्रमिक	8 90 रुपये से 13 00 रुपये प्रतिदिन

1 श्रम मत्रालय, भारत सरकार वार्षिक रिपोर्ट 1976 77

उल्लेखनीय है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 की दूसरी अनुसूची से ही कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण सम्मिलित है। कृषि मे न्यूनतम मजदूरी दरो का निर्धारण अधिकाशत राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की शिकायते की जाती रही है कि कुछ मामलो मे मजदूरी की दरे काफी कम है। अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी दरो के लागू न किए जाने के बारे मे भी शिकायते हुई हैं। केन्द्र सरकार राज्य सरकारो को सलाह देती रही है कि वे पुनरीक्षण का काम करे ताकि मजदूरी की उचित दरें सुनिश्चित हो और साथ ही उनको कारगर ढग से लागू करने के लिए कार्यवाही भी की जाए। केन्द्रीय सरकार के फार्मों, सैनिक फार्मों तथा बहुत सी अन्य सस्थाओ से सम्बन्धित फार्मों मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी गई हैं।

वस्तुत औद्योगिक श्रमिको की तुलना मे कृषि श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना बडा कठिन है, क्योंकि—

1. कृषि श्रमिको के मजदूरी सम्बन्धी आँकडे सरलता से उपलब्ध नही हो पाते,

2 कृषि श्रमिको के मजदूरी के कार्य के घण्टे निश्चित करने कठिन है क्योंकि अलग-अलग कार्य के लिए अलग-अलग समय लग जाता है,

3 मजदूरी का भुगतान ग्रामीण क्षेत्रो मे नकदी के साथ-साथ वस्तु मे भी किया जाता है,

4. भारतीय किसान अशिक्षित है अत मजदूरी, उत्पादन, कार्य के घण्टे आदि के सम्बन्ध मे रिकार्ड नही रख सकते, एव

5 इस सम्बन्ध मे ऐसे सस्थानो की भी कमी है जो कृषि श्रमिको की मजदूरी सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र करने का अभियान चलाएँ।

देश मे कृषि श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने मे एक बडी बाधा इसलिए आती है कि अधिकाँश जोतें छोटी हैं जिन पर न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू करना अवांछनीय है। दूसरी ओर बडी जोतो पर इसे लागू करने से जोतो के अपखण्डन का भय रहा है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को कृषि क्षेत्र मे व्यावहारिक बनाने के लिए आर्थिक जोतो के निर्माण और कृषि श्रमिको के सगठन होने की योजना पर तेजी से अमल करना होगा।

(ख) अधिकरण के अन्तर्गत मजदूरी नियमन (Wage Regulation Under Adjudication)

हमारे देश मे औद्योगिक विवादो को निपटाने हेतु अधिकरण मशीनरी (Adjudication Machinery) काम मे लाई जाती है। जब मजदूरी के सम्बन्ध मे श्रमिको व मालिको के बीच झगडा होता है तब भी इसके द्वारा विवाद निबटाया जाता है। यह मशीनरी असगठित और कम सख्या मे काम करने वाले उद्योगो के श्रमिको की मजदूरी का विवाद नही निबटाती है। जब भी विवादो को निबटाने के लिए अधिकरणकर्त्ता (Adjudicator) की नियुक्ति की जाती है तब उसे राज्य

सरकार सिद्धान्त प्रस्तुत करती है जिनके आधार पर वह विवाद को निपटाता है। जो भी फैसले (Awards) दिए जाते हैं उनके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सरकार की है तथा इस प्रकार के फैसले समय-समय पर दिए गए हैं जिनमें एकरूपता (Uniformity) नहीं पाई जाती है। जितने भी अवार्ड्स (Awards) दिए जाते हैं वे उचित मजदूरी समिति (Committee on Fair Wages) की सिफारिशों के आधार पर दिए जाते हैं। अधिकांश निर्णयों में उद्योग की देय-क्षमता (Capacity to pay of an Industry) का ध्यान रखा गया है। श्रम संस्थान (Labour Bureau) के अनुसार "अब यह सभी सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं कि न्यूनतम सीमा निर्धारित करते समय उद्योग की देय-क्षमता को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं है।"[1] विभिन्न ट्रिब्यूनल्स द्वारा न्यूनतम मजदूरी आदि के निर्धारण में श्रमिकों की दक्षता, राष्ट्रीय आय का स्तर एवं उसके वितरण आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। कई विवादों में अकुशल (Unskilled) श्रमिकों की मजदूरी का निर्धारण कर दिया है तथा कुशल (Skilled) और अर्द्ध कुशल (Semi-skilled) श्रमिकों की मजदूरी को निर्धारण करने का कार्य प्रबन्धकों व श्रमिकों पर छोड़ दिया गया है।

(ग) वेतन मण्डलों के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(Wege Regulation Under Wage Boards)

प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह विचार किया गया कि उचित मजदूरी के निर्धारण हेतु स्थाई एवं निष्पक्ष वेतन मण्डलों की स्थापना की जानी चाहिए जो कि समय-समय पर मजदूरी से सम्बन्धित आंकड़ों, जाँच आदि का कार्य करके मजदूरी-निर्धारण का कार्य करते रहेंगे। लेकिन इसके बारे में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। वैसे हमारे देश में स्वतन्त्रता से पूर्व भी बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, 1946 (Bombay Industrial Relations Act of 1946) के तहत मजदूरी-निर्धारण हेतु ऐसे वेतन मण्डल विद्यमान थे। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी इस प्रकार की मशीनरी को मजदूरी निर्धारण हेतु स्वीकार किया गया। "तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी यह बताया गया कि प्रबन्धकों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि वेतन मण्डल की सर्वसम्मत सिफारिशों को पूर्ण रूप से लागू करना चाहिए।"[2]

विभिन्न उद्योगों के लिए वेतन मण्डल नियुक्त करने का सुझाव सबसे पहले केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference) में 1957 में दिया था। सन् 1958 की अनुशासन संहिता (Code of Discipline, 1958) में इन प्रस्तावों को सम्मिलित किया गया है। वेतन मण्डल एक कानूनी संस्था नहीं है। इसे जिस उद्योग के लिए नियुक्त किया जाता है उसमें स्वतन्त्र रूप से मजदूरी निर्धारित की जाती है। "यद्यपि इन मण्डलों की नियुक्ति श्रमिकों व

1 Labour Bureau, Industrial Awards in India, 1951, p. 29
2 Third Five Year Plan, p. 256

प्रबन्धकों के पारस्परिक समझौते के आधार पर होनी चाहिए, लेकिन वास्तविक जीवन में इनकी नियुक्ति की माँग श्रम संघों द्वारा की जाती है। सामान्यतया एक वेतन मण्डल में श्रमिकों व मालिकों के दो-दो प्रतिनिधि, दो स्वतन्त्र व्यक्ति (एक संसद सदस्य तथा दूसरा अर्थशास्त्री) किसी महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक व्यक्ति की अध्यक्षता में नियुक्त किया जाता है।"[1] यह एक त्रिपक्षीय संस्था (Tripartite Body) है। कुल व्यक्तियों की संख्या 7 से 9 तक होती है। वेतन मण्डल का अध्यक्ष साधारणतया कोई जज होता है।

एक वेतन मण्डल का कार्य जिस उद्योग हेतु नियुक्त किया गया है, उसमें मजदूरी-निर्धारण का कार्य करना है। उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों को मद्देनजर रखते हुए उद्योग में मजदूरी निर्धारित की जाती है। अन्य बातें जो वेतन मण्डल ध्यान में रखता है वे है—

1 एक विकासशील देश में उद्योग की आवश्यकताएँ।
2 कार्यानुसार मजदूरी देने की पद्धति।
3 विभिन्न प्रदेशों तथा क्षेत्रों में उद्योग की विशेष विशेषताएँ।
4 मण्डल के अन्तर्गत आने वाले श्रमिकों की श्रेणियाँ।
5. उद्योग में कार्य के घण्टे।

कुछ वेतन मण्डलों को मजदूरी-निर्धारण के अतिरिक्त बोनस अथवा ग्रेच्युटी के भुगतान के बारे में सिफारिशें करने को कहा गया था।

सन् 1957 से ही भारत सरकार ने केन्द्रीय वेतन मण्डलों की नियुक्तियाँ की। सबसे पहले सूती वस्त्र उद्योग हेतु वेतन मण्डल नियुक्त किया गया। इसके बाद चीनी, सीमेन्ट, जूट, लौह एवं इस्पात, कॉफी, चाय, रबड़, कोयले की खानों, पत्रकारों, भारी रसायन एवं उर्वरक, इंजीनियरिंग, बन्दरगाहों, चमड़ा, विद्युत और सड़क यातायात आदि उद्योगों में वेतन मण्डल स्थापित कर दिए गए। ये सभी वेतन मण्डल अब कार्यशील नहीं हैं क्योंकि इन्होंने अपनी अन्तिम रिपोर्ट दे दी है। इन सभी वेतन मण्डलों को विभिन्न श्रमिकों की श्रेणियों का निर्धारण, उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के आधार पर मजदूरी-निर्धारण, कार्यानुसार मजदूरी की उचितता आदि के बारे में सिफारिशें करने को कहा गया था।

वेतन मण्डलों की नियुक्तियाँ ऐच्छिक फैसले को प्रोत्साहन देने के लिए की गई थी। यह आशा की गई थी कि इनकी सिफारिशों को बहुमत से श्रमिक तथा नियोक्ता स्वीकार करेंगे। ऐच्छिक पंच-फैसले के सिद्धान्त को सफलता नहीं मिली क्योंकि मालिकों ने वेतन मण्डल की सिफारिशों को लागू करने में बाधा डाली। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए सरकार ने वेतन मण्डलों की सिफारिशों को कानूनन रूप से लागू करने का अधिकार प्रदान कर दिया।

वेतन मण्डलों द्वारा की गई सिफारिशों को सरकार जाँचती है और फिर

1 *Vaid K N*. State and Labour in India, p 101.

उनका प्रकाशन करती है। सामान्यतया बहुमत से दी गई सिफारिशों को क्रियान्वित किया जाता है। कुछ मामलों में इनका संशोधन करके लागू कर देने का अभ्यास रहा है। इसकी आलोचना की गई है कि यह प्रक्रिया श्रमिकों के पक्ष में गई है। समय समय पर इन सिफारिशों के लागू करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से रिपोर्ट माँगी जाती है। इन सिफारिशों को लागू करने का कार्य केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की औद्योगिक सम्बन्ध मशीनरी (Industrial Relations Machinery) द्वारा किया जाता है।

वेतन मण्डलों की सीमाएँ
(Limitations of Wage Boards)

वेतन मण्डल ऐच्छिक पंच-निर्णय के सिद्धान्त को प्रोत्साहन देने हेतु एक तरीका काम में लाया गया है। वेतन मण्डलों की सिफारिशों तथा उनके क्रियान्वयन की निम्नलिखित सीमाएँ हैं[1]—

1 श्रम संघ वेतन मण्डलों का अनिवार्य मधिकरण तथा सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया के विस्तार का एक प्रतिस्थापन मानता जाता है। नियोक्ता भी इनकी सिफारिशों को लागू करने में उत्साह नहीं रखते हैं।

2 वेतन मण्डलों का कार्य उचित मजदूरी की गणना व निर्धारण करना है। लेकिन व्यवहार में देखा गया है कि इन्होंने उचित मजदूरी जिसका सम्बन्ध उद्योग की देय-क्षमता से है, की अपेक्षा की है।

3 वेतन मण्डलों ने मजदूरी-निर्धारण में श्रमिकों और मालिकों के साथ समझौता मशीनरी के रूप में कार्य किया है न कि एक मजदूरी निर्धारण मशीनरी के रूप में।

4 महँगाई भत्ते को मूल मजदूरी में मिलाने के रूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। सूती वस्त्र उद्योग में महँगाई भत्ते का 75% मूल मजदूरी में मिला दिया गया है।

5 वेतन मण्डल उचित मजदूरी समिति द्वारा दी गई सिफारिशों के आधार पर मजदूरी निर्धारित करते हैं और बाद में भारतीय श्रम सम्मेलन की 15वीं बैठक में किए गए प्रस्तावों को भी ध्यान में रखा जाता है। लेकिन इन दोनों में ही स्पष्टता देखने को नहीं मिलती। सूती वस्त्र उद्योग में मजदूरी में अन्तर (Wage Differentials) की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

6 विभिन्न वेतन मण्डलों ने जो वेतन-ढाँचे दिए हैं उनमें समन्वय का अभाव है। विभिन्न क्षेत्रों में अलग मजदूरी दरें हैं। इन वेतन मण्डलों ने न तो आवश्यकता पर आधारित मजदूरी (Need-based Wage) का ही निर्धारण किया है और न मजदूरी में पाए जाने वाले अन्तरों (Wage Differentials) को ही दूर किया गया है। इसके कारण श्रमिकों में आपसी ईर्ष्या की भावना को जन्म दिया गया है।

1 *Vaid, K N* . State and Labour in India, p 103

राष्ट्रीय श्रम आयोग के सम्मुख वेतन मण्डलो द्वारा निर्धारित मजदूरी के सम्बन्ध मे विभिन्न पक्षो ने निम्न विचार प्रस्तुत किए हैं—

1 नियोक्ताओ के संगठन ने यह बताया है कि विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे मजदूरी-निर्धारण एक ही मशीनरी द्वारा निर्धारित करना उचित नही है। उद्योग की प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए मजदूरी निर्धारण का कार्य वेतन मण्डल, अधिकरण अथवा सामूहिक सौदाकारी द्वारा किया जा सकता है। यदि एक उद्योग समरूप (Homogeneous) नही है तो उसमे वेतन मण्डल नियुक्त नही किया जाना चाहिए। इसके साथ ही अन्य संगठन ने बताया कि वेतन मण्डल की सिफारिशो मे एकमत होने पर ही उनको क्रियान्वित करना चाहिए।

2. श्रम संगठनो ने राष्ट्रीय श्रम आयोग को वेतन मण्डल के क्रियान्वयन के विषय मे अपना असंतोष बताया है। उनका कहना है कि जिन उद्योगों मे संगठित श्रमिक है, संघ को मान्यता है तो वहाँ वेतन मण्डल द्वारा मजदूरी-निर्धारण न करके सामूहिक सौदाकारी द्वारा होना चाहिए। कुछ संगठनो ने यह भी बताया कि सिफारिशों को लागू करने मे काफी देरी लगती है और कुछ वृद्धि के रूप मे उनको वेतन मिलने लगता है। श्रम संगठनो का कहना है कि वेतन मण्डल की सिफारिशें 6 महीने मे प्राप्त हो जानी चाहिए और वेतन मण्डल का गठन कानून न होना चाहिए।

राष्ट्रीय श्रम आयोग 1969 (National Commission on Labour 1969) ने वेतन मण्डलो के बारे मे निम्न सिफारिशे दी थी[1]—

1 वेतन मण्डल में स्वतन्त्र व्यक्तियों को शामिल नही करना चाहिए। यदि जरूरी ही हो तो एक अर्थशास्त्री को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

2 वेतन मण्डल के अध्यक्ष की नियुक्ति दोनो पक्षो—श्रमिक व प्रबन्धक की सहमति से होनी चाहिए। यदि सहमति नही हो तो पंच-निर्णय द्वारा नियुक्ति की जाए। एक व्यक्ति को एक समय मे दो से अधिक मण्डलो का अध्यक्ष नियुक्त नही करना चाहिए।

3. वेतन मण्डल को अपनी सिफारिशे नियुक्ति से एक वर्ष की अवधि मे देने को कहा जाना चाहिए। सिफारिशो को लागू करने की तिथि भी मण्डल द्वारा दी जानी चाहिए।

4 एक वेतन मण्डल की सिफारिशें पाँच वर्ष के लिए लागू रहनी चाहिए।

5 केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय द्वारा एक केन्द्रीय वेतन मण्डल विभाग (Central Wage Board Division) की स्थाई रूप से स्थापना करनी चाहिए जो कि सभी वेतन मण्डलों का कार्य देखता रहेगा। इसका कार्य वेतन मण्डलो को आवश्यक कर्मचारी, आँकड़े और आवश्यक सूचनाओ की पूर्ति होगा।

6 वेतन मण्डलो के कार्य विधि हेतु एक मैनुअल तैयार किया जाना चाहिए।

1. Report of the National Commission on Labour, 1969, See Chapter on 'Wages.'

(घ) मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936
(Payment of Wages Act, 1936)

उद्योगो मे काम करने वाले विशेष वर्गों के व्यक्तियों का मजदूरी के भुगतान का नियमन करने हेतु एक अधिनियम बनाया गया जिसे मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 कहा जाता है। श्रमिकों को मजदूरी समय पर नहीं देना तथा उसमे से कई कटौतियाँ आदि करना, इस अधिनियम के पूर्व प्रचलित था। इस अधिनियम द्वारा कोई भी नियोक्ता अपने श्रमिकों को निर्धारित अवधि मे बिना अनधिकृत कटौतियों के मजदूरी का भुगतान करेगा। कई प्रकार की अनधिकृत कटौतियाँ, जैसे – अनुशासनात्मक कारणों में जुर्माना, नियोक्ता को होने वाले नुकसान हेतु जुर्माना, कच्चा माल, औजार आदि हेतु कटौतियाँ, और अन्य गैर-कानूनी कटौतियाँ अनुचित थी।

शाही श्रम आयोग (Royal Comm ssion on Labour) की सिफारिशों के आधार पर मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 पास किया गया। यह अधिनियम मजदूरी का दो रूपों मे नियमन करता है—(1) मजदूरी देने की तिथि और (2) मजदूरी में से होने वाली कटौतियाँ—यह अधिनियम प्रत्येक कारखाने तथा रेलवे में उन श्रमिकों पर लागू होता है जिनकी औसत मासिक मजदूरी 1000 रु. से कम है (नवम्बर 1975 के संशोधन से पूर्व यह सीमा 400 रु से कम की थी)। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार किसी भी उद्योग अथवा संस्थान के श्रमिकों पर तीन महीने का नोटिस निकाल कर लागू कर सकती है। यह अधिनियम सन् 1948 मे कोयले की खानो पर, सन् 1951 मे समस्त खानो पर, सन् 1957 म निर्माणकारी उद्योगों पर, सन् 1962 मे तेल क्षेत्रों पर तथा सन् 1964 में नागरिक वायु परिवहन सेवाओं, मोटर परिवहन सेवाओं तथा वे संस्थान जो कारखाना अधिनियम 1948 की धारा 85 के तहत आते हैं, पर लागू कर दिया गया है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी भुगतान की अवधि एक माह रखी गई है। जिन संस्थानों तथा उद्योगों म 1000 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ मजदूरी का भुगतान भुगतान-अवधि के 10 दिन मे तथा 1000 से कम श्रमिक होने पर 7 दिन क अन्दर भुगतान करना अनिवाय है।

इस अधिनियम क अन्तर्गत निम्नलिखित कटौतियों को ही अधिकृत कटौतियाँ (Authorised Deductions) माना गया है तथा बाकी कटौतियों हेतु नियोक्ता पर न्यायालय म विवाद चलाया जा सकता है। अधिकृत कटौतियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) जुर्माने की राशि, (2) काय पर अनुपस्थित रहने पर कटौती, (3) हानि अथवा क्षति के कारण कटौती, (4) मालिक, सरकार अथवा आवास बोर्ड प्रदत्त आवास सुविधाओं व सेवाओं हेतु कटौती, (5) अग्रिम दी गई राशि हेतु कटौती, (6) आय कर या प्रोविडेन्ट फण्ड हेतु कटौती, (7) कोयले की खानो मे वर्दी व जूते हेतु कटौती, (8) राष्ट्रीय सुरक्षा कोष या सुरक्षा बचत कोष हेतु कटौती,

(9) साइकिल खरीदने, भवन-निर्माण हेतु ऋण लेने तथा श्रम-कल्याण निधि मे से ऋण लेने पर कटौती करना।

जुर्माने की राशि 3 पैसे प्रति रुपया से अधिक नही होगी। जुर्माना रजिस्टर भी मालिक को रखना होगा।

अधिनियम के अन्तर्गत दावा करने की अवधि 6 माह से बढाकर 12 माह कर दी गई है। इस अधिनियम के क्रियान्वयन का कार्य श्रम विभाग के श्रम निरीक्षकों द्वारा किया जाता है।

आलोचना

श्रम जाँच समिति (Labour Investigat on Committee) के अनुसार मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 मे कई दोष पाए जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग को पूर्ण लाभ प्राप्त नही हो पाया है तथा नियोक्ता भी इस अधिनियम के क्रियान्वयन मे अनियमितताएँ बरतते हैं। निम्नलिखित रूपों मे आलोचना की जा सकती है—

1 बड़े-बड़े उद्योगों व संस्थानो मे अधिनियम की विभिन्न धाराओ को पूर्ण रूप से लागू किया जाता है लेकिन ठेके के श्रमिकों तथा छोटे-छोटे उद्योगो व संस्थानों मे जहाँ उचित लेखे-जोखे नही रखे जाते हैं वहाँ पर इस अधिनियम का उल्लंघन किया जाता है।

2. श्रम जाँच समिति (Labour Investigation Committee) के अनुसार इस अधिनियम के लागू करने मे निम्न उल्लंघन पाए जाते हैं[1]—

(i) अनधिकृत कटौतियाँ (Unauthorised Deductions),

(ii) अधिनियम से सम्बन्धित रजिस्टर न रखना (Non-recording of Over-time Wages),

(iii) मजदूरी के भुगतान मे देरी (Delay in Payment of Wages),

(iv) बोनस तथा महँगाई भत्ते का भुगतान न करना (Non-payment of Bonus & Dearness Allowance),

(v) रजिस्टर न रखना (Non-maintenance of Registers), आदि।

3 अधिनियम के अन्तर्गत दावो को सुनने हेतु परगना अधिकारी (SDO's) को भी अधिकार प्रदान किए गए हैं। उनके पास अन्य मामले तथा प्रशासनिक कार्यों का भार अधिक होने से इस प्रकार के दावो की तुरन्त सुनवाई तथा फैसला नही हो पाता है जिससे समय पर श्रमिकों को राहत नही मिल पाती है। अतः इन विवादों को शीघ्र निपटाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

4. श्रम-निरीक्षकों की संख्या उनके क्षेत्र व कार्य को देखते हुए कम है। निरीक्षण नियमित रूप से नही हो पाते हैं। अतः श्रम-निरीक्षकों की संख्या मे वृद्धि की जानी चाहिए।

1. Labour Investigation Committee, 1946, p. 49

5 मालिकों पर जो जुर्माना किया जाता है वह करीब 50 रु. अथवा 100 रु से अधिक नहीं होता है जबकि विवाद हेतु श्रम निरीक्षक के न्यायालय मे आने-जाने मे ही हजारो रुपये यात्रा-भत्ता आदि मे व्यय हो जाते है ।

6 नियोक्ता इस अधिनियम से बचने के लिए श्रमिको को स्थायी नहीं होने देते, उन्हें बलात् छुट्टी (Forced Leave) देते है, आदि अनुचित व्यवहारो मे अधिनियम से बचते हैं । उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति (U P Labour Enquiry Committee) के अनुसार, "अधिकांश श्रम संघो द्वारा यह शिकायत है कि मजदूरी मे कमी की जाती है, विभिन्न कटौतियाँ की जाती है जिससे भविष्य मे जाकर श्रमिकों की वास्तविक आमदनी घट जाती है ।"[1]

लेकिन मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 का क्रियान्वयन अब पहले से काफी सुधरा है ।

राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) के अनुसार इस अधिनियम से श्रमिक वर्ग को काफी लाभ प्राप्त हुआ है । पहले की भाँति अब श्रमिको को देरी से मजदूरी देना तथा उसमे से अनधिकृत कटौतियाँ (Unauthorised Deductions) आदि की प्रवृत्ति कम हो गई है । श्रमिक-संघो के विकास, श्रमिको की शिक्षा, मालिको के दृष्टिकोणो मे परिवर्तन तथा सरकार का कल्याणकारी राज्य के रूप मे महत्व बढने से मजदूरी नियमित रूप से दी जाने लगी है तथा अनधिकृत कटौतियाँ भी काफी कम हुई है । फिर भी हम देखते है कि जहाँ पर श्रमिक बिखरे हुए तथा असगठित है तथा जहाँ अशिक्षित श्रमिक हैं, नियोक्ता पुरानी विचारधारा वाले हैं, श्रम निरीक्षक अकुशल व भ्रष्ट है, वहाँ पर आज भी श्रमिको का शोषण देर से मजदूरी तथा अनधिकृत कटौतियो के रूप मे होता है । यह सरकार का उत्तरदायित्व है कि क्रियान्वयन करने वाली मशीनरी को सुदृढ व ईमानदार बनाए और समय-समय पर मशीनरी द्वारा किए गए क्रियान्वयन का लेखा-जोखा ले ।

अधिनियम मे सशोधन

जैसा कि कहा जा चुका है, नवम्बर, 1975 मे एक अध्यादेश जारी करके अधिनियम उन श्रमिको पर लागू कर दिया गया जिनकी औसत मासिक मजदूरी 1000 रु से कम है । इस सशोधन से पूर्व 400 रु प्रतिमास की मजदूरी सीमा थी । श्रम मन्त्रालय की सन् 1976-77 की रिपोर्ट के अनुसार अधिनियम मे और भी अन्य सशोधन कर दिए गए हैं । रिपोर्ट मे उल्लेख है—

"सन् 1936 के मुख्य अधिनियम मे सशोधन करके अन्य बातो के साथ-साथ मजदूरी का भुगतान चैक द्वारा करने या सम्बन्धित कर्मचारियो द्वारा लिखित प्राधिकार देने पर उनकी मजदूरी उनके बैंक लेखो मे जमा करने की व्यवस्था की गई । यह आशका व्यक्त की गई कि ऐसे मामले हो सकते है जहाँ कर्मचारियो पर

1. U P Labour Enquiry Committee, p 40

यह दबाव डाला जा सकता है कि वे अपनी मजदूरी भुगतान के केवल इन वैकल्पिक तरीकों द्वारा ही स्वीकार करें। हालांकि कर्मचारियों के लिए इन तरीकों द्वारा मजदूरी लेना अनिवार्य नहीं है। केन्द्रीय सरकार ने प्रशासनिक मन्त्रालयों के माध्यम से केन्द्रीय सरकार के सभी उपक्रमों एवं सभी राज्य सरकारों को निर्देश जारी करके इस प्रकार की आशंकाओं को दूर करने और इस प्रकार की सम्भाव्य घटनाओं को रोकने के लिए तथा यह सुनिश्चित कराने के लिए तत्काल कार्यवाही की है कि संशोधित अधिनियम में परिकल्पित मजदूरी की वैकल्पिक प्रणालियों को किसी प्रकार का दबाव न डालकर केवल श्रमिकों की सलाह और सहमति से शिक्षा तथा अनुनय की प्रक्रिया द्वारा अपनाया जाता है। बैंकिंग विभाग से भी अनुनय किया गया है कि वह जहाँ तक सम्भव हो सके, यह सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे कि बैंक और/या कर्मचारियों के बैंक खातों में उनकी मजदूरी भुगतान की व्यवस्था करने वाले नए विधान को लागू करने के लिए श्रमिकों के लिए विशेषकर खनन क्षेत्रों में पर्याप्त बैंकिंग सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं।"

(ट) अन्य व्यवस्थाएँ

भारत में मजदूरी के राजकीय नियमन की कुछ अन्य व्यवस्थाओं में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

मजदूरी सेल

मार्च, 1973 में मजदूरी नीति सम्बन्धी समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसरण में, श्रम मन्त्रालय में एक मजदूरी सेल की स्थापना की गई। यह सेल अन्य कार्यों के साथ-साथ मजदूरी-निर्धारण, राष्ट्रीय मजदूरी नीति बनाने और राष्ट्रीय मजदूरी विन्यास तैयार करने का कार्य करता है। यह सेल सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों, बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों/निगमों और बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रचलित वित्तीय ढाँचे, वेतनमानों, महँगाई भत्ते तथा अन्य भत्तों, बोनस, प्रोत्साहन योजना आदि से सम्बन्धित पर्याप्त और सहज ही उपलब्ध आँकड़े एकत्र करता है।

मजदूरी सेल सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में मजदूरी पुनरीक्षण के प्रस्तावों की छानबीन भी करता है और मजदूरी, महँगाई भत्ता एवं अनिवार्य जमा योजना से सम्बन्धित मामलों पर कार्यवाही करता है।

श्रमजीवी पत्रकारों और गैर-पत्रकारों के लिए मजदूरी बोर्ड

गैर-पत्रकार समाचार-पत्र कर्मचारियों के लिए मजदूरी की अन्तरिम दरों के सम्बन्ध में समाचार-पत्र कर्मचारियों के विभिन्न संगठनों से प्राप्त मांगों पर विचार करने हेतु 11 जून, 1975 को गैर-पत्रकारों के लिए एक मजदूरी बोर्ड का गठन किया गया। श्रमजीवी-पत्रकारों के लिए तीसरे मजदूरी बोर्ड का भी गठन फरवरी, 1976 में किया गया। पत्रकार और गैर-पत्रकार कर्मचारियों की अन्तरिम राहत के सम्बन्ध में मजदूरी बोर्ड की सिफारिशें प्राप्त हो चुकी हैं और अब ये सिफारिशें सरकार के विचाराधीन हैं।

ठेका मजदूरी

ठेका मजदूरी (नियमन तथा समापन) अधिनियम 1970, जो कि फरवरी, 1971 से समूचे भारत में लागू किया गया, कुछ संस्थानों में ठेका मजदूर व्यवस्था का नियमन करता है तथा किन्हीं हालात में उसका समापन भी। मजदूरी की अदायगी न होने पर उसके लिए मुख्य मालिक को जिम्मेदार ठहराया जाता है।

श्रम ब्यूरो विभिन्न उद्योगों में ठेका मजदूरी की व्यापकता तथा उसकी प्रकृति को निश्चित करने के लिए विशेष अध्ययन कर रहा है। ऐसे अध्ययन अब तक लगभग 24 उद्योगों के बारे में किए जा चुके हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत सन् 1974 के अन्त तक 3,997 प्रमुख मालिकों और उनके 5,21,300 ठेका मजदूरों का पंजीयन सरकारी कार्यालयों में किया जा चुका था।

बन्धुआ मजदूरी

देश में बन्धुआ मजदूरी प्रथा को एक कानून के द्वारा, जिसे बन्धुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन अधिनियम, 1976 कहा जाता है) समाप्त कर दिया गया है जिससे समाज के कमजोर वर्गों को आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्ति दिलाई जा सके। इस अधिनियम के अन्तर्गत (जो पूरे देश में लागू हो चुका है) बन्धुआ मजदूरी प्रथा का उन्मूलन हो गया है और प्रत्येक बन्धुआ मजदूर बन्धुआ मजदूरी के किसी भी दायित्व से मुक्त घोषित कर दिया गया है। फलस्वरूप ऋण आदि के भुगतान से सम्बन्धित बन्धुआ मजदूरी के जितने भी अनुबन्ध होंगे उन्हें अवैध करार दे दिया गया। यहाँ तक कि न्यायालय में फैसला होने से पहले या बाद में असैनिक कारावासों में रखे गए बन्धुआ मजदूरों को भी मुक्त घोषित कर दिया गया। किसी भी व्यक्ति को जिसे इस अधिनियम के अन्तर्गत बन्धुआ मजदूरी की जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया गया है, उस मकान में से या अन्य आवास योग्य क्षेत्र से (जिसमें वह इस अधिनियम के पास होने के समय तक रह रहा है और जिसे उसने बन्धुआ मजदूरी के आंशिक पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त किया है) बाहर नहीं निकाला जा सकता। सरकार अनेक विधियों और नियमों के माध्यम से मुक्त हुए बन्धुआ मजदूरों को आर्थिक और सामाजिक रूप से फिर से बसाने का प्रयास कर रही है।

पुरुष और महिला श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक

राष्ट्रपति द्वारा सितम्बर 1975 में जारी किए गए समान पारिश्रमिक अध्यादेश का स्थान 11 फरवरी, 1976 को संसद् के अधिनियम ने ले लिया। इस अधिनियम में समान कार्य या एक ही किस्म के कार्य के लिए पुरुष और महिला श्रमिकों को समान पारिश्रमिक के भुगतान और भर्ती के मामले में महिलाओं के साथ भेदभाव को रोकने की व्यवस्था है। अधिनियम के अन्य महत्त्वपूर्ण उपबन्ध निम्नलिखित के बारे में हैं। महिलाओं के रोजगार अवसरों में वृद्धि करने हेतु सलाहकार समितियों का गठन करना, शिकायतों को सुनने के लिए प्राधिकारियों, अपील प्राधिकारियों, निरीक्षकों आदि की नियुक्ति आदि।

मेघालय सरकार ने अस्पतालों, उपचर्या-गृहो और औषधालयो तथा शैक्षिक, अध्यापन, प्रशिक्षण एव अनुसधान सस्थाओ मे रोजगार के सम्बन्ध मे सलाहकार समिति की स्थापना की है, जबकि मध्य प्रदेश सरकार ने चाय बागानों, अस्पतालो उपचर्या-गृहो और औषधालयो तथा शैक्षिक, अध्यापन, प्रशिक्षण और अनुसधान सस्थाओ मे रोजगार के बारे मे एक समिति का गठन किया है। पजाब सरकार ने एक सामान्य सलाहकार समिति की स्थापना की है, विभिन्न रोजगारो के लिए भिन्न-भिन्न समितियो के गठन का प्रश्न भी विचाराधीन है। बिहार सरकार ने केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित सभी रोजगारो के लिए एक राज्य-स्तरीय सलाहकार समिति का गठन किया है। अन्य राज्य सरकारे, प्रशासन ऐसी सलाहकार समितियाँ गठित करने के प्रश्न पर विचार कर रहे है।

उक्त अध्यादेश/अधिनियम अभी तक निम्नलिखित रोजगारो मे लागू किया गया है[1] —

रोजगार	प्रवर्तन की तारीख
(1) बागान (श्रम अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत आने वाले)	15-10-1975
(2) स्थानीय प्राधिकरण	1-1-1976
(3) केन्द्रीय और राज्य सरकारें	12-1-1976
(4) अस्पताल, उपचर्या-गृह और औषधालय	27-1-1976
(5) बैंक बीमा कम्पनियाँ तथा अन्य वित्तीय सस्थाएँ	8-3-1976
(6) शैक्षिक, अध्यापन, प्रशिक्षण और अनुसधान सस्थाएँ	5-4-1976
(7) खानें	4-5-1976
(8) कर्मचारी भविष्य निधि सगठन, कोयला खान भविष्य निधि सगठन और कर्मचारी राज्य बीमा निगम	1-5-1976
(9) भारतीय खाद्य निगम, केन्द्रीय भंडागार निगम और राज्य भंडागार निगम	1-7-1976
(10) कपड़ा और कपड़े से बनी वस्तुओं का निर्माण	15-7-1976
(11) बागानों मे स्थित कारखाने	27-8-1976
(12) विद्युत और इलेक्ट्रोनिक मशीनरी उपकरण एव उपस्कर	27-8-1976
(13) रसायन और रसायनिक पदार्थ (पेट्रोलियम और कोयले के पदार्थों को छोड कर) का निर्माण	5-10-1976
(14) भू और जल परिवहन	5-10-1976
(15) खाद्य उत्पादो का निर्माण	10-2-1977

1. वार्षिक रिपोर्ट, 1976-77.

इस अधिनियम के उपबन्धों को आर्थिक कार्यकलापों के अन्य सभी क्षेत्रों में क्रमिक रूप से लागू किया जाएगा।

समान पारिश्रमिक अधिनियम के अधीन नियम भी बनाए गए हैं और ये नियम 11 मार्च, 1976 को प्रकाशित किए गए।

बागान उद्योग ने समान पारिश्रमिक अधिनियम के कार्यान्वयन में कठिनाइयाँ अनुभव की क्योंकि 'समान कार्य या एक ही किस्म का कार्य' शब्दावली के सही अर्थ के सम्बन्ध में शंकाएँ थी। इस मामले पर विधि मन्त्रालय से परामर्श करके जाँच की गई और राज्य सरकारों को स्पष्टीकरण जारी करके यह बताया कि यह निर्धारित करने के लिए कि कार्य समान है या नहीं मापदण्ड कार्य का स्वरूप होना चाहिए और न कि किए गए कार्य की मात्रा। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों को स्पष्टीकरण जारी किया गया। इसलिए इस बात का निर्धारण करने के लिए कार्य समान है या उसी प्रकार का है, पुरुष और महिला श्रमिकों द्वारा किए गए कार्य की मात्रा संगत नहीं है। यह स्पष्ट किया गया कि जहाँ कहीं भी टॉस्क कार्य हो रहा है वहाँ यह व्याख्या लागू होगी।

अनुव्यावसायिक मजदूरी सर्वेक्षण

इस योजना के अन्तर्गत निर्माण, खनन तथा बागवानी से सम्बन्धित मुख्य उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों के बारे में अनुव्यावसायिक मजदूरी दरें तथा आय सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठे करने के लिए सर्वेक्षण किए जाते हैं। इसके अलावा समयोपरि कार्य तथा प्रोत्साहन लाभांश योजनाओं के बारे में भी सर्वेक्षण किए जाते हैं। सन् 1958-59 में पहला सर्वेक्षण हुआ। उसका सामान्य प्रतिवेदन सन् 1963 में प्रकाशित हुआ। दूसरा सर्वेक्षण सन् 1963-65 में किया गया जिसके मुख्य निष्कर्षों से युक्त संक्षिप्त रिपोर्ट सन् 1971 में जारी की गई। सर्वेक्षण की सामान्य रिपोर्ट की अभी छपाई हो रही है। पहले दो सर्वेक्षणों में एकत्रित आँकड़ों की उपयोगिता को देखते हुए श्रम सम्बन्धी तीसरा सर्वेक्षण 1 अप्रैल, 1973 को शुरू हुआ जो निर्माण खानों और बागान क्षेत्रों में लगभग 81 उद्योगों में किया गया। मार्च 1976 के अनुसार इस सर्वेक्षण का प्रथम चरण 14 फैक्ट्रियों में पूरा हो चुका है।

भारत में बाल-श्रम एक गम्भीर समस्या[1]

भोपाल शहर में किए गए ताजा सर्वेक्षण (1977) के अनुसार इस शहर में 5000 से ज्यादा बच्चे होटलों, बीड़ी बनाने के कारखानों, लुहारी-चर्मकारी, मिट्टी के बर्तनों की दुकानों, साइकिलों, ढाबों और घरों पर जानवर से भी बदतर जिन्दगी गुजार रहे हैं। बाल-मजदूरों की स्थिति पर किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 1971 में भारत में कुल बाल मजदूर 2 करोड़ थे।

1. दिनमान, अक्टूबर 1977

भारत में बाल-मजदूर : कितने कहां हैं ?
(1971 की जनगणना के आधार पर)

राज्य/केन्द्र शासित	कुल बाल-मजदूर (हजारों में)	कुल जनसंख्या में बाल-मजदूरों का प्रतिशत	कुल बच्चों में बाल-मजदूरों का प्रतिशत
1	2	3	4
आन्ध्र प्रदेश	1627	3·74	9·23
असम	239	1·60	3·40
बिहार	1059	1·88	4·41
गुजरात	518	1·94	4·50
हरियाणा	138	1·37	2·95
हिमाचल प्रदेश	71	2·05	4·97
जम्मू-कश्मीर	70	1·52	3·53
कर्नाटक	809	2·76	6·50
केरल	112	0·52	1·30
मध्य प्रदेश	1112	2·67	6·10
महाराष्ट्र	988	1·96	4·74
मणिपुर	16	1·94	3·50
मेघालय	30	1·96	6·80
नागालैंड	14	2·71	7·14
उड़ीसा	492	2·24	5.29
पंजाब	233	1·72	4·16
राजस्थान	587	2·28	4·01
तमिलनाडु	713	1·73	4·58
त्रिपुरा	17	1·09	2·47
उत्तर प्रदेश	1327	1·50	3·58
पश्चिम बंगाल	511	1·15	2·68
अंडमान निकोबार द्वीप समूह	1	0·87	2·27
अरुणाचलप्रदेश	18	3·85	10·05
चण्डीगढ़	1	0·39	1·12
दादरा और नगर हवेली	3	4·05	11·76
दिल्ली	17	0·42	1·08
गोवा, दमन और दीव	7	0·82	2·17
लक्षद्वीप	—	—	—
पांडिचेरी	4	0·85	2·15
भारत में	10738	1·96	4·66

एक सर्वेक्षण के अनुसार अधिकांश बाल-मजदूर उम्र में कम होते हैं लेकिन उनकी उम्र बढ़ा-चढ़ा कर लिखी जाती है ताकि कोई सरकारी एतराज नहीं हो।

होटलों में काम करने वाले बच्चों की हालत सबसे दयनीय है। इन बच्चों को वेतन के नाम पर नाममात्र की रकम दी जाती है। नौकरी छूट जाने पर वेतन

से पैसा कट जाता है। बच्चों का सूर्योदय से पूर्व ही होटल पहुँच जाना होता है। मालिक उन्हें रात की बची खाद्य सामग्री नाश्ते के रूप में देता है। दोपहर को भोजन के नाम पर एक घण्टे की छुट्टी मिलती है तथा उसके बाद रात को 12 बजे तक या होटल बन्द होने तक उन्हें काम करना पड़ता है।

देश के कुल बाल-मजदूरों का 93 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में और 78 प्रतिशत बाल-मजदूर कृषि से सम्बन्धित हैं। लेकिन शहरी सभ्यता और शहरी आकर्षणों ने बाल मजदूरों को भी तेजी से अपनी ओर आकर्षित किया है। अधिकांश बच्चे लम्बे समय तक मीलन के नाम पर मुफ्त में काम करते हैं। इन्हें वेतन, छुट्टी आदि की कोई सुविधा नहीं दी जाती है। प्लेटफार्म, बस स्टैण्ड पर छोटे छोटे बच्चों को तेजी से कार्य करता हुआ देखा जा सकता है। कुछ जेब काटना सीख रहे हैं, कुछ सामान ढो रहे हैं और कुछ भीख भी माँग रहे हैं। ये बच्चे किसी न किसी दादा या वयस्क व्यक्ति के इशारे पर यह सारा कार्य करते हैं। अपनी कमाई का अधिकांश हिस्सा वे लोग इन दादाओं को दे देते हैं और बचे हुए में अपना पेट भरण करते हैं।

मजदूरों की व्यथा एक सी है। चन्दा की उम्र 9-10 वर्ष है। पढ़ाई बचपन में छूट गई। माँ बीमार है। बाप बड़ी श्रम करता है। घर में तंगी है। पढ़ाई छोड़ने के बाद घर-घर जाकर बर्तन साफ करती है। महीने में कुल 90 या 100 रु हो जाते हैं, कोई-कोई कभी कपड़ा भी दे देते हैं और जीवन चल रहा है। बस स्टैण्ड पर जूते चमकाते रामू से पूछा गया कि जीवन में क्या बनेगा तो कहता है 'साब अपना तो क्या बने पर अपना लड़का बूट पालिश नहीं करे। यही कामना है।" करीम एक सिलाई की दुकान पर बैठता है। आजकल काम सीख रहा है। इस कारण उसे नकद कुछ भी नहीं दिया जाता है। काज, बटन सीखने के बाद तुरपाई सीख लेगा तो कुछ मिलने लग जाएगा। अख्तर एक मोटर गैरेज में व रहीम एक वर्कशाप में काम करते हैं, उम्र 14 वर्ष होगी, मैले ग्राइल से सने कपड़े और उस्ताद की शागिर्दी यही उनका जीवन है। दस्तखत करना भी नहीं सीख पाए थे कि काम में लगना पड़ा। गरम हवाओं ने सब कुछ सिखा दिया है।

इस समस्या का संवैधानिक व मानवीय आधार क्या? भारतीय संविधान अनुच्छेद 24 (भाग 3) के अनुसार 14 साल से छोटा बच्चा किसी भी कारखाने या अन्य खतरनाक जगहों पर नौकरी नहीं कर सकता है, लेकिन भारतीय आर्थिक आवश्यकताओं ने इन नियमों को नहीं चलने दिया है।

देश के लगभग 50 प्रतिशत परिवार गरीबी और मुफलिसी में जी रहे हैं। ऐसी स्थिति में घर परिवार के हर सदस्य का कमाना जरूरी है। अतः बच्चा घर का आर्थिक आधार बन गया है। बच्चा अत्यन्त छुटपन में ही माँ-बाप के कामों में मदद देने लग जाता है और धीरे-धीरे स्वतन्त्र रूप से काम शुरू करके घर की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करता है। अतः इस वर्ग के बच्चे या तो पढ़ाई नहीं तो फिर जल्दी स्कूल छोड़कर नौकरी या मजदूरी शुरू कर देते हैं।

गाँव के बच्चे अधिक पैसा तथा शहर की रंगीनियो मे बँधे शहर आ जाते है और मध्यमवर्गीय परिवारो मे नौकर बन जाते है। ये मध्यमवर्गीय परिवार उन बच्चो का जमकर शोषण करते हैं। केवल बासी खाने और उतारे हुए कपडो मे इन परिवारो मे 24 घण्टो के लिए नौकर मिल जाते हैं। इधर बच्चे के परिवार वालो को सन्तोष होता है कि लडका शहर मे है। देर सवेर कमा कर देगा। दूसरी ओर लडके के परिवार मे उसका खर्च खत्म हो जाता है। इस कारण बाल-मजदूरो की सख्या तेजी से बढती ही चली जा रही है।

बाल-मजदूरो और इनमे सम्बन्धित समस्याओ के मानवीय पहलू भी है। इस समस्या का हल सामाजिक परिवर्तन से प्राप्त किया जा सकता है। गरीबी अधिक है कि बच्चो को पढाया नही जा सकता, बच्चो को पैदा करना गरीब परिवारो मे 'फ्यूचर इनवेस्टमेण्ट' है। यदि बच्चो को ये छोटे-छोटे काम नही करने दिए जाएँ तो बच्चे आपस मे लडेंगे झगडेगे अपराधी बनेंगे। जरूरत इस बात की है कि बच्चो के लिए भोजन और शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो, बच्चो को स्वावलम्बी बनाया जाए। इनके कार्य करने के अलावा बचे समय मे उन्हे पढाया जाए। प्रौढ शिक्षा केन्द्रो की तरह इन कार्यों के लिए भी केन्द्र खोले जाएँ ताकि बच्चे अपनी स्थिति समझे और तदुपरान्त जीवन मे अग्रसर हो।

देश मे सरकारी व गैर-सरकारी दोनो ही स्तरो पर इन बचपन-विहीन बच्चो के लिए बहुत काम किया है। यत्र तत्र दो-चार सस्थाओ के अलावा कही भी इस ओर कार्य नही किया गया है क्योकि अधिकाश सस्थाएँ तो इस ओर ध्यान नही दे पाती है।

समाजकल्याण विभागो व राज्य सरकारो व अन्य स्वयसेवी सस्थाओ को देश की इस भावी पीढी के बारे मे सोचना चाहिए ताकि देश के कर्णधार सही राह पर रहे। अच्छा हो यदि बिन्दुओ को ध्यान मे रखकर योजनाबद्ध कार्य किया जाए।

15 वर्ष से कम उम्र के बच्चो का शोषण अविलम्ब रोका जाए। 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चो की शिक्षा और भोजन की सम्पूर्ण व्यवस्था सरकार करे। बडे शहरो के लिए होने वाले बालको के अपहरणो को रोकने के लिए व्यावहारिक उपाय किए जाएँ। बच्चो के मानसिक विकास के लिए उचित कार्य-प्रणाली विकसित की जाए। बाल मजदूरो की यूनियने बनाई जाएँ और इसे सरकारी सरक्षण दिया जाए। बाल-मजदूरो का न्यूनतम वेतन बडे मजदूरो के बराबर हो। उन्हे अवकाश आदि सुविधाएँ मिले, घरेलू नौकरो को समुचित सुविधाएँ दिलवाई जाएँ। श्रम-शक्ति का दुरुपयोग व शोषण रोका जाए। बाल-मजदूरो के लिए विशेष शिक्षण की व्यवस्था स्कूलो मे रात्रि मे की जाए।

इंगलैण्ड में मजदूरी का नियमन
(Regulation of Wages in U. K.)

यद्यपि इंग्लैण्ड मे रोजगार की दशाएँ तथा शर्तें बिना सरकारी हस्तक्षेप के ऐच्छिक पच फैसले मे सामूहिक सौदाकारी द्वारा तय की जाती है, फिर भी सरकार

ने कुछ व्यवसायो अथवा उद्योगो म मजदूरी, छुट्टियाँ आदि का कानूनी नियमन किया है जहाँ कि श्रमिक अथवा नियोजक असगठित हैं। इस प्रकार के कानूनी नियमन के अन्तर्गत लगभग 3½ मिलियन श्रमिक आते हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भ मे विभिन्न वेतन मण्डल (Wage Boards) विद्यमान थे। मजदूरी परिषद् अधिनियम, 1945 (Wages Councils Act of 1945) ने इन विद्यमान व्यापार मण्डलो (Trade Boards) को समाप्त करके वेतन परिषदो (Wages Councils) की स्थापना की। इन वेतन परिषदो को काफी व्यापक अधिकार प्रदान किए गए। इन परिषदो द्वारा साप्ताहिक गारण्टीयुक्त मजदूरी तथा वेतन सहित छुट्टियाँ देने का अधिकार है।

जिन मुख्य अधिनियमो द्वारा मजदूरी और कार्य के घण्टो का कानूनन नियमन किया जाता है, उनमे हैं—मजदूरी परिषद् अधिनियम, 1945 से 1948 (Wages Councils Acts, 1945 to 1948), केटरिंग मजदूरी अधिनियम, 1943 (Catering Wages Act, 1943), कृषि मजदूरी अधिनियम, 1948 (Agricultural Wages Act of 1948) और कृषि मजदूरी (स्कॉटलैण्ड) अधिनियम, 1949 (Agricultural Scotland Act, 1949)।

व्यापार मजदूरी अधिनियम 1909 और 1918 (Trade Boards Acts, 1909 & 1918) के अन्तर्गत व्यापार मण्डल (Trade Boards) स्थापित किए गए थे। मजदूरी परिषद् अधिनियम, 1945 (Wages Councils Act of 1945) के अन्तर्गत इन व्यापार मण्डलो को समाप्त करके मजदूरी परिषदो (Wages Councils) की स्थापना की गई। इन मजदूरी परिषदो म श्रमिको व मालिको के समान सख्या मे प्रतिनिधि होते हैं तथा साथ ही तीन स्वतन्त्र व्यक्ति, जिनमे से एक अध्यक्ष, होते हैं। इन मजदूरी परिषदो को व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये परिषदें सम्बन्धित उद्योग मे कानूनन न्यूनतम पारिश्रमिक (Statutory Minimum Remuneration) और छुट्टियाँ जो दी जाती हैं, के सम्बन्ध मे निर्धारण हेतु अपने प्रस्ताव श्रम एव राष्ट्रीय सेवा मन्त्री (Minister of Labour & National Service) को देती हैं। मन्त्री को यह अधिकार प्राप्त है कि मजदूरी परिषद् द्वारा प्राप्त प्रस्तावो को आदेश देकर कानूनी रूप दे सकता है और मजदूरी का नियमन कानून के अन्तर्गत आ जाता है। इन आदेशो की पालना हेतु मजदूरी निरीक्षको (Wages Inspectors) की नियुक्ति मन्त्रालय के अन्तर्गत की जाती है।

इसी तरह की मजदूरी निर्धारण की व्यवस्था कृषि एव भोजनालयो मे की गई है। किसी भी सस्थान अथवा उद्योग मे मजदूरी परिषद् की स्थापना करने के पूर्व श्रम मन्त्री यह जाँच करता है कि इस प्रकार के लाभ श्रमिको व मालिको के बीच समझौते से प्राप्त हो सकते हैं अथवा नही। यदि ये लाभ दोनो पक्षो के सगठनो के समझौते के आधार पर प्राप्त नही होते हैं तो श्रम मन्त्री मजदूरी परिषदो की स्थापना कर देता है। श्रम मन्त्रालय इस प्रकार की जाँच एक स्वतन्त्र आयोग द्वारा करवाता है जिसमे स्वतन्त्र व्यक्ति तथा जिस उद्योग अथवा सस्थान हेतु मजदूरी परिषदो की स्थापना करनी है, उनको छोड़कर अन्य उद्योगो के श्रमिक व नियोक्ता सगठनो के प्रतिनिधियो को शामिल किया जाता है।

इगलैण्ड की 1961 के औद्योगिक सम्बन्धों पर प्रकाशित एक हस्त-पुस्तिका (Hand Book) में अनुसार बहुत से श्रमिक जिनकी संख्या 3·4 मिलियन है, इन मजदूरी परिषदों के अन्तर्गत आते हैं। ये मजदूरी परिषदें एक समझौता करवाने का कार्य करती हैं जिसमें स्वतन्त्र सदस्य सममौतावादी (Conciliators) के रूप में काम करते हैं। सबसे पहले सभी श्रमिक व मालिकों के प्रतिनिधि समझौता करने का प्रयास करते हैं। स्वतन्त्र व्यक्ति इन परिषदों में मत नहीं देते। फिर भी समझौता बहुमत से प्राप्त किया जाता है।

अमेरिका में मजदूरी का नियमन
(Regulation of Wages in U. S. A.)

अमेरिका में श्रमिकों की सुरक्षा हेतु समय-समय पर श्रम-विधान बनाए गए हैं क्योंकि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति नियोक्ताओं की तुलना में असमान है। नियोक्ता-श्रमिक सम्बन्धों में सबसे बड़ी असमानता हमें सरविल श्रम (*Servile Labour*) के विवाद में देखने को मिलती है। रोजगार का युग 1863 में दासता की समाप्ति से समाप्त हो गया। इससे कोई भी व्यक्ति अपने कर्ज के कारण जबरदस्ती कार्य के लिए नहीं रखा जा सकता। सब प्रकार के श्रम में मालिक और नौकर (Master & Servant) वाला सम्बन्ध समाप्त हो गया। अब श्रम में पैतृकवाद (Paternalism) पाया जाता है और विशेषकर घरेलू और कृषि श्रमिकों के रूप में देखने को मिलता है। अमेरिका में मजदूरी आज सबसे महत्वपूर्ण सुरक्षित दायित्व माना जाता है। सन् 1849 से श्रमिकों की मजदूरी पर कुर्की लगाकर ऋण में जमा करने की प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया गया।

ऐच्छिक रूप से श्रमिक द्वारा अपनी मजदूरी को ऋणदाता को देने के लिए भी कई कार्यवाहियाँ करनी पड़ती हैं, जैसे लिखित में हो, पति अथवा पत्नी से स्वीकृति ली जाए और समझौते की एक प्रति भी हो। श्रमिक के घर की जगह तथा औजार ऋणदाता द्वारा जब्त नहीं किए जा सकते। श्रमिकों द्वारा नियोक्ता की सम्पत्ति अथवा उसके ग्राहक की सम्पत्ति से मजदूरी प्राप्त की जा सकती है। निर्माण-कार्य में लगे श्रमिकों को मजदूरी न मिलने पर वे नियोक्ता की सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर सकते हैं।

मजदूरी से सम्बन्धित कानून न केवल अमेरिका में संघीय स्तर पर ही हैं बल्कि अमेरिका के सभी राज्यों में विद्यमान हैं। नियोक्ता के दिवालिया होने पर सबसे पहले सम्पत्ति में से मजदूरी चुकाई जाएगी। सामान्य रूप से नियोक्ताओं ने श्रमिकों की मजदूरी पर अधिक ध्यान दिया है और विधान-सभाओं में भी समस्या, स्थान और मजदूरी भुगतान के तरीके आदि के नियमन में अधिक रुचि ली है। कुछ राज्यों में मजदूरी का भुगतान कार्यकाल में ही करने पर जोर दिया जाता है।

न्यूनतम मजदूरी, अधिकतम कार्य के घण्टे और बाल श्रमिक
(*Minimum Wages, Maximum Hours and Child Labour*)

अमेरिका के श्रमिकों की मजदूरी कब, कहाँ और कैसे दी जाए इस तक ही

श्रम कानून सीमित नही रहे बल्कि इस बात को भी कानूनो मे सम्मिलित किया गया कि कितनी मजदूरी कितने समय के लिए और किस प्रकार के श्रमिक को दी जाए। कुछ कार्यों मे बाल श्रमिको व स्त्री श्रमिको को लगाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। अमरिका म न्यूनतम मजदूरी, कार्य के घण्टे तथा बाल श्रमिको की समाप्ति आदि पर विभिन्न प्रान्तो तथा म्यूनिसिपल सस्थाओ द्वारा अध्यादेश जारी किए गए हैं। प्रमुख सघीय विधान उचित श्रम प्रमाप अधिनियम, 1938 (Federal Fair Labour Standards Act, 1938) है जिसे हम मजदूरी और कार्य के घण्टे का कानून (Wage of Hours Law) भी कह सकते हैं। इसकी वाल्स हीले सार्वजनिक प्रसविदा अधिनियम, 1936 (Walsh H aley Public Contracts Act,1936) द्वारा सहायता की जाती है। इसके अन्तर्गत सरकार को मजदूरी, कार्य के घण्टे और कार्य की दशाओ का नियमन करने का अधिकार प्राप्त है। यह सरकारी ठेके के 10 हजार डालर या अधिक होने पर लागू होता है। बेकन डेविस मजदूरी कानून, 1931 (Bacon Davis Wage Law, 1931) के अन्तर्गत 2 हजार डालर से अधिक के ठेके निर्माण अथवा सार्वजनिक इमारतो की मरम्मत आदि आते हैं। कठोर कार्य वाले उद्योगो मे स्त्री श्रमिको हेतु 8 घण्टे प्रतिदिन व 48 घण्टे प्रति सप्ताह अधिकतम सीमा रखी गई है और कुछ आयु से नीचे वाले बच्चो हेतु अनिवार्य स्कूल जाना कर दिया है।

उचित श्रम प्रमाप अधिनियम, 1938 मे निम्नलिखित प्रावधान रखे गए[1]—

1 कुछ अपवादो को छोडकर इसमे अन्तर्राज्य व्यापार मे लगे सभी श्रमिको को शामिल किया गया है।

2 अधिनियम का मूल उद्देश्य 40 सेन्ट प्रति घण्टा की न्यूनतम मजदूरी को निम्न प्रकार से सभी जगह लागू करना था—

(i) प्रथम वर्ष (1939) मे प्रति घण्टा 25 सेन्ट कानूनन न्यूनतम मजदूरी करना।

(ii) अगले पाँच वर्षों मे (1945) प्रति घण्टा 30 सेन्ट कानूनन न्यूनतम मजदूरी करना।

(iii) इसके पश्चात् प्रति घण्टा 40 सेन्ट कानूनन न्यूनतम मजदूरी करना।

न्यूनतम मजदूरी मे इसके बाद सशोधन किया गया। सन् 1949 मे 75 सेन्ट, 1955 मे 1 डालर, 1961 मे 1 15 डालर, 1963 मे 1 25 डालर और सन् 1967 मे 1 75 डालर प्रति घण्टा न्यूनतम मजदूरी कर दी गई है।

3 इस अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी दरो पर अधिकतम कार्य के घण्टे 40 प्रति सप्ताह धीरे-धीरे प्राप्त किया जाए।—

(i) प्रथम वर्ष 1939 मे अधिकतम कार्य के घण्टे 44

(ii) दूसरे वर्ष 1940 में अधिकतम कार्य के घण्टे 42

1 *Phelps Orme W* : Introduction to Labour Economics, p 452.

(iii) इसके पश्चात् अधिकतम कार्य के घण्टे 40

(iv) कार्य के इन घण्टो से अधिक कार्य करने पर नियमित दर से 1½ गुनी मजदूरी देनी होगी।

4 इस अधिनियम के अन्तर्गत 16 वर्ष से कम उम्र वाले बाल श्रमिक से कार्य लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा कठोर कार्य वाले उद्योगो मे यह उम्र 18 वर्ष से कम न हो।

अमेरिका मे सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत प्रभावी मजदूरी दर वैधानिक न्यूनतम मजदूरी (*Statutory Minimum Wage*) से अधिक है। कहीं-कहीं यह न्यूनतम मजदूरी से दुगुनी है और इसमे निर्वाह लागत भी शामिल है। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत शनिवार या रविवार को कार्य करने पर न्यूनतम मजदूरी दर की दुगुनी दर दिलाई जाती है। इसके साथ ही मजदूरी सहित दो सप्ताह की वर्ष मे छुट्टी दी जाती है।

सामूहिक सौदाकारी विशेष रूप से बहुमत नियम के सिद्धान्त के अन्तर्गत श्रमिक संघो द्वारा उनके प्रतिनिधियो को मजदूरी कार्य की दशाओ और सौदाकारी इकाई मे व्यक्तिगत श्रमिक की शिकायत पर व्यापक अधिकार दिए गए है।

अमेरिका मे काफी समय तक विचारधारा यह नही रही कि मजदूरी और कार्य के घण्टो का नियमन करना अच्छा है बल्कि प्रश्न यह रहा कि न्यायाधीश इन पर स्वीकृति दें अथवा नही। काफी समय तक प्रान्तीय व संघीय सरकार के न्यायालयो मे इस प्रकार के कार्यों को असंवैधानिक घोषित किया गया।

अब संविधानिक विधान के अन्तर्गत मजदूरी, कार्य के घण्टे, स्त्री श्रमिक व बाल श्रमिक के कार्य क्षेत्र आदि पर विधानसभा और संसद् द्वारा नियमन किया जा सकता है और इसमे न्यायालय अब हस्तक्षेप नही करते। सन् 1936 से कोई भी महत्त्वपूर्ण संघीय मजदूरी नियमन कानून असंविधानिक घोषित नही किया गया है।

एक संघीय प्रकार की सरकार मे यह समस्या रहती है कि मजदूरी-नियमन का क्षेत्र कौन-सा होगा? यदि रोजगार स्थानीय है तो इसके लिए राज्य सरकार उत्तरदायी है। राष्ट्रीय सरकार सर्वोच्च होती है। जहाँ अनिश्चितता होती है वहाँ न्यायालय निश्चय करता है और नियमन के कार्यक्रमो के महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए है। उदाहरणार्थ प्रथम संघीय श्रम कानून असंविधानिक घोषित कर दिया गया। इसका आधार यह था कि स्थानीय कारखानो मे कार्य करने वाले बाल श्रमिक स्थानीय विषय है जो कि राज्य सरकार का क्षेत्र है (हेमर बनाम डोंगेहार्ट केस मे—in **Hammer V/s Dangehart, U. S 251, 1918**)।

परिस्थितियो और परिवर्तनो के कारण अन्तर्राज्यीय व्यापार का विस्तार हुआ। सन् 1937 मे सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय श्रम-सम्बन्ध मण्डल बनाम जोनस और लोफलिन स्टील कारपोरेशन (**National Labour Relations Board V/s Jones & Laughlin Steel Corporation**) विवाद मे यह निर्णय दिया कि

निर्माणकारी अन्तर्राज्यीय व्यापार के अन्तर्गत आता है। यह निर्णय गत 150 वर्षों के दिए गए निर्णयों से बिल्कुल विपरीत हुआ।

उचित श्रम प्रमाप अधिनियम और वाल्स हीले सार्वजनिक प्रसंविदा अधिनियम का क्रियान्वयन प्रशासकों के हाथ में है। ये प्रशासक अमेरिकी श्रम विभाग के मजदूरी और कार्य के घण्टे और सार्वजनिक प्रसंविदा मण्डलों के विभागाध्यक्ष हैं। इनका कार्य अधिनियम की व्याख्या करना निरीक्षण और अनुपालना तथा संशोधन आदि के लिए समद् को नीति सम्बन्धी सिफारिशें करना है। ये अधिनियम 24 मिलियन श्रमिकों पर लागू होते हैं। इनके द्वारा न्यूनतम मजदूरी, अधिकतम कार्य के घण्टे और बाल श्रमिकों पर रोक आदि का क्रियान्वयन किया जाता है।

मजदूरी, कार्य के घण्टे और सार्वजनिक प्रसंविदा मण्डलों की रिपोर्ट, 1959 (Report of the Wage of Hour of Public Contracts Divisions) से यह ज्ञात हुआ कि कई व्यक्ति छोटे बच्चों से कार्य लेने को गैर-कानूनी नहीं समझते थे। सन् 1959 में 10,242 छोटे बच्चों को असंवैधानिक रूप से रोजगार में लगा रखा था।

मानवीय दृष्टिकोण से न्यूनतम मजदूरी, अधिकतम घण्टे और बाल श्रम के नियमन से अमेरिका में बहुत से कम मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिकों को बहुत सहायता मिली है। बहुत से नियोक्ताओं ने अधिनियमों की अनुपालना शुरू कर दी तथा निरीक्षण और क्रियान्वयन के द्वारा बहुत से नियोक्ताओं को इसके अन्तर्गत लाया गया है। इससे बहुत श्रमिकों की मजदूरी में कई सौ मिलियन डालर की वृद्धि हुई है। यह पूर्ण रोजगार और उच्च जीवन स्तर के समय हुआ।

मजदूरी और रोजगार की शर्तों को निर्धारित करने का तरीका घटते उत्पादन व गिरती मजदूरी के रूप में व्ययपूर्ण रहा है। सन् 1959 में इस्पात हड़ताल (Steel Strike) के कारण श्रम विवादों को अनिवार्य रूप से निबटाने हेतु कई प्रस्ताव रखे गए।

भारत में औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी
(Wages of Industrial Workers in India)

श्रमिक तथा उसके परिवार के सदस्यों का जीवन स्तर मजदूरी पर निर्भर करता है। श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी में मूल मजदूरी, महँगाई भत्ता तथा अन्य भत्ते सम्मिलित किए जाते हैं। मजदूरी वह धुरी है जिसके चारों ओर श्रम समस्याएँ चक्कर काटती हैं। अधिकांश श्रम-समस्याओं का मूल कारण मजदूरी है। मजदूरी श्रमिक के जीवन-स्तर, कार्यकुशलता व उत्पादन को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कीमत स्तर में परिवर्तन होने के कारण निर्वाह लागत में भी वृद्धि हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप मजदूरी में भी वृद्धि करनी पड़ती है। शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने श्रम सांख्यिकी (Labour Statistics) में सुधार हेतु सिफारिश की थी, लेकिन खानों व बागान श्रमिकों को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। फिर भी श्रम

संस्थान (Labour Bureau) द्वारा समय-समय पर रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों मे सर्वेक्षण किए जाते हैं और इनका प्रकाशन (Indian Labour Journal) मे किया जाता है।

सर्वप्रथम मजदूरी से सम्बन्धित आँकडो का संग्रहण श्रम जाँच समिति, 1944 (Labour Investigation Committee, 1944) द्वारा किया गया। औद्योगिक साँख्यिकी अधिनियम पास होने के बाद मजदूरी गणना (Wage Census) की जाती है और इनके द्वारा श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी, प्रेरणात्मक भुगतान आदि के सम्बन्ध मे सूचना एकत्रित की जाती है।

भारत में मजदूरी की समस्या का महत्त्व
(Importance of Wage-Problem in India)

भारतीय श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी व रूढ़िवादी हैं। वे अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को भली-भाँति समझने मे असमर्थ हैं। उनकी सामूहिक सौदाकारी नियोक्ताओं की तुलना मे कमजोर है। परिणामत मालिको द्वारा श्रमिको का शोषण किया जाता है और उनको बहुत कम मजदूरी दी जाती है। अत: मानवीय दृष्टिकोण से मजदूरी की समस्या का समाधान होना आवश्यक है। श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी बहुत कम है, मजदूरी भुगतान करने का तरीका दोषपूर्ण है, मजदूरी की दरें भी भिन्न-भिन्न पायी जाती है।

सरकारी दृष्टिकोण से भी मजदूरी की समस्या का समाधान आवश्यक है। सामाजिक न्याय प्रदान करना सरकार का दायित्व है। अत श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलाकर मजदूरी समस्या का समाधान किया जाए। मालिको की दृष्टि से भी मजदूरी समस्या महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उत्पादन-मूल्य का महत्त्वपूर्ण अग है। औद्योगिक प्रगति के लिए औद्योगिक शान्ति आवश्यक है और औद्योगिक शान्ति प्राप्त करने के लिए श्रमिको की मजदूरी मे सुधार आवश्यक है।

प्रचलित मजदूरी दरो को भी मजदूरी समस्या के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। एक ही स्थान पर एक ही उद्योग की विभिन्न इकाइयो, विभिन्न उद्योगो मे विभिन्न मजदूरी, समान कार्य मे भी भिन्न-भिन्न मजदूरी प्रचलित है। अत: मजदूरी के समानीकरण और प्रमापीकरण (Equalisation & Standardisation of Wages) हेतु भी मजदूरी की समस्या का अध्ययन आवश्यक है। विश्व के सभी विकसित देशो तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) द्वारा भी इस समस्या को महत्त्व दिया जाने लगा है। मजदूरी सभी पक्षो—श्रम, पूँजी, समाज एव सरकार—को प्रभावित करती है। अत: इन सभी पक्षो द्वारा भी मजदूरी की समस्या का अध्ययन किया जाने लगा।

ऐतिहासिक सिंहावलोकन

सन् 1880 से 1938 के बीच मजदूरी की दरो मे परिवर्तन का अनुमान Dr. Kuczynski द्वारा दिए गए निम्न सूचकाँको से लगाया जा सकता है[1]—

1. Quoted in 'Our Economic Problems' by Wadia & Merchant, p 458.

विभिन्न उद्योगों मे मजदूरी (1900=100)

वर्ष	सूती	जूट	रेलवे	खान	धातु श्रमिक	निर्माण-कार्य	बागान
1880-89	80	84	87	71	75	90	—
1890-99	90	87	95	81	89	89	100
1900-09	109	106	109	116	112	109	104
1910-19	142	128	139	176	138	133	122
1920-29	273	194	245	255	190	195	170
1930-39	242	148	286	191	171	168	121

उपरोक्त आँकड़ो से स्पष्ट है कि 19वी शताब्दी के अन्तिम दशकों मे औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी की दरों मे स्थिरता रही है। वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक में सूती वस्त्र उद्योग व जूट उद्योग की दर अन्य उद्योगो म श्रमिकों की मजदूरी की दरो से कुछ अधिक थी।

दूसरे महायुद्ध के समाप्त होने पर श्रम की माँग मे कमी आई, किन्तु बाद मे आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्य हेतु उनकी माँग मे वृद्धि हुई। मूल्य स्तर म वृद्धि होने से श्रमिकों की माँग, वेतन, मजदूरी व महँगाई भत्ते में वृद्धि हुई। यद्यपि मालिकों ने इस बात का विरोध किया था लेकिन सरकार ने उद्योगपतियों को मजदूरी मे वृद्धि करने के लिए विवश कर दिया। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1948 मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (Minimum Wages Act, 1948) पास किया गया।

विभिन्न उद्योगो मे श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति और विभिन्न न्यायालयों के निर्णयों के परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी मे निरन्तर वृद्धि हुई। लेकिन यह वृद्धि समान रूप से नही हुई। उदाहरणार्थ—सूती वस्त्र मिलो मे 400 रु मासिक से कम कमाने वाले श्रमिकों की औसत वार्षिक आय सन् 1961 मे 1722 रु से बढ़कर सन् 1969 मे 2694 रु हो गई है। यह वृद्धि 1½ गुनी है। जूट मिलो मे यह 1113 रु से बढ़कर 2251 रु हो गई है अर्थात् यह दुगुनी हो गई है।

हमारे देश के विभिन्न राज्यों में 400 रु मासिक से तक पाने वाले कारखाना श्रमिकों की औसत वार्षिक आय विभिन्न है और असमान रूप से बढ़ी है। उदाहरणार्थ यह मध्य प्रदेश मे सबसे अधिक 2912 रु है और सबसे कम राजस्थान मे 2003 रु. है। विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रो म 400 रुपये से कम माहवार पाने वाले कारखाना मजदूरो की औसत सालाना कमाई दिखाई गई है[1]—

1. भारत 1975, पृष्ठ 332.

फैक्टरी मजदूरों की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक कमाई

(रुपयों में)

राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	1961	1966	1968	1969	1970	1971	1972
असम	1,599	2,130	2,108	2,340	2,363	2,484	2,481
आन्ध्र प्रदेश	1,149	1,454	1,830	2,088	2 117	2,340	2,441
उड़ीसा	1,180	2,001	2,333	2,143	2,899	3 242	3,583
उत्तर प्रदेश	1,264	1,825	2 157	2 200	2,293	2,501	2 570
केरल	1,152	1 724	2,125	2,467	2,419	2,565	2,565
गुजरात	1,702	2,340	2,696	2,643	2,820	2,763	2,885
जम्मू-कश्मीर	—	978	1,532	1,805	1,630	1,695	3,107
तमिलनाडु	1,465	2,032	2,297	2,442	2,583	2,670	2,921
त्रिपुरा	—	1,271	1,945	2,010	2,221	2 790	1,091
पंजाब	1,174[1]	1,636	1,690	2,070	2,159	2,219	2,412
पश्चिम बंगाल	1,410	2,024	2,382	2,675	2,761	3,028	3,452
बिहार	1,856	2,050	2,432	2,486	2,712	2,752	2,630
मध्य प्रदेश	1,816	2,118	2,691	2,939	2,912	3,013	3,175
महाराष्ट्र	1,775	2,480	2,826	2,903	3,030	3,090	3,250
कर्नाटक	1,375	1,840	2,294	2,088	2,881	2 654	2,698
राजस्थान	761	1 412	1,853	2,003	2,486	2,507	2,824
हरियाणा	—	1,712	2,219	2,436	2,597	2,569	2,887
अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह	1,234	1,621	1,791	2,024	2 170	2,302	2,096
हिमाचल प्रदेश	1,288	2,115	2,851	2,521	2,691	2,849	2,849
गोआ, दमन और दीव	—	2,105	2,242	2 075	2 305	2,190	2,555
दिल्ली	1,655	2,321	2,788	2,860	2,845	3,040	3,053
पाण्डिचेरी	—	—	—	—	2,427	2,673	2,796

स्रोत : भारत 1976.

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में हुई वृद्धि को दृष्टि में रखते हुए वास्तविक में जो अन्तर आया है, वह अग्रिम सारणी से स्पष्ट होगा[2]—

1. हरियाणा शामिल है।
2. भारत 1976, पृष्ठ 373.

कामगारों की वास्तविक मजदूरी का सूचकांक
(1961=100)

विवरण	1962	1963	1964	1965	1966	1968	1969	1970	1971	1972
कमाई का सामान्य सूचकांक	106	109	114	128	139	160	171	180	185	191[1]
अखिल भारतीय मजदूर वर्ग का उपभोक्ता मूल्य सूचकांक	103	106	121	132	146	171	169	178	183	194
वास्तविक कमाई का सूचकांक	103	103	94	97	97	94	101	101	101	103

भारतीय कारखानों मे औद्योगिक श्रमिको की मजदूरी
(Wages of Industrial Workers in Indian Factories)

श्रमिको की औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय से सम्बन्धित आँकड़े मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 (Payment of Wages Act, 1936) के अन्तर्गत मिलते हैं। कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 2 (M) के तहत आँकड़े एकत्रित करके श्रम संस्थान, शिमला (Labour Bureau, Simla) को भेजे जाते हैं और वहाँ इन आँकड़ो को Indian Labour Journal मे प्रकाशित किया जाता है। मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 के अन्तर्गत जो आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं उनकी निम्नलिखित सीमाएँ है—

1 इस अधिनियम के अन्तर्गत 1,000 रु (नवम्बर, 1975 के संशोधन से पूर्व 400 रुपये) प्रतिमाह से कम पाने वाले श्रमिको को सम्मिलित किया जाता है। लेकिन ये श्रमिक कारखाना अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत आने वाले श्रमिको से भिन्न हैं।

2 मजदूरी की परिभाषा भी दोनो अधिनियमो के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न है।

मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 के अन्तर्गत आने वाले सभी कारखाने राज्य सरकारो को प्रार्थमिक सूचनाएँ नही भेजते हैं। केवल रिपोर्ट करने वाली इकाइयो द्वारा ही सूचना मिलती है। अत आँकडो मे प्रतिवर्ष भिन्नता पाई जाती है।

1. सूती वस्त्र उद्योग—यह भारत का प्रमुख संगठित उद्योग है। इसमे लगभग [illegible] लाख श्रमिक कार्य करते हैं। इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर, मद्रास, कानपुर और दिल्ली हैं। इस उद्योग के विकास के साथ साथ

1 अस्थाई।

काम करने वाले श्रमिको की आय मे वृद्धि हुई है। यह आय सन् 1961 मे 1722 रुपये से बढकर सन् 1969 मे 2694 रुपये हो गई थी। अनेक उद्योगो की तुलना मे इस उद्योग की औसत आय पर्याप्त ऊँची है। इस उद्योग मे कार्य करने वाले श्रमिकों की आय मे काफी वृद्धि हुई है, लेकिन महँगाई मे वृद्धि होने से उनकी वास्तविक आय मे विशेष सुधार नही हुआ है। यह उद्योग सगठित उद्योग है जो सन्तोषजनक मजदूरी स्तर पर सबसे अधिक रोजगार प्रदान करता है। इस उद्योग के भावी विकास के लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ है।

2. जूट उद्योग—यह सबसे प्राचीन उद्योग है। मजदूरी से सम्बन्धित सूचना नही मिल पाती क्योकि एक तो उद्योग मे विभिन्न व्यवसाय है और प्रमापीकरण की योजना का अभाव भी है। श्रम जाँच समिति द्वारा मजदूरी गणना का सर्वेक्षण किया गया था। इसके अनुसार मूल मजदूरी प बगाल मे सबसे अधिक है तथा विशुद्ध आमदनी कानपुर मे सबसे अधिक है। इस उद्योग मे लगभग 2½ लाख श्रमिक काम कर रहे है। इस उद्योग मे सूती वस्त्र उद्योग की तुलना मे प्रारम्भ मे औद्योगिक शान्ति रही है। औसत वार्षिक आय सन् 1961 मे 1113 रुपये से बढकर सन् 1969 मे 2251 रुपये हो गई थी। यह वृद्धि दुगुनी से भी अधिक थी और तत्पश्चात् स्थिति मे और भी सुधार हुआ है।

3. ऊन उद्योग— इस उद्योग की कई इकाइयो मे मजदूरी मे वृद्धि हुई है। महँगाई भत्ते की दरो मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्नताएँ पाई जाती है। सबसे ऊँची मजदूरी बम्बई मे है। औसत वार्षिक आय सन् 1961 मे 1428 रुपये से बढकर सन् 1969 मे 2320 रुपये हो गई थी।

4. चीनी उद्योग (Sugar Industry)—गोरखपुर व दरभगा की चीनी मिलो को छोडकर चीनी उद्योग मे मूल मजदूरी स्थिर रही है। सभी कारखानो मे महँगाई भत्ते की निर्वाह लागत के अनुसार क्षतिपूर्ति कर दी है। ठेके के श्रमिको को गन्ने को उतारने तथा चीनी को लदान करने के कार्य मे लगाया जाता है जिनको नियमित श्रमिको की तुलना मे 5 से 10 प्रतिशत कम मजदूरी दी जाती है। औसत वार्षिक आय सन् 1961 मे 124रु थी जो बढकर सन् 1969 मे 130 रु हो गई थी।

5. बागान उद्योग (Plantations Industry)—चाय, कहवा और रबड के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिक अर्द्ध-कृषक है और इस उद्योग मे मजदूरी के भुगतान की पद्धति कारखाना उद्योग मे उपलब्ध पद्धति से बहुत भिन्न है। असम के चाय-बागानो मे कार्यानुसार मजदूरी दी जाती है। श्रमिको को दिए जाने वाला कार्य का प्रमापीकरण नही हुआ है लेकिन अधिकांश बागानो मे श्रमिको की मजदूरी समान है क्योकि बागान मालिको ने आपस मे समझौता कर रखा है। दक्षिणी भारत के बागान उद्योग मे समयानुसार एव कार्यानुसार मजदूरी दी जाती है। चाय उद्योग मे भारत मे मजदूरी के साथ-साथ अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं, जैसे—कृषि हेतु भूमि, निःशुल्क आवास, डॉक्टरी चिकित्सा, ईंधन एव चारे की सुविधाएं, सस्ते खाद्यान्न एवं वस्त्रों की सुविधाएँ।

6. खनिज उद्योग—इस उद्योग मे मजदूरी और आय के आँकडो की प्राप्ति का मुख्य स्रोत मुख्य खान निरीक्षक (Chief Inspector of Mines) की रिपोर्टस हैं। कोयला खान, बोनस योजना, 1948 (Coal Mine Bonus Scheme, 1948) के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा, राजस्थान और प बगाल म कार्य करने वाले श्रमिक, जिनकी मजदूरी 300 रु प्रति माह से कम है, मूल वेतन का एक तिहाई बोनस प्राप्त करने का अधिकार है। सन् 1961 मे साप्ताहिक नकद आय 23 56 रु थी वह बढकर सन् 1969 म 52 31 रु हो गई। राष्ट्रीयकरण के बाद इस क्षेत्र मे और प्रगति एव सुधार हुआ है।

7. परिवहन (Transport)—रेल कर्मचारियो को दिए जाने वाले पारिश्रमिक म वेतन, भत्ते, नि शुल्क यात्रा, भविष्य निधि, अशदान, उपदान (Gratuity), पेन्शन, लाभ और अनाज की दूकान सम्बन्धी रियायतें शामिल की जाती हैं। औसत वार्षिक आय तृतीय और चतुर्थ श्रेणियो के कर्मचारियो की दशा मे पर्याप्त रूप से बढ गई।

भारत मे कृषि श्रमिको की मजदूरी
(Wages of Agricultural Labour in India)

द्वितीय कृषि श्रम जाँच समिति, 1956 (Second Agricultural Labour Enquiry Committee, 1956) के अनुसार, "कृषि श्रमिक से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो न केवल फसलो के उत्पादन मे काम पर रखा गया है, वरन् जो अन्य कृषि सम्बन्धी व्यवसायो जैसे दूध-दही, मुर्गी-पालन आदि मे भी किराये के मजदूर के रूप मे कार्य करता है। कृषि श्रमिक परिवार से आशय उस परिवार से है जिसकी अधिकाश आय कृषि-मजदूरी से हो।"[1]

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की जनसख्या का 70% भाग कृषि पर निर्भर करता है। भारतीय कृषक अशिक्षित, अज्ञानी व दरिद्र है फिर कृषि पर कार्य करने वाले श्रमिको की क्या स्थिति होगी ?

सन् 1971 की गणना के अनुसार कृषि श्रमिको की सख्या 35 मिलियन है। यह सन् 1961 मे 31 5 मिलियन थी। इस दशक (1961–71) मे कृषि श्रमिकों की सख्या मे 15% वृद्धि हुई है।

प्रथम कृषि जाँच समिति द्वारा सन् 1950–51 मे 800 गाँवो मे जाँच की गई थी जबकि दूसरी जाँच 1956–57 मे 3 600 गाँवो मे की गई तथा 28,560 कृषि श्रमिक परिवार के सम्बन्ध मे आँकडे एकत्रित किए गए।

भारत मे कृषि श्रमिको को मजदूरी नकदी मे या वस्तु मे अथवा दोनो मे दी जाती है। उनको कार्यानुसार व समयानुसार भी मजदूरी का भुगतान किया जाता है। अन्य सुविधाओ मे पहनने के लिए वस्त्र रहने के लिए झोंपडी, खाने के लिए भोजन, सामाजिक कार्यों हेतु पेशगी भी सम्मिलित है। औद्योगिक मजदूरी की तुलना

1 Second Agricultural Labour Enquiry Committee, 1950-51

में कृषि श्रमिकों की मजदूरी कम होती है क्योंकि कृषकों की भुगतान-क्षमता कम होती है। श्रमिक असंगठित भी हैं। अधिकांश छोटे काश्तकार अपने परिवार के श्रम को लगाते हैं। अब श्रमिकों की मजदूरी 3 रु से 5 रु होती है तथा कृषि की विभिन्न फसलों की कटाई पर यह मजदूरी 6–7 रु भी हो जाती है।

कृषि श्रमिकों को कम मजदूरी मिलने के कुछ कारण हैं—

1. बच्चों को मजदूरी न करने के सम्बन्ध में किसी अधिनियम का अभाव।
2. जमींदार, जागीरदार, मालगुजारी इत्यादि द्वारा श्रमिकों को ऋण देना और उसके कारण उन पर प्रभुत्व जमाए रखना।
3. कृषि श्रमिक अलग-अलग बिखरे हुए हैं और उनमें संगठन का अभाव है।
4. कृषि उद्योग एक मौसमी उद्योग है।
5. छोटे वर्ग में जन्म लेने से सामाजिक दबाव।
6. कृषि श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी व रूढ़िवादी हैं।

कृषि श्रमिकों की दरिद्रता तथा मोलभाव की दुर्बल शक्ति (Weak bargaining power) से काश्तकारों द्वारा इनका शोषण किया जाता है। जो मजदूरी तय की जाती है उससे भी कम मजदूरी चुकाते समय दी जाती है। प्रथम अखिल भारतीय कृषि श्रमिक जाँच समिति के एक सर्वेक्षण के अनुसार 95 प्रतिशत मानव-श्रम के घण्टों हेतु मजदूरी का भुगतान समयानुसार तथा शेष 5% मानव-श्रम के घण्टों हेतु कार्यानुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है। कार्यानुसार मजदूरी केवल फसल कटाई और अनाज निकलवाई हेतु ही दी जाती है।

कृषि श्रमिकों की गरीबी का एक प्रधान कारण यह भी है कि वे साल भर कार्य नहीं करते हैं। वे केवल साल में 200 दिन कार्य करते हैं तथा बेकार दिनों में अन्य कार्यों पर नहीं जाते हैं। जहाँ सिंचाई के अच्छे साधन नहीं है वे और अधिक दिन बेकार रहते हैं। जिन श्रमिकों को साल भर कार्य नहीं मिल पाता है वे अपने परिवार का पालन-पोषण करने हेतु साहूकारों से बड़ी ऊँची ब्याज दर पर उधार लेते हैं।

कृषि श्रमिकों के कार्य के घण्टे भी विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग हैं—प. बंगाल में 10 घण्टे, तमिलनाडु में 13½ घण्टे, महाराष्ट्र-गुजरात में 11 घण्टे, उत्तर प्रदेश में 7 घण्टे। कार्यों के घण्टों के सम्बन्ध में कृषि सुधार समिति का सुझाव है कि काम के घण्टे पुरुषों के लिए 12 और स्त्रियों के लिए 10 से अधिक न हों। जब श्रमिकों के कार्य के घण्टे 8 से अधिक हैं तो उनके लिए अतिरिक्त भुगतान (Over Time) दिया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 (Minimum Wages Act of 1948) के अन्तर्गत कृषि श्रमिकों की मजदूरी के नियमन का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही सभी सरकारी फर्मों पर भी यह नियम लागू कर दिया गया है। प्रत्येक राज्य अपनी स्थानीय परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए श्रमिकों की मजदूरी निश्चित कर सकता है।

कृषि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने हेतु उनकी मजदूरी में

सुधार आवश्यक है। मजदूरी श्रमिक के जीवन स्तर और उसकी कार्य क्षमता को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण तत्त्व है। इससे न केवल श्रमिक की ही आर्थिक स्थिति मे सुधार होता है बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होने से सभी उत्पादन के साधनो की आय मे वृद्धि होती है, सरकार को विकास हेतु आय प्राप्त होती है, उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की सस्ती वस्तु मिलती है। अत सरकार का यह दायित्व है कि कृषि श्रमिको की आर्थिक स्थिति को सुधारा जाए। सरकार ने विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ मे कृषि श्रमिक की स्थिति सुधारने हेतु निम्नलिखित कार्य किए हैं—

1 कृषि उत्पादकता मे वृद्धि हेतु किए गए प्रयत्न,
2 कृषि श्रमिको मे शिक्षा का प्रसार,
3 भूमिहीन श्रमिको को भूमि का आवटन,
4 भूदान आन्दोलन द्वारा भूमि प्राप्त करके भूमिहीनो को बाँटना,
5 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (Minimum Wages Act,1948) को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करना।

मजदूरी की नवीनतम स्थिति (1976-77) पर सामूहिक दृष्टि

मजदूरी के सम्बन्ध मे विभिन्न विधानो और विकासो का उल्लेख पूर्व पृष्ठो में विस्तार से किया जा चुका है और बहुत सी अन्य बातो पर विचार अगले अध्यायो मे किया जाएगा। इस सम्बन्ध मे जो नवीनतम सशोधन, विकास और निर्णय हुए हैं उन पर सामूहिक रूप से यहाँ दृष्टि डालना उपयोगी होगा। यह 'सामूहिक दृष्टि' हमे यत्र-तत्र बिखरी बातो की एक ही स्थल पर जानकारी दे सकेगी। नवीनतम स्थिति पर श्रम मत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1976–77 मे 'प्रस्तावनात्मक और सामान्य विवरण' के रूप मे निम्नानुसार प्रकाश डाला गया है—

20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम

20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की चार मदें श्रम मन्त्रालय से सम्बन्धित हैं। बन्धित श्रमिको से सम्बन्धित मदो के बारे मे बन्धित श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम, 1976 के अधीन नियम बनाए गए और वे 28 फरवरी, 1976 को प्रकाशित किए गए। मार्च, 1976 मे हुए श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन ने, जिसने इस अधिनियम के सचालन की पुनरीक्षा की, बन्धित श्रमिको का पता लगाने के लिए सर्वेक्षण करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस राज्य सरकारो/सघ राज्य क्षेत्रो से प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार 91,642 बन्धित श्रमिको का पता लगाया गया, 90,704 श्रमिक मुक्त कराए गए तथा इनमे से 22,349 यानी 25% श्रमिको को पुन बसाया गया। अक्तूबर, 1976 मे हुए श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन मे यह महसूस किया गया कि बन्धित श्रमिको के पुनर्वास सम्बन्धी वर्तमान प्लान तथा नॉन-प्लान विकास योजनाएँ अपर्याप्त हैं तथा इस कार्य के लिए केन्द्र से विशिष्ट और पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त करके अलग कार्यक्रम बनाना आवश्यक है। उक्त अधिनियम का समुचित कार्यान्वयन सुनिश्चित कराने के लिए कई राज्य सरकारो ने जिला

मजिस्ट्रेटों को अधिकार सौंपे हैं, कुछ राज्यों में सतर्कता समितियाँ भी नियुक्त की गई हैं। कृषि श्रमिकों को, जिनमें बन्धित श्रमिक भी शामिल हैं, बन्धित श्रम पद्धतियों, बोनो और न्यूनतम मजदूरी-दरों आदि सम्बन्धी कानूनों तथा ग्राम विकास के सरकारी कार्यक्रमों के बारे में शिक्षित करने के लिए राष्ट्रीय श्रम संस्थान ने 12 ग्रामीण शिविर आयोजित किए हैं। इन शिविरों में कृषि श्रमिकों में जागरूकता पैदा हुई है और उनमें काफी उत्साह उत्पन्न हुआ है।

जहाँ तक कृषि मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी-दरों विषयक दूसरी मद का सम्बन्ध है, केन्द्रीय सरकार तथा अधिकांश राज्यों ने यथोचित मजदूरी-दरें अधिसूचित की हैं। लगभग सभी राज्यों ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन निरीक्षकों तथा दावा अधिकारियों को नियुक्त करके अपने-अपने प्रवर्तन तन्त्रों को भी मजबूत बनाया है ताकि कृषि श्रमिकों के हितों की विशेष रूप से देखभाल हो सके।

इस कार्यक्रम की तीसरी मद उद्योग में श्रमिकों की सहभागिता की योजना के बारे में हैं। यह योजना अक्तूबर, 1975 के एक संकल्प द्वारा प्रारम्भ की गई और इसे 500 या उससे अधिक श्रमिकों को नियोजित करने वाले निजी, सरकारी तथा सहकारी क्षेत्रों के विनिर्माण तथा खनन एककों और विभागीय रूप में चलाए जा रहे एककों पर लागू किया गया। कुछ राज्यों में यह योजना 500 से कम श्रमिकों को नियोजित करने वाले एककों पर लागू की गई है। दिसम्बर, 1976 के अन्त तक प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार केन्द्रीय सरकार के सरकारी क्षेत्र के तथा विभागों द्वारा चलाए जा रहे 472 एकक या तो इस योजना को लागू कर चुके थे या इसे लागू करने के लिए कार्यवाही शुरू कर चुके थे। कुछ एककों से प्राप्त सूचनाओं से पता चलता है कि इस योजना के अन्तर्गत स्थापित किए गए मंचों से उत्पादन, उत्पादिता तथा सर्वोपरि दक्षता को सुधारने में सहायता मिली है। 20 राज्यों संघ-राज्य क्षेत्रों से प्राप्त सूचना के अनुसार दिसम्बर, 1976 के अन्त तक राज्यों के सरकारी, निजी तथा सहकारी क्षेत्रों के 1100 से कुछ अधिक एकक या तो इस योजना को लागू कर चुके हैं या इसे लागू करने के लिए कार्यवाही शुरू कर चुके हैं या वैकल्पिक व्यवस्था कर चुके हैं। श्रम मन्त्रालय ने जनवरी, 1977 में सरकारी क्षेत्र के ऐसे वाणिज्यिक तथा सेवा संगठनों में, जो बड़े पैमाने पर लोक कार्य करते हैं, प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की एक नई योजना बनाई। यह योजना अस्पतालों, डाक व तार घरों रेलवे स्टेशनों, बुकिंग आफिसों आदि पर लागू होती है। इस योजना में कम से कम 100 व्यक्तियों को नियोजित करने वाले संगठनों में एकक परिषदें तथा संयुक्त परिषदें गठित करने की परिकल्पना की गई है।

कार्यक्रम की चौथी मद शिशुता योजना के कार्यान्वयन के बारे में है। दिसम्बर, 1976 के अन्त तक मालूम किए गए व्यवसाय शिशुओं के 1·56 लाख स्थानों में से 1·54 लाख स्थानों का उपयोग किया गया, लगभग 32% शिशु कमजोर वर्गों के हैं। अब तक 216 उद्योग शिशु अधिनियम के अन्तर्गत लाए जा चुके हैं और शिशुता प्रशिक्षण के लिए 103 व्यवसाय निर्दिष्ट किए जा चुके हैं।

शीघ्र ही 33 और व्यवसाय निर्दिष्ट करने तथा इस योजना को 57 और उद्योगों पर भी लागू करने का विचार है।

द्विपक्षीय तन्त्र

आपातोत्तर काल मे नियोजको और श्रमिको के प्रतिनिधियो की द्विपक्षीय राष्ट्रीय शीर्ष निकाय तथा राष्ट्रीय औद्योगिक समितियो मे शामिल करके औद्योगिक शान्ति तथा सामजस्य को बनाए रखा जा रहा है। राष्ट्रीय शीर्ष निकाय ने अपनी विभिन्न बैठको मे न केवल औद्योगिक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले मामलो के बारे मे बल्कि विभिन्न उद्योगो तथा सेवाओ से सम्बन्धित अन्य सम्बद्ध विषयो के बारे मे भी सिद्धान्त, नीतियाँ तथा मार्गदर्शी रूपरेखा निर्धारित की। इस द्विपक्षीय वार्ता प्रणाली को राज्यो के क्षेत्र मे भी लागू किया गया है तथा 17 राज्यो मे राज्य शीर्ष निकाय गठित किए जा चुके हैं। राष्ट्रीय शीर्ष निकाय तथा राष्ट्रीय औद्योगिक समितियो ने विशिष्ट एककों मे कामबन्दी, जबरी छुट्टी और छँटनी की विशिष्ट समस्याओ का निपटान करने के लिए कम्बैंशट कमेटियो/विशषज्ञ समितियो का गठन किया है। राष्ट्रीय शीर्ष निकाय ने दिसम्बर, 1976 मे हुई अपनी बैठक म एक द्विपक्षीय स्थायी समिति की स्थापना की ताकि वह देश के विभिन्न उद्योगो मे तालाबन्दियो और हड़तालो से उत्पन्न हुई समस्याओ को सुलझा सके।

श्रम स्थिति

औद्योगिक सम्बन्धो की स्थिति मे उल्लेखनीय सुधार हुआ है। सन् 1976 के दौरान 114 8 लाख श्रम दिनो की हानि हुई--केन्द्रीय क्षेत्र मे 3 7 लाख श्रम-दिनो की तथा राज्यो के क्षेत्र मे 111 1 लाख श्रम दिनो की। सरकारी क्षेत्र मे नष्ट हुए श्रम दिनो की कुल सख्या 7 6 लाख थी, जबकि इसकी तुलना मे निजी-क्षेत्र मे 107 2 लाख श्रम-दिनो की हानि हुई। केन्द्रीय क्षेत्र मे औद्योगिक सम्बन्ध सामान्यत शान्तिपूर्ण रहे। यह प्रवृत्ति सराहनीय है तथा यह कर्मचारी द्वारा बरते गए शानदार सयम की सूचक है। परन्तु कुछ नियोजको ने इस प्रकार का सयम नही दिखाया और यह बात तालाबन्दियो के कारण नष्ट हुए श्रम दिनो मे हुई वृद्धि से स्पष्ट झलकती है। तालाबन्दियो के कारण समय हानि जो जनवरी, 1976 म 54% थी, बढकर मई, 1976 मे 90% हो गई, जो कि चौंका देने वाली स्थिति थी। जनवरी दिसम्बर, 1976 के दौरान तालाबन्दियो के कारण 79% श्रम दिनो की हानि हुई, जबकि इसकी तुलना मे सन् 1974 और 1975 के कैलेण्डर वर्षों मे केवल 17% तथा 24% श्रम दिनो की हानि हुई थी।

मार्च, 1976 म औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1976 मे सशोधन करके 300 या उससे अधिक श्रमिको को नियोजित करने वाले कारखानो, खानो तथा बागान के नियोजको के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे श्रमिको को जबरी छुट्टी पर भेजने या उनकी छँटनी करने या अपने एकको को बन्द करने से पूर्व विनिर्दिष्ट प्राधिकारी या सगत सरकार से पूर्व अनुमति या पूर्व स्वीकृति प्राप्त करें। इससे जबरी छुट्टी, कामबन्दी आदि की घटनाओ मे कमी होने मे मदद मिली।

तथापि, जहाँ तक तालाबन्दियों का सम्बन्ध है, जो अधिकतर कामबन्दियों की आड़ मे की जाती है, राज्य सरकारों को यह सलाह दी गई कि वे अन्यायपूर्ण की जाने वाली तालाबन्दियों की रोकथाम करने के लिए कार्यवाही करें।

औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र

केन्द्रीय क्षेत्र के औद्योगिक विवादों को तय करने के लिए बम्बई, कलकत्ता, धनबाद और जबलपुर मे स्थापित किए गए 7 औद्योगिक न्यायाधिकरणों एवं श्रम न्यायालयों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा राजस्थान के राज्य और दिल्ली तथा चण्डीगढ़ के संघ राज्य क्षेत्र मे केन्द्रीय क्षेत्र के औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए नई दिल्ली मे एक केन्द्रीय सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-एवं-श्रम न्यायालय स्थापित किया गया।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन स्थापित समझौता तन्त्र ने सम्बन्धित पक्षों मे मेल-मिलाप कराने तथा सौहार्द्रपूर्ण समझौतों को प्रोत्साहन देने के लिए उपाय एवं साधन ढूंढ निकालने का अपना कार्य जारी रखा। केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र द्वारा जिन मामलों / विवादों पर कार्यवाही की गई तथा जिन्हें निपटाया गया, उनकी संख्या का ब्यौरा नीचे तालिका मे दिया गया है—

	1974	1975	1976
(i) भेजे गए विवादों की संख्या	5,604	5 095	5,171
(ii) प्राप्त हुई विफलता-रिपोर्ट की संख्या	902	1,087	1,008
(iii) ऊपर (ii) में निर्दिष्ट मामलों में से—			
(क) न्यायनिर्णय के लिए भेजे गए मामलों की संख्या	186 (21 प्र श)	613 (57 प्र श)	211 (21 प्र. श)
(ख) सरकार के विचाराधीन मामलों की संख्या	697 (77 प्र. श.)	460 (42 प्र. श)	517 (51 प्र श)

1976 के दौरान केन्द्रीय क्षेत्र के 1,008 मामलों मे से, जिनमे समझौता नहीं हो सका था, 24 मामलों मे नियोजकों और श्रमिकों ने अपने विवाद विवाचन द्वारा तय कराना स्वीकार किया।

अनुवर्ती प्रयासों के परिणामस्वरूप असम, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, नागालैंड, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल को छोड़कर सभी राज्यों तथा संघ-राज्य क्षेत्रों मे विवाचन प्रोत्साहन बोर्ड स्थापित किए गए हैं। असम, उड़ीसा तथा हिमाचल प्रदेश की सरकारों ने स्वैच्छिक विवाचन का प्रचार करने के लिए अन्य संस्थागत व्यवस्थाएँ की हैं, परन्तु नागालैण्ड और त्रिपुरा की सरकारों ने इस प्रकार के बोर्ड स्थापित करना आवश्यक नहीं समझा है। उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल की सरकारों ने अपने राज्यों मे बोर्ड स्थापित करने की व्यवस्था की है। केन्द्रीय कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन प्रभाग ने विवाचकों की एक नामिका तैयार की है, जिसमें 442 नाम शामिल हैं। स्वैच्छिक विवाचन को लोकप्रिय बनाने के लिए

राष्ट्रीय श्रम संस्थान ने नवम्बर, 1976 मे एक वर्कशॉप-सेमिनार का आयोजन किया, यह संस्थान पत्तन तथा गोदी उद्योग मे स्वैच्छिक विवाचन के बारे मे नियोजकों और श्रमिको के रवैये का अध्ययन भी कर रहा है।

1976 के दौरान केन्द्रीय कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन प्रभाग ने 5 उपक्रमो मे प्रबन्ध स्टाइलो तथा रीतियो, कार्मिक-नीतियो, श्रम कानूनो के कार्यान्वयन आदि के मामलो का अध्ययन किया, 3 एककों मे इस प्रकार के अध्ययन करने के लिए भी कार्यवाही शुरू की गई।

मजदूरी दरें, भत्ते तथा बोनस

श्रम मन्त्रालय मे स्थापित मजदूरी सैल मजदूरी निर्धारण, राष्ट्रीय मजदूरी नीति बनाने तथा राष्ट्रीय मजदूरी विन्यास तैयार करने सम्बन्धी मामलो पर कार्यवाही करता रहा।

पत्रकारो तथा गैर-पत्रकारों के मजदूरी बोर्डों की अन्तरिम सहायता के सम्बन्ध मे सिफारिशें प्राप्त हो गई हैं और ये सिफारिशें सरकार के विचाराधीन हैं।

क्वाटजाइट, क्वार्टज और सिलिका खानो के रोजगारो को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की अनुसूची में शामिल किया गया तथा ग्रेफाइट खानो के रोजगारो को अनुसूची मे शामिल करने सम्बन्धी प्रस्ताव प्रकाशित किए गए।

चीनी मिट्टी, चिकनी मिट्टी, सफेद मिट्टी, सांर, क्रोमाइट, पत्थर, कायनाइट, स्टियटाइट (सोप स्टोन तथा टैल्क समेत), गेरू, ऐस्बेस्टास, अग्नि मिट्टी तथा अभ्रक जैसी खानो के रोजगारो के लिए न्यूनतम मजदूरी-दरो के प्रारम्भिक निर्धारण के लिए प्रस्ताव अनुसूचित किए गए।

केन्द्रीय सरकार ने मई और सितम्बर, 1976 मे बेराइटिस खानो, जिप्सम खानो, मैंगनीज खानो, अभ्रक खानो, बाक्साइट खानो तथा कृषि उद्योग मे रोजगारो के सम्बन्ध मे न्यूनतम मजदूरी-दरो मे संशोधन किया। सड़को के निर्माण तथा अनुरक्षण, भवन निर्माण कार्यों पत्थर तोड़ने या पत्थर पीसने, भवनो के अनुरक्षण, रोडवेज के निर्माण तथा अनुरक्षण से सम्बन्धित अनुसूचित रोजगारो के बारे मे न्यूनतम मजदूरी-दरो मे संशोधन करने के लिए प्रस्ताव अधिसूचित किए गए। भारत रक्षा और आन्तरिक सुरक्षा नियम, 1971 के अधीन मैंगनाइट खानो और सेलम (तमिलनाडु) जिले की तीन फर्मों के केलिसाइजन और रिफ्रेक्टरी निर्माण सयन्त्रो मे रोजगार के सम्बन्ध मे मूल मजदूरी दरें तथा भत्ते निर्धारित किए गए। 1976 मे न्यूनतम मजदूरी-दरो के निर्धारण-संशोधन के सम्बन्ध मे एक सराहनीय बात यह रही है कि मैंगनीज और अभ्रक खानो मे नियोजित सभी वर्गों के ऐसे कर्मचारियो के लिए, जो भूमि के नीचे काम करते हैं, 20 प्रतिशत अधिक मजदूरी दरें निर्धारित की गई हैं।

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 अब तक बागानो, स्थानीय प्राधिकरणों, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो, बैंको, बीमा कम्पनियो और अन्य वित्तीय

सस्थाओं, शैक्षिक, अध्यापन, प्रशिक्षण तथा अनुसधान सस्थाओ, खानो आदि मे रोजगारो पर लागू किया गया है ।

सरकार ने यह निर्णय किया है कि यदि किसी प्रतिष्ठान के पास किसी लेखा वर्ष मे बाँटने के लिए कोई अधिशेष नही है, परन्तु उसे लाभ तथा हानि लेखे के अनुसार निवल लाभ हुआ है, तो ऐसा प्रतिष्ठान 1976 के किसी भी दिन से शुरू होने वाले वर्ष मे उस लेखा वर्ष के लिए प्रति कर्मचारी 100 रुपये की समान दर मे बोनस का भुगतान करेगा, बोनस की यह राशि 15 वर्ष से कम आयु वाले कर्मचारियो के लिए 60 रुपये होगी । यदि लेखा वर्ष मे निवल लाभ की राशि इस प्रकार के बोनस के पूर्णन भुगतानो के लिए अपर्याप्त हो, तो बोनस की बाबत निवल लाभ से अधिक अदा की गई राशि को अगले वर्ष के नाम मे डाला जाएगा । परन्तु कुछ विनिर्दिष्ट शर्तों के कारण ये उपबन्ध कतिपय प्रतिष्ठानो पर लागू नही होंगे ।

समाज सुरक्षा

सन् 1976 के दौरान कर्मचारी राज्य बीमा योजना को 18 केन्द्रो के 1 78 लाख और कर्मचारियो पर लागू किया गया । 1 68 लाख और परिवारो (बीमा शुदा व्यक्तियो) को भी डाक्टरी इलाज की सुविधाएँ प्रदान की गई । 31 दिसम्बर, 1976 को कुल मिलाकर 400 केन्द्रो के 52 86 लाख कर्मचारी इस योजना के अन्तर्गत लाए जा चुके थे । चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने वाले लाभानुभोगियो (बीमा शुदा व्यक्तियो सहित) की कुल सख्या 221 53 लाख थी । सन् 1976–77 के दौरान कर्मचारी राज्य बीमा परियोजनाओं के लिए निर्माण/भूमि की लागत को वहन करने के लिए 10 46 करोड रुपये की राशि मन्जूर की गई । सात कर्मचारी राज्य बीमा परियोजनाएँ, जो निर्माणाधीन थी, बनकर तैयार हो गई तथा चालू कर दी गईं । अब तक निगम ने 10,886 पलगो वाले 59 पूर्णाक कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालो, 475 पलगों वाले 25 कर्मचारी राज्य बीमा उप-भवनो तथा 173 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालयो का निर्माण किया है और उन्हे चालू किया है । इसके अतिरिक्त, विभिन्न राज्यो मे 4,509 पलगो वाले 18 कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल, 172 पलगो वाले 14 कर्मचारी राज्य बीमा उप-भवन और 18 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालय निर्माणाधीन हैं । बीमाशुदा व्यक्तियो तथा उनके परिवारो के लिए उपलब्ध पलगो की कुल सख्या अब 15,545 है । कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने परिवार नियोजन के लिए प्रोत्साहन के रूप मे नसबन्दी/वध्यकरण के वास्ते बीमा शुदा व्यक्तियों को वर्धित बीमारी लाभ की स्वीकृति दी है । यह वर्धित लाभ-राशि 1 अगस्त, 1976 से देय हो गई है । बीमा शुदा व्यक्तियों के लिए बीमारी प्रसुविधा की अवधि को भी एक वर्ष मे 56 दिन से बढाकर 91 दिन किया जा रहा है ।

सितम्बर, 1976 के अन्त तक कर्मचारी भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 को 150 प्रतिष्ठानों के वर्गों/उद्योगों पर लागू किया जा चुका

था। उस तारीख तक अंशदाताओं की संख्या 80.63 लाख हो गई थी जिनमें से 30.61 अंशदाता छूट प्राप्त प्रतिष्ठानों में थे और 50.02 लाख अंशदाता छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानों में। वेतन के 8% के बराबर अंशदान की बढ़ी हुई दर 94 उद्योगों और 50 या उससे अधिक व्यक्तियों को नियोजित करने वाले प्रतिष्ठानों के वर्गों पर लागू थी। वर्ष 1976–77 के लिए छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानों में सदस्यों के भविष्य निधि के संचयनों में जमा किए जाने वाले ब्याज की दर 7.5% प्रतिवर्ष थी। छूट प्राप्त और छूट न प्राप्त दोनों प्रकार के प्रतिष्ठानों में भविष्य निधि के संचयनों की कुल राशि 4,429.13 करोड़ रुपये थी तथा लौटाई गई कुल राशि 1,795.64 करोड़ रुपये थी। सितम्बर, 1976 के अन्त में निवेश की गई कुल राशि 3,214.55 करोड़ रुपये थी। जनवरी से सितम्बर, 1976 की अवधि के दौरान 93% दावे निपटाए गए तथा उनका भुगतान 30 दिन के अन्दर-अन्दर कर दिया गया। इस योजना में किए गए संशोधनों में से कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधन ये थे—रिहायशी मकान या मकान के लिए भूमि खरीदने के लिए पेशगियों का सरकार या सहकारी समितियों स्थानीय निकायों आदि को सीधा भुगतान, कुछ मामलों में पेशगी के लिए सदस्यता की अर्हक अवधि में कमी, पेशगी की राशि में वृद्धि निधि की सदस्यता की पात्रता के लिए अधिकतम वेतन सीमा को 1,000 रुपये प्रतिमाह से बढ़ाकर 1,600 रुपये प्रति माह करना तथा 1 अगस्त, 1976 से कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना आरम्भ करना। यह अधिनियम अनेक खानों तथा गैर-खानों पर भी लागू किया गया है, जैसे एस्बेस्टस, केलसाइट वाले, कोरंडम, पन्ना, सिलिका। भविष्य निधि अंशदान की बाबत जमा न कराई गई राशि मार्च, 1976 के अन्त में 20·64 करोड़ रुपये थी, जो घटकर सितम्बर, 1976 के अन्त में 18.58 करोड़ रुपये रह गई। इसी अवधि के दौरान परिवार पेंशन अंशदानों की बकाया राशि भी 54.81 लाख रुपये से घटकर 52·89 लाख रुपये रह गई। कर्मचारी भविष्य निधि संगठन ने अतिरिक्त परिलब्धियाँ (अनिवार्य निक्षेप) अधिनियम के अधीन सम्बन्धित कर्मचारियों को दो किस्तों में मजदूरी की 18.23 करोड़ रुपये की राशि तथा महँगाई भत्ते की पहली किस्त की 90.87 करोड़ रुपये की राशि वापस की।

सन् 1976 के दौरान कोयला खान भविष्य निधि योजना के अन्तर्गत, 32 नई कोयला खानें/अनुषंगी संगठन लाए गए। इस प्रकार वर्ष के अन्त में उक्त योजना के अन्तर्गत लाई गई खानों/अनुषंगी संगठनों की कुल संख्या 1,061 हो गई। राष्ट्रीयकरण के बाद कोयला खानों के पुनर्गठन के कारण इस योजना के अन्तर्गत आने वाले खनिकों की कुल संख्या में कमी हो गई। आलोच्य वर्ष के दौरान 59,417 व्यक्ति निधि के नए सदस्य बनाए गए और 31 दिसम्बर, 1976 को पंजीकृत सदस्यों की संख्या 15,98,380 थी। निधि में वस्तुतः अंशदान देने वालों की संख्या 6,62,857 थी। योजना के अन्तर्गत अनिवार्य अंशदान की दर कुल परिलब्धियों का 8% बनी रही, तथापि, सदस्यों को अपने अनिवार्य अंशदान के अतिरिक्त अपनी कुल परिलब्धियों के 8% से अनधिक दर से स्वेच्छिक रूप से अंशदान देने की छूट है।

वर्ष 1976–77 के अन्त मे 2,688 सदस्य निधि मे स्वैच्छिक अंशदान दे रहे थे। इस योजना मे किए गए कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन ये थे—उपभोक्ता सहकारी समितियो के शेयर खरीदने के लिए न लौटाई जाने वाली पेशगी की राशि मे वृद्धि, सहकारी साख समितियो मे शेयर खरीदने के लिए व्यवस्था तथा कतिपय परिस्थितियो मे भविष्य निधि म से धन लगाकर चलाई जाने वाली जीवन बीमा पालिसियो का पुनराम्यर्पण। 1 अगस्त, 1976 से कोयला खान भविष्य निधि जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना भी शुरू की गई।

कर्मचारी कुटुम्ब पेंशन योजना, सन् 1971 तथा कोयला खान कुटुम्ब पेन्शन योजना, 1971 के अन्तर्गत श्रमिको को सुविधाएँ मिलती रही। 30 सितम्बर, 1976 की स्थिति के अनुसार इन दो योजनाओ के अन्तर्गत लाए गए श्रमिको की सख्या क्रमश 32·24 लाख तथा 5 31 लाख थी।

कल्याण तथा रहन-सहन की दशाएँ

केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित की गई कल्याण निधियो ने, अन्य बातो के साथ-साथ, कोयला, अभ्रक, लोहा, अयस्क, चूना-पत्थर तथा डोलोमाइट खानो मे नियोजित श्रमिको को चिकित्सा, मनोरजन, शिक्षा, जल प्रदाय तथा आवास की सुविधाएँ प्रदान की।

तीन केन्द्रीय अस्पताल और 12 क्षेत्रीय अस्पताल प्रभावी रूप से कार्य करते रहे और कोयला खनिको तथा उनके परिवारों की आवश्यकताओ की पूर्ति करते रहे। चान्दा कोयला-क्षेत्र मे जिस क्षेत्रीय केन्द्र अस्पताल को पहले बल्लारपुर मे स्थापित करने की योजना थी, अब उसे चान्दा मे हिन्दुस्तान लालपथ कोलियरी मे एक वैकल्पिक स्थान पर निर्मित करने का विचार है। सुग्गा (झरिया कोयला क्षेत्र) मे एक स्थिर एलोपैथिक औषधालय, शिलांग मे चलता-फिरता चिकित्सा एकक, पाथरडीह मे एक आयुर्वेदिक फार्मेसी तथा विभिन्न कोयला क्षेत्रो मे 29 आयुर्वेदिक औषधालयो ने काम किया। निधि के अस्पतालो और क्लिनिको मे परिवार नियोजन के बारे मे निःशुल्क सलाह दी गई तथा गर्भ निरोधी वस्तुएँ मुफ्त दी गई। 1976–77 वर्ष के दौरान अनेक कोयला खानो मे 24,79,726 रुपये की अनुमानित लागत वाली स्वीकृत जल-प्रदाय योजनाओ के सम्बन्ध मे सम्बन्धित प्रबन्धों को 6,19,931 रुपये की राशि की आर्थिक सहायता मजूर की गई या उसका भुगतान किया गया। अनेक अन्य कोयला खानो के लिए भी जल प्रदाय योजनाएं विचाराधीन थी। झरिया कोयला क्षेत्र मे दामोदर पुनर्गठन योजना का काम चलता रहा, जब कि रानीगज समेकित जल प्रदाय योजना का फेज–I चालू कर दिया गया। कोयला क्षेत्रो मे कुएँ खोदने की योजना के अन्तर्गत 37 कुएँ खोदने का काम चल रहा था।

कोयला खान कल्याण सस्था ने केन्द्रीय साउन्दा कोलियरी (16 सितम्बर, 1976) तथा सुदामडीह कोलियरी (4 अक्तूबर, 1976) मे हुई भीषण दुर्घटनाओं मे मारे गए प्रत्येक श्रमिक के आश्रितो को 250 रुपये के भुगतान की तुरन्त व्यवस्था की। इस सगठन ने देय राशियो आदि के भुगतान और सन्तप्त परिवारों के पुनर्वास

के लिए अग्रिम कार्यवाही करने के अतिरिक्त दुर्घटना से प्रभावित परिवारों के लिए चिकित्सा की व्यवस्था भी की।

कोयला खनिकों के लिए मकान तथा बैरकें बनाने की प्रगति जारी रही और कम लागत आवास योजना के अन्तर्गत, 20,516 मकान तथा बैरकें बनकर तैयार हो गईं। इसके अतिरिक्त नई आवास योजना के अन्तर्गत लगभग 49,000 मकान बनकर तैयार हो गए।

अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि के नियन्त्रणाधीन 3 केन्द्रीय अस्पताल, 2 क्षेत्रीय अस्पताल, एक क्षेत्रीय तपेदिक अस्पताल तथा 2 तपदिक अस्पताल/वार्ड अभ्रक खनिकों को सुविधाएँ प्रदान करते रहे। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानों पर राज्य औषधालयों मे अन्तरंग वार्ड भी मौजूद थे। 19 आयुर्वेदिक औषधालय, 7 ऐलोपैथिक औषधालय, 6 चलते फिरते चिकित्सा एकक, 3 स्थिर एवं चलते फिरते औषधालय और 12 मातृ और शिशु कल्याण केन्द्र काम कर रहे थे। 1976 के दौरान घातक दुर्घटना प्रसुविधा योजना के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश मे अभ्रक खान श्रमिकों की विधवाओं और बच्चों को आर्थिक सहायता दी गई। कालीचेडू ग्राम (आन्ध्र प्रदेश) मे स्थायी जल प्रदाय योजना का उद्घाटन 16 अप्रैल, 1976 को किया गया और अभ्रक खनिकों तथा अन्य व्यक्तियों को पीने का पानी सप्लाई किया जा रहा है तथा इस प्रकार उक्त क्षेत्र मे जल प्रदाय की तात्कालिक समस्या तक अब कम हो गई है। इस क्षेत्र मे अब तक 26 कुएँ खोदे जा चुके हैं। दुरिमेर्ला ग्राम (आन्ध्र प्रदेश) मे जल प्रदाय की एक और योजना भी शुरू की गई है। जहाँ तक आवास का सम्बन्ध है, कम लागत आवास योजना के अन्तर्गत बिहार क्षेत्र मे 548 मकानों की मजूरी दी गई है तथा अपना मकान बनाओ योजना के अन्तर्गत 36 मकानों के लिए आर्थिक सहायता मजूर की गई है।

लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण निधि के नियन्त्रण मे लोहा अयस्क खान श्रमिकों को चिकित्सा सुविधाएँ प्राप्त होती रहीं। करिगानूरु (कर्नाटक) स्थित 25 पलगों वाले केन्द्रीय अस्पताल का विस्तार करके उसमे 50 पलगों की व्यवस्था करने का विचार है और इसी प्रकार पिलियम (गोवा) स्थित 30 पलगों वाले केन्द्रीय अस्पताल मे पलगों की सख्या बढ़ाकर 100 करने का विचार है। सांडुर (कर्नाटक) में एक केन्द्रीय अस्पताल की व्यवस्था करने सम्बन्धी प्रस्ताव मजूर कर लिया गया है तथा पचास पचास पलगों वाले दो केन्द्रीय अस्पतालों एक जोडा (उडीसा) मे और एक बाराजाम्दा (बिहार) मे के निर्माण कार्य मे अच्छी प्रगति हो रही है तथा वे वर्ष 1977 के दौरान चालू हो गए। जहाँ तक पीने के पानी के प्रदाय की सुविधाओं का सम्बन्ध है, विभिन्न क्षेत्रों में 59 कुएँ खोदे जा चुके हैं, इसके अतिरिक्त विभिन्न जल प्रदाय योजनाओं के सम्बन्ध मे काम चल रहा है तथा आशा है कि वे निर्धारित समय के भीतर पूर्ण हो जाएँगी। 31 दिसम्बर, 1976 तक कुल 9,572 मकानों की स्वीकृति दी गई है इनमे से 7,178 बनाए जा चुके हैं तथा 639 निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं में हैं।

चूना-पत्थर तथा डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण निधि संस्था राजस्थान में दो, गुजराज और मध्य प्रदेश मे एक-एक आयुर्वेदिक औषधालय और गुजरात मे एक एलोपैथिक औषधालय, चूना-पत्थर तथा डोलोमाइट खनिको और उनके आश्रितो को चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करती है। कुछ स्थानो पर स्थिर एव चलते-फिरते औषधालय और चलते-फिरते चिकित्सा एकक भी चालू कर दिए गए है। मैसर्स बिस्त्रा लाइमस्टोन क उड़ीसा को औषधालय के भवन का विस्तार करने तथा एक एक्सरे प्लांट लगाने के लिए 55,000 रुपये का सहायक अनुदान दिया गया है। तपेदिक के रोगियो के इलाज के लिए व्यवस्थित सुविधाओ में तपेदिक अस्पताल और आरोग्यशालाएँ शामिल है। घातक तथा गम्भीर दुर्घटना सुविधा योजना के अन्तर्गत 12 मामलो मे सुविधाएँ दी गई हैं। चूना पत्थर तथा डोलोमाइट खनिको के बच्चो को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की एक योजना मजूर की गई है। 600 से अधिक प्रत्याशियो को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गई हैं। कुछ क्षेत्रो मे चलते-फिरते सिनेमा एकको ने भी काम शुरू कर दिया है। इस सगठन ने पोरबन्दर/द्वारका मे एक अवकाश गृह की मजूरी भी दी है। भुवनेश्वर क्षेत्र मे तीन जल प्रदाय योजनाएँ मजूर की गई हैं। कम लागत आवास योजना के अन्तर्गत मजूर किए गए 1,290 मकानो मे से 230 मकान पहले ही बन कर तैयार हो गए हैं।

बीड़ी श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम 1976 तथा उसके अधीन बनाए गए नियम 15 फरवरी, 1977 से लागू हुए हैं। आशा है कि बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत बनाए गए नियम शीघ्र ही लागू कर दिए जाएँगे।

सुरक्षा तथा काम-काज की दशाएँ

1976 के दौरान कोयला खानो तथा गैर कोयला खानो मे मारे गए व्यक्तियों की संख्या 385 थी। इसकी तुलना मे 1975 मे यह सख्या 733 थी। 1976 मे जिन लोगो को गम्भीर चोटें आई, उनकी सख्या 2,479 थी, जबकि इसकी तुलना मे 1975 में 2,880 व्यक्तियो को गम्भीर चोट आई थी। 1976 के दौरान आन्ध्र प्रदेश और बिहार की खानो मे छत के गिरने या पानी के आने या विस्फोट के कारण 5 बड़ी दुर्घटनाएँ हुई। अन्तिम आंकडों के अनुसार 1976 के दौरान सभी खानों मे नियोजित प्रति 1,000 व्यक्तियो के पीछे मृत्यु दर 0·51 थी, जबकि 1975 में यह दर 0 96 थी। गम्भीर चोटो की दर 1975 मे 3·80 थी, परन्तु 1976 में यह दर केवल 3·27 थी। 1976-77 वर्ष के दौरान, तीन कोयला खानों मे दुर्घटनाओं के घटने के समय व्याप्त परिस्थितियों की जाँच करने के लिए जाँच न्यायालय स्थापित किए गए, उनमें एक न्यायालय न अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करदी है।

खान सुरक्षा महानिदेशालय, जो खान अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रवर्तन के लिए उत्तरदायी है, नियमित रूप से निरीक्षण करता रहता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सुरक्षा सम्बन्धी अपेक्षाओ का पूर्णत. पालन

किया जाता है। यह महानिदेशालय घातक, गम्भीर तथा छुट-पुट, सभी प्रकार की दुर्घटनाओं के कारणों तथा उनके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों का पता लगाने और इस प्रकार की दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक उपचारी उपाय सुझाने का दोहरा प्रयोजन सिद्ध होता है। खान सुरक्षा महानिदेशालय में स्थापित किए गए विशेष सेल ने अध्ययन शुरू कर दिया है ताकि वह उन दोषपूर्ण तरीकों तथा रीतियों का पता लगा सके जिनके कारण दुर्घटनाएँ होती हैं और उपचारी उपायों के बारे में सुझाव दे सके।

श्रमिकों को व्यक्तिगत बचाव उपस्कर देने के लिए 1975 के दौरान एक विशेष अभियान चलाया गया। नवम्बर 1976 के अन्त तक कोयला खानों के 3,59,980 श्रमिकों और गैर-कोयला खानों के 1,37,889 श्रमिकों को टोप (हेल्मिट) दिए जा चुके थे। इसके अतिरिक्त कोयला खानों में 3,56,081 श्रमिकों को जूते दिए गए। दिसम्बर, 1976 के अन्त तक, कोयला खानों में 76 और गैर कोयला खानों में 104 व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र विद्यमान थे। खान सुरक्षा महानिदेशालय ने राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद, राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद आदि जैसे अन्य अभिकरणों के सहयोग से खान सुरक्षा के बारे में अनेक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए।

मुख्य कारखाना निरीक्षकों का 25वाँ सम्मेलन चण्डीगढ़ में नवम्बर-दिसम्बर 1976 में हुआ। इस सम्मेलन के कार्यक्रम के रूप में कारखाना निरीक्षणालय, पंजाब और प्रौद्योगिक सुरक्षा परिषद् पंजाब के साथ मिलकर इंजीनियरी उद्योग में सुरक्षा तथा स्वास्थ्य के बारे में एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया।

72 कारखानों, तीन लोभरक फर्मों, दो पत्तन प्राधिकरणों और एक तट नियोजक को वर्ष 1975 के सम्बन्ध में राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कार देने का विचार है। नकद पुरस्कार 1,70,000 रुपये के होंगे तथा इसके अतिरिक्त प्रत्येक विजेता को चाँदी का कप या ट्राफी दी जाएगी। वर्ष 1975 के सम्बन्ध में विभिन्न उपक्रमों के 41 कर्मचारियों को 1,19,000 रुपये के श्रम वीर पुरस्कार दिए जाएँगे।

कारखानों में सुरक्षा को बढ़ावा देने लिए मार्च 1966 में स्थापित की गई राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् ने 1976 के दौरान 49 सदस्य कारखानों के परिसरों में फिल्म शो दिखाए और 12 सुरक्षा तथा 12 मिनी पोस्टर जारी किए। उक्त परिषद् ने 20 प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जिनमें इन प्लांट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी शामिल थे। इस परिषद् ने 57 सदस्य कारखानों को उनकी सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए परामर्श सेवाएँ भी प्रदान कीं।

पत्तनों तथा गोदियों में हुई दुर्घटनाओं के आँकड़ों के अनुसार 1976 में हुई, घातक दुर्घटनाओं की संख्या 18 थी, जबकि 1975 में ऐसी 30 दुर्घटनाएँ हुई थीं, 1976 में गैर-घातक दुर्घटनाओं की संख्या 2,026 थी, जबकि 1975 में 1,794 गैर-घातक दुर्घटनाएँ हुई थीं। गोदी सुरक्षा निरीक्षणालय ने विभिन्न पत्तनों में सुरक्षा के सम्बन्ध में 166 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जिनमें 126 कार्यक्रम क्षेत्रीय

ने औद्योगिक श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण को बढ़ावा देने के लिए अपने कार्य जारी रखे। इस इंस्टिट्यूट ने विभिन्न राज्यों के नए कारखाना निरीक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संचालित किया, जिसमे 12 राज्यों के 24 निरीक्षकों ने भाग लिया। उत्पादित केन्द्र, कर्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र और राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केन्द्र, बम्बई के औद्योगिक मनोविज्ञान, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान प्रयोगशाला, औद्योगिक औषधि तथा औद्योगिक कायिकी अनुभाग उद्योगों की समस्याओं को हल करने हेतु उनकी सहायता करने के लिए अपने-अपने कार्य प्रभावी रूप से करते रहे।

जुलाई, 1974 मे स्थापित किए गए राष्ट्रीय श्रम सस्थान ने वर्क रीडिजाइन और वर्क कमिटमेन्ट ट्रेड यूनियन नेताओं तथा सरकारी सराधन अधिकारियों के लिए विकास कार्यक्रम, शॉप फ्लोर/एकक स्तर पर कर्मचारियों और प्रबन्धकों की सहभागिता के गतिविज्ञान प्रभावी कर्मचारी मत्रणा, वर्किंग लाइफ की क्वालिटी आदि के बारे मे अनेक शैक्षिक एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए। इन कार्यक्रमों मे भाग लेने वालों की सख्या 668 थी। इस सस्थान ने सहभागी डिजाइन के तकनीकों के बारे में 8 वर्कशॉपें तथा 10 विचार गोष्ठियों/विचार विमर्श बैठकें आयोजित की। इसने ग्रामीण श्रमिकों मे सगठन कर्ताओं को ग्रामीण श्रमिकों से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों और विनियमों से अवगत कराने तथा नेतृत्व की योग्यता का विकास करने के लिए विभिन्न राज्यों मे 9 ग्रामीण श्रमिक शिविरों का आयोजन किया। इसके अतिरिक्त, स्वैच्छिक विवेचन के बारे मे एक दो दिवसीय विचार गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमे केन्द्रीय सरकार के सराधन तन्त्र के अधिकारियों, ट्रेडयूनियन नेताओं तथा महत्वपूर्ण उद्योगों के औद्योगिक प्रबन्धकों ने भाग लिया। बन्धित श्रम पद्धति के उन्मूलन सम्बन्धी कानून के कार्यान्वयन के लिए एक 4 दिवसीय वर्कशॉप का आयोजन भी किया गया। यह सस्थान श्रम तथा सम्बद्ध मामलों से सम्बन्ध रखने वाली अनुसधान परियोजनाएँ चलाता है, इसने व्यावसायिक कर्मचारियों ने अनेक सगठनों मे दैनिक अध्ययनों की रिडिजाइनिंग और उनके निष्पादन, समस्याओं को सुलझाने वाले कार्यों तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का काम हाथ मे लिया है।

जीवन-स्तर की अवधारणा
(Concept of Standard of Living)

जीवन-स्तर का अर्थ
(Meaning of the Standard of Living)

जीवन-स्तर का क्या अर्थ है? इसकी परिभाषा देना बड़ा कठिन है। जीवन-स्तर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, एक वर्ग से दूसरे वर्ग और एक देश से दूसरे देश मे भिन्न-भिन्न पाया जाता है। किसी व्यक्ति के जीवन-स्तर को मापने का कोई निश्चित पैमाना नही है। जब हम यह कहे कि 'अ' देश मे 'ब' देश से जीवन स्तर ऊँचा है तो इसका अर्थ यह है कि समस्त समाज का स्तर है जिसका निर्धारण उस देश के प्राकृतिक धन, जनसख्या व उसकी कार्यकुशलता और औद्योगिक सगठन की अवस्था द्वारा होता है। जीवन-स्तर को परिभाषित करने हेतु हमे अनिवार्य सुविधाएँ

एवं विलासिताओं की वस्तुओं के उपयोग को ध्यान में रखना पड़ता है। जिस समाज अथवा देश में इनका उपयोग अधिक किया जाता है वहाँ जीवन-स्तर उन्नत होता है। अतः किसी भी समाज अथवा व्यक्ति के जीवन-स्तर के विचार को जानने के लिए उस व्यक्ति का मकान में स्थान, सामाजिक वातावरण, जलवायु आदि को ध्यान में रखना पड़ेगा।

जीवन-स्तर दो प्रकार का हो सकता है—ऊँचा और नीचा। ऊँचा जीवन-स्तर वह है जिसमें मनुष्य अपनी अधिक से अधिक आवश्यकताओं (अनिवार्य सुविधाएँ और विलासिताएँ आदि) की सन्तुष्टि करता है—अर्थात् अच्छा भोजन, अच्छा मकान, अच्छे वस्त्र, बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा की व्यवस्था, चिकित्सा की व्यवस्था आदि। इसके विपरीत नीचा जीवन-स्तर वह जीवन-स्तर है जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपनी सीमित आय से बहुत ही कम आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है।

जीवन-स्तर एक तुलनात्मक शब्द है। जब भी हम जीवन-स्तर का अध्ययन करते हैं तो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य, एक समाज से दूसरे समाज और एक देश से दूसरे देश के जीवन-स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। भारतीय औद्योगिक श्रमिक का जीवन-स्तर कृषि श्रमिक से ऊँचा है अथवा नहीं, यह भी तुलनात्मक रूप में ही जीवन-स्तर का अध्ययन होगा।

जीवन-स्तर के निर्धारक तत्व
(Determinants of Standard of Living)

किसी देश के समस्त व्यक्तियों का जीवन-स्तर समान नहीं होता। एक ही देश में विभिन्न व्यक्तियों, वर्गों, समाजों तथा स्थानों का जीवन-स्तर भिन्न-भिन्न पाया जाता है। जीवन-स्तर में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। तेजी से ऊँची मौद्रिक आय होने पर भी लोगों का जीवन-स्तर निम्न होता है क्योंकि अनिवार्य वस्तुएँ भी आसानी से सुलभ नहीं हो पाती हैं। वर्तमान समय में भारत इसी दौर से गुजर रहा है। अतः जीवन-स्तर को प्रभावित करने अथवा निर्धारण करने वाले तत्व अनेक हैं जिन्हें मोटे तौर पर वातावरण व व्यक्तिगत तत्वों के रूप में विभाजित कर सकते हैं। वातावरण के अन्तर्गत समय, आय और वर्ग को शामिल किया जाता है।

1. भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Conditions)—जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है वहाँ के निवासियों का जीवन-स्तर उस दूसरे देश के निवासियों के जीवन-स्तर से जहाँ गर्मी पड़ती है और सूती वस्त्र धारण किए जाते हैं, अलग होता है। भारत में गंगा-सिन्धु के मैदान में रहने वाले लोगों का जीवन-स्तर देश के अन्य निवासियों से ऊँचा पाया जाता है।

2. समय तत्व (Time Factor)—प्राचीन समय में आवश्यकताएँ सीमित थीं लेकिन वर्तमान समय में विज्ञान के क्षेत्र में काफी उन्नति होने से सस्ती एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण काफी होने लगा है। रेडियो, बिजली का चूल्हा, सीमेन्ट आदि का उपयोग निरन्तर बढ़ रहा है। भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं का भी यही लक्ष्य रहा है कि अधिकाधिक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन हो जिससे कि यहाँ के लोगों का जीवन-स्तर उन्नत हो सके।

3. सामाजिक रीति-रिवाज (Social Customs)—मनुष्य जिस समाज में जन्म लेता है और रहता है, उस समाज की रीति-रिवाजो का उस पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, भारत में अधिकांश जीवन की कमाई मृत्यु-भोज, दहेज, विवाह, दावत और क्षणिक शान-शौकत पर व्यय कर दी जाती है और विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कम सीमा तक हो पाती है। अत जीवन स्तर अधिकांशत निम्न पाया जाता है। इसके परिणामस्वरूप उनका जीवन स्तर ऊँचा होता है।

4 शिक्षा का विकास (Development of Education)—शिक्षा का प्रसार होने से व्यर्थ व्यय को समाप्त कर दिया जाता है तथा सीमित आय को विवेकपूर्ण ढग से व्यय करके अधिकतम सन्तोष प्राप्त किया जाता है जिससे जीवन-स्तर ऊँचा उठता है।

5. धार्मिक प्रभाव—भारतीय नागरिक सादा जीवन उच्च विचार के आधार पर जीवन व्यतीत करता है लेकिन धार्मिक प्रभाव से कई अवसरो पर अपनी आय से अधिक व्यय कर देना है जैसे मगोज, नुक्ता प्रथा आदि पर।

6. आय तत्व (Income Factor)—जीवन-स्तर के निर्धारण मे आय तत्व भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्रय शक्ति द्वारा उपभोग की मात्रा तथा किस्म प्रभावित होती है। यदि किसी व्यक्ति की आय का स्तर ऊँचा है तो अन्य बातें समान रहने पर उसका जीवन-स्तर ऊँचा होगा। इसके विपरीत उसका जीवन-स्तर नीचा होगा।

7. व्यय करने का तरीका (Method of Spending)—अविवेकपूर्ण ढग से व्यय करने पर उच्च आय वाले व्यक्ति को भी अधिक सन्तोष प्राप्त नही हो सकता जबकि दूसरी ओर उससे कम आय वाला व्यक्ति भी विवेकपूर्ण व्यय करके अपने सन्तोष को अधिकतम कर सकता है और इससे उसका जीवन-स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है।

8. परिवहन के साधन (Means of Transport)—जीवन स्तर को परिवहन के साधन भी प्रभावित करते हैं। जैसे जैसे परिवहन के साधनो का विकास होता है, लागो का सम्पर्क शहरी क्षेत्रो से होता है। उनकी उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है जिससे जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

9. जीवन का दृष्टिकोण (Outlook of Life)—यदि एक देश अथवा समाज के जीवन का दृष्टिकोण भौतिकवादी है तो वहाँ विभिन्न वस्तुओं का उपभोग किया जाएगा और उनका जीवन स्तर उन्नत होगा। उदाहरणार्थ पश्चिमी राष्ट्रो के लोगो का दृष्टिकोण 'खाओ, पीओ और मौज उडाओ' (Eat, drink and be merry) होने के कारण उनका जीवन-स्तर ऊँचा है तो भारत जैसे विकासशील देश मे सादा जीवन व्यतीत करना जीवन स्तर को ऊँचा नही उठाता क्योंकि सीमित आवश्यकता की पूर्ति की जाती है।

10 स्वास्थ्य का प्रभाव—अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति अच्छा खा सकता है और अच्छा पहन सकता है, लेकिन एक अस्वस्थ व्यक्ति अच्छा नहीं खा सकता और

न ही अच्छा पहन सकता है। अत अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति उच्च जीवन-स्तर वाला तथा अस्वस्थ व्यक्ति निम्न जीवन-स्तर वाला होता है।

11. परिवार का आकार (Size of the Family) – एक बडा परिवार जिसमे परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होती है अधिक उपभोग नही कर सकता और उसका जीवन-स्तर नीचा होगा। दूसरी ओर छोटे परिवार के सदस्यों का उपभोग-स्तर अधिक ऊँचा होने से जीवन स्तर भी ऊँचा होता है।

12. कीमतें और निर्वाह लागत (Prices and Cost of Living) — जीवन-स्तर पर कीमतो व निर्वाह लागत का भी प्रभाव पडता है। कीमतो म वृद्धि होने से निर्वाह लागत मे वृद्धि होती है और वास्तविक मजदूरी मे गिरावट आती है जिससे उपभोग कम होता ह और फलस्वरूप जीवन-स्तर निम्न होता है। इसके विपरीत कीमतो मे गिरावट आने से निर्वाह लागत भी घटती है। वास्तविक मजदूरी बढने से अधिक उपभोग सम्भव होता है और जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

अत. किसी भी देश के निवासियो अथवा किसी भी वर्ग के व्यक्तियो के जीवन-स्तर की समस्या का अध्ययन करने के लिए हमे इन विभिन्न तत्त्वो को ध्यान मे रखना चाहिए।

जीवन-स्तर की माप
(Measurement of Standard of Living)

किसी भी देशवासियो, समाज, परिवार, वर्ग या व्यक्तियो का जीवन-स्तर उनके द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओ की मात्रा व गुण पर निर्भर करता है। अतः समाज के किसी वर्ग का जीवन-स्तर का माप करने के लिए आय और व्यय की मदो को जानना आवश्यक है। इसके लिए पारिवारिक बजट (Family Budget) तैयार करने पडते है। सभी व्यक्तियो के बजट तैयार करना सम्भव नही है। पूर्ण सर्वेक्षण (Census Survey) तथा प्रतिनिधि सर्वेक्षण (Sample Survey) के आधार पर परिवार बजट तैयार किए जाते है। प्रतिनिधि सर्वेक्षण परिवार बजट के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रतिनिधि परिवारों का चुनाव किया जाता है जिसमे सभी विशेषताओ वाले परिवार आने चाहिएँ। प्रतिनिधि परिवारो का चयन सावधानी से करना चाहिए जिससे कि सभी परिवारो का प्रतिनिधित्व किया जा सके। इन बजटो के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अमुक परिवार या वर्ग वाले परिवार द्वारा अनिवार्य आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुओ की मात्रा तथा गुण का किस अनुपात में उपभोग किया गया है। इसी आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि किस वर्ग या समाज का जीवन-स्तर दूसरे वर्ग या समाज से ऊँचा है अथवा नीचा।

हमारे देश में श्रमजीवियो के जीवन-स्तर का अनुमान लगाने के लिए इस रीति को अपनाया जा सकता है। किसी भी समाज या देश के निवासियो का जीवन-स्तर समान नही रहता। अलग-अलग आय वाले लोगो का जीवन-स्तर अलग-अलग होता है। कुछ व्यक्ति अधिक खर्च करते हैं तो अन्य कम खर्च करते हैं। कुछ

अनिवार्य आवश्यकताओं पर अधिक व्यय करते हैं तो दूसरे आरामदायक और अन्य आवश्यकताओं पर अधिक व्यय करते हैं। इन भिन्नताओं के कारण विभिन्न वर्गों के जीवन-स्तर में भी भिन्नताएँ पाई जाती हैं। सन् 1921-22 में बम्बई में औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजट के सम्बन्ध में जाँच की गई थी, लेकिन विस्तृत जाँच भारत सरकार द्वारा निर्वाह लागत सूचकांक तैयार करने हेतु सन् 1943-45 में परिवार बजट जाँचों (Family Budget Enquiries) द्वारा की गई। इसमें 28 केन्द्रों के 27,000 परिवार बजटों के सम्बन्ध में अनुसंधान किया गया था।

इसी प्रकार की जाँच सन् 1947 में आसाम, बंगाल और दक्षिणी भारत के कुछ चुने हुए बागानों के सम्बन्ध में की गई। सन् 1945 में भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार द्वारा केन्द्रीय सरकार के मध्यम श्रेणी के कर्मचारियों के निर्वाह लागत सूचकांक तैयार करने हेतु परिवार बजट जाँच का कार्य किया गया। भारतीय सांख्यिकी संस्थान, बम्बई (Ind an Statistical Institute) द्वारा भी बम्बई के मध्यम वर्ग परिवारों के सम्बन्ध में स्वास्थ्य एवं खुराक सर्वेक्षण किया गया। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों एवं श्रम संस्थान, शिमला, (Labour Bureau, Simla) द्वारा महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों एवं परिवारों की परिवार बजट जाँच की गई। इस प्रकार की जाँच सन् 1946 व 1950 में श्रम संस्थान द्वारा बागानों के सम्बन्ध में की गई। सन् 1950 में डॉ. अग्निहोत्री (Dr Agnihot i) द्वारा कानपुर में 900 श्रमिकों के परिवारों के सम्बन्ध में जाँच की गई। सन् 1958 में श्रम संस्थान द्वारा 50 चुने हुए केन्द्रों पर कारखाना, खानों व बागानों में लगे श्रमिकों के सम्बन्ध में परिवार जीवन सर्वेक्षण (Family Living Surveys) किए गए। यह श्रमिकों के उपभोक्ता सूचकांक तैयार करने हेतु किया गया।

हाल ही के वर्षों में देश के विभिन्न राज्यों में परिवार बजट जाँच कार्यक्रम शुरू किया गया। जहाँ तक कृषि श्रमिकों का सम्बन्ध है सन् 1950-51 व 1956-57 में कृषि श्रमिक जाँच (Agricultural Labour Enquiries) की गई थी जिसमें कृषि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति का पता चलता है।

सर्वेक्षण एवं जाँचों से हमें औद्योगिक श्रमिकों के जीवन स्तर के सम्बन्ध में विस्तृत आँकड़े प्राप्त होते हैं। कार्य की दशाएँ, मजदूरी आदि में एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग में भिन्नता होने के कारण भारतीय श्रमिकों के सामान्य स्तर और निर्वाह लागत स्तर को जानना सम्भव नहीं है। परिवार बजट तैयार करना भी एक साधारण कार्य नहीं है। पारिवारिक बजट तैयार करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि परिवार के सदस्यों की संख्या कितनी है? कितने सदस्य निर्भर हैं कमाने वाले पर आदि।

परिवार के व्यय की विभिन्न मदों जैसे—खाद्यान्न, वस्त्र, आवास, ईंधन एवं बिजली, अन्य मदें आदि के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित करने पड़ेंगे। अलग-अलग श्रमिक वर्गों की आय में भिन्नता होने के कारण आय का व्यय किए जाने वाला भाग भी भिन्न भिन्न होता है।

भारतीय श्रमिकों का जीवन-स्तर
(Standard of Living of Indian Workers)

भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर को जानने के लिए हमें निम्न बातों को ध्यान में रखकर निष्कर्ष निकालना होगा कि जीवन-स्तर नीचा है अथवा ऊँचा है—

1. आय (Income)—प्रति व्यक्ति आय के आधार पर जीवन-स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 1961 में 400 रु मासिक से कम आय वाले श्रमिकों की औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 1540 रु. थी जो कि सन् 1969 में बढ़कर 2564 रु. हो गई। यह वृद्धि विश्व के विकसित देशों की तुलना में कम है। वे अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते हैं। अत उनका जीवन स्तर निम्न है। इसी अवधि में (1961-69) मौद्रिक आय का सूचकांक(1961 = 100) 100 से बढ़कर 166 हो गया लेकिन वास्तविक आय सूचकांक 95 से घटकर 94 रह गया।

श्रम संस्थान (Labour Bureau) द्वारा अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक तैयार किया गया। योजनाकाल में मूल्य निरन्तर बढ़े हैं। कीमत सूचकांक सन् 1961 में 126 से बढ़कर सन् 1970 में 224 हो गया (1949=100)। अत मूल्य वृद्धि से श्रमिकों का जीवन-स्तर गिरा है।

2. राष्ट्रीय आय का वितरण (Distribution of National Income)—भारतीय श्रमिकों की औसत वार्षिक आय 1500 रु से भी कम है। इतनी कम आय में श्रमिक अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है। अत. जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

3. आयु (Age)—ऊँचे जीवन-स्तर से दीर्घ आयु होती है तथा निम्न जीवन स्तर से अल्प आयु होती है। पश्चिमी राष्ट्रों—इंगलैण्ड में पुरुष व स्त्री की क्रमश आयु 66 व 71 वर्ष जबकि भारत में यह क्रमश. 40 व 38 वर्ष ही है।

4. कार्यकुशलता (Efficiency)—ऊँचा जीवन-स्तर होने से श्रमिक की कार्यक्षमता भी अधिक होती है जबकि निम्न जीवन-स्तर वाला श्रमिक कम कार्यकुशल होता है। प्रो रॉबर्ट के अनुसार अंग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा 4 गुना अधिक कार्यकुशल है।

5. आधारभूत वस्तुओं की प्राप्ति (Availability of Necessary Goods)—गुणात्मक दृष्टि से भारतीय श्रमिकों को भोजन प्राप्त नहीं होता। भारतीय श्रमिकों के उपभोग्य पदार्थों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (*I L. O.*) वस्त्र उद्योग जाँच समिति तथा डॉ. राधाकमल मुकर्जी आदि द्वारा अध्ययन किया गया है। इनके अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि हमारे देश में केवल 39% लोगों को पूर्ण भोजन मिलता है और शेष व्यक्ति भुखमरी में रहते हैं। कपड़ा भी हमारे देश में औसत उपभोग 10 मीटर होता है जबकि अमेरिका में यह 65 मीटर है। आवास की स्थिति भी दयनीय है।

6. परिवार बजट (Family Budget)—औद्योगिक श्रमिको के सम्बन्ध मे समय-समय पर परिवार बजट तैयार किए गए हैं। उनके आधार पर भी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। श्रमिको की आय का 60–70% भाग भोजन पर ही व्यय हो जाता है। भोजन की मात्रा व गुण भी कम होते हैं। कपडो पर उसे 14% तक, मकान पर 4 से 6%, ईंधन व प्रकाश पर 5 से 7% व्यय किया जाता है। श्रमिको के पास शिक्षा, चिकित्सा व मनोरंजन के लिए कुछ भी नही बचता। इससे श्रमिक का जीवन स्तर निम्न है।

भारतीय श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर के कारण (Causes of Low Standard of Living of Indian Labour)

भारतीय श्रमिको के जीवन-स्तर के निम्न होने के निम्नलिखित कारण हैं --

1 निम्न आय और ऊँची निर्वाह लागत (Low Income & High Cost of Living)–भारतीय श्रमिको की आय अथवा मजदूरी इतनी कम है कि वह अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी पूरा नही कर पाते। दूसरे महायुद्ध तथा इसके पश्चात् मजदूरी मे कुछ सुधार हुआ किन्तु कीमतो मे वृद्धि होने से निर्वाह लागत मे वृद्धि होने से वास्तविक आय कम हो गई। श्री सी. डी देशमुख ने सन् 1947 मे कहा था कि भारत मजदूरी-कीमत वृद्धि से पीड़ित है। श्रमिको को दी जाने वाली अधिक मजदूरी अधिक निर्वाह लागत द्वारा समाप्त कर दी जाती है। एशिया के विभिन्न देशो मे निर्वाह लागत मे असामान्य अनुपात मे वृद्धि हुई है जबकि यूरोपीय देशो मे इतनी वृद्धि नही हुई है। यह नीचे दी हुई तालिकाओं मे देखा जा सकता है[1]—

निर्वाह लागत सूचकांक (आधार वर्ष 1937=100)

वर्ष	इग्लैण्ड	अमेरिका	कनाडा	भारत
1939	103	97	100	100
1945	132	125	118	212
1948	108	167	153	286
1949	111	165	159	290

सन् 1959 में औसत सूचकांक (आधार वर्ष 1955=100)

	थोक मूल्य	निर्वाह लागत
भारत	126	128
कनाडा	105	106
मिस्र	117	106
जापान	101	104
नीदरलैंड	104	111
स्वीडन	105	114
स्विटज़रलैण्ड	100	103
इंग्लैण्ड	109	112
अमेरिका	107	109

1 *Tilak, V. R. K* : A Survey of Labour in India, p 21.

भारतीय श्रमिकों की वास्तविक आय और निर्वाह लागत सूचकांकों की तुलना से यह पता चलता है कि उनका जीवन-स्तर गिरा है। महँगाई भत्ते में जितनी वृद्धि की गई है उससे ज्यादा सामान्य कीमत-स्तर और निर्वाह लागत में वृद्धि हुई है। सामान्य कीमत-स्तर और निर्वाह लागत वृद्धि का जीवन-स्तर पर प्रभाव पड़ता है।

2 जलवायु (Climate)—गर्म देशों में लोगों का जीवन-स्तर नीचा होता है क्योंकि उनको अधिक कपड़े नहीं पहनने पड़ते और न ही बड़े मकानों की जरूरत पड़ती है जबकि ठण्डे देशों में गर्म कपड़े पहनने पड़ते हैं और बड़े मकानों की आवश्यकता होती है।

3 अशिक्षा एवं रूढ़िवादिता—भारतीय श्रमिक अशिक्षित होने के कारण वे भाग्यवादी हैं। उनमें प्रगति की भावना नहीं होती है। वे मेहनती नहीं हैं तथा विभिन्न रूढ़ियों से ग्रस्त हैं। मृत्यु-भोज, विवाह आदि पर फिजूल खर्च होता है। अत: उनका जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

4 निम्न कार्यकुशलता (Low Efficiency)—श्रमिक की कार्यकुशलता अधिक होने पर उत्पादन अधिक होता है। अधिक उत्पादन से ऊँची मजदूरी मिलती है और उससे जीवन-स्तर भी उन्नत होता है। लेकिन भारतीय श्रमिक की कार्य-कुशलता कम होने से मजदूरी कम मिलती है और कम मजदूरी से जीवन-स्तर भी निम्न होता है। सर क्लीमेंट सिम्पसन के अनुसार लंकाशायर का एक श्रमिक अपने जैसे 2 67 भारतीय श्रमिक के बराबर कार्य करता है।

5 असन्तुलित भोजन (Unbalanced Diet)—श्रमिक का स्वास्थ्य व कार्यक्षमता उसके द्वारा खाई गई खुराक पर निर्भर करते हैं। जब श्रमिक की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती हैं तो इससे औद्योगिक अकुशलता, अनुपस्थिति, प्रवास, दुर्घटनाएँ आदि बुराई उत्पन्न होती हैं और इसके परिणामस्वरूप उसका जीवन-स्तर नीचा होता है। पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता है और जो भोजन मिलता है वह भी सन्तुलित नहीं होता।

6. जनाधिक्य (Overpopulation)—हमारे देश की जनसख्या $2\frac{1}{2}\%$ प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। अधिक जनसख्या होने से कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति में से प्रति व्यक्ति आय कम प्राप्त होती है। इससे जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

7 खराब आवास योजना (Bad Housing Scheme)—भारतीय औद्योगिक नगरों में जनसख्या का भार अधिक है। वहाँ आवास की समुचित व्यवस्था नहीं है। एक ही कमरे में कई व्यक्ति रहते हैं। परिवार साथ नहीं रख पाते हैं। इससे श्रमिकों के स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पड़ता है तथा वे अच्छा जीवन-स्तर बनाए रखने में असमर्थ होते हैं।

8 धन का असमान वितरण (Unequal Distribution of Wealth)—हमारे देश की राष्ट्रीय आय जनसख्या की तुलना में कम है। इससे प्रति व्यक्ति आय कम होती है तथा आय व धन का वितरण भी असमान होने से धनी अधिक धनी और निर्धन अधिक निर्धन होते जा रहे हैं। इससे जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

जीवन-स्तर ऊँचा करने के उपाय
(Measures to Raise the Standard of Living)

भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर को उन्नत करने के लिए अग्रांकित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1. आय में वृद्धि (Increase in Income)—जीवन-स्तर पर आय का गहरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों की आय बढ़ने पर उनका जीवन-स्तर भी बढ़ता है। श्रमिकों की मजदूरी ही समस्त श्रम-समस्याओं का केन्द्र-बिन्दु है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ श्रमिकों की आय (मजदूरी) में भी वृद्धि की जानी चाहिए। निर्वाह लागत में वृद्धि कीमतों में वृद्धि का परिणाम है। इससे श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है। इससे वह कम वस्तुओं तथा सेवाओं का उपभोग कर पाता है। अतः घटती हुई वास्तविक मजदूरी को रोकने के लिए निर्वाह लागत में वृद्धि के साथ-साथ मजदूरी में भी वृद्धि की जानी चाहिए। इसके साथ ही श्रमिकों को प्रेरणात्मक मजदूरी (Incentive Wages) भी दी जानी चाहिए। इस प्रकार श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि करके उनके जीवन-स्तर में वृद्धि की जा सकती है। आर्थिक नियोजन द्वारा उत्पादन तथा रोजगार दोनों में वृद्धि की जा सकती है और इस वृद्धि के परिणामस्वरूप जीवन-स्तर को ऊँचा किया जा सकता है।

2. आय व धन का समान वितरण (Equal Distribution of Income & Wealth)—राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद भी समाज का जीवन-स्तर नीचा रह सकता है। आय व धन के दूषित वितरण को दूर करके निर्धनता व सम्पन्नता की खाई को कम किया जा सकता है और धनी व्यक्तियों की आय व धन का एक भाग निर्धन वर्ग पर व्यय किया जा सकता है। इससे निर्धन व्यक्तियों (श्रमिकों) के जीवन-स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

3. परिवार नियोजन (Family Planning)—भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर का निम्न होने का एक कारण उनके परिवार का बड़ा होना है। कमाने वाला एक तथा उस पर आश्रित सदस्यों की संख्या अधिक होती है जिससे उनकी अनिवार्य आवश्यकताएँ भी आसानी से पूरी नहीं हो सकती। उनका जीवन-स्तर भी इसीलिए निम्न पाया जाता है। अतः श्रमिकों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने हेतु परिवार नियोजन अपनाकर छोटा परिवार रखना होगा।

4. शिक्षा का प्रसार (Spread of Education)—एक शिक्षित श्रमिक अच्छा उत्पादक व अच्छा उपभोक्ता बन जाता है। भारतीय श्रमिकों में अधिकांश श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी व रूढ़िवादी हैं। भारत सरकार ने सन् 1958 में श्रमिकों की शिक्षा हेतु केन्द्रीय मण्डल (Central Board for Worker's Education) की स्थापना की है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तों में क्षेत्रीय केन्द्र (Regional Centres) स्थापित किए। शिक्षा के प्रसार से अच्छे ढंग से श्रमिक कार्य करेगा और विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करके अधिकतम सन्तोष प्राप्त करेगा। इससे जीवन-स्तर उन्नत होगा।

5. सामाजिक रीति-रिवाजों में सुधार (Improve in Social Customs)—भारतीय समाज एक पिछड़ा समाज है। इसमें कई रीति-रिवाज प्राचीन समय से ही चले आ रहे हैं। मृत्यु-भोज, सगाई, शादी आदि पर अधिक व्यय करने से श्रमिकों की अनिवार्य आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं हो पाती हैं और उनका जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है। अतः इन सामाजिक बुराइयों को समाप्त करके श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

6. सन्तुलित बजट (Balanced Budget)—श्रमिकों को अपने आय तथा व्यय का बजट तैयार करना चाहिए। उनकी आय कितनी है तथा उसको किस-किस मदों पर व्यय किया जायगा। जब इस प्रकार प्राप्त आय को व्यय किया जायगा तो इससे श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो सकेगा। पारिवारिक बजट को सन्तुलित रखने के लिए हमें भारतीय श्रमिकों में शिक्षा का प्रचार, प्रसार और शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी।

7. सन्तुलित एवं पर्याप्त भोजन (Balanced & Sufficient Diet)—श्रमिकों की कार्यकुशलता, उत्पादकता, मजदूरी व जीवन-स्तर सन्तुलित एवं पर्याप्त भोजन पर निर्भर करते हैं। भारतीय श्रमिक को न तो सन्तुलित भोजन मिलता है और न ही पर्याप्त भोजन। अतः श्रमिकों को सन्तुलित एवं पर्याप्त भोजन उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। इससे श्रमिकों का जीवन-स्तर उन्नत होगा।

8. श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना—भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने के लिए श्रमिकों की कल्याणकारी क्रियाओं (Welfare Activities) में वृद्धि करनी चाहिए। इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी और जीवन-स्तर उन्नत होगा। इसके साथ ही श्रमिकों की उनकी अनिश्चित भाग को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करके दूर किया जा सकता है। इससे श्रमिक भविष्य के सम्बन्ध में निश्चिन्त रहता है और वर्तमान में अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर पाता है। इससे उसका जीवन-स्तर उन्नत होगा।

इस प्रकार भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिए हमें कई कदम उठाने पड़ेंगे। डॉ. राधाकमल मुकर्जी के अनुसार किसी भी उद्योग की समृद्धि एवं सम्पन्नता उस उद्योग में काम करने वाले कर्मचारियों की कार्यक्षमता एवं उनके जीवन-स्तर पर निर्भर करती है। सामाजिक सुरक्षा द्वारा यह सम्पन्नता पर्याप्त सीमा तक प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय श्रम ब्यूरो द्वारा प्रकाशित आँकड़े (1977)

श्रम ब्यूरो इण्डियन लेबर जरनल में नियमित रूप से औद्योगिक श्रमिकों के सम्बन्ध में अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक प्रकाशित करता रहा है, जो 1960=100 के आधार पर 50 केन्द्रों के सूचकांकों की 'वेटिड औसत' है। ब्यूरो द्वारा प्रकाशित अग्रिम तालिका में 1960=100 के आधार पर अखिल भारतीय श्रमजीवी उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (खाद्य तथा सामान्य) और 1961–62=100 के आधार पर अखिल भारतीय थोक मूल्य सूचकांक (खाद्य तथा सामान्य) के बारे में आँकड़े दिये गये हैं :—

अखिल भारतीय श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचकांक और थोक मूल्य सूचकांक

वर्ष/मास	अखिल भारतीय श्रमिक उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आधार 1960=100)		अखिल भारतीय थोक मूल्य सूचकांक (आधार 1961-62=100)	
	खाद्यान्न	सामान्य	खाद्यान्न	सामान्य
1961	109[1]	104[1]	—	—
1962	112[1]	107[1]	107*	104*
1963	117[1]	110[1]	112	108
1964	134[1]	125[1]	131	119
1965	149[1]	137[1]	142	129
1966	164[1]	151[1]	162	144
1967	192[1]	172[1]	204	166
1968	196[2]	177[2]	200	165
1969	190	175	193	169
1970	200	184	203	179
1971	203	190	207	186
1972	216	202	231	201
1973	262	236	279	239
1974	342	304	352	304
1975	357	321	361	309
1975				
अक्तूबर	350	316	368	308
नवम्बर	346	315	349	303
दिसम्बर	330	306	328	294
1976				
जनवरी	316	298	318	290
फरवरी	304	290	315	288
मार्च	296	286	305	288
अप्रैल	301	289	314	288
मई	302	290	318	292
जून	304	291	323	296
जुलाई	313	297	340	309
अगस्त	314	298	342	310
सितम्बर	319	302	346	314
अक्तूबर	322	304	344	312
नवम्बर	324	306	342	313
दिसम्बर	323	306	344	315

नोट :— * औसत केवल 9 महीनों की है।

1. *1949 पर आधारित सूचकांक की सीरीज से प्राक्कलित।*
2. औसत 1960 की सीरीज में पाँच महीनों के आँकड़ों (अगस्त 1968 से दिसम्बर 1968 तक) तथा 1949 की सीरीज से तथा प्राक्कलित सात महीनों के आँकड़ों (जनवरी 1968 से जुलाई 1968 तक) पर आधारित हैं।

———

5 मजदूरी नीति, रोजगार एवं आर्थिक विकास

(WAGE POLICY, EMPLOYMENT AND ECONOMIC DEVELOPMENT)

मजदूरी नीति
(Wage Policy)

भारत विश्व के आठ प्रमुख औद्योगिक राष्ट्रों में से एक है फिर भी यह एक अविकसित राष्ट्र है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से ही सरकार ने आर्थिक विकास और सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। इस प्रकार के विकास कार्यों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य श्रमिकों की वास्तविक आय और उनके जीवन-स्तर में वृद्धि करना है। निम्न मजदूरी होने से श्रमिकों की कार्य-क्षमता प्रभावित होती है और इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों की कार्य-क्षमता निम्न पाई जाती है। इसके साथ ही निम्न आय से वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग कम होती है और बाजार भी संकुचित होता है।

मजदूरी नीति उद्योग के उत्पादन तथा राष्ट्रीय लाभांश का निर्धारण करती है, लेकिन इस नीति के अल्पकालीन व दीर्घकालीन उद्देश्यों के साथ-साथ निजी व सामाजिक उद्देश्यों में संघर्ष पाया जाता है। हमारा देश प्रजातन्त्र प्रणाली पर आधारित है इसलिए यहाँ एक उचित मजदूरी नीति के निर्धारण में बड़ी कठिनाई आती है। मजदूरी नीति, जिससे सन्तुष्ट और दक्ष श्रम शक्ति का विकास होता है, यह हमारी विकास सम्बन्धी योजनाओं की सफलता में हाथ बँटा सकती है। मजदूरी नीति के प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ति निम्नलिखित की प्राथमिकताओं में निहित है—[1]

1. पूर्ण रोजगार एवं सभी साधनों का इष्टतम आवण्टन (Full employment and optimum allocation of all resources),

2. आर्थिक स्थिरता की अधिकतम मात्रा (The highest degree of economic stability),

1 *Giri, V. V.* : Labour Problems in Indian Industry, p. 234.

3 समाज के सभी वर्गों हेतु अधिकतम आय सुरक्षा (Maximum income security for all sections of the community)।

इसके साथ ही एक मजदूरी नीति का उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार उच्चतम मजदूरी स्तर प्रदान करना होना चाहिए। आर्थिक विकास से देश की आर्थिक सम्पन्नता में से श्रमिक को उचित हिस्सा मिलना चाहिए। आर्थिक विकास से प्राप्त लाभ श्रमिकों को उनकी मजदूरी में वृद्धि के रूप में होने चाहिएँ।

मजदूरी नीति के निर्माण में समस्याएँ
(Problems in the Formulation of a Wage Policy)

मजदूरी नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु एक उचित मजदूरी नीति का निर्माण करना होगा। इस नीति के निर्माण में निम्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं[1]—

1. मजदूरी निर्धारण एवं भुगतान (Wage Determination and Payment),

2 मजदूरी-स्तर एवं मजदूरी संरचना (Wage Levels and Wage Structure), और

3 मजदूरी सुरक्षा (Wage Security)।

1. मजदूरी निर्धारण एवं भुगतान— विभिन्न देशों और उद्योगों में मजदूरी भुगतान के विभिन्न तरीके पाए जाते हैं। फिर भी मोटे तौर पर मजदूरी समयानुसार तथा कार्यानुसार दी जाती है। अलग-अलग मजदूरी भुगतान के तरीके के अलग अलग गुण तथा दोष हैं। इन दोनों तरीकों को मिलाकर विभिन्न प्रकार की प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियाँ (Incentive wage systems) तैयार की गई हैं।

यह माना जाता है कि मजदूरी में प्रगतिशील वृद्धि उत्पादकता में वृद्धि होने पर निर्भर करती है। भारतीय उद्योगों में अभी उत्पादकता की अधिकतम सीमा को प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ है। मजदूरी भुगतान का तरीका ऐसा होना चाहिए जिससे श्रमिकों को प्रेरणा मिले और वे अधिक प्रयास से कार्य करें तथा बढ़ते हुए उत्पादन में उनका हिस्सा भी बढ़े। कार्यानुसार मजदूरी द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है।

कार्यानुसार मजदूरी भुगतान के तरीके के लिए समय और गति का अध्ययन करना पड़ेगा। कार्यभार का अध्ययन करना पड़ेगा। इस प्रकार इसमें कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

वेतन मण्डलों (Wage Boards) द्वारा मजदूरी निर्धारित करते समय कार्यानुसार मजदूरी भुगतान का तरीका ढूँढना चाहिए, साथ ही श्रमिक के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए अधिकतम कार्य के घण्टे तथा न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी दी जानी चाहिए। जो भी पद्धति निकाली जाए वह सरल, स्पष्ट और आसानी से प्रत्येक श्रमिक के समझ में आनी चाहिए अन्यथा इससे सन्देह और औद्योगिक विवादों को प्रोत्साहन मिलेगा।

1. *Giri, V. V.*: Labour Problems in Indian Industry, p 235

2. मजदूरी स्तर और मजदूरी संरचना— किसी भी देश का आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण अधिक तभी सम्भव हो सकता है जब न केवल मजदूरी-स्तर अधिकतम हो बल्कि विभिन्न उद्योगों और व्यवसायों में सापेक्षिक मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि इससे श्रम का विभिन्न उद्योगों व व्यवसायों में ऐसा आवण्टन हो कि राष्ट्रीय उत्पादन अधिकतम हो सके अर्थ-व्यवस्था के सभी साधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सके और आर्थिक प्रगति की दर में वांछनीय वृद्धि सम्भव हो सके।

मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए कि विभिन्न उद्योगों, व्यवसायों व संस्थानों पर पुरुष व स्त्री श्रमिकों की मजदूरी में अधिक अन्तर नहीं हो। यदि इस प्रकार की भिन्नता है तो उसे दूर करना होगा।

हमारे देश में मजदूरी में भिन्नता विभिन्न केन्द्रों में ही नहीं पाई जाती बल्कि एक स्थान के विभिन्न उद्योगों में भी भिन्नता पाई जाती है।

हाल ही के वर्षों में विभिन्न अधिकरणों एवं न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी स्तरों में वृद्धि करने का प्रयास किया गया है फिर भी कई उद्योगों तथा व्यवसायों में आज भी निर्वाह लागत के बराबर भी मजदूरी नहीं मिलती।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् कुछ उद्योगों में बोनस तथा लाभ सहभागिता के अन्तर्गत श्रमिकों को कुछ भुगतान दिया जाने लगा था। अब बोनस भुगतान अधिनियम 1965 के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को उसकी कुल वार्षिक मजदूरी का न्यूनतम 8·33% तथा अधिकतम 20% बोनस के रूप में भुगतान किया जाता था।

3. मजदूरी सुरक्षा (Wage Security)—किसी भी श्रमिक को जितनी मजदूरी दी जाती है उसकी सुरक्षा अथवा गारण्टी देना जरूरी है। श्रमिक की मजदूरी की गारण्टी तीन प्रकार से दी जा सकती है[1]—

(i) गारण्टी मजदूरी (Guarantee Wage) के अन्तर्गत प्रत्येक नियोक्ता श्रमिक को निश्चित समय या अवधि हेतु मजदूरी देने की गारण्टी देता है चाहे कार्य हो या नहीं।

(ii) ले-ऑफ नोटिस मुआवजा (Lay-off Notice Compensation) के अन्तर्गत नियोक्ता एक दी हुई अवधि हेतु श्रमिकों से कार्य हटाने पर, जबकि कार्य नहीं हो तब उसके लिए ले-ऑफ का मुआवजा या क्षतिपूर्ति देनी होती है।

(iii) हटाने पर मजदूरी (Dismissal Wage) के अन्तर्गत श्रमिक को रोजगार से हटाने पर एक निश्चित अवधि के लिए मजदूरी दी जाती है।

हमारे देश में यह सम्भव नहीं है कि बेरोजगार व्यक्तियों को बीमा दिया जाए क्योंकि वित्तीय कठिनाइयाँ सरकार के सामने हैं। फिर भी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के अन्तर्गत ले ऑफ तथा छँटनी के लिए क्षतिपूर्ति का प्रावधान है।

1. *Giri, V. V.*, Labour Problems in Indian Industry, p. 240.

भारत जैसे विकासशील देश में श्रमिक अशिक्षित, असंगठित और अज्ञानी होने के कारण उनकी मोलभाव शक्ति नियोक्ता की तुलना में दुर्बल होती है जिसके परिणामस्वरूप उनका शोषण किया जाता रहा है। न्यायालयों द्वारा भी प्रारम्भ में नियोक्ताओं का ही पक्ष लिया जाता रहा था। मजदूरी का निर्धारण श्रम की माँग व पूर्ति के आधार पर किया जाता था, लेकिन अब समय बदल गया है तथा श्रमिक को मानवीय साधन मानकर उसके साथ उचित व्यवहार किया जाने लगा। श्रमिकों के शोषण को दूर करने के लिए सरकार ने श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी निश्चित की है तथा अब वेतन मण्डलों की स्थापना भी जाने लगी है जो कि उचित मजदूरी का निर्धारण का कार्य करते हैं। कई उद्योगों में ऐसे वेतन मण्डलों (Wage Boards) की सिफारिशों को लागू किया गया है।

भारत जैसे देश में एक सुदृढ़ मजदूरी नीति निम्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है—

1. नियोजित अर्थ व्यवस्था के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मजदूरी नीति आवश्यक है जिससे कि औद्योगिक शान्ति बनाई रखी जा सके। अधिनियमों तथा अन्य सरकारी विधानों द्वारा औद्योगिक शान्ति पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं की जा सकती है। इसके लिए एक उचित मजदूरी नीति आवश्यक है।

2. हमारे देश में सम ाादी समाज की स्थापना हेतु सामाजिक न्याय प्रदान करना आवश्यक है। सामाजिक न्याय तभी प्रदान किया जा सकता है जब सभी लोगों को समान अवसर प्राप्त हों, सभी को समान आय प्रदान की जाए। इसके लिए एक समुचित मजदूरी नीति का होना जरूरी है।

3 हमारे देश में सुदृढ़ एवं सुसंगठित श्रम संघ आन्दोलन का अभाव (Lack of strong and well-organised Labour Union Movement) है। एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति द्वारा श्रमिकों को संरक्षण देना सरकार का दायित्व है।

4 हमारे देश में मजदूरी निर्धारण में विभिन्न कानूनी, प्रशासनिक एवं अर्द्ध-न्यायिक संस्थाओं की सहायता लेनी पड़ती है। अतः इस विभिन्नता को दूर करने के लिए निश्चित सिद्धान्तों तथा तरीकों पर आधारित एक उचित राष्ट्रीय मजदूरी नीति का होना आवश्यक है।

पंचवर्षीय योजनाओं में मजदूरी नीति
(Wage Policy in Five Year Plans)

स्वतन्त्रता के पश्चात् अधिकांश श्रम कानून सन् 1946-52 की अवधि में बनाए गए। राज्य श्रम नीति का सम्बन्ध श्रम विधान बनाना, सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी उपाय, श्रम कल्याण केन्द्रों का संगठन, केन्द्र तथा राज्यों में श्रम विभाग का विस्तार करना तथा अनिवार्य अधिनिर्णयन (Compulsory Arbitration) लागू करने से रहा है। औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव, 1947 (Industrial Truce Resolution of 1947) ने औद्योगिक विवादों को निपटाने हेतु कानून व मशीनरी

का उपयोग, उचित मजदूरी निर्धारण करने की मशीनरी, पूँजी पर उचित प्रतिफल, श्रम समितियाँ और आवास समस्या की ओर ध्यान देने आदि के सम्बन्ध मे सिफारिश की।[1]

आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन अपनाया जाता है तथा आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए एक विवेकपूर्ण मजदूरी नीति होना आवश्यक है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम योजना मे इस बात पर जोर दिया गया कि योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु लाभ और मजदूरी पर सरकार का नियन्त्रण रहना चाहिए। कीमतो, लाभों व मजदूरियो मे वृद्धि हुई है। मुद्रा स्फीति को रोकने हेतु लाभ व मजदूरी पर सरकारी नियन्त्रण आवश्यक है। मजदूरी मे पाई जाने वाली विभिन्नताओं को दूर किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय आय में से श्रमिको को उचित हिस्सा दिया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करना चाहिए। जिससे कि श्रमिको के शोषण को समाप्त किया जा सके। योजना के अनुसार मजदूरी मे वृद्धि उसी समय की जाए जबकि मजदूरी अत्यधिक कम है और युद्ध के पूर्व की वास्तविक मजदूरी स्तर को बनाए रखने के लिए उत्पादकता मे वृद्धि होने पर मजदूरी मे भी वृद्धि की जाए। योजना मे मजदूरी नीति के सम्बन्ध मे भविष्य में इन विचारो पर ध्यान रखने की सिफारिश की--

1. सभी मजदूरी अन्तरो को समाप्त करना सामाजिक नीति का एक अंग माना जाना चाहिए। राष्ट्रीय आय मे से श्रमिक को उसका उचित हिस्सा दिया जाना चाहिए।

2. पर्याप्त मजदूरी स्तर को प्राप्त करने से पूर्व विभिन्न उद्योगो तथा व्यवसायो मे पाए जाने वाले अन्तरो को जहाँ तक सम्भव हो कम से कम किया जाए।

3. मजदूरी प्रमापीकरण के कार्य को तीव्र गति से बडे पैमाने पर चलाया जाए।

4 विभिन्न व्यवसायो व उद्योगो मे कार्य-भार को वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित किया जाए।

5. महँगाई भत्ते का 50% वेतन मे मिला दिया जाए।

6. योजनाकाल मे न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948 को प्रभावपूर्ण ढग से क्रियान्वित किया जाए।

7. बोनस भुगतान से सम्बन्धित समस्या पर भी विचार करने की सिफारिश की गई।

8. मजदूरी निर्धारण हेतु केन्द्रीय तथा राज्य-स्तरो पर त्रिपक्षीय वेतन-मंडलो की स्थापना करने को सिफारिश की गई। इनकी स्थापना मजदूरी समस्या को समाप्त करने हेतु स्थाई रूप से करने की सिफारिश की गई।

1. *Srivastava, G. L.* : Collective Bargaining & Labour Management Relations in India, p. 352.

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

दूसरी योजना के अन्तर्गत श्रम के महत्त्व को प्रथम योजना की भाँति ही स्वीकार किया गया। लेकिन इस योजना मे मजदूरी नीति के एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर जोर दिया गया। यह पहलू श्रमिको को उनकी आशाओ और भावी समाज के ढाँचे के अनुसार मजदूरी का भुगतान करने से सम्बन्धित थी। मजदूरी के महत्त्व को जानने के लिए मजदूरी आयोग (Wage Commission) नियुक्त करने का विचार था। लेकिन पर्याप्त आँकडो व अन्य सूचनाओ के अभाव मे यह विचार त्याग दिया गया। इसके स्थान पर मजदूरी गणना (Wage Census) करने पर जोर दिया गया। विभिन्न केन्द्रो पर निर्वाह लागत सूचकाँको के अनुसार मजदूरी मे परिवर्तन करने के लिए जाँच पर जोर दिया गया।

इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी मे वृद्धि श्रम उत्पादकता मे वृद्धि होने पर ही सम्भव बताया गया। इसके लिए कार्यानुसार मजदूरी भुगतान की रीति अपनाने को कहा गया।

सीमान्त इकाइयो (Marginal Units) द्वारा मजदूरी संरचना पर रोक लगाने के कारण उचित मजदूरी सिद्धान्तो के आधार पर उचित मजदूरी निर्धारित करना सम्भव नही हो पा रहा था, अत कहा गया कि इस प्रकार की इकाइयो को ऐच्छिक रूप से बडी इकाइयो मे मिला दिया जाना चाहिए। यदि जरूरी हो तो अनिवार्य रूप से इनको मिलाया जा सकता है। दूसरी योजना मे इस बात की भी सिफारिश की गई कि उद्योगो मे बडे-बडे क्षेत्रो के लिए औद्योगिक विवादो (मजदूरी से सम्बन्धित) को हल करने के लिए मजदूरी बोर्ड कायम करने चाहिए। दूसरी योजना मे कई ऐसे मजदूरी बोर्ड स्थापित किए गए है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना

तृतीय योजना मे इस बात पर जोर दिया गया कि प्रमुख उद्योगो मे मजदूरी-निर्धारण का कार्य सामूहिक सौदाकारी, अधिनिर्णयन, सुलह एवं अधिकरणो द्वारा होगा। लेकिन जहाँ पर जरूरी होगा वहाँ पर मजदूरी निर्धारण हेतु त्रिपक्षीय मजदूरी बोर्ड की स्थापना की जा सकेगी। उद्योग और कृषि क्षेत्र मे निम्न आर्थिक स्थिति वाले श्रमिको को सुरक्षा प्रदान करने हेतु न्यूनतम मजदूरी प्रदान करने के दायित्व को स्वीकार किया गया। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु निरीक्षण सम्बन्धी मशीनरी को सुदृढ करने की सिफारिश की गई। न्यूनतम मजदूरी के अतिरिक्त विभिन्न श्रमिक वर्गों हेतु उचित मजदूरी निर्धारित करने एवं उत्पादन तथा किस्म को सुधारने हेतु श्रमिकों को प्रेरणात्मक मजदूरी (Incentive Wages) देने पर जोर दिया गया। बोनस भुगतान हेतु विभिन्न पक्षो को मिलाकर एक आयोग नियुक्त करने की सिफारिश की।

भारतीय श्रम सम्मेलन 1957 द्वारा आवश्यकता पर आधारित मजदूरी तथा उचित मजदूरी समिति द्वारा दी गई सिफारिशो को मजदूरी-निर्धारण मे काम मे लेने की सिफारिश की गई। योजना मे यह बताया गया कि श्रमिक वर्ग की मजदूरी तथा

उच्च प्रबन्ध-स्तर के वेतनों में काफी असमानता है। योजना में इस बात की सिफारिश की गई कि मजदूरी अन्तरों, श्रमिकों की उत्पादकता की माप और उत्पादकता के हिस्से का वितरण आदि का अध्ययन किन-किन सिद्धान्तों पर आधारित हो।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

चौथी योजना में इस बात को स्वीकार किया गया कि आर्थिक विकास की सफलता और विशेष रूप से चौथी पंचवर्षीय योजना के सन्दर्भ में एक एकीकृत आय नीति (Integrated Income Policy) सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों के मार्गदर्शन हेतु तैयार की जानी चाहिए। मूल्य स्थिरता की समस्या को मजदूरी नीति का आधार माना गया है। कीमतों में वृद्धि होने पर मजदूरी में वृद्धि हेतु दबाव डाले जाते हैं। उचित मजदूरी प्राप्त करना दीर्घकालीन उद्देश्य है। लेकिन अल्पकालीन उद्देश्य बढ़ती हुई कीमतों के श्रमिकों के जीवन-स्तर पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव से श्रमिकों की रक्षा करना है। महँगाई भत्ते को निर्वाह लागत से जोड़ने हेतु निर्वाह लागत सूचकांकों हेतु कीमत आंकड़ों और सूचनाओं को एकत्रित करने की सिफारिश की गई। श्रमिकों की मजदूरी में तीन तत्त्वों—वेतन, महँगाई भत्ता तथा उत्पादकता से जोड़ना—होंगे। मजदूरी को उत्पादकता से जोड़ने के लिए मजदूरी प्रमापीकरण तथा मजदूरी के अन्तरों को कम करने की सिफारिश की गई है। मजदूरी कार्यानुसार पद्धति के अन्तर्गत दी जानी चाहिए। सन् 1957 से कई उद्योगों में मजदूरी बोर्ड (Wage Boards) की स्थापना की गई है और अन्य उद्योगों में भी इनकी स्थापना करने की सिफारिश की गई।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना

इस योजना में भी मजदूरी नीति को सुदृढ़ बनाने की सिफारिश की गई है। श्रमिकों की मजदूरी में उनकी उत्पादकता के अनुसार वृद्धि करने की सिफारिश की गई है। श्रमिकों की मजदूरी बड़े-बड़े उद्योगों में सामूहिक सौदाकारी, सुलह, अधिनिर्णयन और अधिकारियों द्वारा निर्धारित करने पर जोर दिया गया है। अधिकाधिक प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियाँ (Incentive Wage Systems) अपनाने की सिफारिश की गई है जिससे कि श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ सके, जीवन-स्तर उन्नत हो सके।

पाँचवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में 'राष्ट्रीय मजदूरी का ढाँचा' बनाने की बात कही गई थी। दृष्टिकोण पत्र में उल्लिखित नीति का पाठ इस प्रकार है[1]—

"उत्पादकता की वृद्धि से असलग्न मजदूरी में वृद्धि होने पर उत्पादन की प्रत्येक इकाई में मजदूरी लागत बढ़ जाती है। इस प्रकार की बढ़ोत्तरी को मूल्य को स्थिर रखने की दृष्टि से रोकना होगा। केवल ऐसे व्यवसायों में, जिनमें मजदूरी असाधारण रूप से कम है, उत्पादकता में सुधार लाने के लिए मजदूरी में वृद्धि करना न्यायोचित होगा। ऐसे कामों में जहाँ उत्पादकता के कम होने के कारण मजदूरी भी

1. पाँचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण (1974-79), पृष्ठ 54-55.

कम है, जब तक कि उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिए प्रभावशाली उपाय नही किए जाते, मजदूरी मे वृद्धि करने का यह परिणाम यह होगा कि मजदूरो की मांगो मे कमी आ जाएगी या उनको नौकरी से अलग कर दिया जाएगा। सरकारी क्षेत्र मे मजदूरी को श्रम जनित उत्पादकता की तुलना मे ऊँची दर पर बनाए रखा जा सकता है क्योंकि इसके कारण होने वाली हानि को सरकारी राजस्व से पूरा किया जा सकता है। अपवाद के रूप मे कतिपय मामलो मे यह उचित नीति मानी जा सकती है किन्तु इसको विस्तृत पैमाने पर प्रयोग म लाया जाए या स्वीकार किया जाए तो यह विकास कार्यों के लिए नियत ससाधनो को ही हड़प कर जाएगी। सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था मे श्रम जनित उत्पादकता बढाने के लिए निश्चित प्रयास किए जाने चाहिए। इस सम्बन्ध मे पाँचवी योजना मे अच्छे भोजन, पोषण तथा स्वास्थ्य के स्तर, शिक्षा तथा प्रशिक्षण के उच्च स्तर, अनुशासन तथा नैतिक आचरण मे सुधार और अधिक उत्पादनशील तकनीकी तथा प्रबन्धात्मक कार्यों की परिकल्पना की गई है।"

"हाल ही के वर्षों मे कतिपय क्षेत्र उच्च पारिश्रमिक देने वाले क्षेत्रो के रूप मे उभर आए हैं। जहाँ कि सफेदपोश वर्ग के कर्मचारियो का बाहुल्य है। इन कर्मचारियो ने दबाव डालकर अपने वेतन के स्तर को सामान्य मजदूरी के स्तर से ऊँचा कर लिया है। इस प्रवृत्ति को निश्चित उपायो द्वारा रोकना जरूरी है अन्यथा योजना के अनुमानित ससाधनो पर भारी अतिक्रमण होगा और देश मुद्रा-स्फीति तथा गतिहीनता की जकड़ मे आ जाएगा।"

"यद्यपि कानून द्वारा न्यूनतम वेतन निर्धारण गरीब-वर्ग के उपभोग स्तर को बढ़ाकर वांछित न्यूनतम सीमा पर लाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपाय है, किन्तु यदि इसके साथ रोजगार उपलब्ध करने की गारण्टी नही है तो इसका महत्त्व अपेक्षाकृत कम हो जाता है। बेरोजगार व्यक्ति के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है कि गारण्टी-मजदूरी कितनी है। इसके अतिरिक्त व्यापक बेरोजगार की स्थिति मे न्यूनतम वेतन लागू करना भी कठिन है। ऐसी स्थिति मे रोजगार दाताओ को बचाव की पर्याप्त सुविधा रहती है, विशेष रूप से असगठित क्षेत्र मे। श्रम जनित उत्पादकता मे उस स्तर तक सुधार जो परिकल्पित न्यूनतम मजदूरी के दबाव का मुकाबला कर सके तथा विशाल स्तर पर रोजगार की सुविधाओ मे वृद्धि—ये दोनो ऐसी आवश्यक शर्तें हैं जो राष्ट्रीय स्तर पर उचित न्यूनतम मजदूरी की दर सफलतापूर्वक लागू करने के लिए जरूरी है। इन पूर्वापेक्षाओ के निर्माण के कार्यों को पाँचवी योजना मे उच्च प्राथमिकता प्रदान की जाएगी।"

"उचित न्यूनतम मजदूरी का स्तर निर्धारण करने के अतिरिक्त तुलनात्मक मजदूरियों की रूपरेखा मजदूरी के परिशुद्ध स्तर की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक उद्योग अथवा व्यापार मे कार्य कर रहे कामगर तथा कर्मचारी अपने परिशुद्ध वेतन के स्तर के कारण इतने क्षुब्ध नहीं होंगे जितने कि वे इस बात से कि अन्य उद्योगो तथा व्यापारो मे मिल रही मजदूरी की तुलना मे उनकी मजदूरी का स्तर कितना है। एक उद्योग अथवा व्यापार मे वृद्धि होने पर जो पूरी तरह युक्तिसगत

नही है, दूसरे स्थानो पर भी अधिक मजदूरी देने की मांग भडका देती है। वास्तव मे तो यही एक विधि है जिसके द्वारा कामगारो की एक श्रेणी अन्य श्रेणियो की मजदूरी मे वृद्धि कर दिए जाने के परिणामस्वरूप होने वाली मुद्रा-स्फीति की स्थिति से अपनी वास्तविक मजदूरी की रक्षा कर सकती है। यह बात अलग है कि वह प्रक्रिया मुद्रा-स्फीति की स्थिति मे अग्नि मे घी का कार्य करती है। यह मालूम किया जाना चाहिए कि क्या एक ऐसा न्यायसगत राष्ट्रीय वेतन ढाँचा बनाया जा सकता है जिसके लागू होने पर वेतन वृद्धि की मांग को तर्कसगत उपायो से सुलझाया जा सके।"

"यदि एक राष्ट्रीय मजदूरी ढाँचा तैयार हो जाता है तो यह सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र, दोनो पर लागू होना चाहिए। वर्तमान समय मे सार्वजनिक क्षेत्र मे सक्षम कर्मचारियो के सेवा मे बनाए रखने मे कठिनाई अनुभव हो रही है। निजी क्षेत्र मे उनके कार्य के स्वभाव के अनुसार प्रबन्धक तथा तकनीकी कर्मचारियो को अधिक पारिश्रमिक तथा विभिन्न सुविधाएँ प्राप्त होती है। यदि सार्वजनिक क्षेत्र भी योग्य शीर्षस्थ प्रबन्धक तथा तकनीकी कर्मचारियों को समान ऊँचे वेतनमान देने लगे तो यह विकास के समाजवादी स्वरूप के विरुद्ध बात होगी। यदि वह ऐसा नही करता है तो ये कर्मचारी निजी क्षेत्र के प्रलोभन मे आ जाते है। इसका समाधान फिर यही है कि एक राष्ट्रीय मजदूरी ढाँचा बनाया जाए। इस समस्या पर पाँचवी योजना मे उचित ध्यान दिया जाएगा।"

योजना आयोग ने पाँचवी पचवर्षीय योजना मे श्रम मन्त्रालय की प्लान स्कीमो के लिए 'श्रमिक कल्याण तथा दस्तकार प्रशिक्षण' शीर्ष के अन्तर्गत 1417 88 लाख रुपये के परिव्यय की स्वीकृति दी है। सन् 1977–78 की वार्षिक योजना के दौरान चलाए जाने वाले कार्यक्रमो के लिए श्रम मन्त्रालय ने 564 57 लाख रुपये की राशि का प्रस्ताव किया था, परन्तु योजना आयोग ने 511 48 रुपये के परिव्यय की ही सिफारिश की। विभिन्न मुख्य ग्रुपो के सम्बन्ध मे सन् 1977–78 की वार्षिक योजना के लिए परिव्यय का ब्यौरा इस प्रकार है—

	(रुपये लाखो मे)
I रोजगार और प्रशिक्षण : महानिदेशालय के कार्यक्रम	
(i) प्रशिक्षण योजनाएँ	348 92
(ii) रोजगार सेवा	10 28
उप जोड	359 20
II. मुख्य मन्त्रालय के कार्यक्रम	
(i) औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य-विज्ञान और व्यावसायिक स्वास्थ्य	20 00
(ii) खान सुरक्षा	48·77
(iii) औद्योगिक सम्बन्ध	1·00

(iv) श्रमिक शिक्षा	10 00
(v) श्रम अनुसंधान तथा सांख्यिकी	45 00
(vi) राष्ट्रीय श्रम संस्थान	24 01
(vii) कृषि श्रमिक सेल	0 50
(viii) मजदूरी सेल	3·00
उप जोड़	152 28
कुल जोड़	511 48

मजदूरी नीति और राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट (1969) (Wage Policy and Report (1969) of National Commission on Labour)

केन्द्रीय सरकार ने दिसम्बर सन् 1966 में एक राष्ट्रीय श्रम आयोग श्री पी बी गजेन्द्रगढ़कर की अध्यक्षता में स्थापित किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट अगस्त, 1969 में दी जिसमें मजदूरी नीति से सम्बन्धित निम्नांकित सिफारिशें की गई[1]—

सरकार नियोक्ता, श्रम संघों तथा स्वतन्त्र व्यक्तियों ने सहमति प्रकट की कि मजदूरी नीति ऐसी हो जिससे आर्थिक विकास की नीतियों को प्राप्त किया जा सके।

1 न्यूनतम मजदूरी के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए आयोग ने इसके निर्धारण हेतु उद्योग की मजदूरी देय क्षमता को ध्यान में रखने की सिफारिश की। आयोग के अनुसार राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (National Minimum Wage) न तो सारे देश के लिए उचित है और न ही वांछनीय। विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग-अलग प्रादेशिक न्यूनतम मजदूरी (Regional Minimum Wage) निश्चित करने की सिफारिश की।

2 आयोग ने सिफारिश की कि बिना उत्पादकता में वृद्धि के मजदूरों की वास्तविक मजदूरी में निरन्तर वृद्धि सम्भव नहीं है। आयोग ने प्रेरणात्मक मजदूरी योजनाओं (Incentive Wage Systems) को लागू करने की सिफारिश की। जीवन निर्वाह लागत में परिवर्तन के साथ-साथ मजदूरी में भी परिवर्तन करना चाहिए।

3 मजदूरी बोर्ड (Wage Boards) को मजदूरी निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के महत्त्व को स्वीकार किया गया। इसके साथ ही आयोग ने मजदूरी बोर्ड की सर्व-सम्मत सिफारिशों को लागू करना कानूनन अनिवार्य बनाने की सिफारिश की।

4 कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने की सिफारिश की। यह सबसे कम मजदूरी वाले क्षेत्रों में पहले लागू किया जाए।

1 Report of the National Commission on Labour, p 225.

5 नियोक्ताओं ने आयोग के सम्मुख यह विचार पेश किया कि औद्योगिक मजदूरी का कृषि मजदूरी और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय से सम्बन्ध होना चाहिए। मजदूरी को उत्पादकता से जोड़ दिया जाए तथा उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के आधार पर मजदूरी का निर्धारण किया जाए।

6 श्रम संघों ने आयोग को कहा कि वास्तविक मजदूरी में गिरावट को दूर किया जाए जिससे कि श्रमिकों का जीवन-स्तर बनाए रखा जा सके। यह तभी सम्भव हो सकता है जब मजदूरी को उत्पादकता से जोड़ दिया जाए।

7. राज्य सरकारों ने भी मजदूरी नीति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता पर जोर दिया। मजदूरी नीति श्रम के अनुकूल हो तथा उपभोक्ताओं के हित को भी ध्यान में रखने वाली हो। सरकार ने यह वायदा किया कि श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार किया जाएगा तथा धन और आय के असमान वितरण को भी दूर किया जाएगा।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने मजदूरी से सम्बन्धित सभी अधिनियमों को मिलाकर कोई एकीकृत अधिनियम (Integrated Act) पास करने की सिफारिश नहीं की। आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी (Need-based Minimum Wage) निर्धारित करते समय किन-किन नियमों तथा सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाए, कोई सिफारिश नहीं की गई।

श्रम और मजदूरी नीति को प्रभावित करने वाले सम्मेलन तथा अन्य महत्त्वपूर्ण मामले (1976-77)[1]

राष्ट्रीय सम्मेलन

1. **श्रम-मंत्री सम्मेलन**—श्रम-मन्त्रियों के सम्मेलन के 27वें और 28वें अधिवेशन नई दिल्ली में 11 जनवरी और 25 अक्तूबर, 1976 को हुए। इन सम्मेलनों में विचार-विमर्श की अधिक महत्त्वपूर्ण मदें ये थी—(क) बन्धित श्रम-पद्धति का उन्मूलन, (ख) पुरुषों और महिलाओं के लिए समान पारिश्रमिक, (ग) श्रमिकों की सहभागिता, (घ) शिशु अधिनियम, (ङ) उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की नई सीरीज,(च) संगठित क्षेत्र में जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा और परिवार नियोजन में श्रम व्यवस्था की भूमिका और (छ) कृषि में न्यूनतम मजदूरी दरों का निर्धारण और संशोधन।

2. *अभिसमय सम्बन्धी समिति* का 11वां अधिवेशन—अभिसमय सम्बन्धी समिति का 11वां अधिवेशन श्रम सचिव की अध्यक्षता में 17 सितम्बर, 1976 को नई दिल्ली में हुआ। इस समिति ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कुछ अभिसमयों की पुनरीक्षा की ताकि उनका अनुसमर्थन किया जा सके और जहाँ अनुसमर्थन सम्भव न समझा जाए वहाँ उनका कार्यान्वयन किया जा सके।

1. श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 1976-77.

II अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन/बैठकें

3. विश्व रोजगार सम्मेलन—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने 4-17 जून, 1976 के दौरान विश्व रोजगार सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में सिद्धान्तों का घोषणा-पत्र और कार्यवाही का कार्यक्रम स्वीकार किया गया, जिसमें यह घोषणा की गई कि जनता में व्याप्त गरीबी मिटाना और कम आय वाले वर्गों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करना अब से राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास नीतियों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए जिसके लिए आर्थिक विकास की सतत तथा सन्तोषजनक दर की आवश्यकता है। इसने आर्थिक समष्टि भाव की नीतियों के सम्बन्ध में अनेक उपाय सुझाए जिनमें ग्रामीण क्षेत्र में समुचित कार्यवाही, सामाजिक नीति-विशेषकर महिलाओं, किशोर श्रमिकों और वृद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में और विकास कार्य में सगठित वर्गों की सहभागिता शामिल है। इन सब उपायों के एक साथ किए जाने से विकासशील देशों में 2000 से पहले पर्याप्त रोजगार अवसर सृजित करना या पूर्ण रोजगार प्राप्त करना भी सम्भव होगा। इस सम्मेलन में 'एक विश्व' के उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए भोजन आवास जैसी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति और स्वास्थ्य शिक्षा आदि जैसी मूल सेवाओं की प्राप्ति के सम्बन्ध में विचार किया गया। इस सम्मेलन की उपयुक्तता इस बात से सिद्ध होती है कि इसने मूल आवश्यकताओं की सकल्पना तथा उसके सम्बन्धित कार्यवाही के कार्यक्रम में अभिव्यक्त की गई कार्य नीति के प्रति अन्तर्राष्ट्र समाज का जाग्रत किया।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने इस सम्मेलन के विचार-विमर्शों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और इसके योगदान को अन्य प्रतिनिधि मण्डलों ने विशेष रूप से 77 देशों के ग्रुप ने स्वीकार किया और उसकी सराहना की। सम्मेलन द्वारा घोषित विकास प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण भारत की योजना के उद्देश्यों तथा नीतियों और हाल ही के प्रधान मन्त्री द्वारा घोषित 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पर बल देना था। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के अनुरोध पर इस सम्मेलन ने सिफारिश की कि कृषि विकास के लिए निर्धारित दस अरब (एक बिलियन) डॉलर अन्तर्राष्ट्रीय निधि के एक भाग को ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सृजित करने के लिए इस्तमाल किया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का 61वाँ अधिवेशन 2 जून, 1976 से जेनेवा में शुरू हुआ। इस सम्मेलन में भारत के एक त्रिपक्षीय प्रतिनिधि मण्डल ने भाग लिया। केन्द्रीय श्रम मन्त्री श्री के वी रघुनाथ रेड्डी जब जेनेवा में रहे तब तक उन्होंने भारत सरकार के प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया। उनके भारत वापिस आ जाने के बाद डॉ (श्रीमती) राजेन्द्र कुमारी वाजपेयी, श्रम मन्त्री उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया।

इस सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानकों के कार्यान्वयन को बढ़ावा देने के लिए त्रिपक्षीय मन्त्रणा के सम्बन्ध में एक अभिसमय (संख्या 144) और एक सिफारिश (संख्या 152) स्वीकार की गई। सम्मेलन ने (अपने अगले अधिवेशन में)

वातावरण मे व्यावसायिक खतरो से श्रमिको के सरक्षण हेतु नए मानको के विकास तथा नर्सो के रोजगार से सम्बन्धित समस्याओ के बारे मे निष्कर्ष भी पारित किए । सम्मेलन मे सरचना सम्बन्धी कार्यकारी दल की अवधि को एक वर्ष के लिए और बढाने सम्बन्धी प्रस्ताव की भी पुष्टि की, ताकि वह शासी निकाय के गठन से सम्बन्धित मामले सहित विभिन्न अनिर्णित मामलो के सम्बन्ध मे आगे और विचार कर सके । विनिमय दर मे घटबढ के परिणामस्वरूप होने वाले प्रत्याशित अतिरिक्त खर्चो को करने के लिए सम्मेलन ने 1976 के बजट की तरह 1977 के बजट मे 101 लाख डॉलर की अतिरिक्त व्यवस्था की ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का 62वाँ (समुद्री) अधिवेशन—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का 62वाँ (समुद्री) अधिवेशन 13 से 29 अक्तूबर, 1976 को जेनेवा मे हुआ । इस सम्मेलन मे भारत के एक त्रिपक्षीय प्रतिनिधि मण्डल ने भाग लिया । केन्द्रीय जहाजरानी और परिवहन मन्त्रालय मे राज्य मन्त्री श्री एच. एम. त्रिवेदी ने भारत सरकार के प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया ।

सम्मेलन मे नाविको के लिए सवेतन छुट्टियो, किशोर नाविको के सरक्षण तथा उनके रोजगार मे अविच्छिन्नता के बारे मे अन्तर्राष्ट्रीय लिखते स्वीकार की गई । सम्मेलन ने व्यापारी जहाजो मे न्यूनतम मानको के सम्बन्ध मे भी एक अभिसमय स्वीकार किया, जिसे सम्मेलन के अध्यक्ष ने अपेक्षित स्तर से हलके स्तर के जहाजो की रोकथाम के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कहा । सम्मेलन मे विश्व के व्यापारी बेडे तथा उसके 20 लाख नाविको की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन को उसके भावी कार्य के लिए मार्गदर्शन देने वाले प्रस्ताव स्वीकार किए गए ।

एशियाई श्रम मन्त्री सम्मेलन—एशियाई श्रम मन्त्री सम्मेलन का छठा अधिवेशन 20 से 24 सितम्बर, 1976 के दौरान तेहरान मे हुआ । इसका आयोजन ईरान सरकार द्वारा किया गया ।

विचार-विमर्श की गई महत्त्वपूर्ण मदें ये थी—(i) उत्पादिता प्रोत्साहन और उपाय तथा (ii) श्रमिको का प्रशिक्षण और गतिशीलता ।

भारत सरकार के दो सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल ने, जिसमे केन्द्रीय श्रम मन्त्री और केन्द्रीय श्रम सचिव शामिल थे, इस सम्मेलन मे भाग लिया ।

बहुराष्ट्रीय उद्यमों और सामाजिक नीति के सम्बन्ध के बारे मे त्रिपक्षीय सलाहकार बैठक—वर्ष 1976 के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने सामाजिक नीति के सम्बन्ध मे बहुराष्ट्रीय उद्यमो की समस्याओ का भी समाधान किया । बहुराष्ट्रीय उद्यमो के सम्बन्ध के बारे मे त्रिपक्षीय सलाहकार बैठक मई, 1976 मे हुई, जिसकी अध्यक्षता एक भारतीय ने की । इस बैठक मे यह सिफारिश की गई कि इस सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन त्रिपक्षीय सिद्धान्त घोषणा-पत्र तैयार करने के लिए समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि इसे सयुक्त राष्ट्र सघ को भेजा जा सके जिससे कि ट्रान्सनेशनल कॉरपोरेशन सम्बन्धी आयोग द्वारा बहुराष्ट्रीय उद्यमों के कार्यों के सभी पहलुओ के सम्बन्ध मे सहिता तैयार करने के लिए इस पर विचार

लिया जा सके। श्री टी एस शंकरन, अपर श्रम सचिव की अध्यक्षता में एक छोटा त्रिपक्षीय दल घोषणा का मसौदा तैयार करने के लिए स्थापित किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन कोयला खान समिति—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कोयला खान समिति के दसवें अधिवेशन का आयोजन 28 अप्रेल से 6 मई, 1976 तक जेनेवा में किया गया। इस समिति ने एक सामान्य रिपोर्ट तथा दो तकनीकी रिपोर्टों अर्थात् (i) कोयला खनकों का प्रशिक्षण और पुनः प्रशिक्षण और (ii) कोयला खानों में सुरक्षा और स्वास्थ्य पर विचार किया और दो निष्कर्ष तथा चार प्रस्ताव स्वीकार किए गए।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की बागान सम्बन्धी समिति—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की बागान कार्य समिति सम्बन्धी का सातवाँ अधिवेशन 8 से 16 सितम्बर, 1976 के दौरान जेनेवा में डॉ एन ए आगा, श्रम सचिव की अध्यक्षता में हुआ।

इस समिति ने बागान उद्योगों में सामूहिक सौदाकारी मजदूर संघों के अधिकारों के प्रयोग, आवास, चिकित्सा और कल्याण सुविधाओं तथा व्यावसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी मामलों पर विचार किया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भवन, सिविल इंजीनियरी और लोक निर्माण समिति—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भवन, सिविल इंजीनियरी और लोक निर्माण समिति का नौवाँ अधिवेशन 12 से 20 जनवरी, 1977 को जेनेवा में हुआ। सामान्य रिपोर्ट के अतिरिक्त कार्यसूची में निम्नलिखित मुद्दे शामिल थे—(क) निर्माण उद्योगों में रोजगार और मजदूरी की स्थिरता, (ख) निर्माण उद्योग में प्रबन्धकों और श्रमिकों का प्रशिक्षण। भारत के एक त्रिपक्षीय प्रतिनिधि मण्डल ने उक्त बैठक में भाग लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के शासी निकाय की बैठकें—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के शासी निकाय की वर्ष 1976 के दौरान तीन बैठकें हुई और 1977 की पहली तिमाही में एक बैठक हुई। सभी बैठकों में भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

एशियाई देशों में श्रमिक/जनशक्ति व्यवस्था सुदृढ़ करने सम्बन्धी एशियाई प्रादेशिक परियोजना के अन्तर्गत दूसरी वर्कशॉप—एशियाई देशों में श्रमिक/जनशक्ति व्यवस्था सुदृढ़ करने सम्बन्धी एशियाई प्रादेशिक परियोजना के अन्तर्गत 'एशिया में श्रम मन्त्रालय के अनुसन्धान कार्यों को सुदृढ़ करने के लिए श्रम अनुसन्धान संगठनों में प्रादेशिक सहयोग' सम्बन्धी दूसरी वर्कशॉप का आयोजन 21 मार्च से 26 मार्च, 1977 तक नई दिल्ली में किया गया। इस वर्कशॉप का आयोजन राष्ट्रीय श्रम संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया और इसमें एशिया के 12 देशों अर्थात् ऑस्ट्रेलिया बंगलादेश, न्यूजीलैण्ड, इण्डोनेशिया, जापान, मलेशिया, सिंगापुर, पाकिस्तान, फिलिपाइन्स, श्रीलंका, भारत और थाईलैण्ड के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

श्रम तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में तकनीकी सहयोग सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन क्षेत्रीय विशेषज्ञ दल का दौरा—अप्रेल, 1975 में हुए पाँचवें एशियाई श्रम मन्त्री

सम्मेलन के निर्णय के अनुसरण में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियायी क्षेत्रीय कार्यालय ने मार्च, 1976 में श्रम तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में तकनीकी सहयोग सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक 6 सदस्यीय क्षेत्रीय विशेषज्ञ दल का गठन किया। इस दल के दो सदस्य—आस्ट्रेलिया के श्री डब्ल्यू के एल्लन और मलेशिया के श्री के पद्मनाभन 4–13 अप्रेल, 1976 के दौरान भारत आए। इस दल ने श्रम मन्त्रालय के अधिकारियों के साथ प्राथमिकता के पांच चुने हुए क्षेत्रों (जैसे व्यावसायिक सुरक्षा, समाज सुरक्षा, औद्योगिक सम्बन्ध, जनशक्ति सेवा तथा श्रम सांख्यिकी) से सम्बन्धित मामलों के बारे में विचार-विमर्श किया। इस दल की रिपोर्ट तकनीकी सहयोग परियोजना सम्बन्धी प्रस्ताव तैयार करने तथा एशियाई क्षेत्र में उपलब्ध सुविधाओं और क्षमताओं के आदान प्रदान के लिए स्थायी तन्त्र की स्थापना का आधार बनेगी।

इस दल ने अपनी रिपोर्ट में भारत में उपलब्ध क्षमता तथा सुविधाओं का जिक्र किया और भारतीय श्रमिक शिक्षा संस्थान (बम्बई), केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड (नागपुर) कारखाना सलाह सेवा तथा श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय का श्रम विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय रोजगार सेवा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, राष्ट्रीय श्रम संस्थान, केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन के सांख्यिकीय संस्थान और कर्मचारी राज्य बीमा निगम का विशेष रूप से उल्लेख किया।

इस दल ने महसूस किया कि जो एशियायी देश अपने यहाँ त्रिपक्षीय पद्धति शुरू करना चाहते हैं या उसका विस्तार करना चाहते हैं, वे यदि भारतीय तजुर्बे का प्रत्यक्ष अध्ययन करें तो ऐसा अध्ययन उनके लिए पूरी जानकारी प्राप्त करने का उपयोगी साधन सिद्ध होगा।

एशियाई देशों में श्रम व्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका की परिकल्पना करते हुए, इस दल ने इस क्षेत्र के देशों के सामने आने वाली समस्याओं का उल्लेख किया। दल ने इस क्षेत्र में तकनीकी सहयोग को मजबूत बनाने के लिए अनेक उपायों (जैसे नीति सलाह स्तर के वरिष्ट कार्मिकों की अदला-बदली, कुशलता का आदान-प्रदान, विचार-गोष्ठियों तथा प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन, संस्थाओं को लिंक करना या मिलाना, सूचना का आदान-प्रदान और विशेषित उपस्करों का सम्भरण) के बारे में सुझाव दिए हैं।

III. अन्य महत्वपूर्ण विषय

श्रम मन्त्रालय में अगस्त, 1976 में एक 'महिला सैल' स्थापित किया गया ताकि वह महिलाओं तथा बाल-श्रमिकों की समस्याओं को हल करने के उपाय कर सके। यह सैल एक महिला अधिकारी के प्रभार में है और इसको निम्नलिखित काम सौंपे गए हैं।

(i) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 का प्रवर्तन;

(ii) राष्ट्रीय जनशक्ति और आर्थिक नीतियों के ढाँचे के अन्तर्गत महिला श्रमिकों के सम्बन्ध में नीतियों तथा कार्यक्रमों का सूचीकरण तथा समन्वय;

(iii) विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में महिला श्रमिकों के विभिन्न पहलुओं के बारे में सूचना का एकत्रीकरण, समाकलन, विश्लेषण और प्रसार,

(iv) महिलाओं की शिक्षा, प्रशिक्षण तथा कल्याण को बढ़ावा देने और सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से उनके स्तर को ऊँचा उठाना, और

(v) महिला श्रमिकों से सम्बन्धित कार्यक्रम को कार्यान्वित कराने के लिए अन्य सम्बन्धित सरकारी अभिकरणों के साथ सम्पर्क रखना।

इस सेल को जाँचों तथा अध्ययनों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करना पड़ता है तथा श्रमिकों के क्षेत्र में महिलाओं पर प्रभाव डालने वाले विधायी उपबन्ध के प्रवर्तन का पर्यवेक्षण भी करना पड़ता है।

सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के प्रबन्धक बोर्डों में श्रमिकों के प्रतिनिधि—भारत सरकार ने प्रायोगिक आधार पर सरकारी क्षेत्र के कुछ उपक्रमों के प्रबन्धक बोर्डों में श्रमिकों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति की एक योजना आरम्भ की है। प्रारम्भ में हिन्दुस्तान ऐंटीबॉयटिक्स लिमिटेड, पिम्परी और हिन्दुस्तान आर्गेनिक केमिकल्स लिमिटेड के बोर्डों में एक-एक श्रमिक निदेशक नियुक्त किया गया।

इस योजना के उपक्रम की मान्यता प्राप्त यूनियन को तीन व्यक्तियों की नामिका भेजने के लिए कहने की व्यवस्था है, जिनमें से एक व्यक्ति को निदेशक के रूप में नामित किए जाने के लिए चुना जाएगा। नामजदगी के वास्ते पात्र होने के लिए यह आवश्यक है कि सम्बन्धित व्यक्ति 25 वर्ष की आयु का हो चुका हो, उपक्रम में कम से कम 5 वर्ष की सेवा पूर्ण कर चुका हो और निदेशक के रूप में नियुक्ति की कालावधि के दौरान यह वार्धक्य की आयु प्राप्त न करे ले।

बैंककारी कम्पनी (उपक्रमों का अर्जन और अन्तरण) अधिनियम 1970 के अधीन बनाई गई राष्ट्रीकृत बैंक (प्रबन्ध और प्रकीर्ण उपबन्ध) योजना, 1970 में अन्य बातों के साथ-साथ राष्ट्रीयकृत बैंकों के निदेशक बोर्डों में कर्मचारियों (जो कर्मकार हों) में से एक-एक निदेशक नियुक्त करने की व्यवस्था है। इसके अनुसार सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों में श्रमिक निदेशक नियुक्त किए गए हैं, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा इसके सहायक कार्यालयों में श्रमिकों के प्रतिनिधि नियुक्त करने से लिए कार्यवाही की जा रही है।

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति सेल—अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण का ध्यान रखने और इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए गए आदेशों का कार्यान्वयन सुनिश्चित कराने के लिए दिसम्बर, 1969 में इस मन्त्रालय में एक सेल स्थापित किया गया। सन् 1976 के दौरान इस सेल ने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों से प्राप्त हुई 5 शिकायतों के सम्बन्ध में कार्यवाही की और उनका तुरन्त निपटारा करवाया। इसके अतिरिक्त यह सुनिश्चित कराने के लिए कि सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व दिया जाता है, सम्पर्क अधिकारी ने मन्त्रालय के विभिन्न प्रशासनिक अनुभागों में रखे जाने वाले रजिस्टरों की भी जाँच की।

कार्य अध्ययन—1976 के दौरान आन्तरिक कार्य अध्ययन एकक ने निम्नलिखित के सम्बन्ध मे तीन अध्ययन किए (i) श्रम ब्यूरो, शिमला, चण्डीगढ मे मशीन स्कूटनी आपरेटरो के सम्बन्ध मे मानक तैयार करना (ii) गोदी सुरक्षा निदेशालय द्वारा जहाजो के निरीक्षण के सम्बन्ध मे मानको का निर्धारण और (iii) अतिरिक्त महँगाई भत्ता (अनिवार्य निक्षेप) अधिनियम, 1974 के कार्यान्वयन हेतु लेखे तैयार करने सम्बन्धी मानक। कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय तथा मुख्य श्रमायुक्त (केन्द्रीय) की शक्तियो का प्रत्यायोजन करने के बारे मे अध्ययन शुरू और पूर्ण किए गए। श्रम ब्यूरो, शिमला/चण्डीगढ की योजनाओं का मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन भी किया गया, जिसका उद्देश्य इन योजनाओं के सम्बन्ध में हुई प्रगति के सन्दर्भ में स्टॉफ की स्थिति और इन योजनाओं को जारी रखने की आवश्यकता की पुनरीक्षा करना था। इस काम को आगे चलाने के लिए एक पुनरीक्षा समिति का गठन किया गया था। आलोच्य वर्ष के दौरान खान सुरक्षा निदेशालय, ऊर्गाम और नागपुर क्षेत्रीय श्रमायुक्त (केन्द्रीय) हैदराबाद के कार्यालय और इस मन्त्रालय के कुछ अनुभागो के सगठनात्मक और कार्य माप अध्ययन किए गए तथा कतिपय सगठनात्मक और प्रक्रियात्मक सुधारो के बारे मे सुझाव भी दिए गए। इसके अतिरिक्त आलोच्य वर्ष के दौरान निम्नलिखित अध्ययन आदि भी किए गए—

1 सभी क्षेत्रीय श्रमायुक्तो और उनके अधीनस्थ कार्यालयो मे एक समान फक्शनल फाइल इडैक्स सिस्टम आरम्भ किया गया,

2 मुख्य श्रमायुक्त (केन्द्रीय) के सगठन मे अवर श्रेणी लिपिको द्वारा किए जाने वाले काम का गुणात्मक मूल्यांकन।

3 सहायक श्रमायुक्त (केन्द्रीय) मगलौर के पद की आवश्यकता।

डेस्क अधिकारी प्रणाली जिसका उद्देश्य आरम्भिक अवस्थाओ मे समुचित विचार करके तथा पडावो (लेवलो) मे कमी करके काम को शीघ्र निपटाना था, 1-1-1975 से श्रमिक सम्बन्ध प्रभाग मे आरम्भ की गई थी। इस प्रणाली का कुछ अन्य अनुभागो मे भी लागू करने के बारे मे विचार किया जा रहा है।

एक बकाया कार्य निपटान अभियान सप्ताह (फरवरी/मार्च, 1976) और दो बकाया कार्य निपटान अभियान माह (जुलाई, 1976 और फरवरी, 1977) भी मनाए गए जिनके परिणाम उत्साहवर्धक रहे।

परिवार कल्याण योजना—चूँकि सगठित क्षेत्र के 2 करोड श्रमिको मे से अधिकतम श्रमिक परिवार कल्याण योजना के पात्र है, इसलिए सगठित क्षेत्र मे परिवार नियोजन से कार्य का समन्वय करने की जिम्मेदारी श्रम मन्त्रालय ने सभाली है। यह काम राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम के एक उपकार्यक्रम के रूप मे किया जाता है। इस प्रयोजन के लिए श्रम कल्याण कार्यक्रमों के एक भाग के रूप मे श्रम मन्त्रालय मे एक जनसख्या सेल खोला गया है और परिवार नियोजन कार्य की पंचवर्षी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन यू. एन. एफ. पी. ए. की सहायता से इस मन्त्रालय के सगठनों, अर्थात्

कर्मचारी राज्य बीमा निगम विभिन्न खान कल्याण संगठन और केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड के माध्यम से की जा रही है।

जिन परियोजनाओं में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन/यू एन एफ पी ए द्वारा धन लगाया जाता है उनमें से एक कर्मचारी राज्य बीमा निगम है। उस परियोजना के लक्ष्य के अनुसार 65 नए केन्द्र खोले गए हैं और परियोजना के मार्च, 1977 को समाप्त होने वाले पहले वर्ष में 100 बन्ध्यकरण पलंगों की व्यवस्था की गई है। यद्यपि अधिकांश राज्यों में इस कार्यक्रम की प्रगति संतोषजनक दिखाई देती है, तथापि, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल में यह प्रगति उत्साहजनक नहीं है। जनवरी-नवम्बर, 1976 के दौरान कर्मचारी राज्य बीमा निगम के औषधालयों में नसबन्दी तथा बन्ध्यकरण के 62,088 आपरेशन किए गए। इस अवधि के दौरान आई यू डी के 4,317 और एम टी पी के 2,777 केस किए गए तथा पात्र दम्पतियों को गर्भनिरोधी वस्तुएँ बाँटी गईं।

खनन क्षेत्रों से सम्बन्धित परियोजना के अन्तर्गत एक अलग चिकित्सा आयुक्त नियुक्त किया गया है। इस परियोजना को विभिन्न खान कल्याण संगठनों और उनकी चिकित्सा तथा अन्य संस्थाओं के माध्यम से चलाया जा रहा है। निर्धारित लक्ष्य के अनुसार विभिन्न खनन क्षेत्रों में गहन परिवार कल्याण कार्य करने के लिए 25 केन्द्र पहले ही खोले जा चुके हैं। सन् 1976–77 के दौरान नसबन्दी के 5,000 ऑपरेशन करने का लक्ष्य था जबकि इसके मुकाबले में 30 नवम्बर 1976 तक 6,539 आपरेशन किए गए। प्रचलित गर्भ निरोधी वस्तुएँ भी बाँटी गईं। व्यापक रूप से प्रचार करने के लिए खान प्रबन्धकों राज्य सरकारों और भारतीय चिकित्सा एसोसिएशन के सहयोग से परिवार नियोजन प्रदर्शनी एवं नसबन्दी शिविर आयोजित किए गए। नसबन्दी और बन्ध्याकरण कराने वाले व्यक्तियों तथा इस काम के लिए प्रेरणा देने वाले व्यक्तियों को सरकारी दरों के अनुसार प्रोत्साहन राशियाँ दी गईं।

आई एल ओ (यू एन एफ पी ए) की एक अन्य परियोजना के अन्तर्गत केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड ने जनसंख्या और परिवार कल्याण शिक्षा के बारे में शिक्षा तथा प्रेरणा देने वाली सामग्री एवं सम्बद्ध दृश्य सामग्री प्रकाशित की है, ताकि उसका उपयोग (क) श्रमिक शिक्षक स्तर, (ख) शिक्षक अनुदेशक तथा ट्रेड यूनियन नेता स्तर, और (ग) स्थानीय ट्रेड यूनियनों के प्रतिनिधियों और सक्रिय श्रमिकों के लिए एकक स्तर पर किया जा सके। यह पहला मौका है कि जबकि किसी देश ने इस प्रकार की सामग्री प्रकाशित की है। यह सामग्री अंग्रेजी में निकाली गई है और इसका हिन्दी में अनुवाद किया जा रहा है तथा इसका सभी राष्ट्रीय भाषाओं में अनुवाद कराने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

संगठित क्षेत्र में जनसंख्या, शिक्षा तथा परिवार कल्याण योजना के बारे में 4 क्षेत्रीय श्रम प्रबन्ध विचार गोष्ठियाँ आयोजित करने के लिए आई० एल० ओ० यू एन एफ पी ए की परियोजना के अन्तर्गत सन् 1976 के दौरान दो विचार गोष्ठियाँ (एक दक्षिणी क्षेत्र में हैदराबाद में तथा दूसरी उत्तरी क्षेत्र में लखनऊ में)

आयोजित की गई । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से आर्थिक सहायता प्राप्त करके बंगलोर में एक राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की गई है जो संगठित क्षेत्र में परिवार कल्याण योजना और जनसंख्या में श्रम व्यवस्था की भूमिका के बारे में थी ।

कृषि मन्त्रालय, शिक्षा मन्त्रालय और परिवार नियोजन विभाग की सहायता तथा सहयोग से अब श्रम मन्त्रालय ने ग्रामीण श्रमिकों में परिवार नियोजन व जनसंख्या शिक्षा की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया है । इस प्रयोजन के लिए एक समिति गठित की गई है ।

रोजगार
(Employment)

प्रत्येक देश में काम करने योग्य व्यक्तियों को काम मिलना आवश्यक है । यदि किसी देश के निवासियों को रोजगार नहीं मिलता है तो वह देश समृद्ध व सुखी नहीं हो सकता है । "रोजगार के अधिक अवसर होने पर लोगों को अपनी समृद्धि और वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि करने में सुविधा रहती है और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय कल्याण में वृद्धि होती है ।"[1] हमारी समस्त आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करके सन्तोष प्राप्त करना है । बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी आर्थिक दुर्दशा एवं गरीबी की प्रधानता का सूचक होती है ।

पूर्ण रोजगार वह स्थिति है जिसमें बेकारी को समाप्त कर दिया जाता है । इसके अन्तर्गत—

1 श्रम की प्रभावपूर्ण माँग इसकी पूर्ति से अधिक होती है ।

2 श्रम की माँग का उचित निर्देशन होता है ।

3 श्रम और उद्योग दोनों संगठित होने के कारण माँग और पूर्ति में समायोजन होता रहता है । पूर्ण रोजगार के साथ-साथ बेरोजगारी भी पाई जाती है जिसे घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment) कहा जाता है । पूर्ण रोजगार की स्थिति में वर्तमान मजदूरी दरों पर कार्य करने वालों को रोजगार मिल जाता है । पूर्ण रोजगार में दो बातें सम्मिलित की जाती हैं[2]—

1 बेरोजगार व्यक्तियों की तुलना में अधिक जगह खाली होती है ।

2 मजदूरी उचित होती है जिस पर सब कार्य करने को तैयार होते हैं ।

पूर्ण रोजगार की शर्तें

एक स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण रोजगार प्राप्त करने हेतु निम्नांकित शर्तें होना आवश्यक है—

1 समुचित कुल व्यय बनाए रखना —यदि कुल व्यय अधिक होगा तो इससे विभिन्न उत्पादन के साधनों को रोजगार मिलेगा, आय प्राप्त होगी, व्यय करेंगे और इसके परिणामस्वरूप उद्योग के उत्पादन की माँग बढ़ेगी । यह कार्य निजी उद्यमियों

1. *Saxena, R. C.*: Labour Problems and Social Welfare, p. 898.
2 *Das Naba Gopal*: Unemployment, Full Employment and India, p 10

द्वारा नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में प्रत्येक सरकार का यह दायित्व हो गया है कि मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करने हेतु सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करे। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि घाटे के बजट (Deficit Budget) द्वारा किया जा सकता है और अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं।

2. उद्योगों के स्थानीयकरण पर नियन्त्रण द्वारा भी पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। जब उद्योगों का स्थानीयकरण होगा तो इससे हमें आसानी से पता चल जाएगा कि किन उद्योगों में श्रम की कितनी कितनी माँग है। इसके लिए वांछनीय स्थानीयकरण को प्रोत्साहन देना होगा।

3 नियन्त्रित श्रम की गतिशीलता (Controlled Mobility of Labour)— यह तभी सम्भव हो सकता है जब श्रम बाजार सगठित हो। यदि श्रम बाजार सगठित नहीं होगा तो श्रमिकों को न तो पूर्ण रोजगार ही मिल सकेगा और न उचित मजदूरी ही। भारत जैसे विकासशील देश में श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी एव रूढ़िवादी होने के साथ-साथ असगठित भी होते हैं। इसलिए उनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है, उनकी सौदाकारी शक्ति दुर्बल होती है और फलस्वरूप नियोक्ताओं द्वारा कम मजदूरी देकर उनका शोषण किया जाता है।

पश्चिमी देशों में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के साथ-साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति भी विद्यमान है लेकिन बेरोजगारी, अर्द्ध-रोजगार और निर्धनता के कारण सरकार सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ शुरू करने में असमर्थ होती है। भारत जैसे विकासशील देश में इन बुराइयों को दूर करने में सरकार असफल रही है क्योंकि वित्तीय समस्या सबसे महत्वपूर्ण समस्या है।[1]

अविकसित देशों में हम बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी देखने को मिलती है। भारत जैसे विकासशील देश में कई पचवर्षीय योजनाओं के समाप्त होने के बावजूद बेरोजगारी ज्यों की त्यों बनी हुई है। प्रो नर्क्से के अनुसार, अर्द्ध-विकसित देश कृषि प्रधान है और वहाँ पर कृषि उद्योग में 15 से 20% छिपी हुई बेरोजगारी (Disguised Unemployment) देखने को मिलती है।

"बेरोजगारी वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत एक देश में काय करने योग्य व्यक्तियों की कार्य करने की इच्छा होती है, लेकिन उन्हें काय वर्तमान मजदूरी दरों पर नहीं मिलती है।"[2]

बेरोजगारी के प्रकार

रोजगार के सम्बन्ध में समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बेरोजगारी श्रम की माँग और पूर्ति में असन्तुलन उत्पन्न होने से होती है। जब श्रम की पूर्ति इसकी माँग से अधिक होती है तब बेरोजगारी होती है तथा इसके विपरीत पूर्ण रोजगार देखने को मिलता है। उनके अनुसार बेरोजगारी दो प्रकार की होती है—

1. *Das Naba Gopal* · Unemployment, Full Employment and India, p 23
2. *Saxena, R C* : Labour Problems and Social Welfare, p 899

1. घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment)—श्रम की माँग और पूर्ति मे असन्तुलन उत्पन्न होने से जब श्रम बेरोजगार हो जाता है तो वह घर्षणात्मक बेरोजगारी कहलाती है।

2 ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Unemployment)—वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत श्रमिक वर्तमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तैयार नही होते है। अत: प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के अनुसार बेरोजगारी श्रम की माँग और पूर्ति के असन्तुलन का परिणाम है।

प्रो कीन्स के अनुसार बेरोजगारी सन्तुलन की दशा मे नही होती है। उन्होने अनैच्छिक बेरोजगारी (Involun ary unemployment) का विचार दिया है। इसके अन्तर्गत कोई भी श्रमिक वर्तमान वास्तविक मजदूरी से कम मजदूरी पर कार्य करने के लिए तैयार होता है। किसी कार्य मे लगे रहने मात्र से हम यह नहीं कह सकते कि बेरोजगारी नही है। जो व्यक्ति आंशिक रूप से कार्य पर लगे हुए हैं अथवा अपनी योग्यता से कम कार्य पर लगे रहना, थोड़े कार्य पर अधिक श्रमिक लगे रहना यह सब बेरोजगारी ही है।

इस प्रकार ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary unemployment) वह बेरोजगारी है जिसमे श्रमिक वर्तमान मजदूरी दरो पर कार्य करने को तैयार नही होता है।

प्रो. कीन्स के अनुसार अधिक बचत (Over-saving) और कम व्यय (Under-spending) जो कि आय के असमान वितरण का परिणाम है, बेरोजगारी उत्पन्न करते हैं। अत बेरोजगारी को दूर करने के लिए अधिक व्यय और कम बचत की जाए जिससे उद्योग मे वृद्धि होगी और प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand) अधिक होने से अधिक आर्थिक क्रियाओ के परिणामस्वरूप अधिक साधनो को रोजगार अधिक मिल सकेगा।

बेरोजगारी के कई रूप हो सकते है—

1. आर्थिक बेरोजगारी (Economic Unemployment)—वह बेरोजगारी है जो व्यापार चक्रो के उतार-चढाव के कारण उत्पन्न होती है। आर्थिक के मन्दी व्यापारिक क्षेत्रो मे उत्पन्न होने से देश मे बेरोजगारी फैल जाती है।

2. औद्योगिक बेरोजगारी (Industrial Unemployment)—जब कोई उद्योग असफल हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर कम अथवा बिल्कुल ही समाप्त हो जाते तो वह औद्योगिक बेरोजगारी का प्रकार होगा।

3. मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment)—वे उद्योग जो साल भर नही चलते हैं और शेष अवधि मे उन्हे बन्द करने से बेरोजगारी फैला देते हैं, मौसमी बेरोजगारी के अन्तर्गत आते हैं।

4. यांत्रिक बेरोजगारी (Technological Unemployment)—उत्पादन के तरीको मे परिवर्तन के कारण पुराने श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं उन्हे फिर से

प्रशिक्षण दिया जाना है। यह उद्योग मे विवेकीकरण और आधुनिकीकरण (Rationalisation and Modernisation) का परिणाम है।

5 शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment)—शिक्षा के कारण जब शिक्षित व्यक्तियो को रोजगार नही मिलता है तो यह शिक्षित बेरोजगारी है।

6 छिपी हुई बेरोजगारी या अर्द्ध-बेरोजगारी (Disguised Unemployment or Under-employment)—यह वह स्थिति है जिसमे श्रमिक या व्यक्तियो को कार्य तो मिला हुआ होता है, लेकिन पूरा कार्य नही मिला होता है। उदाहरणतया भारतीय कृषि म ऐसी ही स्थिति है। काम कम है लोगो की सख्या अधिक है।

बेरोजगारी के कारण

बेरोजगारी क्यो उत्पन्न होती है? अर्थात् इसके क्या कारण हैं? पूँजी की कमी तकनीकी परिवतन, अधिक मजदूरी, अधिक जनसख्या, अधिक कर भार, औद्योगिक अशान्ति, श्रम सगठनो का अभाव आदि ऐसे तत्त्व हैं जिनके परिणामस्वरूप किसी भी देश के साधनो को अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना सम्भव नही होता है।

बेरोजगारी को दूर करने के लिए कई कार्यक्रम विस्तृत पैमाने पर शुरू करने पडेंगे जिससे बेरोजगारी किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था से समाप्त की जा सके।

श्रम की माँग और पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित करने हेतु रोजगार कार्यालयों की स्थापना करनी चाहिए जिससे श्रम के क्रेता तथा विक्रेता दोनों अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकते हैं। व्यापारिक चक्रो के कारण उत्पन्न बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए सरकार को अपनी आर्थिक नीतियाँ, जैसे—मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति, मूल्य नीति, आयात-निर्यात नीति को उपयुक्त ढग से क्रियान्वित करना चाहिए।

मौसमी बेरोजगारी दूर करने हेतु अलग-अलग मौसम के उद्योगो को एक दूसरे से मिलाकर बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है। औद्योगिक अशान्ति को दूर करने के लिए सुदृढ एव सुसगठित श्रम सघो को प्रोत्साहन देना, बेरोजगारी बीमा योजना शुरू करना, प्रबन्ध मे सहभागिता, आदि कदम उठाए जा सकते हैं।

भारत मे रोजगार की स्थिति का एक चित्र

रोजगार पर सामान्य विवेचना के उपरान्त यह देखना प्रासगिक होगा कि हमारे देश मे रोजगार की क्या स्थिति है और पचवर्षीय योजनाओ मे लोगो को रोजगार देने के सम्बन्ध मे क्या नीति अपनाई गई है। इस सम्बन्ध मे भारत सरकार के वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ सन् 1975 एव 1976 मे जो विवरण दिया गया है वह स्थिति का सारपूर्ण चित्रण करता है—

'चौथी योजना के शुरू में सगठित क्षेत्र में नौकरी में लगे लोगों की सख्या 166 30 लाख थी। मार्च, 1974 मे यह सख्या 192 80 लाख थी जिससे लगभग 26 लाख की वृद्धि प्रकट होती है। अधिक वृद्धि सरकारी क्षेत्र मे रही है जो

23.80 लाख थी। चूंकि देश में रोजगार और बेरोजगारी के ठीक-ठीक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, नेशनल सैम्पल सर्वे ने अपने 27वें दौर में एक व्यापक श्रम सर्वेक्षण पूरा कर लिया है। जिसके परिणाम की अभी प्रतीक्षा है।

"संगठित क्षेत्र में नौकरियों की संख्या में इस महत्वपूर्ण वृद्धि के बावजूद, यदि सम्पूर्ण और समानुपातिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो कहना पड़ेगा कि बेरोजगारी बढ़ी है। ऐसा जनसंख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप श्रम-शक्ति में बढ़ोत्तरी के कारण हुआ है।

'अस्तु, पहले से ही इतने अधिक रोजगार-विहीन लोग हैं जिनको रोजगार देना है। इसके अतिरिक्त सन् 1986 तक ऐसा अनुमान है कि 6.5 करोड़ और व्यक्तियों को रोजगार की आवश्यकता होगी। रोजगार पाने के इच्छुक लोगों की संख्या में अकेली यह वृद्धि संगठित क्षेत्र में रोजगार दे सकने की वर्तमान क्षमता से साढ़े तीन गुनी से भी अधिक होगी। इससे भी, जो कठिन काम सामने किए जाने हैं, उसका एक आंशिक रूप सामने आता है, क्योंकि इस समस्या से जुड़ी अन्य समस्याएँ भी हैं, जैसे—अर्द्ध-रोजगारी और ऐसे रोजगार जिसका उत्पादन नगण्य सा हो।

"इसलिए पाँचवीं योजना के अन्तर्गत, रोजगार की समस्या को सबसे कठिन चुनौती के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें कुछ प्रमुख कारणों का उल्लेख किया गया है जो बेरोजगारी में सतत् वृद्धि कर रहे हैं। जिन कारणों का उल्लेख पाँचवीं योजना के अन्तर्गत किया गया है उनमें शिक्षा प्रणाली और सामाजिक परम्परा है जिनकी वजह से लोग नौकरी करने के इच्छुक होते हुए भी शारीरिक श्रम वाले रोजगार से दूर भागते हैं और उद्यमी पिछड़े इलाकों में उद्योग लगाने से हिचकिचाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उक्त इलाकों में रोजगार के क्षेत्र में ठहराव आ जाता है। पिछली योजनाओं में इस क्षेत्र में जो भी धन लगाया गया उनसे अपेक्षित रोजगार नहीं पैदा हुआ।

"पाँचवीं योजना में इन अनुभवों से लाभ उठाने की सिफारिश की गई है। उद्देश्य यह है कि उचित आय स्तर पर रोजगार के अवसरों का बड़े पैमाने पर विस्तार हो। पाँचवीं योजना में बड़े हुए विनियोजन कार्यक्रम से नए रोजगार से अधिक अवसर प्राप्त होने की आशा की जाती है। पाँचवीं योजना में इस बात पर बल दिया गया है कि विनियोजन कार्यक्रम का चुनाव ऐसे किया जाए जिससे श्रम को यथासम्भव अधिकतम प्राथमिकता मिले। अकेले नौकरी से समस्या का पूरा समाधान नहीं निकाला जा सकता। इसलिए पाँचवीं योजना में इस बात पर जोर दिया गया है कि लोग दूसरे के यहाँ नौकरी न करके अपने रोजगार के अवसर स्वयं पैदा करें। इसलिए अधिक प्रयास खेती, लघु उद्योग, सेवाओं, वाणिज्य और व्यापार के क्षेत्र में किए जाएँगे। पाँचवीं योजना में इस बात पर जोर दिया गया है कि समाज में गरीब लोगों को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त हों और ऐसे लोगों की आय में वृद्धि हो जो अभी नाम-मात्र की नौकरियाँ कर रहे हैं। चौथी योजना के विशेष रोजगार कार्यक्रमों के अनुभवों का उपयोग पाँचवीं योजना में अधिक उपयोगी रोजगार के अवसर जुटाने में किया जाएगा।

"राष्ट्रीय रोजगार सेवा, 1945 में शुरू की गई। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा चलाए जाने वाले अनेक रोजगार कार्यालय खोले गए हैं। ये रोजगार कार्यालय रोजगार की तलाश में सब प्रकार के व्यक्तियों की सहायता करते हैं, विशेषकर शारीरिक रूप से बाधित व्यक्तियों, भूतपूर्व सैनिकों, अनुसूचित जातियों और जन जातियों विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों तथा व्यावसायिक और प्रबन्ध पदों के उम्मीदवारों की। रोजगार सेवा और भी काम करती है जैसे रोजगार सम्बन्धी सूचनाएं एकत्र और प्रचारित करना तथा रोजगार और धन्धों सम्बन्धी अनुसन्धान के क्षेत्र में सर्वेक्षण और अध्ययन करना। ये अनुसन्धान तथा अध्ययन ऐसे आधारभूत आंकड़े उपलब्ध कराते हैं जो जन शक्ति के कुछ पहलुओं पर नीति निर्धारण में सहायक होते हैं।

"रोजगार कार्यालय अधिनियम, 1959 (रिक्त स्थान सम्बन्धी अनिवार्य ज्ञापन) के अन्तर्गत 25 या 25 से अधिक श्रमिकों को रोजगार देने वाले मालिकों के लिए रोजगार कार्यालयों को अपने यहां के रिक्त स्थानों के बारे में कुछ ब्यौरों के साथ ज्ञापित करना और समय-समय पर इस बारे में सूचना देते रहना आवश्यक है।"

आर्थिक समीक्षा के अनुसार सन् 1974–75 से 1976–77 तक रोजगार स्थिति का चित्रण

भारत सरकार के प्रकाशन 'आर्थिक समीक्षा' सन् 1975–76, 1976–77 और 1977–78 में सगठित क्षेत्र में रोजगार स्थिति का जो विश्लेषण किया गया है वह हमें कुछ वर्षों में रोजगार स्थिति की प्रगति की ओर संकेत करता है। इस विवरण से हमें यह भी ज्ञात होता है कि सरकारी क्षेत्र की किन सेवाओं अथवा उद्योग समूहों में रोजगार के अवसरों में विगत वर्षों में वृद्धि हुई है और देश के रोजगार कार्यालयों के आंकड़ों के अनुसार बेरोजगारों की फौज कितनी है।

आर्थिक समीक्षा सन् 1975–76 के अनुसार सगठित क्षेत्र में सन् 1974–75 में रोजगार में लगभग 2% वृद्धि हुई। लगभग यह सारी वृद्धि सरकारी क्षेत्र में ही हुई। सभी मुख्य उद्योग समूहों ने (निर्माण को छोड़कर) रोजगार की इस वृद्धि में योगदान दिया। सेवाओं के क्षेत्र में, जिसके अन्तर्गत कुल रोजगार के लगभग दो बटा पांच भाग रोजगार की व्यवस्था है, रोजगार में 2.3% वृद्धि हुई है। निर्माण सम्बन्धी उद्योग समूह के क्षेत्र में रोजगार में 0.7% की मामूली वृद्धि हुई और वह भी सरकारी क्षेत्र के कारण हुई, किन्तु गैर-सरकारी क्षेत्र में रोजगार में कुछ कमी हुई। लेकिन खानों तथा पत्थर के खानों के क्षेत्रों में रोजगार में (+7.6%) तथा व्यापार और वाणिज्य में (+8.8%) रोजगार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, खानों के रोजगार में वृद्धि, मुख्य रूप से कोयले के उत्पादन में हुई महत्वपूर्ण वृद्धि हो जाने के वजह से माल का लदान करने तथा माल उतारने के लिए ज्यादा तादाद में कामिकों की आवश्यकता हो जाने के कारण हुई, और व्यापार तथा वाणिज्य क्षेत्र के रोजगार में वृद्धि बैंकिंग सम्बन्धी क्रियाकलाप में विस्तार होने के कारण हुई। बागानों तथा वनों आदि के क्षेत्रों में, रोजगार में 0.5% वृद्धि हुई, जो सबसे कम थी। मकान निर्माण

के काम मे लगे हुए कार्मिकों की संख्या मे 2·4% की जो कमी हुई, उसका मुख्य कारण यह है कि निर्माण के काम पर, खासकर सरकारी क्षेत्र म, निर्माण के काम मे इस्तेमाल की जाने वाली सीमेंट और इस्पात जैसी बुनियादी चीजो की कमी हो जाने के कारण पाबन्दी लगा दी गई थी।

प्रादेशिक क्षेत्रो के अनुसार सन् 1974–75 मे संगठित क्षेत्र मे रोजगार मे सबसे ज्यादा वृद्धि पूर्वी इलाके म (+2·5%) हुई, और इसके बाद रोजगार मे सबसे ज्यादा वृद्धि दक्षिणी इलाके मे (+2·4%) हुई। लेकिन पश्चिमी इलाके (+1·6%), उत्तरी इलाके (+1·5%) और मध्यवर्ती इलाके (+1·3%) रोजगार मे जो वृद्धि हुई, वह अखिल भारतीय स्तर की रोजगार की औसत वृद्धि मे कम थी। उत्तरी इलाके मे राजस्थान, हरियाणा तथा जम्मू और कश्मीर मे, रोजगार मे, क्रमश 5·2%, 4·8% और 2·8% वृद्धि हुए, किन्तु दक्षिणी इलाके मे, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश मे क्रमश 3·9% तथा 3·8% वृद्धि हुई। पश्चिमी इलाके मे *(जिसमे गोआ, दमन और दीव को शामिल नहीं किया गया है)* गुजरात सबसे आगे रहा, जहाँ रोजगार मे 3·0% वृद्धि हुई। इसी प्रकार से पूर्वी इलाके मे उडीसा में रोजगार मे सबसे ज्यादा वृद्धि (+4·1%) हुई और इसके बाद पश्चिमी बगाल मे सबसे ज्यादा वृद्धि (+3·0%) हुई।

सितम्बर, 1975 के अन्त मे रोजगार कार्यालयो मे नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की सख्या 92·54 लाख थी, जो एक वर्ष पहले से 7·1% अधिक थी। इससे रोजगार मे कुछ कमी होने का पता चलता है, क्योकि पिछले 12 महीनों मे 5·4 % वृद्धि हुई थी। यह कमी निस्सदेह सन् 1975 के मध्य तक उद्योग की धीमी गति के विकास मे जुडी हुई है। तब से औद्योगिक उत्पादन मे सुधार हुआ है जिसका पता, अधिसूचित खाली स्थानों और दी गई नौकरियो के आँकड़ो से चलता है, जो जुलाई-सितम्बर, 1975 मे, सन् 1974 की इसी तिमाही के मुकाबले काफी अधिक थी।

नए आर्थिक कार्यक्रम मे रोजगार के अवसर में अप्रेंटिसों के मौजूदा सभी खाली स्थानों को तेजी से भर कर रोजगार मे वृद्धि की विशेष रूप से शिक्षित युवकों के रोजगार की परिकल्पना की गई है। जब यह कार्यक्रम घोषित किया गया था उस समय एक लाख उपलब्ध स्थानों मे से केवल लगभग दो-तिहाई स्थान वास्तव मे भरे थे। सितम्बर, 1975 को समाप्त हुए तीन महीनो की अवधि मे लगभग सभी खाली जगहो मे नियुक्तियाँ कर दी गई। अभी हाल मे अधिसूचित उद्योगों और व्यवसायों की सूची मे वृद्धि की गई है। इसके परिणामस्वरूप अप्रेंटिसों की सख्या मे काफी वृद्धि होने की सम्भावना है।

आर्थिक समीक्षा सन् 1976–77 के अनुसार—सन् 1975–76 मे संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरो मे 5·20 लाख अथवा 2·6% की वृद्धि हुई। यह वृद्धि मुख्य रूप से सरकारी क्षेत्र मे 4·7 लाख रोजगार के अवसर बढ जाने के कारण हुई। इससे पता चलता है कि सरकार क्षेत्र मे रोजगार, गैर-सरकारी *(निजी)* क्षेत्र के

0 6% के मुकाबले 3 6% बढ़ा। परन्तु समय-समय पर कुछ गैर-सरकारी औद्योगिक एकको को सरकारी क्षेत्र में ले लिए जाने की वजह से तुलना करने पर गैर-सरकारी क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि कम मालूम होती है। सन् 1975–76 में इन सभी बडे उद्योगो (थोक और खुदरा व्यापार तथा वित्त पोषण और बीमा आदि समूहो को छोड़कर) में रोजगार में वृद्धि हुई। सेवाओं के क्षेत्र में, जहाँ कुल रोजगार का लगभग 2/5 भाग उपलब्ध है, रोजगार में 3 0% वृद्धि हुई। इसी तरह विनिर्माण उद्योग समूह में रोजगार में काफी वृद्धि (2 9%) हुई। इस प्रकार सेवाओं तथा विनिर्माण दोनो उद्योग समूहो ने संयुक्त रूप से जिनमे कुल रोजगार का लगभग 64% भाग उपलब्ध है। सन् 1975–76 में संगठित क्षेत्र में रोजगार में हुई वृद्धि में 72% अंश तक योगदान दिया। जहाँ तक भवन आदि के निर्माण में रोजगार देने का सम्बन्ध है, कुल मिलाकर स्थिति यह रही है कि इस क्षेत्र में रोजगार बहुत मामूली-सा बढ़ा क्योकि सन् 1975 में इस प्रकार निर्माण काम कम हुआ। लेकिन वर्ष के अन्त में सरकारी क्षेत्र के भवन आदि के निर्माण से सम्बन्धित कार्यकलापो के बारे में सरकार द्वारा कई प्रकार की छूट दिए जाने के कारण कुल मिलाकर सन् 1975–76 में इस क्षेत्र में 37000 और ज्यादा व्यक्तियो को रोजगार मिला। जहाँ तक गैर-सरकारी क्षेत्र में भवन आदि के निर्माण कार्य से रोजगार मिलने का सम्बन्ध है, मार्च, 1975 से इस क्षेत्र में रोजगार कम होने लगा था पर बाद में सितम्बर, 1975 और मार्च, 1976 के बीच इस क्षेत्र में भी 7000 से अधिक लोगो को रोजगार मिला।

दिसम्बर, 1976 के अन्त में, देश के रोजगार कार्यालयो की पंजियो में नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की संख्या लगभग 97 7 लाख थी जबकि इससे पिछले वर्ष के दिसम्बर के अन्त में उनकी संख्या लगभग 93 3 लाख थी। इसका मतलब यह है कि इस अवधि के दौरान नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की संख्या में 4 8% की बढ़ोतरी हुई। सन् 1975 में नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालो की संख्या में जो 10 6% की वृद्धि हुई थी उसके मुकाबले आलोच्य वर्ष की दर आधे से भी कम है क्योकि सन् 1976 में इससे पहले वर्ष के मुकाबले 23 0% अधिक खाली पदो को अधिसूचित किया गया था और 23 0% ज्यादा नौकरियाँ दी गई थी। शिक्षित बेरोजगारो की कुल संख्या भी 48 05 लाख से बढ़ कर 51 05 लाख हो गई। परन्तु शिक्षित बेरोजगारो की संख्या में हुई यह वृद्धि, सन् 1975 में हुई 6 58 लाख की वृद्धि की तुलना में बहुत कम थी। रोजगार के अवसरो में औद्योगिक उत्पादन बढ़ जाने के कारण वृद्धि हुई है। इससे 'अन्य क्षेत्र' का विस्तार भी हो सकता था। तब भी नौकरी तलाश करने वाले जिन लोगो का नाम रजिस्टरो में दर्ज है उससे भारी चिन्ता के अलावा और कुछ नही हो सकता क्योकि यह बात स्वीकार करनी होगी कि कुल मिलाकर बेरोजगारी की समस्या पर इस वृद्धि का जो प्रभाव पड़ा है वह बहुत मामूली है।

वास्तव में रोजगार कार्यालयों के जरिए जितने अधिक पद भरे गए हैं उनको

देखने से यह पता चलता है कि सन् 1972 और 1973 मे अर्थात् अर्थ-र पूर्ति मे कुछ छोटे-छोटे औद्योगिक क्षेत्रो मे मन्दी की स्थिति दिखाई देने से पहले, जितने यता, पद भरे गए थे लगभग उतने ही खाली पद आलोच्य वर्ष मे भरे गए है। इसके अन रा इन आंकडो से न यह पता चलता है कि देहातो मे बेकारी कितनी है और कम रोजगार कितने है। जो भी सकेत उपलब्ध है उनसे यही पता चलता है कि समस्या गम्भीर है और हर साल भयावह होती जा रही है। इसलिए न केवल नए लोगो को रोजगार देने के लिए बल्कि पहले के बेकारो को रोजगार देने के लिए यदि रोजगार के अवसर बढाना है तो इस दिशा मे काफी कुछ करने की आवश्यकता है। खास तौर पर पचवर्षीय आयोजनाओ को, जिनमे रोजगार को अब तक विकास प्रक्रिया का गौण अग समझा जाता रहा, नया रूप देना होगा और उनमे रोजगार को विकास का एक अभिन्न अग मानकर उसे प्रमुख स्थान देना होगा।

आर्थिक समीक्षा सन् 1977-78 के अनुसार—सन् 1976–77 मे सगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसरो मे 4·60 लाख अथवा 2 3% की वृद्धि हुई यह वृद्धि मुख्य रूप से सरकारी क्षेत्र मे रोजगार के अवसरो के बढ जाने कारण हुई, परन्तु समय-समय पर कुछ गैर-सरकारी औद्योगिक एकको को सरकारी क्षेत्र मे लेने का भी प्रभाव पडा। सन् 1976–77 में रोजगार वृद्धि का एक दिलचस्प पहलु यह रहा कि रोजगार वृद्धि लघु क्षेत्र (रोजगार आकार 10–24 व्यक्ति) मे अधिक थी, इस प्रकार लघुस्तरीय उद्योगो मे गतिशीलता अधिक रही।

रोजगार कार्यालयो की पजियों मे नौकरी के लिए नाम लिखवाने वालों की सख्या अक्तूबर, 1977 के अन्त में 1 करोड़ 8 लाख थी।



6

...और संयुक्त राज्य अमेरिका ...गार-सेवा सगठन : सगठन, कार्य एव उपलब्धियाँ; भारत में श्रमिक भर्ती की पद्धतियाँ; भारत में रोजगार सेवा-सगठन

(ORGANISATIONS, FUNCTIONS & ACHIEVEMENTS OF EMPLOYMENT-SERVICE ORGANISATION IN THE U. K, U. S A. IN GENERAL; METHODS OF LABOUR RECRUITMENT IN INDIA, EMPLOYMENT SERVICE ORGANISATION IN INDIA)

रोजगार या नियोजन सेवा संगठन (Employment Service Organisation)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organisation) ने सन् 1919 मे एक प्रस्ताव पास कर प्रत्येक सदस्य देश को नि शुल्क रोजगार सेवा (Free Employment Service) की स्थापना की सिफारिश की। भारत सरकार ने इसकी पुष्टि सन् 1921 मे की। शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने यह सिफारिश की कि जब मालिको को कारखाने के दरवाजो पर आसानी से पर्याप्त सख्या मे श्रमिक मिल रहे हैं तो फिर रोजगार कार्यालय चलाने की कोई आवश्यकता नही है। आयोग के इस विचार के बावजूद भी सप्रू बेरोजगार समिति, श्रम अनुसन्धान समिति, बिहार एव कानपुर श्रम जाँच समितियाँ, नई नियोक्ताओ और श्रमिको की परिषदो ने रोजगार सेवा चलाने हेतु प्रबल समर्थन किया।

युद्धकालीन विभिन्न प्रकार के श्रमिको की माँग युद्धोत्तर कालीन पुनर्वास एवं पुनर्निर्माण कार्य आदि मे इस प्रकार की सेवा का कार्य काफी सराहनीय रहा।

अर्थ (Meaning)

रोजगार या सेवा नियोजन कार्यालय वे कार्यालय हैं जो इच्छुक व्यक्तियो को उनकी रुचि तथा योग्यतानुसार काम तथा मालिको को उनकी आवश्यकतानुसार श्रमिक उपलब्ध कराने का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दो मे, श्रम के क्रेता (मालिको)

व विक्रेता (श्रमिकों) को एक दूसरे के सम्पर्क में लाकर श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करते हैं। ये एक ओर श्रमिक का नाम, योग्यता, अनुभव और विशेष रुचि से सम्बन्धित लेखा रखते हैं तो दूसरी ओर मालिकों द्वारा दी जाने वाली नौकरी व उनके द्वारा इच्छित श्रमिकों के प्रकार से सम्बन्धित सूचना रखते हैं। जब भी खाली जगह निकलती है तो उसमें रखी गई योग्यता, अनुभव तथा रुचि आदि को देखकर उस प्रकार के श्रमिकों के नाम निकाल लिए जाते हैं और ये नाम इच्छित मालिक के पास भेज दिए जाते हैं। अन्तिम चयन मालिक पर निर्भर करता है। इस प्रकार नियोजन कार्यालय श्रम की मांग और पूर्ति का समायोजन इस तरह करते हैं कि उपयुक्त व्यक्ति के लिए उचित नौकरी या कार्य मिल जाए।

रोजगार कार्यालय रोजगार के अवसरों में वृद्धि ही नहीं करते हैं बल्कि वे अल्पकाल में ही श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करते हैं। श्रमिक को सूचित करके रोजगार प्राप्त करने में सहायता करते हैं तथा दूसरी ओर मालिक को सूचित करके उसकी श्रम की मांग को तुरन्त पूरा करने में सहयोग देते हैं। इस प्रकार ये श्रम की गतिशीलता में वृद्धि करके उनकी उत्पादकता में वृद्धि करते हैं जिससे देश में बेकार पड़े साधनों का पूर्ण उपयोग होता है, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है और देशवासियों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

रोजगार कार्यालयों के उद्देश्य
(Objectives of Employment Exchanges)

रोजगार कार्यालयों के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

1. **श्रमिकों व मालिकों के बीच समन्वय स्थापित करना**—श्रम की मांग और पूर्ति दोनों में सन्तुलन स्थापित करके श्रम के विक्रेता (श्रमिक) और श्रम के क्रेता (मालिक) को एक दूसरे के निकट लाकर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना इन कार्यालयों का उद्देश्य है।

2. **श्रम की गतिशीलता में वृद्धि करना**—रोजगार कार्यालयों से श्रमिकों को मालूम हो जाता है कि उनकी मांग कहाँ अधिक और कहाँ कम है। कार्यालय श्रमिकों को सूचित करके श्रम को कम मांग वाले क्षेत्र से अधिक मांग वाले क्षेत्र की ओर स्थानान्तरण करने का कार्य करते हैं।

3. **श्रमिकों की भर्ती में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करना**—रोजगार कार्यालय रोजगार देने वाले (मालिक) व रोजगार प्राप्त करने वाले (श्रमिक) के बीच मध्यस्थ का कार्य करके निःशुल्क सेवा प्रदान करते हैं। पहले मध्यस्थों, जॉबरों, दलालों आदि द्वारा श्रमिकों की भर्ती की जाती थी। वे श्रमिकों से विभिन्न प्रकार की रिश्वत लेते थे और उनका शोषण करते थे। रोजगार कार्यालयों के स्थापित हो जाने से भ्रष्टाचार समाप्त हो गया है।

4. **आर्थिक नियोजन में सहायक**—प्रत्येक देश में योजना बनाकर आर्थिक विकास के कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इन कार्यालयों द्वारा बेरोजगारी, बीमा योजना,

पुनर्वास, पुनर्निर्माण आदि के सम्बन्ध मे आंकडे एकत्रित किए जा सकते हैं और इनको नियन्त्रित भी किया जा सकता है जो कि आर्थिक नियोजन का अभिन्न अंग है।

5 प्रशिक्षण व परामर्श की सुविधाएँ प्रदान करना—रोजगार कार्यालय श्रमिकों को प्रशिक्षण देने का कार्य करते हैं तथा साथ ही किस व्यवसाय मे प्रवेश किया जाए, किस प्रकार की शिक्षा ली जाए, भावी अवसर कैसे है, इन सब पर बच्चों के माता पिताओ अथवा सरक्षको को व्यावसायिक परामर्श देने का कार्य करते हैं।

6. अनैच्छिक बेरोजगारी को कम करना—अल्पकाल मे ही इन कार्यालयो द्वारा खाली स्थान होने पर रोजगार दिला कर बेकारी को कम किया जा सकता है। इससे बेकार पडे मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग करके राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करना सम्भव हो जाता है।

7. आवश्यक आंकडों का सग्रहण एव प्रकाशन—रोजगार कार्यालयो द्वारा पजीकृत व्यक्तियो की सख्या, रोजगार दिलाए गए व्यक्तियों की सख्या, बेकार व्यक्तियो की सख्या आदि के सम्बन्ध मे आंकडे एकत्रित एव प्रकाशित किए जाते हैं। इन आंकडो की सहायता से सरकार देश मे रोजगार नीति को नया मोड दे सकती है।

रोजगार दफ्तरो के कार्य
(Functions of Employment Exchanges)

रोजगार दफ्तरो के कार्य निम्नांकित हैं—

1. मध्यस्थी का कार्य—ये कार्यालय श्रमिकों और मालिको के बीच एक कडी के रूप मे मध्यस्थता करके दोनो पक्षो मे समन्वय कराते हैं। इससे श्रम की माँग और पूर्ति दोनो मे सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

2 श्रम की गतिशीलता में वृद्धि—रोजगार कार्यालय बेकार पडे श्रमिको को सूचित करके जहाँ उनकी माँग अधिक है वहाँ रोजगार प्राप्त करने का निर्देश देते हैं। जहाँ श्रम का अभाव है वहाँ बचत वाले क्षेत्र से श्रमिक को भेजकर उसकी गतिशीलता मे वृद्धि करने का कार्य रोजगार कार्यालयो द्वारा ही सम्भव हो पाता है। अज्ञानता के कारण श्रम के असमान वितरण को रोजगार दफ्तरो द्वारा समान किया जाता है।

3. श्रमिकों की भर्ती में व्याप्त भ्रष्टाचार की समाप्ति—रोजगार कार्यालय सरकारी कार्यालय हैं। ये रोजगार प्राप्त करने वाले व्यक्तियो को नि शुल्क सेवा प्रदान करते हैं। श्रमिको की भर्ती ठेकेदारो, मध्यस्थो, जाबर्स आदि होने पर वे श्रमिको से रिश्वत लेते हैं, उनका शोषण करते हैं। अत मध्यस्थो द्वारा भर्ती प्रणाली मे व्याप्त रिश्वत तथा भ्रष्टाचार को समाप्त करने का कार्य इन दफ्तरों द्वारा किया जाता है।

4 आंकडों का संग्रहण एव प्रकाशन—रोजगार दफ्तरो द्वारा बेरोजगारी और मानवीय शक्ति से सम्बन्धित आंकडो का सग्रहण किया जाता है और उन्हें प्रकाशित किया जाता है जिससे श्रम बाजार की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है।

5. विभिन्न योजनाओं को शुरू करना और क्रियान्वित करना—रोजगार कार्यालय विभिन्न प्रकार की योजनाओं को चालू करते है तथा उनके क्रियान्वयन का कार्य भी करते है। इससे सरकार को मदद मिलती है। ये योजनाएँ है—बेरोजगारी बीमा, पुनर्निर्माण व पुनर्वास का काम, आदि।

6. प्रशिक्षण और परामर्श का कार्य—रोजगार दफ्तर श्रमिको को प्रशिक्षण देने का कार्य करते है तथा विभिन्न व्यवसायो के सम्बन्ध मे व्यावसायिक परामर्श देने का कार्य भी किया जाता है। विद्यालयो, महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियो को भी ये कार्यालय परामर्श सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करते है।

7. घर्षणात्मक बेरोजगारी को कम करना—रोजगार दफ्तर अपनी नि:शुल्क सेवाओं द्वारा घर्षणात्मक बेरोजगारी को कम करने मे सहायक होते है। यद्यपि ये रोजगार का सृजन करने वाले दफ्तर नही है फिर भी जगह खाली होने तथा उसको भरने के बीच के समय को कम करने का कार्य करते हैं।

रोजगार दफ्तरो का महत्व
(Importance of Employment Exchanges)

सर्वप्रथम इन दफ्तरो का महत्व सन् 1919 मे स्वीकार किया गया जबकि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो द्वारा यह प्रस्ताव पास किया गया था कि प्रत्येक सदस्य देश द्वारा केन्द्रीय सरकार के अधीन ऐसे कार्यालय खोले जाएँ। सन् 1947 मे पुनः इस प्रश्न को उठाया गया और सभी सदस्य देशों से इन नियोजन कार्यालयो की कार्य प्रगति के सम्बन्ध मे सूचना मांगी गई। सन् 1948 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे इन कार्यालयो के प्रमुख कार्यों की रूपरेखा दी गई। इसके साथ ही इनको सफल बनाने के लिए मालिको और मजदूरो के सहयोग की अपेक्षा की गई।

रोजगार दफ्तरो के महत्व को निम्न रूपो मे देखा जा सकता है—

1. राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि—रोजगार कार्यालय राष्ट्रीय लाभांश मे वृद्धि करने मे सहायक होते हैं। ये कार्यालय एक ओर अनैच्छिक बेकारी (Involuntary Unemployment) को समाप्त करके बेकार साधनो को रोजगार प्रदान करते हैं, दूसरी ओर जिस कार्य के लिए उपयुक्त है वह कार्य भी दिलाया जाता है।

2. श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन—रोजगार कार्यालय श्रम की मांग और पूर्ति मे समायोजन करते है। जहाँ पर श्रमिकों की मांग अधिक है वहाँ श्रमिको को सूचना प्रदान करके कम मांग वाले स्थान से उनका स्थानान्तरण करने मे सहायक होते है। श्रमिको को ज्ञान नही होता कि कहाँ उनकी मांग है और न ही मालिको को मालूम होता है कि कहाँ श्रमिक बेकार पड़े हैं। अत: इन कार्यालयो द्वारा सूचना देकर श्रम की मांग और पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

3. श्रम बाजार का विकास—मुद्रा तथा पूंजी का जहाँ क्रय-विक्रय होता है वह मुद्रा और पूंजी बाजार कहलाता है। इनका विकास हो गया है, लेकिन श्रम के क्रय-विक्रय हेतु किसी संगठित श्रम बाजार का अभाव पाया जाता है। रोजगार कार्यालयो की सहायता से इस प्रकार के संगठित श्रम बाजार का विकास सम्भव हो पाया है।

4. जनता को नि शुल्क व निष्पक्ष सेवा प्रदान करना—रोजगार कार्यालय मे कोई भी व्यक्ति जो बेरोजगार है अपना नाम, पता, योग्यता, उम्र, अनुभव, इच्छित नौकरी आदि के सम्बन्ध मे सूचना देकर अपना पंजीयन करवा लेता है तथा दूसरी ओर मालिक इन कार्यालयो को सूचित करता है कि किन प्रकार की जगह उसके पास खाली है। इन दोनो पक्षो से रोजगार कार्यालय कुछ भी नही लेते है। समय समय पर दोनो को सूचित किया जाता है। यह सब नि शुल्क होता है।

5. रोजगार सम्बन्धी आंकड़े एकत्रित करना—रोजगार कार्यालय से हमें रोजगार पाने वालो की सख्या, रोजगार दिलाने वालो की सख्या और बेरोजगारो की सख्या आदि के सम्बन्ध मे सूचना मिलती है। इन सब के सम्बन्ध मे ये कार्यालय आंकड़े तैयार करते हैं।

6. प्रशिक्षण व परामर्श सुविधाएँ—इन कार्यालयों का महत्व विभिन्न प्रकार के श्रमिको को दिए जाने वाले प्रशिक्षण व परामर्श सुविधाओ के रूप मे भी देखा जा सकता है। ये बच्चो के माता पिता को भी व्यवसाय के सम्बन्ध मे परामर्श देने का कार्य भी करते हैं।

7. समस्त समाज और देश को लाभ—इन कार्यालयो का महत्व हम समस्त समाज और देश को प्राप्त होने वाले लाभो के रूप मे देख सकते हैं। इनसे मुख्यत निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

1 श्रमिको की गतिशीलता मे वृद्धि होने से रोजगार के अवसर मिलते हैं।

2. उपयुक्त कार्य पर उपयुक्त व्यक्ति के लगाने से उत्पादकता बढती है और न केवल समाज को बल्कि समस्त देश को राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने से लाभ मिलता है।

3 श्रमिकों को रोजगार दफ्तरो द्वारा दिए जाने वाले प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक परामर्श से उनकी व्यक्तिगत कार्यकुशलता बढती है, उनकी आय बढती है और परिणामस्वरूप जीवन स्तर उच्च होता है।

इंगलैण्ड मे रोजगार सेवा संगठन
(Employment Service Organisation in U. K.)

भारत मे ब्रिटेन पद्धति के आधार पर ही रोजगार कार्यालय स्थापित किए गए हैं। ब्रिटेन म सबसे पहले रोजगार दफ्तर सन् 1885 मे स्थापित किया गया था। ये नि शुल्क सेवा प्रदान करते थे, लेकिन जिन्हें नौकरी मिलती थी उससे अशदान लिया जाता था। स्थानीय सस्थाओ को रोजगार दफ्तर स्थापित करने के अधिकार प्रदान करने हेतु श्रम सस्थान अधिनियम, 1902 (Labour Bureau Act, 1902) पास किया गया था। बेरोजगार श्रमिक अधिनियम, 1905 (Unemployed Workmen's Act, 1905) के कारण 25 रोजगार कार्यालय स्थापित किए गए थे। सबसे पहले वास्तविक रोजगार कार्यालय व्यापार-मण्डल (Board of Trade) के माध्यम से सरकार ने स्थापित किए। यह सन् 1910 मे शाही श्रम आयोग की सिफारिशो के आधार पर श्रम कार्यालय

अधिनियम, 1910 (Labour Exchange Act, 1910) के तहत स्थापित किया गया। देश को इन कार्यालयों की स्थापना हेतु 11 प्रदेशों में विभाजित किया गया और केन्द्रीय कार्यालय लन्दन में रखा गया। जब सन् 1916 में श्रम मन्त्रालय खोला गया तो रोजगार कार्यालयों का प्रशासन व्यापार-मण्डल से उनके अन्तर्गत कर दिया गया। इन्हें अब रोजगार कार्यालय कहा जाता है। इन कार्यालयों की कार्य प्रगति हेतु एक समिति सन् 1919 में नियुक्त की गई। इस समिति ने इन्हें राष्ट्रीय स्तर पर अपनाने की सिफारिश की और राष्ट्रीय बीमा योजना भी इन्हीं कार्यालयों द्वारा चलाने की सिफारिश की। परिणामस्वरूप बेरोजगार बीमा अधिनियम, 1920 (Unemployed Insurance Act, 1920) पास किया गया। इसके पास करने के पश्चात् इन कार्यालयों द्वारा लगभग 12 मिलियन श्रमिकों का बीमा किया गया।

श्रम मन्त्रालय और राष्ट्रीय बीमा दोनों ही अब इंगलैण्ड में रोजगार सेवा चलाने के लिए उत्तरदायी हैं। अब रोजगार सेवाओं में व्यावसायिक प्रशिक्षण और परामर्श को भी सम्मिलित कर लिया गया है। व्यावसायिक प्रशिक्षण और परामर्श हेतु रोजगार और प्रशिक्षण अधिनियम, 1948 (Employment & Training Act, 1948) पास किया गया है। वर्तमान समय में ग्रेट-ब्रिटेन में रोजगार सेवा प्रदान करने हेतु देश में रोजगार कार्यालयों का जाल-सा बिछाया हुआ है। इनकी संख्या 1500 के लगभग है। रोजगार कार्यालयों के प्रभावपूर्ण कार्य हेतु श्रमिकों और मालिकों का सहयोग होना आवश्यक है। इस हेतु स्थानीय रोजगार समितियाँ (Local Employment Committees) स्थापित कर दी गई हैं। व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना को सुचारु रूप से चलाने के लिए 14 सरकारी प्रशिक्षण केन्द्रों की सुविधा प्रदान की गई है।

अमेरिका में रोजगार सेवा संगठन
(Employment Service Organisation in U.S.A.)

सर्वप्रथम सन् 1834 में न्यूयार्क में रोजगार सेवाएँ प्रदान की गईं। इसके अन्तर्गत मासिक श्रमिकों को प्राप्त करते थे। सन् 1890 में ओहियो प्रान्त में सर्वप्रथम कानून के अन्तर्गत सार्वजनिक रोजगार सेवा शुरू की गई। प्रथम महायुद्ध में संघीय सरकार ने राष्ट्रीय रोजगार सेवा शुरू की। जिन प्रान्तों में रोजगार सेवा नहीं थी वहाँ इस सेवा का उपयोग बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार दिलाने में किया जाता था। कई आर्थिक एवं श्रम समस्याएँ अन्तर्राजीय महत्त्व की होने के कारण वेगनर पेसर अधिनियम, 1933 (Wanger Payser Act, 1933) पास किया गया जिसके अन्तर्गत निःशुल्क राष्ट्रीय रोजगार सेवाएँ राज्यों के अधीन चलाई गईं। संघीय सरकार का कार्य विभिन्न राज्यों में कार्य करने वाली रोजगार सेवा संस्थाओं में समन्वय स्थापित करना था। सन् 1915 से पहले निजी क्षेत्र में भी रोजगार सेवा संस्थाएँ थीं। इन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था। अब इस प्रकार की निजी संस्थाओं का नियमन कानून के अन्तर्गत किया जाता है। प्रथम महायुद्ध काल में इन संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किया तथा काफी लाभ कमाया। दीर्घ

जाता है। वे शहर में आकर स्थायी रूप से नहीं बस पाते हैं तथा वापिस गाँव को चले जाते हैं। इसी प्रकार अधिक रिश्वत देने वाले श्रमिक की भर्ती और कम रिश्वत वाले श्रमिक को निकाल दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप श्रम-परिवर्तन (Labour Turnover) में वृद्धि हो जाती है। श्रमिकों का विभिन्न प्रकार से शोषण होने से भी वे गाँव चले जाते हैं और अनुपस्थित रहने लगते हैं।

शाही श्रम आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour, 1931) के अनुसार श्रमिकों की मध्यस्थों द्वारा भर्ती की पद्धति के अन्तर्गत, 'मध्यस्थों की स्थिति बड़ी सुदृढ़ है। यह आश्चर्यजनक होगा यदि इनके द्वारा श्रमिकों की स्थिति का लाभ नहीं उठाया जाता है। कुछ कारखाने ऐसे हैं जहाँ श्रमिकों की सुरक्षा मध्यस्थों के हाथ में नहीं है। अन्य उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती करना और उनको नौकरी से हटाने का अधिकार मध्यस्थों को प्राप्त हैं। यह बुराई एक उद्योग से दूसरे उद्योग और एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर कुछ मात्रा तक भिन्न भिन्न है। नौकरी लगाने हेतु रिश्वत तथा अनुपस्थिति के बाद फिर रोजगार देने हेतु भी रिश्वत प्राप्त की जाती है।"[1]

मध्यस्थों द्वारा भर्ती की वर्तमान स्थिति और भविष्य (Present position and future of the recruitment of labour through intermediaries)— श्रमिकों की मध्यस्थों द्वारा की जाने वाली भर्ती का तरीका असन्तोषजनक व अवांछनीय है। हाल ही के वर्षों में इन मध्यस्थों के अधिकार छीनकर रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार को कम करने की दिशा में कदम उठाए गए हैं। बम्बई व शोलापुर जैसे केन्द्रों पर बदली श्रमिक की भर्ती पर नियन्त्रण लगाने के बावजूद भी इन मध्यस्थों को न तो पूर्ण रूप से समाप्त ही किया जा सका है और न भर्ती पर इनके प्रभाव को दूर किया गया है। "उत्तरी भारत मालिकों के संघ (North Indian Employers Association) ने भी मध्यस्थों द्वारा भर्ती पद्धति में पाए जाने वाली रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार को स्वीकार किया है लेकिन इन्होंने असमर्थता प्रकट की कि रोजगार चालू रखने के लिए इसे कैसे समाप्त किया जा सकता है।"[2]

श्रम अनुसंधान समिति (Labour Investigation Committee, 1944) ने यह विचार प्रकट किया था कि हमारे श्रमिक अभी इतने गतिशील और विकास के स्तर पर नहीं पहुँच पाए हैं कि उनकी भर्ती मध्यस्थों के बिना ही सम्भव हो सके।

शाही श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि श्रमिकों की भर्ती और उनको कार्य से हटाने के जॉबर्स के अधिकारों को समाप्त कर देना चाहिए। इसके स्थान पर प्रत्येक कारखाने में श्रम अधिकारी अथवा जनरल मैनेजर द्वारा श्रमिकों की प्रत्यक्ष रूप से भर्ती की जाए।

हाल ही के वर्षों में श्रमिकों की भर्ती हेतु प्रत्येक कारखाने में 'बदली

1 Report of the Royal Commission on Labour, p [illegible]
2. *Saxena R. C.* : Labour Problems & Social Welfare, p. 31.

प्रणाली' (Badli System) लागू कर दिया गया है। इसके साथ रोजगार कार्यालयों के माध्यम से भर्ती करना भी सरकार ने अनिवार्य कर दिया है।

(ख) ठेकेदारों द्वारा भर्ती
(Recruitment through Contractors)

अनेक भारतीय उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों के द्वारा होती है। जिस प्रकार हम अपने दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए ठेका दे देते हैं, वैसे ही कारखानों में भी ठेके द्वारा कार्य पूरा करवा लिया जाता है। श्रमिकों की यह भर्ती पद्धति इंजीनियरिंग विभाग, राज्य तथा केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग, रेलवे, सूती वस्त्र उद्योग, सीमेंट, कागज और खानों आदि उद्योगों में प्रचलित है।

इस प्रकार की भर्ती पद्धति के प्रचलन के कारणों में शीघ्र ही श्रमिकों की माँग पूरी हो जाना, कार्य शीघ्रता से पूरा करना, श्रमिकों की निगरानी की जरूरत न होना आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही कारखानों के मालिक श्रम अधिनियमों जैसे—कारखाना अधिनियम, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम और मातृत्व लाभ अधिनियम आदि नियमों को लागू करने से छूट जाते हैं और इससे उनको लाभ होता है। मालिकों को श्रम कल्याण पर भी व्यय न करने से वित्तीय लाभ प्राप्त होता है।

इस पद्धति के कई दोष भी हैं :

1. श्रमिकों को कम मजदूरी दी जाती है क्योंकि उनकी भर्ती ठेकेदारों द्वारा की जाती है जो स्वयं भी उनकी भर्ती से लाभ कमाना चाहते हैं।

2. श्रमिकों से अधिक घण्टे कार्य लिया जाता है। इससे उनके स्वास्थ्य व कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ने से उत्पादन में गिरावट आती है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने इस पद्धति की आलोचना करते हुए सिफारिश की थी कि प्रबन्धकों को श्रमिकों के चयन, कार्य के घण्टे और श्रमिकों को भुगतान आदि पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए। बिहार श्रम जाँच समिति ने भी इस पद्धति को समाप्त करने की सिफारिश की है क्योंकि इसके द्वारा श्रमिकों की असहाय स्थिति का शोषण किया जाता है। बम्बई वस्त्र श्रम जाँच समिति ने भी यह सहमति प्रकट करते हुए कहा है कि ठेकेदारों द्वारा निम्न राशि पर ठेका प्राप्त किया जाता है तथा वे अपना व्यय कमाने हेतु श्रमिकों को बहुत कम मजदूरी देकर उनका शोषण करते हैं।

इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए हमें ठेके के श्रम के स्थान पर भर्ती का प्रत्यक्ष तरीका अपनाना चाहिए। सार्वजनिक निर्माण विभागों में ठेका श्रम परमावश्यक है, वहाँ उसको नियमित किया जाना चाहिए। सभी श्रम कानून ठेका श्रम पर पूर्ण रूप से लागू किए जाने चाहिए। किसी भी स्थिति में ठेका श्रम को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत पाई जाने वाली मजदूरी से कम मजदूरी नहीं दी जानी चाहिए। अधिकांश औद्योगिक समितियों ने ठेका श्रम को समाप्त करने की सिफारिश की है।

श्रम अनुसंधान समिति (Labour Investigation Committee, 1944)

के अनुसार सभी प्रकार के ठेका श्रम को समाप्त नहीं करना चाहिए। "जहाँ आवश्यक हो वहाँ इसको समाप्त नहीं करना चाहिए जैसे कारखाने में दीवारों की पुताई, सार्वजनिक निर्माण विभाग के कार्य आदि। इसके अतिरिक्त जहाँ मालिक श्रम कानूनों से बचने के लिए ठेका श्रम का सहारा लेते हैं, उसे बिल्कुल ही समाप्त किया जाना चाहिए।"[1]

(ग) प्रत्यक्ष भर्ती पद्धति

(Direct Recruitment System)

कारखाना उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष रूप से की जाती है। प्रत्यक्ष भर्ती बम्बई, मद्रास, पंजाब, बिहार और उड़ीसा राज्यों में प्रचलित है। इस पद्धति के अन्तर्गत कारखाने के दरवाजे पर नोटिस लगा दिया जाता है कि इतने श्रमिकों की आवश्यकता है। जनरल मैनेजर स्वयं अथवा अन्य नियुक्त व्यक्ति दरवाजे पर आकर श्रमिकों का चयन कर लेता है। कभी-कभी पहले से काम में लगे श्रमिकों को यह सूचित कर दिया जाता है कि इतने श्रमिकों की आवश्यकता है। वे अपने दोस्तों, सम्बन्धियों आदि को इस विषय में सूचित कर देते हैं और वे निश्चित तिथि पर आ जाते हैं। यह पद्धति अकुशल श्रमिकों के लिए उपयुक्त है। अर्द्ध-कुशल तथा कुशल श्रमिकों की भर्ती में कठिनाई आती है। इनकी भर्ती या तो पदोन्नति द्वारा करली जाती है अथवा आवेदन-पत्र आमन्त्रित करके उनकी जाँच, परीक्षा व साक्षात्कार द्वारा चयन कर लिया जाता है। कुछ अनियन्त्रित कारखानों (Un-regulated Factories) में भी इस पद्धति द्वारा श्रमिकों की भर्ती की जाती है। उदाहरणार्थ बीड़ी बनाना, नारियल की चटाइयाँ बनाना आदि उद्योगों में यह पद्धति अपनाई जाती है।

शाही श्रम आयोग ने मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोषों को समाप्त करने के लिए जनरल मैनेजर के अधीन श्रम अधिकारी (Labour Officer) नियुक्त करने की सिफारिश की थी। वर्तमान समय में प्रत्यक्ष भर्ती हेतु इस प्रकार के श्रम अधिकारी सभी कारखानों व उद्योगों में नियुक्त कर दिए गए हैं।

(घ) बदली प्रथा

(Badli System)

इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुए लोगों को बदली कार्ड दे दिए जाते हैं। ये नियमित रूप से कारखाने में आते रहते हैं और रिक्त स्थानों की पूर्ति हेतु इनको प्राथमिकता दी जाती है। यह प्रथा मध्यस्थों के द्वारा भर्ती के दोषों को दूर करने के लिए अपनाई गई है। इसके अन्तर्गत श्रमिक स्थाई, अस्थाई, बदली आदि वर्गों में विभाजित किए जाते हैं।

(ङ) श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती

(Recruitment through Labour Officers)

शाही श्रम आयोग, 1931 ने मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोषों को समाप्त

1 Report of the Labour Investigation Committee 1944, p 81

करने हेतु इस पद्धति की सिफारिश की थी। इसमें कारखानों में श्रम अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं। इनका कार्य श्रमिकों की भर्ती करना है। ये अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर भर्ती का कार्य करते हैं। लेकिन ये श्रमिकों से अपरिचित होने के कारण उनका इतना विश्वास प्राप्त नहीं कर पाते हैं जितना कि स्थानीय परिचित व्यक्ति।

(ख) श्रम संगठनों द्वारा भर्ती

(Recruitment through Trade Unions)

कुछ संगठित कारखानों अथवा मिलों में सुदृढ़ एवं सुसंगठित श्रम संघ होते हैं। इन संघों के पास रिक्त स्थानों की सूची होती है जो कि काम ढूंढने वालों को सूचित करके उनके नाम की सूची मालिक को पेश कर देते हैं। इससे उनकी भर्ती आसानी से की जा सकती है। ये अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को सूचित कर उनकी भर्ती करवा देते हैं।

(छ) रोजगार के दफ्तरों द्वारा भर्ती

(Recruitment through Employment Exchanges)

श्रमिकों की भर्ती की विभिन्न पद्धतियाँ दोषपूर्ण हैं। वैज्ञानिक आधार पर श्रमिकों की भर्ती करना किसी भी कारखाने की सफलता का आधार है। अतः रोजगार कार्यालयों की स्थापना की गई है जो श्रम की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करके उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त व्यक्ति का चयन करने में सहायक होते हैं।

आधुनिक सरकार कल्याणकारी सरकार है। उसका दायित्व न केवल प्राकृतिक साधनों बल्कि मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग कर राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके लोगों के जीवन-स्तर को उन्नत करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आज विभिन्न देशों में श्रमिकों की भर्ती हेतु रोजगार कार्यालय राष्ट्रीय रोजगार सेवा संगठन (National Employment Service Organisation) के अन्तर्गत स्थापित कर दिए गए हैं।

विभिन्न कारखानों में भर्ती

(Recruitment in Various Industries)

जहाँ तक कारखाना उद्योगों (Factory Industries) का सम्बन्ध है वहाँ श्रमिकों की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से की जाती है। बम्बई, मद्रास, पंजाब, बिहार और उड़ीसा राज्यों में इसी प्रकार की पद्धति प्रचलित है। कारखाने के रिक्त स्थानों की सूची लगा दी जाती है जिसे देखकर निश्चित तिथि पर श्रमिक कारखाने के दरवाजे पर आ जाते हैं जहाँ पर जनरल मैनेजर अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा भर्ती कर ली जाती है। पुराने श्रमिकों को भी रिक्त स्थानों की सूचना मिलने पर वे अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को इसकी सूचना दे देते हैं। यह पद्धति अकुशल श्रमिकों के लिए उपयुक्त है। अर्द्ध-कुशल और कुशल श्रमिकों की भर्ती हेतु आवेदन-पत्र आमन्त्रित किए जाते हैं और उनका टेस्ट लेकर भर्ती की जाती है। बगान की अधिकांश सूत मिलों में

प्रत्यक्ष भर्ती हेतु श्रम अधिकारी नियुक्त कर दिए गए हैं। यह पद्धति लागू होने के बावजूद भी जॉबर प्रथा भी विद्यमान है।

चीनी कारखानों (Sugar Factories) में भर्ती का कार्य रिक्त स्थानों का नोटिस निकाल कर किया जाता है। तकनीकी तथा मुहरवादकर श्रेणी के श्रमिकों को छोड़कर अन्य श्रमिकों को नौकरी से हटा दिया जाता है क्योंकि ये उद्योग मौसमी उद्योग हैं। इसके साथ ही उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इन उद्योगों में भर्ती सम्बन्धी विशेष आदेश भी निकाले जाते हैं।

रेलवे में भर्ती (Recruitment in Railways) विभिन्न विभागों में विभिन्न प्रकार से की जाती है। प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती या तो प्रत्यक्ष रूप से अथवा द्वितीय श्रेणी की पदोन्नति द्वारा की जाती है। तृतीय श्रेणी कर्मचारी की भर्ती रेल सेवा आयोग (Railway Service Commission) द्वारा की जाती है। निम्न और अकुशल श्रेणी के कर्मचारियों व श्रमिकों की भर्ती प्रत्यक्ष होती है। रेलवे में कहीं कहीं ठेका श्रम भी पाया जाता है।

खान उद्योग (Mining Industry) में भर्ती ठेकेदारों द्वारा की जाती है। खानों में कार्य करने हेतु श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से लाए जाते हैं। ये अस्थायी रूप से इस उद्योग में कार्य करते हैं।

कोयला उद्योग (Coal Industry) में भर्ती का सबसे पुराना तरीका जमींदार पद्धति (Zamidari System) है। श्रमिकों को इन खानों के निकट मुफ्त या कुछ लागत पर भूमि कृषि के लिए दी जाती थी। लेकिन कृषि योग्य भूमि की सीमितता के कारण यह पद्धति सफल नहीं हो सकी। भर्ती वाले ठेकेदार (Recruiting Contractors) द्वारा भी इन खानों में श्रमिकों की भर्ती का कार्य किया गया। इनका कार्य श्रमिकों की पूर्ति करना मात्र था। प्रबन्धकीय ठेकेदार (Managing Contractors) द्वारा भी श्रमिकों की भर्ती की गई। ये न केवल श्रम की पूर्ति का कार्य करते थे बल्कि खानों के विकास और प्रबन्ध का कार्य भी करते थे। ये कोयला खानों से निकालना व उसे लदवाने का कार्य भी करते थे। युद्धकाल में कोयले की पूर्ति बढ़ाने तथा श्रम की कम पूर्ति के कारण सरकार ने भी ठेकेदारी का कार्य किया। एक न्यायिक जाँच (Court Enquiry), 1960 की सिफारिश के आधार पर ठेकेदारी पद्धति को धीरे-धीरे समाप्त करना स्वीकार किया गया। गोरखपुर श्रम संगठन (Gorakhpur Labour Organisation) का प्रशासन सन् 1961 से रोजगार कार्यालय निदेशालय के अधीन स्थानान्तरित कर दिया गया है।

लोहे की खानों (Iron ore Mines) में भर्ती प्रत्यक्ष तथा ठेकेदारी पद्धतियों के आधार पर की जाती है। स्थानीय श्रम की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से की जाती है। पुराने श्रमिकों को सूचित कर दिया जाता है और वे अपने मित्रों, सम्बन्धियों व परिवार वालों को इस भर्ती के लिए सूचित कर देते हैं। ठेके के कार्य हेतु श्रमिकों की भर्ती 'सरदारों' (Sardars) द्वारा की जाती है।

अभ्रक खानों (Mica Mines) में भर्ती सरदारों द्वारा की जाती है। उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में भेजकर इच्छुक श्रमिकों की भर्ती करने का कार्य सौंपा जाता है। इन सरदारों को कोई दलाली नहीं दी जाती बल्कि उनकी मजदूरी इस बात पर निर्भर करती है कि उन्होंने कितने श्रमिकों की भर्ती की है। इन खानों में 82.6% प्रत्यक्ष रूप से तथा 17.4% ठेकेदारों द्वारा भर्ती की जाती है।

संक्षेप में खान उद्योग में श्रमिकों की भर्ती खान स्वामियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से, मध्यस्थों द्वारा और रोजगार दफ्तरों के माध्यम से की जाती है।

बागानों में श्रम (Labour in Plantations) की भर्ती विभिन्न रूपों में की जाती है। आसाम के बागानों में श्रमिकों की भर्ती चाय वितरक समझौता श्रम अधिनियम, 1932 (Tea Distributors Agreement Labour Act, 1932) के अन्तर्गत की जाती है। यह पूर्ति निकटवर्ती प्रदेशों—प. बंगाल, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश व मध्य प्रदेश से की जाती है। श्रमिकों की भर्ती हेतु चाय जिला श्रम संघ (Tea Districts Labour Association) स्थापित किए गए हैं। इनके माध्यम से श्रमिक बागानों में भेजे जाते हैं।

चाय के बागानों में श्रम भर्ती के तीन तरीके हैं—

(i) सिरदारी प्रणाली (Sirdari System) के अन्तर्गत श्रमिक स्थानीय प्रेषण एजेन्सी (Local Forwarding Agency) द्वारा भर्ती करने वाले जिलों को भेज दिए जाते हैं।

(ii) स्थानीय भर्ती करने वालों द्वारा (Through Local Recruiters) श्रमिकों की भर्ती हेतु मालिक स्थानीय व्यक्तियों को श्रमिकों की भर्ती हेतु नियुक्त कर दिया जाता है।

(iii) पूल पद्धति (Pool System) के अन्तर्गत श्रम भर्ती स्थानीय प्रेषण एजेन्सी के माध्यम से होती है। श्रमिक इन स्थानीय एजेन्सियों के पास चले जाते हैं और वहां श्रम के क्रेता उनको भर्ती कर लेते हैं।

1 दिसम्बर, 1960 से रोजगार दफ्तर अधिनियम इन बागानों पर लागू कर दिए गए हैं। मैसूर राज्य में भर्ती का कार्य न केवल रोजगार कार्यालयों द्वारा ही होता है बल्कि मालिकों द्वारा भी यह कार्य किया जाता है।

रोजगार कार्यालय (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम, 1959 पास करके सभी उद्योगों पर लागू कर दिया गया है। सभी मालिकों को रिक्त स्थानों की सूचना देना अनिवार्य कर दिया है। 25 या अधिक श्रमिक लगाने वाले मालिकों पर यह लागू होता है। इसका उल्लंघन करने पर प्रथम बार 500 रु. तथा दूसरी बार 1000 रु. जुर्माना करने का प्रावधान है।

भारत में रोजगार सेवा संगठन
(Employment Service Organisation in India)

रोजगार कार्यालय श्रमिकों की वैज्ञानिक भर्ती को प्रोत्साहन करने का महत्वपूर्ण साधन है। ये श्रमिकों और मालिकों के बीच एक कड़ी का कार्य करते

है जिससे श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित हो जाए। ये उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति करने में सहायक होते हैं। यद्यपि रोजगार कार्यालय रोजगार अवसरों में वृद्धि नहीं करते हैं फिर भी ये घर्षणात्मक बेकारी (Frictional Unemployment) को कम करने में सहायक होते हैं। इनसे श्रम की गतिशीलता में वृद्धि होती है, उसकी कार्यकुशलता बढ़ती है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I L O) ने सन् 1919 में प्रस्ताव द्वारा यह सिफारिश की थी कि प्रत्येक सदस्य देश द्वारा एक निःशुल्क रोजगार सेवा शुरू की जानी चाहिए। भारत ने इस प्रस्ताव को सन् 1921 में स्वीकार किया था। शाही श्रम आयोग ने सन् 1929 में इस प्रकार की सेवा शुरू करने की योजना को अनुपयोगी व अनुपयुक्त बताया क्योंकि उस समय श्रमिकों की भर्ती करने में कोई कठिनाई नहीं थी। श्रमिकों की पूर्ति उनकी मांग की तुलना में अधिक थी। लेकिन श्रम अनुसंधान समिति, श्रम संघों और मालिकों तथा अन्य समितियों ने इस प्रकार की सेवा शुरू करने पर जोर दिया।

दूसरे महायुद्ध में तकनीकी और कुशल श्रमिकों की कमी महसूस की गई और इनकी भर्ती हेतु 9 रोजगार कार्यालयों की स्थापना की गई। इन कार्यालयों का कार्य तकनीकी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत फौजी और युद्ध कारखानों हेतु तकनीकी श्रमिकों को प्रशिक्षण देना था। सन् 1945 में महायुद्ध समाप्त हो गया। युद्ध में लगे श्रमिक बेरोजगार हो गए। अतः युद्धोत्तरकाल पुनर्वास व पुनर्निर्माण हेतु इन दफ्तरों द्वारा कार्य लिया गया। इस समस्या के समाधान के लिए पुनर्स्थापन और रोजगार निदेशालय (Directorate of Resettlement & Employment) की स्थापना 70 रोजगार दफ्तरों के साथ की गई। सन् 1948 में इन रोजगार दफ्तरों के कार्यों में वृद्धि करके सभी प्रकार के श्रमिकों को इसके अन्तर्गत लाया गया। नई दिल्ली स्थित केन्द्रीय कार्यालय अन्तर्राज्यीय कार्यालयों का समन्वय कार्य करता है।

रोजगार कार्यालयों की शिवा राव समिति का प्रतिवेदन (Shiva Rao Committee's Report on Employment Exchanges)

रोजगार कार्यालयों के कार्यों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उनका पुनर्गठन करना आवश्यक समझा गया। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु योजना आयोग के सुझाव पर भारत सरकार सन् 1952 में श्री बी. शिवा राव, एम पी की अध्यक्षता में एक प्रशिक्षण और रोजगार सेवा संगठन समिति (Training & Employment Service Organisation Committee) नियुक्त की गई। इसमें श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधि भी शामिल किए गए। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1954 में दी। इस समिति की सिफारिशें निम्नांकित थीं—

1 रोजगार कार्यालय संगठन के स्थान पर इसका नाम राष्ट्रीय रोजगार

सेवा के रूप मे स्थायी संगठन के रूप में चलाई जाए। मालिको द्वारा अकुशल श्रमिको को छोड़कर अन्य श्रमिको की रिक्त जगह अनिवार्य रूप से घोषित की जाए।

2. इन कार्यालयो का नीति-निर्धारण, प्रमापीकरण और समन्वय आदि का दायित्व केन्द्रीय सरकार का हो, लेकिन नित्य प्रतिदिन का प्रशासन राज्य सरकारो को दे दिया जाना चाहिए।

3 केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारो द्वारा चलाए जाने वाले रोजगार कार्यालयो के कुल व्यय का 60% वहन करना चाहिए।

4 श्रमिकों को अपना पंजीयन कराने की स्वतन्त्रता हो और उनसे कुछ भी नही लिया जाए।

समिति ने अकुशल श्रमिकों के पंजीयन के लिए कोई सुझाव नही दिया क्योंकि इससे रोजगार कार्यालयो का कार्यभार बढ़ जाएगा। लेकिन इनके पंजीयन के अभाव मे देश में मानवीय शक्ति का सही अनुमान कैसे लाया जा सकेगा।

भारत में रोजगार कार्यालयों की कार्य प्रगति
(Working of Employment Exchanges in India)

हमारे देश मे रोजगार सेवा सन् 1945 मे शुरू की गई थी। आज इसके अधीन रोजगार कार्यालयो का जाल-सा बिछा हुआ है। रोजगार कार्यालयो की प्रगति का नवीनतम विवरण श्रम-मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट सन् 1976-77 एवं 'भारत सन् 1976' के अनुसार इस प्रकार है—

संचालन

नवम्बर, 1956 से रोजगार कार्यालयो पर दिन-प्रतिदिन का प्रशासनिक नियन्त्रण राज्य सरकारो को सौंप दिया गया है। अप्रेल, 1969 से राज्य सरकारों को जनशक्ति और रोजगार योजनाओं से सम्बद्ध वित्तीय नियन्त्रण भी दे दिया गया। केन्द्रीय सरकार का कार्य-क्षेत्र अखिल भारतीय स्तर पर नीति-निर्धारण कार्य-विधि और मानकों के समन्वय तथा विभिन्न कार्यक्रमो के विकास तक सीमित है।

काम-धन्धे सम्बन्धी मार्ग-दर्शन

रोजगार कार्यालयो तथा सारे विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग-दर्शन ब्यूरो मे युवक-युवतियो (ऐसे अभ्यर्थी जिन्हे काम का कोई अनुभव नही है) और प्रौढ़ व्यक्तियो (जिन्हें खास-खास काम का अनुभव है) को काम-धन्धे से सम्बद्ध मार्ग-दर्शन और रोजगार सम्बन्धी परामर्श दिया जाता है।

पढ़े-लिखे युवक युवतियो को लाभदायक रोजगार दिलाने की दिशा मे प्रवृत्त करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के कार्य-मार्ग-दर्शन और आजीविका परामर्श कार्यक्रमो को विस्तृत और व्यवस्थित किया गया है। रोजगार सेवा अनुसन्धान और प्रशिक्षण के केन्द्रीय संस्थान मे एक आजीविका अध्ययन केन्द्र स्थापित किया गया है जो युवक-युवतियो तथा अन्य मार्ग-दर्शन चाहने वालों को व्यवसाय सम्बन्धी साहित्य देता है।

रोजगार कार्यालयों की संख्या और प्रचार

1 दिसम्बर, 1976 के अन्त में देश में कार्य कर रहे रोजगार कार्यालयों की कुल संख्या 582 थी, जबकि दिसम्बर, 1975 के अन्त में यह संख्या 565 थी। इनमें 65 विश्वविद्यालय रोजगार सूचना और मार्ग दर्शन केन्द्र, 15 व्यावसायिक और कार्यकारी रोजगार कार्यालय, 8 कोयला खान रोजगार कार्यालय, 11 परियोजना रोजगार कार्यालय, 16 विकलांग विशेष रोजगार कार्यालय और बागात मजदूरों का एक विशेष कार्यालय शामिल है। इसके अतिरिक्त, 207 (अनन्तिम) रोजगार सूचना और सहायता केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न सामुदायिक विकास खण्डों में भी काम कर रहे थे।

रोजगार कार्यालयों के कार्य

पंजीकरण नियुक्तियाँ, आदि—रोजगार कार्यालयों का एक मुख्य कार्य नौकरी चाहने वालों का पंजीकरण और नियोजक द्वारा अधिसूचित स्थानों में उनकी नियुक्ति करना है। इस सम्बन्ध में जनवरी से दिसम्बर, 1976 के दौरान 1975 में इसी अवधि की तुलना में किए गए कार्य का सामान्य ब्यौरा निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है—

(हजारों में)

	जनवरी से दिसम्बर, 1975	जनवरी से दिसम्बर, 1976 (अ)
पंजीयन	5443 5	5615 7
अधिसूचित रिक्त स्थान	681 6	845 4
नियुक्ति के लिए भेजे गए प्रार्थी	4224 3	4980 4
नियुक्ति सहायता पाने वाले	404 1	496 9
रोजगार कार्यालयों की सेवाओं का उपयोग करने वाले नियोजक (मासिक औसत)	11 1	13 3

रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर में दर्ज रोजगार चाहने वालों की कुल संख्या दिसम्बर, 1975 में, 93 26 लाख थी जो बढ़कर दिसम्बर, 1976 (अ) में 98 13 लाख हो गई जो 5 2% थी। यह संख्या पिछले वर्ष की तुलना में 5 2% अधिक है। सन् 1976 के दौरान रोजगार पाने वालों की कुल संख्या 4·91 लाख थी, जो पिछले वर्ष के दौरान 4 04 लाख थी और यह 23 0% अधिक है।

शिक्षित उम्मीदवार—रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर में दर्ज शिक्षित (मैट्रिक और इससे अधिक शिक्षा प्राप्त) उम्मीदवारों की संख्या का रुख वृद्धि की ओर जारी रहा। जून, 1976 के अन्त में ऐसे उम्मीदवारों की संख्या 49 34 लाख थी, जबकि जून, 1975 में यह संख्या 43 42 लाख थी। इस प्रकार 13 6% की वृद्धि हुई।

अनुसूचित जाति/जनजाति के उम्मीदवार—रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर में जून, 1976 और जून, 1975 में दर्ज काम चाहने वाले अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों के तुलनात्मक आंकड़े नीचे दिए गए हैं—

(लाखों में)

	चालू रजिस्टर में संख्या	
	जून, 1975 के अन्त तक	जून, 1976 के अन्त तक
अनुसूचित जाति	9 14	10 78
अनुसूचित जन-जाति	2 20	2·52
योग	11 34	13 30

जनवरी-जून, 1975 और जनवरी से जून, 1976 की अवधि के दौरान रोजगार कार्यालयों की सहायता से नौकरी पाने वाले अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों की संख्या नीचे दी गई है—

(आंकड़े वास्तविक संख्या)

	जनवरी-जून, 1975	जनवरी-जून 1976
अनुसूचित जाति	26,251	38,508
अनुसूचित जन जाति	7,183	13,628

भूतपूर्व सैनिक—चालू रजिस्टर में दर्ज भूतपूर्व सैनिकों की कुल संख्या सितम्बर, 1976 के अन्त में 103,059 थी, जबकि सितम्बर, 1975 में यह संख्या 100,353 थी। जनवरी-सितम्बर, 1976 के दौरान इस वर्ग के रोजगार चाहने वाले 10,208 व्यक्तियों को रोजगार दिलाया गया, जबकि 1975 की इसी अवधि के दौरान रोजगार पाने वाले भूतपूर्व सैनिकों की संख्या 8,594 थी। चालू रजिस्टर में दर्ज और रोजगार दिलाए गए व्यक्तियों की संख्या में 1975 की अपेक्षा 1976 में प्रतिशतता वृद्धि क्रमशः 2 7 प्रतिशत और 18·8 प्रतिशत है।

महिला उम्मीदवार—दिसम्बर, 1976 के अन्त में चालू रजिस्टर में दर्ज काम चाहने वाली महिलाओं की संख्या 12·34 लाख (अनन्तिम) थी, जबकि दिसम्बर, 1975 में इनकी संख्या 11 25 लाख थी। वर्ष 1976 के दौरान रोजगार पाने वाली महिलाओं की संख्या 58,027 (अनन्तिम) थी जबकि 1975 के दौरान 54,057 महिलाओं को नौकरी दिलाई गई थी। चालू रजिस्टर में दर्ज और रोजगार दिलाए गए व्यक्तियों की संख्या में 1975 की अपेक्षा 1976 में प्रतिशतता वृद्धि क्रमशः 9·7 प्रतिशत और 7·3 प्रतिशत है।

श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1976–77) के अनुसार राष्ट्रीय रोजगार सेवा के बारे मे कुछ प्रमुख विवरण

रोजगार बाजार सूचना

क्षेत्र —रोजगार बाजार सूचना (ई एम आई) कार्यक्रम के अन्तर्गत रोजगार स्तर एवं प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे आँकडे रोजगार कार्यालयो द्वारा त्रैमासिक अन्तरालों पर एकत्र किए जा रहे हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत केवल अर्थ-व्यवस्था का 'सगठित क्षेत्र' आता है, अर्थात्—

1 सरकारी क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठान, और
2 निजी क्षेत्र के गैर-कृषि प्रतिष्ठान जिनमे 10 अथवा अधिक कामगार काम करते हैं।

अर्थ-व्यवस्था के अनेक खण्डो आदि जैसे (1) निजी क्षेत्र के कृषि एव सम्बद्ध कार्यकलापो, (2) घरेलू प्रतिष्ठानो, (3) निजी क्षेत्र के ऐसे प्रतिष्ठान जिनमे 10 से कम कामगार काम करते हैं, और (4) रक्षा सेनाओं के रोजगार, इस कार्यक्रम के क्षेत्र मे नही आते है। स्व नियोजित और अंश-कालिक कर्मचारी भी इसके अन्तर्गत नही आते। इसी प्रकार, रोजगार बाजार, सूचना कार्यक्रम मे नागालैण्ड, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह, अरुणाचल प्रदेश तथा लक्षद्वीप जैसे कुछ क्षेत्र नही आते।

रोजगार प्रवृत्तियाँ

1 कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले प्रतिष्ठानों की सख्या— जिन प्रतिष्ठानो से रोजगार बाजार सूचना एकत्र की गई उनकी सख्या मार्च, 1976 के अन्त मे 1 72 लाख थी। इनमे से 0 82 लाख प्रतिष्ठान सरकारी क्षेत्र मे और शेष 0 90 लाख निजी क्षेत्र मे थे। सरकारी क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठानों से और निजी क्षेत्र के ऐसे प्रतिष्ठानो से जिनमे 25 या इससे अधिक कामगार नियोजित हैं, रोजगार कार्यालय (रिक्तियो की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959 के उपबन्धो के अधीन सूचना एकत्र की जाती है और निजी क्षेत्र के ऐसे प्रतिष्ठानो से जिनमे 10 से 24 कर्मचारी नियोजित हैं यह सूचना स्वैच्छिक आधार पर प्राप्त की जाती है। रोजगार कार्यालय (रिक्तियो की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959 की परिधि के अन्तर्गत आने वाले प्रतिष्ठानो की सख्या मार्च, 1976 के अन्त म 1 20 लाख थी।

कुल रोजगार स्थिति—सगठित क्षेत्र मे रोजगार मे वृद्धि हुई। रोजगार के आँकडे जो 31 मार्च 1975 को 196 71 लाख थे, बढकर मार्च, 1976 के अन्त मे 202 07 लाख हो गए और पिछले वर्ष मे 2 0 प्रतिशत की तुलना मे इस वर्ष 2 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सरकारी क्षेत्र मे रोजगार—सरकारी क्षेत्र मे रोजगार के आँकडो मे वृद्धि हुई। ये आँकडे 1974-75 मे 128 68 लाख थे जो बढकर 1975-76 मे 133 63 लाख हो गए अर्थात् पिछले वर्ष विकास दर 3 9 प्रतिशत थी जबकि वर्ष 1974-75 के दौरान यह 3 0 प्रतिशत थी। सरकारी क्षेत्र की विभिन्न शाखाओ से सम्बन्धित

रोजगार आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि अर्द्ध सरकारी प्रतिष्ठानों में वृद्धि की दर सबसे अधिक थी जो कि वर्ष में 6 3 प्रतिशत थी, बाद में राज्य सरकारें (4 0 प्रतिशत) स्थानीय निकाय (2 3 प्रतिशत) और केन्द्रीय सरकार (2·0 प्रतिशत) आते हैं। सरकारी क्षेत्र में रोजगार अवसरों का ब्यौरा नीचे दी सारणी में दिया गया है—

(लाखों में)

सरकारी क्षेत्र की शाखा	कर्मचारियों की संख्या		प्रतिशतता परिवर्तन	
	मार्च, 1975	मार्च, 1976	मार्च, 1976/ मार्च, 1975	मार्च,1975/ मार्च,1974
केन्द्रीय सरकार	29 88	30 47	+2 0	+1 2
राज्य सरकार	47 48	49 39	+4 0	+1 1
अर्द्धसरकारी	31·92	33 92	+6 3	+9 6
स्थानीय निकाय	19 40	19·85	+2 3	+0 6
योग	128 68	133 63	+3 9	+3 0

निजी क्षेत्र में रोजगार—वर्ष 1975-76 के दौरान निजी क्षेत्र में रोजगार अवसर में 0 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि पिछले वर्ष में वृद्धि दर 0 2 प्रतिशत थी। वास्तविक अर्थों में रोजगार अवसर जो मार्च, 1975 के अन्त में 68 04 लाख थे, बढ़कर 31 मार्च, 1976 को 68 44 लाख हो गए।

जनशक्ति की कमी और आधिक्य—जनशक्ति असन्तुलन कामगारों के विशेष वर्गों की अपर्याप्त पूर्ति या माँग के कारण पैदा होते हैं। तथापि कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें नियोजकों ने कुछ विशिष्ट व्यवसायों में कमी बताई है, जबकि इन व्यवसायों में बहुत से उम्मीदवारों ने रोजगार कार्यालयों के नाम पंजीकृत कराए। इस प्रकार की स्थिति योग्यताओं, अनुभव की अवधि के सम्बन्ध में नियोजकों की अपर्याप्त माँगों तथा उनके द्वारा पेश की गई अपेक्षाकृत कम परिलब्धियों और आंशिक रूप से रोजगार चाहने वालों की अयथार्थ प्रत्याशाओं के कारण पैदा हो सकती है। कमियों के लिए उत्तरदायी अन्य कारण रोजगार चाहने वालों में गतिशीलता का अभाव हो सकता है।

बड़ी संख्या में अकुशल कामगर और शिक्षित व्यक्ति, जिनमें मैट्रिक पास एवं इससे अधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति शामिल हैं, रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर में दर्ज हैं और उनकी संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। नौकरी चाहने वालों में वे व्यक्ति, जिनके पास कोई प्रशिक्षण या शिक्षा कार्य अनुभव नहीं है, पूरे देश में सामान्यतः अधिक पाए गए। दूसरी तरफ बड़ी संख्या में रिक्तियाँ उपयुक्त उम्मीदवारों की कमी के कारण रद्द कर दी जाती हैं जो कमी व्यवसायों का कच्चा सूचक है। अप्रैल, 1955 से मार्च, 1976 की अवधि के दौरान रोजगार कार्यालयों द्वारा

28,034 रिक्तियां उपयुक्त उम्मीदवारों के अभाव में रद्द की गई थीं। ऐसी रिक्तियों की सबसे अधिक प्रतिशतता-उत्पादन और सम्बद्ध कामगारों और यातायात उपकरण प्रचालकों (श्रमिकों को छोड़कर) (30.5 प्रतिशत) वर्ग के अधीन थी। इसके बाद व्यावसायिक, तकनीकी और सम्बद्ध कामगारों (अध्यापकों को छोड़कर) 22.2 प्रतिशत अध्यापकों—15.7 प्रतिशत और लिपिक तथा विक्रय कामगारों (टाइपिस्टों तथा चपरासियों को छोड़कर)—11.6 प्रतिशत था।

रोजगार बाजार कार्यक्रम का मूल्यांकन और विकास—रोजगार बाजार सूचना कार्यक्रम के तकनीकों और कार्यपद्धति को परिष्कृत करने तथा इसका तकनीकी मूल्यांकन करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय में एक सेल कार्य कर रहा है। अब तक इस सेल ने एक संघशासित क्षेत्र सहित आठ राज्यों में रोजगार बाजार सूचना/सभी यूनिटों का तकनीकी मूल्यांकन किया। इस सेल ने रोजगार बाजार सूचना कार्य में लगे हुए अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण प्रबन्धों का भी पुनरीक्षण किया और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के आयोजन में हरियाणा, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, जम्मू व कश्मीर, मेघालय, बिहार राज्य सरकारों और मिजोरम संघ-शासित क्षेत्र के साथ सक्रिय सहयोग दिया। चूंकि रोजगार बाजार सूचना रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम के अन्तर्गत एकत्र की जा रही है, इसलिए सेल ने अगस्त, 1976 में नई दिल्ली में उक्त अधिनियम के राज्य प्रवर्तन अधिकारियों की एक वर्कशाप का आयोजन किया। इस वर्कशाप ने राज्यों में प्रवर्तन कार्य से सम्बन्धित अधिकारियों को विचारों का आदान-प्रदान करने और उनके द्वारा अपने अपने राज्यों में अधिनियम के प्रवर्तन में महसूस की गई कठिनाइयों के सम्बन्ध में अनुभवों को बांटने के लिए अवसर प्रदान किया। वर्कशाप के विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप राज्यों में अपनाने के लिए प्रवर्तन अधिकारियों के लिए अनुदेशों की पुस्तिका को अन्तिम रूप दिया गया।

व्यावसायिक मार्ग-दर्शन और रोजगार सम्बन्धी परामर्श

वर्ष 1976 के दौरान 235 रोजगार कार्यालयों में व्यावसायिक मार्ग दर्शन एकक कार्य कर रहे थे। इसके अतिरिक्त 65 विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय रोजगार सूचना और मार्ग-दर्शन केन्द्र कार्य कर रहे थे। इन एककों और केन्द्रों ने आवेदकों और विद्यार्थियों को एक ओर उनकी योग्यताओं अभिरुचियों, दिलचस्पियों, आदि और दूसरी ओर व्याप्त रोजगार बाजार स्थितियों के अनुरूप सही व्यवसायों का चयन करने तथा भविष्य के लिए योजना बनाने में सहायता की। इन एककों ने व्यावसायिक सूचना भी एकत्र एवं संकलित की और विद्यार्थियों अध्यापकों, अभिभावकों तथा रोजगार चाहने वालों में व्यक्तिगत और सामूहिक विचार-विमर्शों, वृत्तिक वार्ताओं, वृत्तिक नुमाइशों, फिल्म प्रदर्शनियों इत्यादि द्वारा इसका प्रसार किया। इच्छुक आवेदकों एवं विद्यार्थियों को उपयुक्त प्रशिक्षण/शिक्षुता प्रशिक्षण के अवसर जुटाने और अंशकालिक/छुट्टियों के दौरान रोजगार अवसर प्राप्त कराने में भी सहायता प्रदान की।

रोजगार कार्यालयों के व्यावसायिक मार्गदर्शन एककों और विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग-दर्शन केन्द्रों के कार्यकलापों का मूल्यांकन करने, व्यावसायिक मार्ग-दर्शन एवं मन्त्रणा के समुन्नत तरीकों एवं तकनीकों का विकास करने और राज्यों से सहयोग से कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने के लिए 1971 में रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय में एक मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन सेल की स्थापना की गई। यह सेल आरम्भ में कारगर ढंग से कार्य करता रहा। वर्ष 1976 के दौरान इस सेल ने रोजगार कार्यालयों के 10 व्यावसायिक मार्ग-दर्शन एककों और दो विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग-दर्शन केन्द्रों सहित 12 फील्ड यूनिटों का मूल्यांकन किया। प्रारम्भ से इस सेल ने 122 फील्ड यूनिटों का मूल्यांकन किया है जिनमें 93 रोजगार कार्यालयों के व्यावसायिक मार्गदर्शन एकक और 29 विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग-दर्शन केन्द्र शामिल है। ई एण्ड आई सेल ने केन्द्रीय रोजगार सेवा अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा आयोजित तीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में भाग लिया। यह सेल आई. एल. ओ शोधवृत्ति कार्यक्रम और द्वि पक्षीय कार्यक्रम के अन्तर्गत विदेशी अधिकारियों के प्रशिक्षण से भी सम्बन्धित था। यह एकक प्रत्येक राज्य मुख्यालय में आयोजित रोजगार अधिकारियों (व्यावसायिक मार्ग-दर्शन) को शिक्षा देने के लिए नैश प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित था।

चयन के लिए अभिरुचि परीक्षाएँ

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में दस्तकार प्रशिक्षणार्थियों की दक्षता को बढ़ाने और जनशक्ति तथा सामग्री के साधनों के अपव्यय को कम करने के लिए सन् 1963 से प्रशिक्षणार्थियों के चयन के लिए अभिरुचि परीक्षाओं का लगातार आयोजन किया गया है। वर्ष 1976 से औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान/आदर्श प्रशिक्षण संस्थान में चार और इंजीनियरी व्यवसायों, अर्थात् डीजल मेकैनिक, इलैक्ट्रॉनिक्स, टूल और डाई मेकर और ट्रैक्टर मेकैनिक के शुरू होने से अभिरुचि परीक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले इंजीनियरी व्यवसायों की कुल संख्या अब 19 है। वर्ष 1976 के दौरान दस राज्यों के अन्तर्गत बहुत से औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में अभिरुचि परीक्षाओं का आयोजन किया गया।

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों/आदर्श प्रशिक्षण संस्थानों में शिल्पकार प्रशिक्षणार्थियों के चयन के साधन के रूप में अभिरुचि परीक्षाओं की क्षमता का पता लगाने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा मध्य-प्रदेश के चुने हुए व्यवसायों और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में हाल में एक अनुवर्ती अध्ययन आरम्भ किया गया। मध्यप्रदेश के आठ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में 968 उम्मीदवारों को अगस्त, 1976 में अभिरुचि परीक्षा दी गई और पूर्वसूचक आँकड़े एकत्र किए गए। अध्ययन के उद्देश्य हेतु छः इंजीनियरी व्यवसायों को सम्मिलित किया गया है।

विभिन्न इंजीनियरी व्यवसायों के साथ-साथ वाणिज्य व्यवसायों में शिशु अधिनियम, 1961 के अधीन शिशुओं के चयन के लिए उद्योगों में अभिरुचि परीक्षा कार्यक्रम का भी विस्तार किया गया है। 1975-76 तक 38 संगठनों के 49 कार्मिक/

कार्यकारी, प्रशिक्षण अधिकारियों को रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा परीक्षा कार्यक्रम के आयोजन एवं परीक्षा-व्यवस्था के तरीकों में प्रशिक्षित किया गया था। 19 उद्योगों ने अपने संगठनों/प्रतिष्ठानों में शिशुओं की चयन के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय की अभिरुचि परीक्षाओं का प्रयोग किया है।

फालतू घोषित किए गए कर्मचारियों को नियुक्त करना

सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों और केन्द्रीय सरकार के प्रतिष्ठानों में फालतू घोषित किए गए कर्मचारी– फालतू घोषित किए गए कर्मचारियों को नियुक्ति सहायता देने के लिए स्थापित किए गए विशेष कक्ष के रजिस्टर में वर्ष 1976 के प्रारम्भ में दामोदर घाटी योजना के 198 व्यक्तियों के नाम दर्ज थे जो रोजगार सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे। इन व्यक्तियों ने सेवा निवृति के लाभ प्राप्त करने के बाद वर्ष के दौरान कार्यस्थल छोड़ दिया और उन्हें रोजगार सहायता की जरूरत नहीं थी। वर्ष 1976 के दौरान भारतीय तेल निगम और व्यास-सतलज लिंक परियोजना, सुन्दर नगर (हिमाचल प्रदेश) में आने वाले वर्षों में क्रमश 989 और 12,592 सम्भावित फालतू व्यक्तियों की सूचना दी है जिनके लिए रोजगार हेतु वैकल्पिक प्रबन्ध किए जाने हैं।

फरक्का बैरेज प्रोजेक्ट के फालतू घोषित किए गए कर्मचारी—जिला मुर्शिदाबाद पश्चिम बंगाल में फरक्का बैरेज प्रोजेक्ट के पूरा हो जाने के कारण फालतू घोषित किए गए कामगरों के लिए कलकत्ता में स्थापित विशेष कक्ष (फरक्का बैरेज प्रोजेक्ट) ने रोजगार की व्यवस्था जारी रखी। विशेष कक्ष को सूचित फालतू कर्मचारियों में से, वर्ष 1976 के दौरान 380 व्यक्तियों को वैकल्पिक रोजगार दिया गया और इस प्रकार अब तक रोजगार प्रदान किए गए ऐसे व्यक्तियों की कुल संख्या 1,226 है। दिसम्बर, 1976 के अन्त तक 577 फालतू कर्मचारी विशेष कक्ष के रजिस्टर पर वैकल्पिक रोजगार सहायता की प्रतीक्षा में थे।

केन्द्रीय सरकार के प्रतिष्ठानों में चतुर्थ श्रेणी के फालतू कर्मचारियों के लिए अधिशेष कक्ष—यह कक्ष प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के कारण अथवा वित्त मन्त्रालय के कर्मचारी निरीक्षण एकक द्वारा किए गए निरीक्षणों के परिणामस्वरूप फालतू घोषित किए गए चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को रोजगार सहायता की व्यवस्था करने के लिए उत्तरदायी है। सन् 1976 के प्रारम्भ में 19 चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी रोजगार सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे। दिसम्बर, 1976 तक, इस कक्ष को 359 और फालतू घोषित कर्मचारी सूचित किए गए जिससे ऐसे व्यक्तियों की कुल संख्या 378 हो गई। इनमें से 271 व्यक्तियों को नियुक्ति सहायता प्रदान की गई और दिसम्बर, 1976 के अन्त में 107 कर्मचारी रोजगार सहायता की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अपंग सैनिकों और रक्षा सेवाओं के युद्ध में वीरगति प्राप्त कर्मचारियों के आश्रितों के लिए भूतपूर्व सैनिक कक्ष

जुलाई, 1972 के दौरान स्थापित भूतपूर्व सैनिक कक्ष को सन् 1962 से

चीन के आक्रमण, सन् 1965 में पाकिस्तानी आक्रमण और सीमा दुर्घटनाओं में अपंग हुए 686 सैनिकों के ब्यौरे प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त सन् 1971 में युद्ध के 1631 अपंग सैनिकों के ब्यौरे भी इस कक्ष में प्राप्त हुए हैं। इस कक्ष में सन् 1962, 1965 और 1971 के युद्ध के दौरान वीरगति प्राप्त गम्भीर रूप में घायल रक्षा सेवाओं के कर्मचारियों के 2137 आश्रितों को रोजगार सहायता देने के लिए ब्यौरे प्राप्त हुए हैं। सन् 1962 और 1965 के आक्रमणों के 405 अपंग सैनिकों, सन् 1971 के युद्ध के 1020 अपंग सैनिकों और 743 आश्रितों को रोजगार दिया जा चुका है। दिसम्बर, 1976 के अन्त में भूतपूर्व सैनिक कक्ष के रजिस्टर में सन् 1962 और 1965 के आक्रमणों के 80 अपंग सैनिक, सन् 1971 के युद्ध के 103 अपंग सैनिक तथा रक्षा सेवाओं के युद्ध में वीरगति प्राप्त गम्भीर रूप से घायल कर्मचारियों के 623 आश्रित रोजगार सहायता के लिए प्रतीक्षा में थे।

केन्द्रीय रोजगार कार्यालय द्वारा रिक्तियों का विज्ञापन और केन्द्रीय रजिस्टर रखना

रिक्तियों का विज्ञापन—नियोजकों को ऐसे कामगर, जिनकी कमी है, उपलब्ध कराने के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार की रिक्तियाँ, जिन्हें भरना कठिन होता है, विज्ञापित करने की एक योजना सितम्बर, 1968 से आरम्भ की गई थी। सन् 1976 के दौरान 43 विज्ञापनों द्वारा 2,638 रिक्तियों को विज्ञापित किया गया। विज्ञापित रिक्त स्थानों में से 732 रिक्तियाँ अनुसूचित जातियों, 665 अनुसूचित जन-जातियों और 80 भूतपूर्व सैनिकों के लिए आरक्षित थी।

केन्द्रीय रजिस्टर—नियोजकों से माँग का अल्पकालिक नोटिस मिलने पर उसे पूरा करने के लिए केन्द्रीय रोजगार कार्यालय इंजीनियरी स्नातकों, चिकित्सा स्नातकों, अनुभवी इंजीनियरी डिप्लोमाधारियों, अनुसूचित जाति के स्नातकोत्तरों और अनुसूचित जन-जाति के स्नातकों जैसे कुछ चुने हुए वर्गों के उम्मीदवारों का रिकार्ड रखता है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों के लिए अध्यापन व मार्ग-दर्शन केन्द्र

चार अध्यापन व मार्ग-दर्शन केन्द्र, दिल्ली, जबलपुर, कानपुर और मद्रास में एक-एक, सारा साल काम करते रहे। ये केन्द्र अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों को उस समय मार्ग-दर्शन प्रदान करते हैं, जब वे अपने नाम दर्ज कराने के लिए रोजगार कार्यालयों में आते हैं और जब अधिसूचित की गई रिक्तियों के लिए उनके नाम नियोजकों को भेजे जाते हैं। नियोजकों द्वारा बुलाए जाने पर उन्हें रोजगार की अपेक्षाओं और उनके द्वारा ली जाने वाली परीक्षा/साक्षात्कार के बारे में जानकारी दी जाती है। ये केन्द्र अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित रिक्त स्थानों में नियुक्ति के बारे में नियोजकों के साथ अनुवर्ती कार्यवाही भी करते हैं। छः और अध्यापन व मार्ग-दर्शन केन्द्रों—कलकत्ता, सूरत, जयपुर, हैदराबाद, त्रिवेन्द्रम और राँची में एक-एक केन्द्र स्थापित होने की सम्भावना है।

इन केन्द्रों द्वारा आरम्भ से दिसम्बर, 1976 तक किए गए कार्य का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है—

(आँकड़े वास्तविक संख्याएँ हैं)

	जबलपुर	दिल्ली	मद्रास	कानपुर
पंजीकरण/सामूहिक मार्ग दर्शन	8,805	76,779	14,194	17,763
सम्प्रेषण से पूर्व मार्ग-दर्शन	9 212	7 583	10,745	9,287
व्यक्तिगत सूचना और मार्ग दर्शन	7,105	6,772	13,097	13,095
माता-पिता को सलाह	98	296	238	86
नियुक्तियाँ	707	1,964	2 485	1,120
आत्म विश्वास बनाने वाले प्रशिक्षणों में भाग लेने वाले प्रशिक्षणार्थियों की संख्या	4,707	5 701	2,497	2 530

विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं/चयन परीक्षाओं के लिए अनुसूचित जाति/जन-जाति के उम्मीदवारों को तैयार करने के लिए अध्यापन कार्यक्रम

इस योजना में लिपिकों की रिक्तियों की भर्ती हेतु आयोजित विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं/चयन परीक्षाओं के लिए अनुसूचित जाति/जन-जाति के उम्मीदवारों को तैयार करने की परिकल्पना की गई है। योजना का पहला चरण (पाँच लाख रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत) रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा सितम्बर 1973 में संघ-शासित क्षेत्र दिल्ली तथा गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) में प्रायोगिक आधार पर शुरू किया गया। योजना के दो चरण पूरे हो चुके हैं जिनके अन्तर्गत दिल्ली गाजियाबाद रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर से चुने हुए लगभग 1600 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों को चुने हुए शैक्षिक संस्थानों में प्रशिक्षण दिया गया। योजना का तीसरा चरण (गृह मन्त्रालय द्वारा पोषित) 1 अगस्त, 1976 से आरम्भ हो गया है जिसके अन्तर्गत दिल्ली और गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) रोजगार कार्यालयों को चालू रजिस्टर से चुने हुए लगभग 500 अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जन-जाति के उम्मीदवारों को 11 शैक्षिक संस्थानों में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। पाठ्यक्रम की अवधि नौ माह है। प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में सामान्य अंग्रेजी, सामान्य ज्ञान, प्रारम्भिक गणित और कार्यालय क्रियाविधि के कुछ पहलू शामिल हैं। कुछ संस्थान भी आशुलिपिक में अध्यापन सुविधाएं प्रदान करते हैं। अध्यापन की अवधि के दौरान प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को 75 रुपए प्रतिमाह की दर से वृत्तिका दी जाती है। संस्थानों को प्रतिमाह 20 रुपये प्रति प्रशिक्षणार्थी की दर से अध्यापन खर्चा दिया जाता है। उन संस्थानों के सम्बन्ध में, जो आशुलिपि में कोचिंग देते हैं, यह खर्च 25 रुपये प्रति प्रशिक्षणार्थी प्रति माह की दर से दिए जाते हैं। उम्मीदवारों के लिए टाइपराइटिंग में प्रशिक्षण का प्रबन्ध करने के लिए टाइपिंग खर्च 10 रुपये प्रति प्रशिक्षणार्थी प्रति माह की दर से भी दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, उम्मीदवारों को पुस्तकों और लेखन-सामग्री की निःशुल्क आपूर्ति के लिए व्यवस्था भी की गई है।

रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959

श्रम मन्त्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन 1976–77 के अनुसार—

1 यह अधिनियम, जो सन् 1960 में लागू हुआ, सरकारी क्षेत्र के सभी नियोजकों और निजी क्षेत्र के गैर-कृषि कार्यकलापों में रत ऐसे नियोजकों पर लागू होता है जिनके पास 25 या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं। अधिनियम की धारा 4 के अधीन नियोजकों के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने प्रतिष्ठानों में पैदा होने वाले रिक्त स्थानों को भरने से पहले उन्हें (कुछ मामलों में दी गई छूट को छोड़कर) निर्धारित रोजगार कार्यालय को अधिसूचित करें। अधिनियम की धारा 5 के अधीन नियोजकों के लिए निर्धारित रोजगार कार्यालय को अपने कर्मचारियों की संख्या, रिक्त स्थानों तथा कर्मियों के सम्बन्ध में त्रैमासिक विवरण और कर्मचारियों का व्यावसायिक वितरण दर्शाने वाली द्विवार्षिक विवरणी भेजना अपेक्षित है। इस समय (सन् 1976–77) इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र के लगभग 0·82 लाख प्रतिष्ठान और निजी क्षेत्र के 0 45 लाख प्रतिष्ठान आते हैं।

2 विभिन्न राज्य सरकारों और संघ-शासित क्षेत्रों से प्राप्त अधिनियम के प्रवर्तन सम्बन्धी त्रैमासिक प्रतिवेदन से पता चलता है कि कुल मिलाकर दोनों सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के नियोजक अधिनियम के उपबन्धों का अनुपालन करते रहे। इन नियोजकों ने रिक्तियों को अधिसूचित किया और निर्धारित विवरणियाँ रोजगार कार्यालयों को भेजी। तथापि, कुछ मामलों में नियोजक अपने प्रतिष्ठानों में सृजित कुछ रिक्तियाँ रोजगार कार्यालयों को अधिसूचित न करने के समुचित कारण बताने में असमर्थ रहे और त्रैमासिक विवरणियों में अपेक्षित पूरी सूचना भी नहीं भेज सके।

3. अधिनियम के उपबन्धों को लागू करने के उद्देश्य से अनेक राज्यों में प्रवर्तन तन्त्र स्थापित किया गया है। कुछ अन्य राज्यों में ऐसे ही तन्त्र के सृजन के प्रस्तावों पर कार्यवाही की जा रही है। जहाँ रोजगार अधिकारियों द्वारा नियोजकों से सहयोग प्राप्त करने और वैयक्तिक अनुवर्ती कार्यवाही जारी रखने के लिए उपयुक्त कदम उठाए गए, वहाँ राज्य सरकारों द्वारा उन नियोजकों को 'कारण बताओ नोटिस' भी जारी किए गए जिन्होंने अधिनियम के उपबन्धों का लगातार उल्लंघन किया।

4. अधिनियम के प्रभाव को कारगर बनाने के लिए राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया है कि वे नियोजकों के अभिलेखों और दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए शक्तियों का और अधिक विस्तार करें। राज्यों को ऐसे अनुदेश भी दिए गए हैं कि वे क्रमबद्ध आधार पर नियोजकों के अभिलेखों और दस्तावेजों के निरीक्षण के कार्यक्रम को तेज करें।

रोजगार कार्यालयों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

देश में रोजगार कार्यालयों ने श्रमिकों को रोजगार प्राप्त करने में सहायता दी है लेकिन नियोजक क्षेत्रों ने उनके महत्त्व को अभी भली प्रकार स्वीकार नहीं किया

है। निजी क्षेत्र इनकी सेवाओं के उपभोग के प्रति काफी उदासीन रहा है, हाँ सार्वजनिक क्षेत्र में इनकी उपयोगिता को अधिकाधिक स्वीकारा जा रहा है। श्रमिकों, मालिकों और सरकार की श्रमिक की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने की दिशा में यद्यपि इन कार्यालयों ने पिछले कुछ वर्षों में काफी सहयोग दिया है, तथापि ऐसे उदाहरणों की चर्चा भी कम सुनने को नहीं मिलती कि अन्य उपायों से भर्ती अथवा-नियुक्तियों को काफी प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे अनेक कारण हैं जो इस बात के लिए उत्तरदायी हैं कि रोजगार कार्यालयों का भर्ती के दोषों को दूर करने तथा वैज्ञानिक प्रमापीकरण प्राप्त करने में असफलता क्यों मिली है—

1 रोजगार कार्यालयों द्वारा अपने कर्मचारियों को विभिन्न कारखानों में भेजकर वहाँ भर्ती किए गए श्रमिकों की संख्या और उनका पंजीयन करके अपने प्रतिवेदन में इसका विवरण दे दिया जाता है। इससे वे अपना दिखावटी अस्तित्व प्रस्तुत करते हैं।

2 कई मालिक व सरकारी अधिकारी श्रमिकों व कर्मचारियों का चयन कर लेते हैं और बाद में उनको रोजगार कार्यालय में पंजीयन करवा लेने को कहते हैं जिससे कि उनका नियमन हो जाए। यह एक अवांछनीय प्रक्रिया है जिससे रोजगार कार्यालयों के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। इससे भर्ती के दोषों को समाप्त नहीं किया जा सकता।

3 रोजगार कार्यालयों में काम करने वाले कर्मचारियों का व्यवहार बेरोजगारों के साथ सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता है।

4 रोजगार कार्यालयों में पंजीयन कराने के लिए व्यक्ति जाते हैं। वहाँ पर काफी समय लगता है। इसके साथ ही जब रिक्त स्थान का साक्षात्कार होता है उसके लिए प्रार्थी को रोजगार कार्यालय में उपस्थित होने के लिए सूचित किया जाता है लेकिन इस प्रकार की सूचना साक्षात्कार होने के पश्चात् मिलती है जिससे प्रार्थियों को समय पर नौकरी नहीं मिल पाती। यह सब कर्मचारियों की ढिलमिल नीति एवं कार्य के प्रति उदासीनता के कारण से होता है।

5 इन कार्यालयों में रिश्वतखोरी और पक्षपात पाए जाने के भी आरोप प्रायः सुनने में आते हैं।

सुझाव

रोजगार कार्यालयों के कार्यों को प्रभावपूर्ण बनाने हेतु निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1 इन कार्यालयों को श्रम बाजार के सम्बन्ध में रिकार्ड ही नहीं रखने चाहिए बल्कि श्रमिकों को प्रशिक्षण व परामर्श की सेवाएँ प्रदान करनी चाहिए, जिससे एक नौकरी से दूसरी नौकरी प्राप्त करने में मदद मिल सके। विवेकीकरण अपनाने से होने वाले बेकार श्रमिकों को रोजगार दिलाया जाना चाहिए।

2. जो श्रमिक नौकरी प्राप्त करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते हैं अथवा प्रशिक्षण प्राप्त करने में असमर्थ हैं उन सभी श्रमिकों को रोजगार

कार्यालयो द्वारा आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए और बाद मे र्शर करती श्रमिको की मजदूरी मे से काट लेना चाहिए । ेस्या का

3 साधारण रोजगार कार्यालयो के अतिरिक्त विशेष रोजगार कार्या श्रम स्थापना की जानी चाहिए । इन कार्यालयो से विशिष्ट उद्योगो के श्रमिक जैसे अव पर, पत्तनो पर, घरो मे और बागान और खानो मे काम करने वाले श्रमिक भी ला उठा सकें ।

4 रोजगार कार्यालयो को प्रभावपूर्ण बनाने हेतु मालिको का सहयोग होना आवश्यक है । मालिको को श्रमिको की भर्ती करते समय रोजगार कार्यालयों को सूचित करना चाहिए और इनके माध्यम से भर्ती कार्य किया जाना चाहिए ।

5. डॉ. राधाकमल मुकर्जी (*Dr. R. K. Mukerjee*) का कहना है कि एक रोजगार कार्यालय अधिनियम (Employment Exchange Act) पास किया जाना चाहिए । इस अधिनियम के अन्तर्गत समूचे देश के रोजगार कार्यालयो का समन्वय किया जाना चाहिए और यह श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत होना चाहिए । सभी कस्बो मे जहाँ 20 हजार से अधिक आबादी है वहाँ रोजगार कार्यालय स्थापित किए जाने चाहिए तथा रोजगार प्राप्त करने वाले रिक्त स्थानो आदि के सम्बन्ध मे रजिस्टर्स रखे जाने चाहिए ।

रोजगार कार्यालयो के समस्त दोषो को समाप्त करके इसे प्रभावपूर्ण ढग से चलाया जाए । इससे श्रमिको, मालिको और सरकार सभी को लाभ होगा । ये कार्यालय अपनी बहुमूल्य सेवाओं से श्रम की माँग और पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित कर सकते है । इससे घर्षणात्मक बेरोजगारी कम की जा सकती है ।



है । निजी
सार्वजनि
मालि
दि

7 मानव-शक्ति नियोजन: अवधारणा और तकनीक; भारत में मानव-शक्ति नियोजन

(MAN-POWER PLANNING CONCEPTS AND TECHNIQUES, MAN-POWER PLANNING IN INDIA)

मानव-शक्ति नियोजन (Man-Power Planning)

किसी भी देश की प्रगति हेतु मानव-शक्ति समस्याओ का महत्त्वपूर्ण स्थान है । देश की प्रगति उत्पादन पर निर्भर करती है । उत्पादन का उद्देश्य न केवल उत्पादन की मात्रा मे ही वृद्धि करना है, बल्कि उत्पादन की किस्म सुधारना भी है । इसकी प्राप्ति के लिए उत्पादन क्रिया मे भाग लेने हेतु पर्याप्त सख्या मे मानव शक्ति का होना आवश्यक है । "उत्पादन मे वृद्धि हेतु अधिक मानव-शक्ति की ही आवश्यकता नही है, बल्कि मानव-शक्ति का कुशल होना भी आवश्यक है ।"[1]

भारतीय मानव शक्ति के स्रोत या साधन एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है । उपजाऊ मिट्टियाँ, खनिज पदार्थ, वनस्पति और अन्य प्राकृतिक साधनो की भाँति मानवीय साधन भी मूल्यवान हैं । आवश्यकताओ को पूरा करने हेतु इन साधनो को वैज्ञानिक आधार पर गतिशीलता प्रदान करनी होगी । इस कार्य के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम अपनाना होगा जिसे मानव-शक्ति नियोजन (Man Power Planning) कहा जाता है । इसका सम्बन्ध वर्तमान समय मे मानव शक्ति की पूर्ति तथा इसकी माँग से है । "हमारे देश मे अकुशल श्रमिको की अधिकता और कुशल, तकनीकी एव वैज्ञानिक ... रो की कमी की समस्या के निवारण हेतु मानव शक्ति नियोजन अपनाकर मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है ।"[2]

1 *Tilak, V R K* Man-Power Shortages & Surpluses, p 1
2 *Giri, V V* Labour Problems in Indian Industry, p 327.

किसी देश की मानव-शक्ति उस देश की सम्पूर्ण जनसंख्या पर निर्भर करती है। आर्थिक दृष्टि से सक्रिय जनसंख्या के आधार पर ही मानव-शक्ति की समस्या का समाधान किया जा सकता है। भारत जैसे आर्थिक नियोजन वाले देश में अतिरेक श्रम (Surplus Labour) को नियोजन के माध्यम से पूर्ण रोजगार प्रदान करना प्रमुख उद्देश्य है। विकसित देशों में मानवीय साधनों की कमी होने से वहाँ पूंजी गहन उत्पादन के तरीके (Capital Intensive Technique of Production) को अपनाया जाता है जबकि भारत जैसे विकासशील देश में पूंजी का अभाव तथा श्रम का आधिक्य होने से श्रम गहन उत्पादन का तरीका (Labour Intensive Technique of Production) अपनाया जाता है। यहाँ तीव्र औद्योगीकरण हेतु कुशल श्रमिकों की कमी पड़ती है जबकि अकुशल श्रमिकों की पूर्ति काफी है। कृषि में छिपी हुई बेरोजगारी और उद्योग तथा सेवाओं में अनैच्छिक बेरोजगारी पाई जाती है। इसके साथ ही कुशल श्रम-शक्ति का अभाव (Lack of Skilled Man-Power) है, जबकि इंग्लैण्ड जैसे विकसित देश में सामान्य श्रम-शक्ति का अभाव है।

मानव-शक्ति की अतिरेक और आधिक्य सम्बन्धी समस्या का समाधान करने हेतु भावी योजनाओं को ध्यान में रखते हुए सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में उपलब्ध मानव-शक्ति और आवश्यक मानव-शक्ति का अनुमान लगाया जाना चाहिए। मानव-शक्ति का अधिकतम उपयोग करने हेतु प्रतिवर्ष वित्तीय बजट की भाँति मानव-शक्ति बजट (Man-Power Budget) तैयार किया जाना चाहिए जिससे विभिन्न व्यवसायों में मानव-शक्ति की आवश्यकता और वितरण की तुलना की जा सके। इस प्रकार के बजट से मानव-शक्ति की माँग और पूर्ति दोनों का अच्छा समायोजन किया जा सकता है। यह समायोजन रोजगार कार्यालयों (*Employment* Exchanges) द्वारा अच्छे ढंग से किया जा सकता है।[1] रोजगार कार्यालय रोजगार प्राप्त करने वाले तथा रोजगार देने वालों के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं। इनके द्वारा यह सूचना भी एकत्रित की जा सकती है कि किस व्यवसाय में मानव-शक्ति का अभाव है और किस व्यवसाय में इसका आधिक्य है? इस कार्य हेतु रोजगार कार्यालय सरकार के अन्य कार्यालयों उदाहरणार्थ—शिक्षा, वैज्ञानिक, अनुसन्धान, व्यापार और उद्योग से सहायता ले सकते हैं और आसानी से अधिकता व कमी का पता लगाया जा सकता है।

हाल ही के वर्षों में मानव-शक्ति की समस्या के हल के लिए कुछ समितियाँ नियुक्त की गई हैं—

1 वैज्ञानिक मानव-शक्ति समिति, 1947 (Scientific Man-Power *Committee of 1947*) - इस समिति द्वारा आने वाले 5 से 10 वर्षों में वैज्ञानिक और तकनीकी मानव-शक्ति के विभिन्न वर्गों हेतु अनुमान लगाने के लिए सर्वेक्षण में पता चला कि इन्जीनियर, डॉक्टर, रसायनविज्ञ, तकनीकी विशेषज्ञ, अध्यापकों (विज्ञान) आदि की कमी थी।

1. *Tilak, V. R. K.* : Man-Power Shortage & Surpluses, p. 5.

2 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948 (University Education Commission, 1948)—भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया गया। इसका कार्य भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याओ और भावी सुधार हेतु सुझाव देना था। यद्यपि इस आयोग का प्रत्यक्ष रूप मे भारतीय मानव-शक्ति से सम्बन्ध नही था फिर भी इजीनियर, डॉक्टर, अध्यापक, वकील और अन्य व्यावसायिक वर्ग आदि के विषय में बताया गया कि वर्तमान विश्वविद्यालय शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत भी इनकी कमी है।

मानव-शक्ति की अधिकता तथा अभाव के विषय मे सही रूप मे सूचना नही मिलती है। मानव-शक्ति की अधिकता अथवा बचत इसकी मांग की तुलना मे उत्पन्न होती है। जब मानव-शक्ति की मांग इसकी पूर्ति की तुलना मे अधिक है तो यह अभाव (Shortage) होगा तथा मांग पूर्ति की तुलना मे कम होने पर मानव-शक्ति का अतिरेक होगा।

भारत जैसे विकासशील देश मे मानवीय साधनो के उचित एव कुशल उपयोग को आर्थिक नियोजन मे सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। नियोजन का उद्देश्य मानव-शक्ति की कमी को पूरा करना तथा अतिरेक मानव-शक्ति को लाभपूर्ण व्यवसायो मे लगाना होता है। जब हम मानव-शक्ति के अभाव के रूप मे अध्ययन करते हैं तो मानव शक्ति हेतु नियोजन (Planning for Man-Power) कहलाता है तथा मानव-शक्ति का अतिरेक के सम्बन्ध मे अध्ययन करने पर यह मानव-शक्ति का नियोजन (Planning of Man Power) कहलाएगा। "नियोजन के दोनो पहलुओ का अध्ययन साथ साथ करना चाहिए क्योंकि मानव-शक्ति की कमी और अतिरेक साथ-साथ पाई जाती है।"[1] यह हमारा अनुभव है कि अतिरेक वाले व्यवसायो मे काफी वृद्धि होती रहती है जबकि अभाव वाली श्रेणियो मे सुधार नही हो पाता है।

यदि मानव शक्ति का, जो कि अतिरेक (Surplus) है, उपयोग नही किया जाता है तो वह स्वय ही नष्ट हो जाती। यह बर्बादी राष्ट्रीय साधनो के रूप मे ही नही होती है, बल्कि एक श्रमिक बेरोजगार होने पर वह स्वय आत्म-ग्लानि मे डूब जाता है और परिणामस्वरूप मानवीय साधन के रूप मे उसकी उपयोगिता नष्ट होने लगती है।

कुशल मानव शक्ति की कमी से देश का औद्योगिक विकास नही हो पाता है। आर्थिक विकास तभी सम्भव होता है जब मानव-शक्ति को गतिशीलता प्रदान की जाती है तथा श्रम की कमी से आने वाली बाधाओ को समाप्त किया जाता है। मानव-शक्ति की गतिशीलता के दो पहलू हैं—

1 मानव-शक्ति का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।
2 मानव-शक्ति को उचित व्यवसायो मे लगाया जाना चाहिए।

1. *Tilak, V R K* " Man Power Shortage & Surpluses, p 65.

अभाव को रोकने के भी दो पहलू है—

1 सभी अन्तरो को पाट कर अभाव की पूर्ति की जानी चाहिए।

2. जिन वर्गों मे मानव-शक्ति का अभाव हो, उनमे मानव-शक्ति का उचित आवण्टन किया जाना चाहिए।

अधिकांश विकासशील देशो मे श्रम की कमी नही है। लेकिन अकुशल श्रमिक काफी संख्या मे हैं जबकि कुशल श्रमिको की मांग इसकी पूर्ति की तुलना मे अधिक होने से इस प्रकार की मानव-शक्ति का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार के अभाव को दूर करने के लिए श्रमिक तैयार करने होंगे। कुशल श्रमिक प्रशिक्षण द्वारा तैयार किए जा सकते हैं। विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण योजनाएँ चलायी जाती हैं। ये प्रशिक्षण तीन प्रकार के होते हैं—

1 **तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण (Training and Vocational Training)**—नए लोगों को तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने हेतु शुरू की जाती हैं।

2. **नवशिक्षिया प्रशिक्षण (Apprenticeship Training)**—जिन्हें प्रशिक्षण केन्द्र पर शिक्षा मिल गई है उन्हे इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विभिन्न कारखानो अथवा उद्योगो मे दिया जाता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण रोजगार की पहली अवस्था मे दिया जा सकता है अथवा प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण के साथ कुछ भत्ता देकर भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. **उद्योग मे प्रशिक्षण (Training within Industry)**—इस प्रकार का प्रशिक्षण फोरमैन अथवा सुपरवाइजरी श्रेणी के कर्मचारियो को उद्योग मे ही कुशलता प्राप्त करने हेतु दिया जाता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण देश मे अथवा विदेश मे भी दिया जाता है।

किसी भी देश मे मानव-शक्ति मे कुशलता उत्पन्न करने हेतु प्रशिक्षण दिया जाना है और यह प्रशिक्षण विभिन्न योजनाओ के अन्तर्गत दिया जाता है। इसमे निम्न बातो को ध्यान मे रखना चाहिए—

1. इस प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र देश के विभिन्न क्षेत्रो अथवा प्रान्तो मे समान रूप से होने चाहिए ताकि इनमे प्रशिक्षणार्थी आसानी से पहुँच सकें।

2. किसी भी प्रशिक्षण योजना की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसमें सम्मिलित प्रशिक्षणार्थी कसे हैं। उनका उचित चयन होना जरूरी है।

3. प्रशिक्षण पाठ्य-क्रम बहुत छोटा नही होना चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे प्रशिक्षणार्थी आसानी से कुशलता प्राप्त कर सके। अधूरा ज्ञान उचित नही है

किसी भी प्रशिक्षण योजना की सफलता श्रमिक और मालिक दोनो पक्षो के पूर्ण सहयोग पर निर्भर रहती है। इससे श्रमिकों को कुशलता प्राप्त होगी और मालिकों को आवश्यकतानुसार श्रमिक मिल सकेंगे।

प्रो. हिक्स (Prof. Hicks) का कथन सत्य प्रतीत होता है कि, "व्यवसायों मे श्रम के वितरण का कुछ साधनो से नियमन करना अत्यधिक आवश्यक है। कोई

भी समाज इसके बिना जीवित नही रह सकता है।"[1] किसी भी देश मे बेरोजगारी दूर करके मानव शक्ति का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक होना है। बेरोजगारी दूर करने के लिए सस्ती मुद्रा नीति(Cheap Money Policy), सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम(Public Works Programme) और उपभोक्ता सहायता (Consumers' Subsidies) को अपनाना चाहिए।

सस्ती मुद्रा-नीति से कम ब्याज दर पर साख प्रदान करके देश का तीव्र औद्योगीकरण किया जा सकता है। जब अधिक उद्योग खोले जाएँगे तो इससे रोजगार के अवसरो मे वृद्धि होने से बेरोजगारी दूर होगी।

सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमो के अन्तर्गत सिचाई, ग्रामीण विद्युतीकरण, सड़को व नहरो का निर्माण आदि आते हैं। इससे भी रोजगार अधिक मिलता है। लोगो की क्रय शक्ति बढने से प्रभावपूर्ण माँग मे वृद्धि होती है और बेरोजगारी दूर करने मे सहयोग प्राप्त होता है।

हमारे देश मे श्रमिको को सहायता देना वांछनीय नहीं है क्योकि हमारे देश मे समस्या प्रभावपूर्ण माँग मे वृद्धि करना न होकर उत्पादन मे वृद्धि करना है। यहाँ पर पूरक साधनो की कमी पूरा करके श्रमिको को रोजगार प्रदान करना प्रमुख समस्या है।

ग्रामीण क्षेत्र मे जहाँ श्रमिको का शोषण होता है तथा कृषि क्षेत्र मे छिपी हुई बेरोजगारी पाई जाती है। इस समस्या का समाधान ग्रामीण क्षेत्र मे श्रमिको का स्थानान्तरण शहरी क्षेत्र की ओर करना होगा।

भारत में मानव-शक्ति नियोजन
(Man-Power Planning in India)

देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र मे आर्थिक नियोजन का सहारा लिया गया है। हमारे देश मे भी स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन अपनाया गया है। प्रत्येक योजना मे मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग कर उनको पूर्ण रोजगार प्रदान करने का बीडा उठाया जाता रहा है। बेरोजगारी को समाप्त करने हेतु पचवर्षीय योजनाओ मे अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

(1) प्रथम पचवर्षीय योजना
(First Five Year Plan)

इस योजना मे बेरोजगारी की समस्या पर गम्भीरता से विचार नहीं किया गया। हमारे देश मे इस योजना मे यह सोचा गया कि बेरोजगारी की समस्या न होकर अर्द्ध-रोजगार की समस्या है। इस योजना मे इस समस्या को दूर करने के लिए निर्माणकारी कार्यों(Construction Activities)मे अधिक रोजगार के अवसरो का सृजन करने हेतु निवेश की दर मे वृद्धि करने पर और महत्त्वपूर्ण केन्द्रो मे पूँजी

1 *Hicks, J R* The Social Framework, p. 61

निर्माण पर जोर दिया गया। रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने हेतु योजना का आकार 2,068 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2,378 करोड़ रुपये कर दिया गया। सन् 1935 में योजना आयोग ने शिक्षित बेरोजगारी समाप्त करने हेतु विशेष शिक्षा विस्तार कार्यक्रम (Special Education Expansion Programme) शुरू किया गया। बेरोजगारी समाप्त करने हेतु योजना आयोग ने 11 सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया जो इस प्रकार था—

(1) छोटे पैमाने के उद्योग स्थापित करने हेतु सहायता,
(2) मानव-शक्ति के अभाव वाले क्षेत्रों में प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करना;
(3) छोटे और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने हेतु राज्य और स्थानीय संस्थाओं द्वारा उनसे खरीद;
(4) शहरों में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोलना और ग्रामीण क्षेत्रों में एक अध्यापक पाठशाला खोलना,
(5) राष्ट्रीय विस्तार सेवा की स्थापना;
(6) सड़क यातायात का विकास;
(7) गन्दी बस्तियों का उन्मूलन और अल्प आय वालों हेतु कम लागत की आवास योजना,
(8) निजी भवन निर्माण क्रियाओं को प्रोत्साहन,
(9) शरणार्थियों को बसाने का कार्यक्रम;
(10) निजी पूँजी से चलाए जाने वाली शक्ति योजनाओं के विकास को प्रोत्साहन; एवं
(11) प्रशिक्षण कोच खोलना।

इन सभी उपायों का उद्देश्य बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करना था। योजनाकाल में बढ़ती हुई श्रम-शक्ति की तुलना में रोजगार के अवसरों को नहीं बढ़ाया जा सका और बेकारी घटने की बजाय बढ़ी। इस योजना काल में 75 लाख व्यक्तियों को काम दिलाने का लक्ष्य रखा गया था किन्तु इस अवधि में केवल 54 लाख व्यक्तियों को ही रोजगार दिया जा सका।

(2) दूसरी पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan)

प्रथम योजना के अन्त में 53 लाख लोग बेकार थे तथा दूसरी योजना में 100 लाख लोग बेकार होने का अनुमान लगाया गया था। इस समस्या के हल हेतु तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण लगाना आवश्यक समझा गया। इस योजनाकाल में लगभग 153 लाख लोगों को रोजगार देने की समस्या थी और अर्द्ध-रोजगार की समस्या अलग थी। अतः योजना में पूर्ण-रोजगार प्रदान करना असम्भव माना गया। इस समस्या के हल हेतु दीर्घकालीन प्रयासों की आवश्यकता महसूस की गई। दूसरी योजना की अवधि में लगभग 96 लाख लोगों—16 लाख कृषि में और 80 लाख गैर-कृषि में—को रोजगार दिलाने का लक्ष्य रखा गया।

लेकिन योजना के अन्त मे 90 लाख लोग बेकार रहे तथा अर्द्ध-रोजगार वालो की सख्या 150 से 180 लाख के बीच थी। योजनाकाल मे शिक्षित बेरोजगारो (20 लाख) को भी रोजगार प्रदान करने हेतु उद्योग, सहकारी समितियो और यातायात आदि मे योजनाएँ चालू की गई।

दूसरी योजना रोजगार प्रदान करने वाली योजना कही जा सकती है क्योंकि रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करना इसके उद्देश्यो मे से एक था।

योजना के अत मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या योजना के प्रारम्भिक बेरोजगारो से अधिक थी।

(3) तीसरी पचवर्षीय योजना
(Third Five Year Plan)

योजना काल मे 170 लाख व्यक्ति बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया तथा योजना के रूप मे 90 लाख लोग पहले ही बेरोजगार थे। अत तीसरी योजनाकाल मे कुछ बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या 260 लाख आँकी गई। इस योजना-काल मे 140 लाख लोगो को रोजगार देने की व्यवस्था की गई। बेरोजगार की समस्या को तीन दिशाओ के रूप मे देखा गया—

1 यह प्रयत्न किया जाए कि अब अधिक से अधिक लोगो को रोजगार का लाभ प्राप्त हो।

2 ग्रामीण औद्योगीकरण का एक विस्तृत कार्यक्रम अपनाया जाय। इसमे ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण उद्योग सम्पत्ति का विकास, ग्रामीण उद्योगो को प्रोत्साहन और मानव-शक्ति को प्रभावपूर्ण रोजगार प्रदान करना आदि कार्यक्रम शामिल किए जाएँ।

3 छोटे उद्योगो द्वारा रोजगार अवसरो मे वृद्धि करने के अतिरिक्त ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम (Rural Works Programme) चलाने पर भी जोर दिया जाए जिससे 100 दिन (एक वर्ष मे) कार्य 2 5 मिलियन लोगो को दिया जा सके।

इन प्रयासो के बावजूद भी योजनाकाल मे सभी व्यक्तियो को रोजगार नही दिया जा सका। योजना के अन्त मे 90 लाख से 100 लाख व्यक्ति तक बेरोजगार बचे। अपूर्ण रोजगार वाले लोगो की सख्या लगभग 160 लाख थी।

(4) तीन वार्षिक योजनाएँ
(Three Annual Plans, 1966–69)

आर्थिक कठिनाइयो के कारण पचवर्षीय योजना के स्थान पर तीन वर्ष तक वार्षिक योजनाएँ चलाई गई। इनमे बेरोजगारी को दूर करने के प्रयास किए गए। लेकिन बेरोजगारी की समस्या का समाधान न हो सका।

(5) चौथी पचवर्षीय योजना
(Fourth Five Year Plan)

इस योजना में भी रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करने पर जोर दिया गया। विभिन्न योजना कार्यक्रमो मे रोजगार बढ़ाने का प्रयास किया गया। श्रम-गहन

(Labour Intensive Industries) पर जोर दिया गया जिसमे बढती हुई श्रम-शक्ति को रोजगार दिया जा सके । ग्रामीण क्षेत्र मे विद्युतीकरण, लघु एव कुटीर उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य एव परिवार नियोजन जैसी सेवाग्रो मे रोजगार के ग्रवसर बढाने का प्रयास किया गया । योजना काल मे गैर-कृषि क्षेत्र मे 140 लाख और कृषि क्षेत्र मे 50 लाख व्यक्तियो को रोजगार प्रदान करने का प्रावधान था ।

लघु उद्योगो के विकास ग्रायुक्त श्री के एल. नजप्पा के ग्रनुसार भारत सरकार ने बेरोजगार इन्जीनियरो को छोटे उद्योगो की स्थापना करने हेतु सहायता देने के लिए एक योजना तैयार की । इस योजना को कार्यान्वित करने हेतु प्रत्येक राज्य को लगभग 30 लाख रुपये दिए जाने थे । प्रत्येक राज्य मे 200 इन्जीनियरों को 3 माह का प्रशिक्षण दिया जाना था । प्रशिक्षण काल मे ग्रेजुएट व डिप्लोमाधारी इन्जीनियरो को क्रमश. 250 रुपये ग्रौर 150 रुपये मासिक देने की व्यवस्था थी । इस योजना का उद्देश्य ग्रौद्योगिक प्रबन्ध के विभिन्न पहलुग्रो का नवयुवक इन्जीनियरों को प्रशिक्षण देना था ।

फिर भी इस योजना काल मे सभी श्रमिको को रोजगार नही दिया जा सका ग्रौर योजना के ग्रन्त मे योजना के प्रारम्भ से ग्रधिक बेरोजगारी रही ।

(6) पांचवी पचवर्षीय योजना (Fifth Five Year Plan)

यह योजना 1 ग्रप्रेल, 1974 से शुरू की गई । इस योजना मे गरीबी को दूर करने हेतु रोजगारो के ग्रवसरो के वृद्धि करने पर जोर दिया गया जिससे बड़े पैमाने पर विद्यमान बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके ।

पाँचवी पचवर्षीय योजना के प्रारूप पर, जो सन् 1972–73 के मूल्यो ग्रौर कराधान सन् 1973–74 के पूर्वार्द्ध की ग्रार्थिक स्थिति के ग्रनुसार तैयार किया गया था, परिवर्तित परिस्थितियो के कारण पुनर्विचार किया गया ग्रौर सितम्बर, 1976 मे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इस ग्रन्तिम रूप से सशोधित रूप मे स्वीकार किया । सशोधित योजना मे रोजगार की सम्भावनाग्रो ग्रौर जीवन-स्तर पर व्यवहारवादी दृष्टि से विचार किया गया ग्रौर रोजगार नीति के विभिन्न पहलुग्रो पर प्रकाश डाला गया है । यह उपयुक्त होगा कि हम सशोधित योजना के इस नीति-वक्तव्य ग्रौर रोजगार सम्भावना के विवरण को यहाँ उद्धृत करें ।

योजना बनाने वालो ग्रौर नीति-निर्माताग्रो के रोजगार की समस्या एक गम्भीर चिंतन का विषय है । ग्रर्थ-व्यवस्था के स्वरूप से सम्बन्धित विशेषताग्रो को देखते हुए इस समस्या का ग्राकार कुछ इस प्रकार का है कि उसमे से कुछ विचार ग्रौर ग्राँकडों से सम्बन्धित कठिनाइयां उभर कर सामने ग्राती हैं । बेरोजगारी के ग्रनुमानो से सम्बन्धित विशेषज्ञ समिति ने सुझाव दिया था कि इस सम्बन्ध मे एक बहुमुखी नीति ग्रपनाई जानी चाहिए । राष्ट्रीय प्रतिदर्श सगठन ने 27वें दौर मे समिति की सिफारिशो के ग्रनुसार ग्राँकड़े एकत्र किए है । ग्रब तक प्रथम उप-दौर के परिणाम प्राप्त हुए हैं । श्रम-ग्रवधि के प्रबन्ध के माध्यम से वर्तमान गतिविधि के स्तर के

स्वरूप को समझकर तथा बेरोजगारी की व्यवस्था करके ग्रामीण क्षेत्रों में इस समस्या के गुणात्मक स्तर पर विचार करना सम्भव है। आँकड़ों से यह स्पष्ट ज्ञान होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध करने की तत्काल आवश्यकता है। किन्तु इस समस्या के सही स्वरूप को तभी समझा जा सकता है जब यह समझ लिया जाए कि शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या ग्रामीण-क्षेत्र में इसकी व्यापकता का ही परिणाम है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी पता चलता है कि यह समस्या अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग मात्रा में है।

चौथी योजनावधि में संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत रोजगार में लगभग 3% वार्षिक दर से वृद्धि होने का अनुमान है। वैचारिक कठिनाइयाँ निहित होने पर भी जनगणना की तुलनाओं और राष्ट्रीय प्रतिदर्श सगठन के विभिन्न दौरों के परिणामों से यह संकेत मिलता है कि घरेलू विनिर्माण क्षेत्र में, जिसमें कुटीर उद्योग भी शामिल हैं, रोजगार की मात्रा अपेक्षित परिणाम में नहीं बढ़ी है। जिस अवधि में कृषि उत्पादन में वृद्धि की दर कम रही थी (सन् 1961–62 से 1972–74 तक) उस अवधि में सन् 1960–61 के मूल्यों के आधार पर प्रमुख घरेलू विनिर्माण उद्योगों के कुल मूल्य में वृद्धि की दर भी कम रही थी अर्थात् खाद्य, पेय व तम्बाकू के पदार्थ में (1.83% प्रति मिश्रित वर्ष), सूती वस्त्रों की सिलाई और चमड़े के जूते चप्पल (2.09%), चमड़ा और चमड़े की बनी वस्तुएँ (–1.62%) जैसे यह कमी रसायन और इंजीनियरी क्षेत्र में ऊँची वृद्धि की दर (3 से 6% के बीच) के कारण पूरी हो गई थी।

एक उपयुक्त नीति तैयार करने के लिए यह जरूरी है कि उन घटकों का पता लगाया जाए जो ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार को क्षेत्रीय आधार पर प्रभावित करते हैं। योजना आयोग ने रा. प्र. स. के क्षेत्र का उपयोग करते हुए कुछ अध्ययन किए हैं। उत्पादन के प्रति एक रुपये में अन्य घटकों जैसे प्रति हैक्टर उत्पादन, प्रति हैक्टर उर्वरक का प्रयोग, ट्रैक्टरों का प्रयोग, सिंचाई, विनियोजन स्तर, और जोत के आकारों में असमानता के स्तर की तुलना में रोजगार के अंश के सम्बन्ध में अनुसंधान किए गए हैं। उत्पादन के प्रति रुपये और प्रति हैक्टर भूमि पर रोजगार का अंश सिंचाई में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर है, जैसे प्रति हैक्टर भूमि में लगाए गए पम्प सैटों की संख्या। इसी प्रकार पाँच एकड़ (2 हैक्टर) के या इससे कम आकार की जोतों के साथ रोजगार की दर जुड़ी हुई है। विकसित वाणिज्यिक कृषि क्षेत्रों तथा शेष क्षेत्रों में इस सम्बन्ध पर अलग और अधिक विचार किया गया। इसमें प्राप्त हुए परिणाम लगभग वे ही थे, जो पूरे देश के सम्बन्ध में प्राप्त हुए थे। इसके अलावा यह भी ज्ञात हुआ कि प्रति हैक्टर उर्वरक का प्रयोग, नई कृषि तकनीकी का विस्तार भी वाणिज्यिक क्षेत्रों में रोजगार से निश्चित रूप से जुड़ा हुआ था।

उपयुक्त कार्य नीति और रोजगार नीति तैयार करने की दृष्टि से तीन बातें आपस में सम्बन्धित हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए। पहली बात में इस बात पर जोर दिया गया है कि एक ऐसा कार्यक्रम कार्यान्वित करने की आवश्यकता है

जिसमें सिंचाई, अधिक उपज देने वाली किस्मों के सम्बन्ध में कृषि विस्तार कार्य आदि जैसे योजना में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कार्य-नीति को अमल में लाया जाए। दूसरी बात इस सम्बन्ध में है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सर्जन का कार्य स्थानीय विकास से सम्बन्धित कार्यनीति से जुड़ा होना चाहिए और तीसरी व अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण बात पट्टेदारी प्रथा में सुधार के उपायों से ग्रामीण काश्तकार वर्ग में सुरक्षा तथा छोटे काश्तकारों की उपज को लाभकारी बनाने से सम्बन्धित है।

उपर्युक्त रीति विधान के निष्पादन से कई परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, पहला तो यह कि इसका अर्थ होगा, महत्त्वपूर्ण निवेश उपलब्धता सुनिश्चित करना और उसका प्रभावी रूप से उपयोग करना, योजना के उत्पादन और विनियोजन पक्ष के अन्तर्गत इस बात का ध्यान रखा गया है। दूसरा यह कि कृषि के माध्यम से रोजगार की योजना का स्वरूप क्षेत्र विशिष्ट से सम्बन्धित होना चाहिए और इसलिए इस सम्बन्ध में बहुस्तरीय नीति अपनानी होगी। प्रत्येक क्षेत्र की मिट्टी और कृषि-जलवायु को ध्यान में रख कर सिंचाई की सुविधाओं की उपलब्धता के विस्तृत अनुमान तैयार किए जाने चाहिए जो भूतल और भूमिगत दोनों प्रकार के जल स्रोतों से सम्बन्धित हों। पिछले अनुभव, क्षेत्र विशिष्ट में विशिष्ट फसल उगाने की प्रवृत्ति और योजना में स्पष्ट की गई माँग की रूपरेखा को देखते हुए प्रत्येक उप-क्षेत्र की फसल प्रणाली को निर्धारित करना होगा। सिंचाई के अन्तर्गत क्षेत्रों तथा निश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों और यथासम्भव शुष्क क्षेत्रों में नई किस्मों के विस्तार की सम्भावनाओं के व्यावहारिक अनुमान लगाने होंगे। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र की उत्पादन क्षमता का अनुमान सावधानीपूर्वक लगाना होगा और उसके लिए अपेक्षित संगठनात्मक और निवेश सम्बन्धी सुविधाएँ सुनिश्चित करनी होंगी। इस बात का ध्यान रखना होगा कि इस काम में विसंगतियाँ उत्पन्न न होने पाएँ। निःसन्देह यह एक कठिन कार्य है। इन प्रयासों से प्राप्त होने वाले युक्ति-युक्त आश्वासन के बगैर कोई गम्भीर और उपयोगी रोजगार योजना नहीं बनाई जा सकती।

अध्ययनों द्वारा क्षेत्रीय योजना के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। इनसे यह ज्ञात होता है कि कुछ संसाधनों की अलोच, जो राष्ट्रीय स्तर पर एक बन्धन रहती है, स्थानीय स्तर पर उतनी ही कठोर नहीं रह पाती जिसके फलस्वरूप, यदि जन-सहयोग और स्थानीय ज्ञान का उपयोग किया जा सके और आयोजन में पहल करने की भावना हो तो उपलब्ध भौतिक और जनसमाधनों में वृद्धि हो सकती है और उनका अधिक कुशलता से उपयोग किया जा सकता है। इस सबके लिए राज्य तथा स्थानीय स्तर पर योजना तन्त्र को बढ़ाने की आवश्यकता पड़ेगी यह इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है कि इसका राष्ट्रीय आयोजन के साथ सुसंगत ताल-मेल स्थापित किया जाना चाहिए।

सफल स्थानीय योजना के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि 20 सूत्री–कार्यक्रम में भूमि सुधार के कार्यों को प्राथमिकता दी जाए और इन्हें लागू करने के लिए उपाय किए जाएँ। छोटे किसानों को और बटाइदारों को सम्पत्ति के अधिकार देने या पट्टेदारी के अन्तर्गत सुरक्षा प्रदान करने और इसके साथ ही कृषि कार्यक्रमों, विशेषतः

ल क वि ए और ना कि मू अ कार्यक्रम के माध्यम से उत्पादन में सहायता देने की स्कीम बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। व्यापक क्षेत्रीय नीति के आधार पर बनाई गई कृषि योजना के अन्तर्गत पशु पालन, पारम्परिक बेकार वस्तुओं, आदि जैसी सहायक गतिविधियों के द्वारा अतिरिक्त रोजगार सृजित करने में काफी मदद मिल सकती है।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में श्रम की पूर्ति के अनुमानों के अनुसार पाँचवीं योजनावधि में कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत श्रम बल की संख्या में 162 लाख और छठी योजना में 189 लाख की वृद्धि होगी। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 27वें दौर द्वारा अनुमानित श्रमशक्ति की दर में 5 से 14 वर्ष के बच्चे को शामिल कर लिए जाने पर और सर्वेक्षण के लिए उपयोग में लाई गई विविध परिकल्पनाओं के कारण यह दर बढ़ जाएगी। फिर भी, रा प्र स के परिकल्पों पर आधारित अनुमानों के अनुसार पाँचवीं पंचवर्षीय योजनावधि में श्रमबल की संख्या में वृद्धि लगभग 182 6 लाख से 189 6 लाख तक होगी और छठी योजना में 195 7 लाख से 203 9 लाख तक होगी जैसी भारत की अर्थ-व्यवस्था है, ऐसी अर्थ-व्यवस्था में श्रम बल की पूर्ति के अनुमान अस्थिर रहते हैं। ऊपर वर्णित किए गए लक्ष्यों को सफलतापूर्वक पूरा कर लेने पर श्रम बल की वृद्धि को पाँचवीं योजनावधि में काम पर लगाया जा सकता है और छठी योजनावधि में पहले से ही बेरोजगार व्यक्तियों को काम देने के लिए उपयोगी प्रयास किए जा सकते हैं।

पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र के अन्तर्गत रोजगार और उत्पादन के परस्पर सम्बन्धों पर 50 औद्योगिक समूहों में अन्वेषण किया गया था। इस विश्लेषण में क्षमता के उपयोग के परिवर्तनों का भी ध्यान रखा गया है। भावी योजना में प्रमुख बल सरकारी विनियोजन और सम्पूर्ण विनियोजन पर दिया गया है और यह लक्ष्य पूरा हो जाने पर पाँचवीं योजनावधि में पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र में विनिर्माण कार्यों में रोजगार में वृद्धि दर चौथी योजनावधि की दर से काफी अधिक रहने की सम्भावना है। आने वाले समय में इस वृद्धि की प्रवृत्ति को और तेज करना होगा। यदि खान, खनन् निर्माण, उद्योग, बिजली, रेलवे तथा अन्य परिवहन और अन्य सेवाओं के क्षेत्र में भी लक्ष्य पूरे किए जा सकें तो रोजगार की सुविधाओं में काफी वृद्धि हो सकती है।

अपंजीकृत क्षेत्र में, जिसके अन्तर्गत घरेलू क्षेत्र आता है, पिछले दशक की रोजगार की प्रवृत्तियों को पलट देने की आवश्यकता है। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में कुटीर उद्योग क्षेत्र के प्रस्तावित कार्यक्रमों के लिए परिव्यय में काफी वृद्धि की गई है। यह वृद्धि हाथकरघा, नारियल रेशे गलीचे बुनने और प्रशिक्षण तथा अन्य क्षेत्रों के योजना कार्यक्रमों के क्षेत्र में विशेष रूप से की गई है। यह सम्भावना है कि घरेलू क्षेत्र की कृषि पर आधारित पूर्ति पर ज्यादा कठोर नियन्त्रण नहीं रहेगा। इस क्षेत्र से सम्बन्धित कर, ऋण और उत्पादन सहायता नीतियों का ठीक प्रकार से प्रयोग करना अनिवार्य है ताकि और अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकें। श्रम बहुलता वाले प्रौद्योगिक सुधार करने और उनका प्रसार करने की भी

आवश्यकता है। पांचवी योजना के प्रारूप में बनाई गई रूपरेखा के अनुसार पांचवीं पंचवर्षीय योजनावधि में कृषि से इतर क्षेत्र में बल की संख्या में 85 लाख और छठी योजना में 91 लाख की वृद्धि होने का अनुमान लगाया गया है। भावी योजना में बनाए गए उत्पादन लक्ष्यों को पूरा करना नितान्त आवश्यक है, तभी कृषि से इतर क्षेत्र में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकेंगे। भावी योजना के उत्पादन लक्ष्यों को पूरा करने और ऊपर स्पष्ट की गई नीतियों, विशेषतः अपचौपुन क्षेत्र में सम्बन्धित नीतियों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने से पांचवीं पंचवर्षीय योजनावधि में कृषि से इतर क्षेत्र के अन्तर्गत श्रमबल में हुई वृद्धि को पांचवी योजनावधि में उत्पादन कार्यों में लगाया जा सकता है और उसके बाद पहले से चली आ रही बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए छठी योजना में गम्भीरतापूर्वक प्रयास करने होंगे।

दीर्घकालीन भावी योजना के अन्तर्गत सुझाई गई रोजगार नीति में सरकारी विनियोजन दर बढ़ाने पर बल दिया गया है ताकि योजनाओं में निर्धारित किए गए उत्पादन के अनुमानों को पूरा किया जा सके, कृषि योजना नीति को, विशेष रूप से उसके स्थानीय स्वरूप को व्यापक और उन्नत किया जा सके, 20 सूत्री-कार्यक्रम में दिए हुए भूमि सुधार लक्ष्यों को पूरा किया जा सके, छोटे किसानों को उत्पादन में सहायता दी जा सके और अन्त में, अपजीकृत क्षेत्र में एक उपयुक्त नीति के अन्तर्गत रोजगार के अवसर फिर से सृजित किए जा सकें। जब एक बार, उपलब्ध श्रमबल को लाभदायक कार्यकलापों में लगाने की नीति सफल हो जाएगी तो उसके बाद रोजगार की स्थिति के गुणवत्ता से सम्बन्धित पहलू में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

जहाँ तक रहन-सहन का सम्बन्ध है, पांचवी योजना के प्रारूप में बनाए गए रीतिविधान का प्रयोग ऊपर वर्णित रोजगार की सम्भावनाओं के साथ उपयोग के स्तरों का एकीकरण करने के लिए किया गया है। उत्पादन के वस्तुपरक अंश में यथोचित संशोधन कर दिए गए हैं और उसे भावी योजना में अनुमानित उत्पादन के आधार में मिला दिया गया है।

वस्तुतः बढ़ती हुई मानव-शक्ति या बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए हमें तीव्र दर से बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियन्त्रण लगाने के लिए बड़े पैमाने पर परिवार नियोजन सेवाओं को शुरू करना पड़ेगा। जनसंख्या 2½ वार्षिक दर से बढ़ रही है। इसके साथ ही देश में तीव्र औद्योगीकरण करना होगा, ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क निर्माण, विद्युतीकरण, कृषि में गहन कार्यक्रम आदि अपनाना होगा। छिपी हुई बेरोजगारी को रोजगार प्रदान करने हेतु ग्रामीण श्रम-शक्ति का शहरी क्षेत्र में स्थानान्तरण करना होगा। इस प्रकार आर्थिक नियोजन में मानव-शक्ति नियोजन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। जब तक किसी भी देश में अन्य साधनों के साथ-साथ मानव-शक्ति का अधिकतम उपयोग नहीं किया जाता है, वह देश प्रगति नहीं कर सकता। वहाँ के निवासी खुशहाल नहीं हो सकते। उनका जीवन-स्तर उन्नत नहीं हो सकता।

भारत मे युवाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

मानव-शक्ति के समुचित उपयोग के लिए प्रशिक्षण-कार्यक्रमो का विशेष महत्व है। भारत में युवाओ का किशोरावस्था मे ही आजीविका के लिए तैयार करने के उद्देश्य से रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय ने विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमो को शुरू किया है। जहाँ तक सम्भव होता है, ये कार्यक्रम राष्ट्रीय ढाँचे के भीतर एव विदेशी सहयोग से भी तैयार होते हैं[1]—

कारीगरों का प्रशिक्षण—15 से 25 साल की उम्र वाले युवक युवतियों को 32 इन्जीनियरी और 22 दूसरे धन्धो म प्रशिक्षण देने के लिए समूचे देश मे औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान खोले गए हैं। इस समय देश मे 357 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान है जहाँ 1 56 लाख कारीगरो को प्रशिक्षण की नि शुल्क सुविधाएँ दी जाती हैं।

श्रम— कारीगर-प्रशिक्षणार्थियो की कार्य क्षमता बढाने के लिए रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय ने अभिरुचि प्रशिक्षण शुरू किए हैं जिसका उपयोग इजीनियरी काम धन्धो मे प्रशिक्षणार्थी कारीगरो के चुनाव के लिए किया जाता है। 1972 मे अभिरुचि परीक्षण का इस्तेमाल 11 राज्यो के 87 संस्थानो मे 15 इन्जीनियरी कामो के 89 261 उम्मीदवारो के चुनाव के लिए किया गया। प्रशिक्षणार्थी अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त उम्मीदवारों को चुनने के लिए अभिरुचि परीक्षण कार्यक्रम विभिन्न प्रदेशो के उद्योगो मे लागू कर दिया गया है।

पाठ्यक्रमो की अवधि इन्जीनियरी व्यवसाय के लिए एक से दो वर्ष तक की है और सभी गैर-इन्जीनियरी व्यवसायो के लिए एक वर्ष की। सफल शिक्षार्थियो को राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाण-पत्र दिया जाता है।

54 व्यवसायो के अतिरिक्त राज्यो और संघ राज्य क्षेत्रो की सरकारो ने अपने क्षेत्रो मे स्थापित नए उद्योगो की जरूरते पूरा करने के लिए इनके अतिरिक्त और व्यवसायो मे प्रशिक्षण चालू किया है।

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानो मे अधिकतर व्यवसायो सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रम मे प्रवेश के लिए आठवी कक्षा तक या मैट्रिकुलेशन से दो कक्षा कम या उसके समान शिक्षा योग्यता की जरूरत है। कुछ व्यवसायो जैसे इलैक्ट्रॉनिक्स, रेडियो और टेलिविजन, इलैक्ट्रिशियन, ड्राफ्टसमैन (मशीनी/सिविल) और सर्वेक्षको के लिए न्यूनतम योग्यता गणित और विज्ञान के साथ मैट्रिकुलेशन पास या उसके बराबर है।

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानो ने भारतीय सेना से आए या निवृत्त हुए कर्मचारियो को नागरिक जीवन मे पुनर्वासित करने की सुविधा देने के लिए उनके प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी शुरू किया है। अगस्त, 1972 से शुरू किए गए इस

1 भारत 1976 पृष्ठ 386-88

कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिवर्ष एक हजार सैनिक कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है

शिल्प प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण—औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानो तथा उद्योगो के लिए कलकत्ता, कानपुर, नई दिल्ली, बम्बई, मद्रास, लुधियाना तथा हैदराबाद के 7 केन्द्रीय संस्थानो मे शिल्प प्रशिक्षको को प्रशिक्षित किया जाता है। नई दिल्ली के संस्थान मे केवल महिला प्रशिक्षको को प्रशिक्षण मिलता है। विभिन्न इन्जीनियरी तथा गैर-इन्जीनियरी कामो मे ये सात संस्थान जिनकी क्षमता काई 1,200 प्रशिक्षणार्थी लेने की है, प्रशिक्षण देते हैं।

बम्बई संस्थान मे रासायनिक वर्ग के व्यापारों मे और हैदराबाद संस्थान मे होटल और खान-पान सम्बन्धी मामलो मे प्रशिक्षको को ट्रेनिंग देने के लिए सुविधाएँ जुटा दी गई है तथा कानपुर, बम्बई और लुधियाना के संस्थानो मे क्रमश छपाई, बुनाई और खेतीबाड़ी के यन्त्रो से सम्बन्धित प्रशिक्षण की सुविधाओ की व्यवस्था की जा रही है।

कारीगरों को उच्च प्रशिक्षण—सन् 1971 मे उच्च प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना मद्रास मे की गई थी, जो उद्योगो के प्रतिकुशल कारीगरो को औजारो के इस्तेमाल सम्बन्धी विशिष्ट क्षेत्रो मे प्रशिक्षित करता है ताकि उद्योगों को औजारो के डिजाइन तैयार करने, औजार और सांचे बनाने, ताप उपचार आदि मे सहायता मिल सके। पाँचवी योजना मे विभिन्न केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थानो के अन्तर्गत उप-केन्द्रो की स्थापना का प्रस्ताव है जिससे इन संस्थानो मे उपलब्ध सुविधाएँ उन क्षेत्रों मे रहने-वाले कारीगरो को उपलब्ध हो सके।

फोरमैनों का प्रशिक्षण—फोरमैनो को प्रशिक्षित करने के लिए एक संस्थान की स्थापना बगलौर मे सन् 1971 मे की गई थी। वह मौजूदा और होने वाले 'शॉप फोरमैनो' और सुपरवाइजरो को सैद्धान्तिक और प्रबन्ध क्षमता मे और उद्योगों से प्राए श्रमिको को उच्च तकनीकी हुनरो मे प्रशिक्षित करने के लिए कार्यक्रम चलाता है। ये पाठ्यक्रम प्रबन्ध व्यवस्था के निम्न और मध्य स्तर के कर्मचारियों के लिए विशेष रूप से तैयार किए जाते है। प्रशिक्षण का लक्ष्य यह है कि जन-शक्ति, मशीनों और सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग हो, लागत कम आए और उत्पादन तथा उसके गुण मे सुधार हो। पाँचवी योजना मे ऐसा प्रस्ताव है कि इस संस्थान मे उपलब्ध सुविधाओ को उप-केन्द्रो के माध्यम से, जिनकी स्थापना अभी केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थानों मे की जानी है, मुहैया किया जाए।

शिल्प शिक्षार्थी प्रशिक्षण योजना—शिल्प शिक्षार्थी अधिनियम सन् 1961 के के अन्तर्गत मालिको के लिए खास-खास उद्योगो मे शिक्षार्थियो को लगाना अनिवार्य है। यह आधारभूत प्रशिक्षण होता है जिसके साथ-साथ केन्द्रीय शिल्प शिक्षार्थी परिषद् के परामर्श से सरकार द्वारा निर्धारित प्रशिक्षण मानदण्डो के अनुसार ठीक काम के बारे मे या व्यवस्था के बारे मे प्रशिक्षण दिया जाता है। अब तक इस अधिनियम के अन्तर्गत 201 उद्योगों तथा 61 धन्धों को शामिल किया गया है।

सितम्बर, 1972 के अन्त तक लगभग 60,300 शिल्प शिक्षार्थी प्रशिक्षण पा रहे थे। सन् 1973 के शिक्षार्थी (संशोधन) अधिनियम के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों-जनजातियों के उम्मीदवारों के लिए स्थान सुरक्षित रखने और इंजीनियरिंग स्नातकों तथा डिप्लोमाधारियों के लिए रोजगार बढ़ाने की व्यवस्था है।

औद्योगिक कामगारों के लिए अंशकालिक प्रशिक्षण—संस्थानों में तथा शिक्षार्थी कार्यक्रमों के माध्यम से कारीगरों को प्रशिक्षित करने की सुविधाओं के विस्तार के साथ-साथ उन मौजूदा औद्योगिक श्रमिकों की भी जानकारी बढ़ाना और व्यावहारिक हुनर सिखाना जरूरी समझा गया है जो उद्योगों में बिना किसी नियमित प्रशिक्षण के प्रवेश करते हैं। उनके लिए सध्याकालीन कक्षाएँ आयोजित की गई हैं।

इस पाठ्यक्रम में वे औद्योगिक श्रमिक, उनकी उम्र चाहे कुछ भी हो, प्रवेश पा सकते हैं जिन्हें किसी विशेष धन्धे में दो वर्ष का काम पूरा करने का अनुभव प्राप्त है और जिनका नाम उनके मालिक भिजवाते हैं। प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की है और कामगारों से दो रुपये प्रतिमाह शुल्क लिया जाता है।

औद्योगिक सम्बन्धों तथा श्रम कानून में प्रशिक्षण—नई दिल्ली में सन् 1964 में स्थापित भारतीय श्रम अध्ययन संस्थान औद्योगिक सम्बन्धों, कर्मचारी व्यवस्था तथा श्रम कानून लागू करने के तरीकों में सेवाकालीन प्रशिक्षण देता है। श्रम सम्बन्धी मामलों में प्रशिक्षण तथा अनुसंधान के बढ़ते हुए महत्त्व को एवं देश के सामाजिक तथा आर्थिक विकास पर इसके असर को देखते हुए संस्थान की कार्य परिधि काफी बढ़ा दी गई है। इसी उद्देश्य से पूना में एक राष्ट्रीय श्रम संस्थान भी कायम किया जाएगा।

व्यावसायिक प्रशिक्षण अनुसंधान—देशी प्रशिक्षण विधियों के विकास के लिए मई, 1970 में कलकत्ता में एक केन्द्रीय कर्मचारी प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्थान स्थापित किया गया। संस्थान में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों एवं उद्योगों से आए लोगों के लिए (जिनके नियन्त्रण, निर्देशन और संचालन में प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते हैं) प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इसके अलावा धधों और प्रशिक्षण विधियों सम्बन्धी अनुसंधान की व्यवस्था करता है, प्रशिक्षण सहायता-सामग्री तैयार करता है और उद्योगों को औद्योगिक प्रशिक्षण विधियों में परामर्श देता है।

श्रमिकों को सजग और उत्तरदायी बनाने की कुछ प्रमुख योजनाएँ

भारतीय श्रमिक सजग और उत्तरदायी बनें, अपने कार्य की अच्छी जानकारी रखें, उन्हें कार्य करने में प्रोत्साहन प्राप्त हो और इस प्रकार, अन्ततोगत्वा, देश में मानव-शक्ति की क्षमतापूर्ण उपयोग में वृद्धि हो, इसके लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

श्रमिकों की शिक्षा

कर्मचारियों की शिक्षा योजना का उद्देश्य देश में श्रमिकों का एक ऐसा सजग एवं उत्तरदायी वर्ग बनाना है, जो सब बातों की अच्छी जानकारी रखता हो

और जो श्रम संघों का अच्छी तरह गठन कर सके तथा उन्हें सुचारु रूप से चला भी सके। इसके लिए एक केन्द्रीय बोर्ड बनाया गया है जिसमें भारत सरकार, राज्य सरकारों, मालिकों और कर्मचारियों के संगठनों और शिक्षाविदों को रखा गया है। यह बोर्ड पंजीकृत सोसायटी के रूप में काम कर रहा है। बोर्ड ने देश भर में प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रों/केन्द्रों में इस योजना के अधीन 36 क्षेत्रीय केन्द्र स्थापित किए हैं। श्रमिकों की शिक्षा के लिए यह मजदूर संघों और अन्य संस्थाओं को सहायता अनुदान देता है।

श्रमिकों की शिक्षा के कार्यक्रम को तीन चरणों में बाँटा गया है। पहले चरण के अन्तर्गत शिक्षा अधिकारियों को ट्रेनिंग दी जाती है जो बोर्ड के पूरे समय काम करने वाले कर्मचारी होते हैं। दूसरा चरण उन कार्यकर्ताओं की शिक्षा का है जिन्हें मजदूर संघ अपनी ओर से भेजते हैं। इन्हें शिक्षा अधिकारी तीन महिने की ट्रेनिंग देते हैं। इन कार्यकर्ताओं को कार्यकर्ता-शिक्षक कहा जाता है। शिक्षा के तीसरे चरण में कार्यकर्ता-शिक्षक अपने-अपने स्थानों पर लौटकर मजदूरों और कर्मचारियों की कक्षाएँ लेकर उन्हें शिक्षित करते हैं। 31 मार्च, 1975 तक कुल 34,244 कार्यकर्ता-शिक्षकों और 23,36,413 श्रमिकों को शिक्षित किया गया।

राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कारों और श्रमवीर पुरस्कारों की योजनाएँ

सन् 1948 के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत, राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कार, औद्योगिक उपक्रमों द्वारा किए गए अच्छे सुरक्षा कार्यों की मान्यता में दिए जाते हैं। दस लाख या उससे अधिक श्रम घण्टे काम करने वाले कारखानों, कम से कम ढाई लाख श्रम-घण्टों की शर्त के अधीन दस लाख श्रम-घण्टों से कम काम करने वाले कारखानों और मुख्य पत्तनों के लिए अलग-अलग योजनाएँ हैं। कारखानों के लिए योजनाएँ, दुर्घटनाओं की आवृत्ति दर में उच्चतम प्रतिशतता में कमी, उद्योग में न्यूनतम आवृत्ति-दर और सबसे लम्बी दुर्घटना-मुक्त अवधि पर आधारित हैं। पत्तनों से सम्बन्धित योजनाएँ दुर्घटनाओं की आवृत्ति न्यूनतम दर पर आधारित है, समुद्र तट और जहाजों पर होने वाले काम के लिए अलग-अलग और समुद्र तट पर होने वाले काम से सम्बन्धित आवृत्ति दरों में भी कमी की उच्चतम प्रतिशतता के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कार, नकद इनामों, चाँदी के कपों, रनिंग ट्राफियों और योग्यता के प्रमाण-पत्रों के रूप में दिए जाते हैं। श्रमवीर राष्ट्रीय पुरस्कार योजना कारखानों, खानों, बागानों और गोदियों पर लागू होती है। ये पुरस्कार श्रमिकों द्वारा दिए गए ऐसे उत्कृष्ट सुझावों की मान्यता के लिए दिए जाते हैं, जिनके परिणामस्वरूप उत्पादिता में वृद्धि हो और उपक्रम की सामान्य दक्षता में सुधार हो। ये पुरस्कार नकद इनामों और 'श्रमवीर' के प्रमाण-पत्रों के रूप में दिए जाते हैं।

'भारत 1976' के अनुसार सन् 1974-75 में 64 कारखानों, दो नौभरण फर्मों और दो बंदरगाह प्राधिकरणों को राष्ट्रीय सुरक्षा पुरस्कार दिए गए। सन् 1974-75 में ही 32 श्रमिकों को 'श्रमवीर' पुरस्कार दिए गए।

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्

राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् सन् 1960 में स्थापित की गई थी। इसका मुख्य कार्य गोष्ठियों का आयोजन करना, कारखानों में चलचित्र दिखाना तथा सुरक्षा-सम्बन्धी पोस्टर बँटवाना है। जनवरी, 1975 में परिषद् में 923 नियमित सदस्य और 188 व्यक्तिगत सदस्य थे।

कारखाना सलाह सेवा और श्रम-विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय

श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण से सम्बन्धित मामलों पर, सरकार, उद्योग और अन्य सम्बन्धित हितों को सलाह देने हेतु एक एकीकृत सेवा के रूप में कार्य करने के लिए कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्रों के महानिदेशालय का संगठन, जो पहले मुख्य कारखाना सलाहकार के रूप में ज्ञात था, सन् 1945 में गठित किया गया था। यह संगठन अन्य बातों के साथ-साथ, (1) कारखाना अधिनियम के प्रशासन, (2) कारखाना निरीक्षकों के प्रशिक्षण, (3) औद्योगिक स्वास्थ्य तथा वातावरण सम्बन्धी समस्याओं जिनमें कारखानों में स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरे शामिल हैं, और (4) विभिन्न राज्यों के मुख्य कारखाना निरीक्षकों का वार्षिक सम्मेलन संचालित करने से सम्बद्ध प्रश्नों पर कार्यवाही करता है। कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र निदेशालय भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, 1934, तदधीन बनाए गए विनियमों और गोदी श्रमिक (सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण) योजना सन् 1961 के प्रशासन के लिए भी उत्तरदायी है।

भारत सरकार श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट सन् 1976-77 में कारखाना सलाह सेवा और श्रम-विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय के कार्यकलापों पर जो विस्तृत प्रकाश डाला गया है वह हमें इस बात की पर्याप्त जानकारी देता है कि श्रमिकों को सजग और उत्तरदायी बनाने के लिए सरकारी नीति के रूप में उनके शिक्षा और प्रशिक्षण पर कितना ध्यान दिया जाता है। रिपोर्ट के मुख्य अंशों का संक्षेप इस प्रकार है—

औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा—राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केन्द्र, बम्बई और कलकत्ता कानपुर तथा मद्रास में स्थित क्षेत्रीय श्रम विज्ञान केन्द्रों के औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण केन्द्र औद्योगिक श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में प्रदर्शनीय वस्तुएं (इग्जिबिट्स) प्रदर्शित करते हैं। ये केन्द्र औद्योगिक प्रक्रियाओं के दौरान जीवन और अंगों को होने वाले खतरों की व्याख्या करते हैं और उन्हें चित्रित करते हैं तथा औद्योगिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का लागू करने के बारे में नियोजकों, पर्यवेक्षकों और श्रमिकों को शिक्षित करते हैं। सन् 1976 के दौरान, कुल मिलाकर 22,956 व्यक्ति इन केन्द्रों को देखने गए। दर्शकों में, विभिन्न उद्योगों, कारखानों में श्रमिकों शिक्षा योजना के प्राथमिक केन्द्रों से आए श्रमिकों के दल और विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी संस्थाओं आदि से आए अन्य दल और व्यक्ति शामिल थे।

औद्योगिक सुरक्षा सम्बन्धी प्रशिक्षण कार्यक्रम—राष्ट्रीय श्रम-विज्ञान केन्द्र और कलकत्ता, कानपुर तथा मद्रास मे स्थित क्षेत्रीय-श्रम विज्ञान केन्द्रो के सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण केन्द्र का मुख्य उद्देश्य प्रबन्धको, ट्रेड यूनियनो और उद्योग से सम्बन्धित अन्य लोगो मे दुर्घटनाओ को रोकने के सिद्धान्त, तरीको और तकनीको का प्रचार करना तथा मशीनो औजारो, उपकरणो के डिजाइन बनाने और वातावरण मे अनुसधान और अन्य कार्यकलापो द्वारा सुधार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये केन्द्र राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओ मे कई प्रकार के प्रशिक्षण और कार्यक्रम सचालित करते है। वे अध्ययन, परियोजनाएँ और सर्वेक्षण भी आयोजित करते हैं और सरकारो, उद्योगो तथा अन्य सस्थाओ को कुशल तकनीकी सलाह देते है। सन् 1976-77 मे चार सुरक्षा केन्द्रो के अधिकारियो ने 943 प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए, जिसमे 478 क्षेत्रीय भाषाओ मे थे। उन्होने प्रबन्धकार्मिको तथा श्रमिकों दोनो के लाभ के लिए औद्योगिक सुरक्षा के विभिन्न विषयो पर विचार गोष्ठियाँ भी आयोजित की।

राष्ट्रीय श्रम-विज्ञान केन्द्र का उत्पादिता केन्द्र—इस केन्द्र का उद्देश्य उत्पादिता विज्ञान के ज्ञान का प्रचार करना और उद्योग की समस्याओ को सुलझाने के लिए इस ज्ञान को प्रयुक्त करने मे सहायता करना है। यह परामर्श सेवा प्रदान करता है, प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है और उद्योग, व्यापार तथा सरकार के अनुरोध पर उत्पादिता विज्ञानो मे अनुसधान करता है। सन् 1976-77 के दौरान इस केन्द्र मे उत्पादिता दिशामान, कार्य अध्ययन, कार्य वर्गीकरण के लिए टीम विकास, कार्य मूल्यांकन आदि के सम्बन्ध मे 21 प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए गए। इसके अतिरिक्त उत्पादिता, कार्य मूल्यांकन आदि जैसे विषयो पर 10 परियोजनाएँ/अध्ययन भी आयोजित किए गए।

राष्ट्रीय श्रम-विज्ञान केन्द्र का कर्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र—कर्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के मुख्य उद्देश्य अधिकारियो को प्रशिक्षण देना और व्यावसायिक तथा औद्योगिक सगठनो को सलाह देना है, ताकि वे प्रभावी पर्यवेक्षण का विकास कर सके। इस केन्द्र ने उद्योग में प्रशिक्षण और अन्य सम्बन्धित अनेक कार्यक्रमो का आयोजन किया, जिनमे शाफ फ्लोर प्रबन्ध, मानव सम्बन्ध और सचार कार्मिक विकास तथा ग्रुप गति विज्ञान जैसे विषय शामिल है। सन् 1976 के दौरान 33 प्रशिक्षण कार्यक्रम/पाठ्यक्रम आयोजित किए गए।

राष्ट्रीय श्रम-विज्ञान केन्द्र का औद्योगिक मनोविज्ञान अनुभाग—औद्योगिक मनोविज्ञान के कार्य-क्षेत्र मे परिवर्तन से औद्योगिक मनोविज्ञान विभाग के कार्यकलाप सचार, नेतृत्व के ढगो और इनकी प्रभावशीलता तथा सगठनात्मक बर्ताव जैसी धारणाओ के विकास की ओर स्थानान्तरित हो गए हैं, जो मानव साधनो के प्रभावी उपयोग मे सहायता देते है। इस अनुभाग के मुख्य कार्यकलाप ये हैं—(1) औद्योगिक तथा सगठनात्मक मनोविज्ञान मे व्यावहारिक अनुसधान कार्य-क्रम संचालित करना, (2) श्रमिक के लिए कार्य और कार्य के लिए श्रमिक के मनोवैज्ञानिक अनुकूलन के

सम्बन्ध मे सलाह देना, (3) उद्योग मे श्रमिको तथा प्रबन्धको के स्वास्थ्य और दक्षता को प्रभावित करने वाले कारको की जाँच करना, (4) मानव साधन प्रबन्ध के क्षेत्रो मे व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम सचालित करना, (5) प्रशिक्षण कार्यक्रमो के लिए मामला अध्ययन, नियमावलियो, फिल्म पट्टियो तथा अन्य दृश्य-श्रव्य साधनो का विकास करना, और (6) उद्योग को अन्य सम्बन्धित तकनीकी सलाह और परामर्श सेवा प्रस्तुत करना है। सन् 1976 के दौरान इस अनुभाग ने ऊपर निर्दिष्ट मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओ से सम्बन्धित 22 प्रशिक्षण कार्यक्रमो और ■ परियोजनाओ/अध्ययनो का आयोजन किया।

राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केन्द्र की औद्योगिक स्वास्थ्य-विज्ञान प्रयोगशाला—औद्योगिक स्वास्थ्य-विज्ञान प्रयोगशाला के मुख्य कार्यकलाप विभिन्न उद्योगो मे परिवेशी स्वास्थ्य समस्याओ का अध्ययन करना और अनुसधान सर्वेक्षणो द्वारा औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान की उन्नति मे योगदान करना है। औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान तकनीको के सम्बन्ध मे प्रशिक्षण सुविधाएँ भी प्रदान की जाती है। विशिष्ट उद्योगो मे जोखिमो का निर्देश करने के अलावा यह प्रयोगशाला उद्योग द्वारा भेजे गए अधिकारियो के लिए औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान तकनीको मे विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रस्तुत करती है। देश मे ही निर्मित श्वास सरक्षी उपस्करो की जाँच करने और उत्पादको को उपस्कर सुधारने के लिए मार्गदर्शन देने की भी सुविधाएँ विकसित की गई हैं ताकि वे न्यूनतम निष्पादन स्तर तक पहुँच जाएँ। सन् 1976 के दौरान 32 प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन किया गया था।

राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केन्द्र का औद्योगिक औषध अनुभाग—स्वास्थ्य जोखिमो मे सर्वेक्षण करने और व्यावसायिक रोगो की जाँच करने के अलावा यह अनुभाग चिकित्सा निरीक्षको, औद्योगिक कार्यचिकित्सको आदि को प्रशिक्षण प्रदान करता है। सन् 1976 के दौरान इस अनुभाग ने 27 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए।

राष्ट्रीय श्रम विज्ञान केन्द्र का औद्योगिक फिजिओलोजी अनुभाग—इस अनुभाग को अनुसधान प्रयोगशाला के रूप मे कार्य करने के लिए लैस किया गया है, ताकि यह परिवर्ती तीव्रता वाले शारीरिक कार्य के प्रभावो और परिवेशी प्रभावो, विशेषकर ऊष्मा प्रभाव का अध्ययन कर सके और औद्योगिक श्रमिको की उत्पादिता बढाने के उद्देश्य से उनके स्वास्थ्य और उनकी दक्षता को बढावा देने के सम्बन्ध मे उद्योगो को सुझाव पेश करे। यह व्यावसायिक फिजिओलोजी (वर्क फिजिओलोजी), इनवाइरनमेन्टल फिजिओलोजी, रेस्पिरेटरी फिजिओलोजी और एर्गोनौमिक्स (एंथ्रोपोमिट्री), बायोमेकैनिक्स, वर्क फिजिओलोजी इनवाइरनमेन्टल फिजिओलोजी) के क्षेत्रो मे प्रशिक्षण और अनुसधान भी करता है। सन् 1976 के दौरान, इस अनुभाग ने 46 प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए।

राष्ट्रीय श्रम संस्थान

राष्ट्रीय श्रम सस्थान ने पहली जुलाई, 1974 से काम करना आरम्भ किया। सन् 1976-77 के वित्तीय वर्ष के दौरान, इस सस्थान को 17·16 लाख रुपये की

राशि सहायक अनुदान के रूप में मंजूर की गई। वर्ष 1977-78 के लिए अनुमानित अनुदान की राशि 22·31 लाख रुपये रखी गई।

इस संस्थान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित की व्यवस्था करना है—

शिक्षा, प्रशिक्षण और विस्तार

अनुसंधान जिसमें कार्य अनुसंधान शामिल है

परामर्श और

प्रकाशन तथा ऐसे अन्य कार्यकलाप जो संस्थान के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझे जाएं।

शिक्षा कार्यक्रम

इस संस्थान द्वारा दिसम्बर 1976 तक आयोजित किए गए शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा उनमें भाग लेने वालों की संख्या का ब्यौरा नीचे दिया गया है—

कार्यक्रमों की संख्या	कार्यक्रम का शीर्षक	भाग लेने वालों की संख्या
1.	वर्क रीडिजाइन एण्ड वर्क कमिटमेंट	23
2.	श्रमिक संघ नेताओं के लिए विकास कार्यक्रम	218
3.	सरकारी श्रम प्रशासन अधिकारियों के लिए विकास कार्यक्रम	14
4	[illegible] कर्मचारी-संस्थापक सहभागिता का [illegible] विकास	122
5.	प्रबन्धकों कर्मचारी परामर्श	59
6.	श्रमिक संगठन की क्रियाविधि	107
7	उत्तर में कुछ उद्योग [illegible] के औद्योगिक ट्रेड यूनियन नेताओं के लिए पुनः (रिफ्रेशिंग) कार्यक्रम	107
8	[illegible]	18

11 अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से सहभागी विकास तकनीकों से सम्बन्धित 8 कार्यशालाएँ आयोजित की गईं, जिनकी सेवाएँ अगस्त 1976 से यू. एन. डी. पी. / आई. एल. ओ. प्रोजेक्ट के अन्तर्गत उपलब्ध कराई गईं। इस संस्थान ने ग्रामीण श्रमिकों के संगठन और औद्योगिक लोकतन्त्र के क्षेत्र में विभिन्न देशों से तीन विशेषज्ञों की सेवाएँ भी प्राप्त की गईं।

ग्रामीण शिक्षा कार्यक्रमों का आयोजन—इस संस्थान ने विभिन्न राज्यों में अनेक ग्रामीण श्रमिक शिविरों का आयोजन किया। इन शिविरों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण श्रमिकों के कार्यकर्ताओं को ग्रामीण श्रमिकों से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों और विनियमों के उपबन्धों का ज्ञान प्राप्त कराना तथा उन्हें विकास कार्यक्रमों (जो कि ग्रामीण श्रमिकों के लाभ के लिए बनाए गए हैं) में सन्निहित विभिन्न केन्द्रीय और स्थानीय सरकार तथा स्वैच्छिक अभिकरणों के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करना है। नेतृत्व योग्यता का विकास करने के लिए भी कार्यक्रम बनाए गए हैं। सन् 1976-77 में जिन राज्यों में ऐसे शिविरों का आयोजन किया गया उनका तथा उनमें भाग लेने वालों की संख्या का ब्यौरा नीचे दिया गया है—

क्रमांक	कार्यक्रम का स्थान	भाग लेने वालों की संख्या
1.	मालमपुझा डैम, जिला पालघाट, केरल	67
2	ग्राम गोरावरम, जिला कुड्डापाह, आन्ध्र प्रदेश	56
3	ग्राम तापग, जिला पुरी, उड़ीसा	47
4	ग्राम सेमरा जिला पलामू बिहार	60
5	केन्द्रीय कुट्टानाड, केरल	48
[illegible]	ग्राम गौरेला, पाड़ा रोड़, जिला बिलासपुर, मध्य प्रदेश	52
7	रतलाम, मध्य प्रदेश	75
8	पलामू बिहार	23
9	झारग्राम, पश्चिमी बंगाल	50

विचार गोष्ठियां / विचार-विमर्श बैठकें—सन् 1976 के दौरान इस संस्थान ने 10 विचार गोष्ठियों / विचार-विमर्श बैठकें आयोजित की। इनके अतिरिक्त, इस संस्थान ने स्वैच्छिक विवाचन सम्बन्धी दो दिनों की एक विचार गोष्ठी हुई जिसमें केन्द्रीय सरकार संराधन तन्त्र ट्रेड यूनियन नेताओं तथा महत्वपूर्ण उद्योगों के औद्योगिक प्रबन्धकों के 16 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। बन्धित श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में एक चार दिवसीय वर्कशॉप का आयोजन किया गया जिसमें 8 राज्यों के 26 जिला अधिकारियों तथा 8 राज्यों के अन्य अधिकारियों ने भाग लिया।

अनुसंधान परियोजनाएं—यह संस्थान विविध अनुसंधान परियोजनाएं चलाता है जो श्रमिकों तथा उनसे सम्बन्धित मामलों के बारे में हैं। इनमें से महत्त्वपूर्ण मामले निम्नलिखित हैं—

(1) मजदूरी विकास का अर्थ शास्त्र।

(2) उत्तर प्रदेश में सरकारी क्षेत्र के एक बड़े उपक्रम में पारिवारिक जीवन के स्तर और कार्य-जीवन के स्तर का अध्ययन।

(3) दक्षिणी और पूर्वी एशिया में संरचनात्मक द्विविधत (स्ट्रक्चरल ड्यूएलिज्म) के अन्तर्गत आर्थिक विकास, सन् 1950-70।

(4) तमिलनाडु में सरकारी क्षेत्र के एक सफल उपक्रम में संगठन में कार्य की नवीन प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसंधान अध्ययन।

(5) भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लिमिटेड, हरिद्वार में वर्क रीडिजाइन सम्बन्धी कार्य अनुसंधान।

(6) दिल्ली में राजस्थानी प्रवासी श्रमिकों के सम्बन्ध में अनुसंधान अध्ययन तथा उसका उनके जीवन और समुदाय पर प्रभाव।

(7) शिमला के एक डाकघर में कार्य पद्धति और कार्य-जीवन के अध्ययन के लिए कार्य अनुसंधान परियोजना।

(8) संगठनात्मक वातावरण के सम्बन्ध में अस्पताल में कार्य के लिए प्रेरणा सम्बन्धी अनुसंधान अध्ययन।

(9) एलिअनेशन इफिशेंसी तथा वर्क कमिटमेण्ट सम्बन्धी अध्ययन।

(10) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, महरौली रोड, शाखा, गुडगाँव में जाब रीडिजाइन की संकल्पना का प्रयोग करते हुए श्रमिक सहभागिता सम्बन्धी कार्य अनुसंधान।

(11) समाकलित ग्रामीण क्षेत्र विकास सम्बन्धी नीति के मूल्यांकन का अनुसंधान, पश्चिमी बंगाल में तीन मामला अध्ययन।

(12) आयकर आयुक्त कार्यालय, नई दिल्ली के कार्यालय में वर्क कमिटमेण्ट सम्बन्धी कार्य अनुसंधान परियोजना।

(13) पत्तन और गोदी के नियोजकों और श्रमिकों द्वारा स्वैच्छिक विवाचन स्थिति सम्बन्धी सर्वेक्षण।

(14) एग्रेरियन स्ट्रक्चर टेन्शन, मूवमेन्ट्स एण्ड पेजेन्ट आर्गेनाइजेशन इन इण्डिया।

परामर्श कार्यक्रम—इस संस्थान का व्यावसायिक स्टॉफ अनेक संगठनों के सैद्धान्तिक अध्ययनों, समस्याओं के समाधान के कार्यों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बनाने तथा चलाने में लगा हुआ है।

प्रकाशन—यह संस्थान एक मासिक बुलेटिन प्रकाशित करता है जिसके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान व्यापक ग्राहक हैं। यह संस्थान एक मासिक पचाट सार संग्रह भी प्रकाशित करता है जिसमें श्रम न्यायालयों, उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के श्रम मामलों में सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण निर्णयों का सारांश दिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह संस्थान श्रमिकों से सम्बन्धित चुने हुए विषयों के बारे में सामयिक लेखा सीरीज भी जारी करता है।

भावी कार्यक्रम—इस संस्थान द्वारा श्रम अधिकारियों, केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र के अधिकारियों और राज्य एवं अर्द्ध-सरकारी विभागों के श्रम कल्याण अधिकारियों के लिए चार-चार सप्ताह की अवधि के वर्ष में तीन शिक्षा कार्यक्रमों का आयोजन करने का प्रस्ताव है।

ई. एस. सी. ए. पी. क्षेत्र के देशों में श्रम मन्त्रालयों की नीति निर्धारण को बढ़ावा देने के बारे में अनुसंधान सम्बन्धी क्षेत्रीय कर्मशाला का आयोजन मार्च, 1977 में प्रारम्भ हुआ। यह संस्थान भूमिहीन ग्रामीण श्रमिकों के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

8

सामाजिक सुरक्षा का संगठन और वित्तीयन; ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत-संघ में सामाजिक सुरक्षा का सामान्य विवरण; भारत में सामाजिक सुरक्षा की स्थिति

(ORGANISATION AND FINANCING OF SOCIAL SECURITY, SOCIAL SECURITY IN U K, U S A. AND U S S R, GENERAL POSITION OF SOCIAL SECURITY IN INDIA)

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ
(The Meaning of Social Security)

"सामाजिक सुरक्षा कल्याणकारी राज्य के ढाँचे का एक खम्भा है। सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से राज्य प्रत्येक नागरिक को एक दिए हुए जीवन स्तर पर बनाए रखने का प्रयास करता है।"[1] "सामाजिक सुरक्षा एक गतिशील विचार-धारा है जो कि विकसित देशों मे निर्धनता, बेरोजगारी और बीमारी को समाप्त करने के राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक अत्यन्त आवश्यक पाठ है।"[2] "वर्तमान समय म सामाजिक सुरक्षा आधुनिक युग की एक गतिशील विचारधारा है जो सामाजिक व आर्थिक नीतियों को प्रभावित कर रही है। यह एक सीमित साधनों वाले व्यक्ति को राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली सुरक्षा है जो कि अपने आप अथवा अन्य लोगों के सयोग से प्राप्त नहीं कर सकता है।"[3]

कल्याणकारी राज्य का यह दायित्व हो जाता है कि प्रत्येक नागरिक को निश्चित जीवन-स्तर बनाए रखने मे मदद करे। प्रत्येक व्यक्ति बचपन और वृद्धावस्था मे दूसरे पर आश्रित रहता है। इन अवस्थाओं मे उसको सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा अपने सदस्यों को

1 *Vaid, K N* State & Labour in India p 109
2 *Saxena, R C* Labour Problems & Social Welfare, p 349
3 *Giri, V V* , Labour Problems in Indian Industry, p 246

उनके जीवन-काल में किसी भी समय घटने वाली अनेक आकस्मिकताओं के विरुद्ध प्रदान की जाती हैं। इन आकस्मिकताओं में प्रसूतिका, वृद्धावस्था, बीमारी, असमर्थता, दुर्घटना, औद्योगिक बीमारी, बेरोजगारी, मृत्यु, बच्चों का पालन-पोषण आदि प्रमुख हैं। इन आकस्मिकताओं के विरुद्ध अकेला व्यक्ति अपनी सुरक्षा नहीं कर सकता है। इन सामाजिक सुरक्षा उपायों से व्यक्ति विभिन्न आकस्मिकताओं के विषय में निश्चिन्त हो जाता है तथा रुचि और मन लगाकर कार्य करता है। इससे उसकी कार्य-क्षमता पर बुरा असर नहीं पड़ता है।

सर विलियम बेवरिज (Sir William Beveridge) के अनुसार, "सामाजिक सुरक्षा का अर्थ एक ऐसी योजना से है, जिसके द्वारा आवश्यकता, बीमारी, अज्ञानता, फिजूल खर्ची और बेकारी—जैसे राक्षसों पर विजय प्राप्त की जा सके।"

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation) के अनुसार ऐसी आकस्मिकताएँ जो बाल्यावस्था से वृद्धावस्था और मृत्यु के अतिरिक्त बीमारी, प्रसूति, असमर्थता, दुर्घटना और औद्योगिक बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था, कमाने वाले की मृत्यु और इसी प्रकार के अन्य संकटों से सम्बन्ध रखती हैं, के लिए सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। एक व्यक्ति इन आकस्मिकताओं में स्वयं अथवा *अन्य किसी व्यक्ति की सहायता से अपने आप मदद नहीं कर सकता है।*[1]

औद्योगीकरण के पूर्व इन आकस्मिकताओं में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उस समय संयुक्त परिवार प्रथा, जाति प्रथा, ग्रामीण समुदाय और धार्मिक संस्थाएँ विद्यमान थीं। इन संस्थाओं द्वारा सभी प्रकार की आकस्मिकताओं के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की जाती थी। औद्योगिक विकास के साथ-साथ इन संस्थाओं का विघटन हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों से लोग शहरों में जाकर बसने लगे और उनका ग्रामीण क्षेत्र से कोई सम्पर्क नहीं रहा। औद्योगीकरण से देश की प्रगति हुई है और भौतिक कल्याण में भी वृद्धि हुई है। फिर भी इसके कारण से कई बुराइयों को भी जन्म मिला है, जैसे—औद्योगिक बीमारी और दुर्घटनाएँ, बेरोजगारी, आदि। इसके साथ ही मानवीय सम्बन्धों और मूल्यों में भी परिवर्तन आ जाने से इन आकस्मिकताओं के विरुद्ध अकेला व्यक्ति लड़ नहीं सकता।

प्रोफेसर सिंह एवं सरन के अनुसार सामाजिक सुरक्षा समाज द्वारा प्राकृतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और आर्थिक कारणों से उत्पन्न असुरक्षाओं के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने का एक उपाय है। प्राकृतिक सुरक्षा में मृत्यु या बीमारी, सामाजिक असुरक्षा में आवास व्यवस्था से उत्पन्न दोष, व्यक्तिगत असुरक्षा में कार्यक्षमता का कम होना, आर्थिक असुरक्षा में कम मजदूरी प्राप्त होना अथवा बेरोजगार होना आदि सम्मिलित किए जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का उद्देश्य व्यक्ति की क्षति-पूर्ति करना, पुनरुद्धार करना और इन पर रोक लगाना होता है।

प्रो. बी. पी. अदारकर के अनुसार, सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा इसके सदस्यों को प्रदान की जाती है, जो कि आकस्मिकताओं के शिकारी हो

1. International Labour Office, 1949 : Approach to Social Security, p. 1.

जाते हैं। ये जोखिमे जीवन की आकस्मिकताएँ हैं जिनके विरुद्ध व्यक्ति अपनी सीमित आय से लड़ाई नहीं लड़ सकता है और न ही वह इनके बारे में अनुमान लगा सकता है तथा अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर भी सुरक्षा नहीं कर सकता है।

सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य
(Aims of Social Security)

व्यक्ति की आकस्मिकताओं की सुरक्षा हेतु समाज सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये सामाजिक सुरक्षा के उपाय तीन उद्देश्यों की पूर्ति करते है—

1 क्षतिपूर्ति करना (Compensation)—सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति करने का सम्बन्ध आय से होता है। किसी श्रमिक की कार्य करते समय मृत्यु होने पर अथवा दुर्घटना होने पर उनके आश्रितों व स्वयं उसके लिए निश्चित रूप से आय प्रदान करना ही इसके अन्तर्गत आता है। भारत का क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 (Workmen's Compensation Act of 1923) इसका एक उदाहरण है।

2. पुनरुद्धार (Restoration)—इसके अन्तर्गत श्रमिक के बीमार होने पर उसका इलाज करवाना, फिर से रोजगार देना आदि आते हैं। भारतीय कर्मचारी बीमा अधिनियम, 1948 (Employees' State Insurance Act, 1948) इसका एक उदाहरण है।

3. रोक लगाना (Prevention)—औद्योगिक बीमारियों, बेरोजगारी, असमर्थता आदि के कारण से उत्पादन क्षमता के नुकसान को रोकने के लिए कदम उठाए जाते हैं। इससे समाज का मानसिक और नैतिक कल्याण होता है।

सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र
(Scope of Social Security)

सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक शब्द है। इसमें सामाजिक बीमा (Social Insurance) और सामाजिक सहायता (Social Assistance) के अतिरिक्त व्यापारिक बीमा से सम्बन्धित कुछ योजनाओं को भी शामिल किया जाता है। किसी भी सामाजिक सुरक्षा योजना में सामाजिक बीमा एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

सामाजिक बीमा वह योजना है जिसके अन्तर्गत श्रमिकों, मालिकों और राज्य द्वारा एक कोष का निर्माण अंशदान द्वारा किया जाता है। इस कोष में से बीमा कराने वाले श्रमिक को अधिकारपूर्ण लाभ मिलता है। ये लाभ बीमारी, चोट, प्रसूति, बेरोजगारी, वृद्धावस्था पेंशन आदि के समय मिलते हैं। उदाहरणार्थ हमारे देश में राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत मिलने वाले लाभ इसके अन्तर्गत ही आते हैं।

सामाजिक बीमा के अन्तर्गत त्रिपक्षीय योगदान से एक कोष बनाया जाता है। श्रमिक का अंश कम रखा जाता है। श्रमिकों को निश्चित सीमाओं में लाभ प्रदान किए जाते हैं। यह अनिवार्य योजना है। यह व्यक्तिगत दुःखों को दूर करता है।

सामाजिक सहायता (Social Assistance) वह सहायता है जो समाज द्वारा निर्धन और जरूरतमन्द लोगों को स्वेच्छा से प्रदान की जाती है। श्रमिकों की क्षतिपूर्ति करना, मातृत्व लाभ और वृद्धावस्था में पेंशन आदि सामाजिक सहायता के

अन्तर्गत आते हैं। सामाजिक सहायता पूर्ण रूप से सरकारी साधनों पर निर्भर है। यह व्यक्ति को निश्चित परिस्थितियों या शर्तों पर ही प्रदान की जाती है।

सामाजिक सहायता सामाजिक बीमा की पूरक है न कि स्थानापन्न। फिर भी सामाजिक सहायता और सामाजिक बीमा में अन्तर है। सामाजिक सहायता सरकारी योजना है जबकि सामाजिक बीमा श्रमिकों मालिकों और सरकारी अंशदान पर निर्भर है। सामाजिक सहायता निश्चित शर्तों पर दी जाती है जबकि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत बीमा कराए व्यक्ति को सीमित लाभ मिलते। दोनों साथ-साथ चलती हैं।

सामाजिक बीमा और व्यापारिक बीमा (Commercial Insurance) दोनों में अन्तर है। सामाजिक बीमा अनिवार्य तथा व्यापारिक बीमा ऐच्छिक है। व्यापारिक बीमा के अन्तर्गत लाभ प्रीमियम के आधार पर दिए जाते है जबकि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत लाभ श्रमिकों के अंशदान से अधिक मिलते हैं। व्यापारिक बीमा केवल व्यक्तिगत जोखिम के लिए प्रदान किया जाता है जबकि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत न्यूनतम जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए लाभ प्रदान किए जाते हैं।

इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक योजना है। इसमें सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता दोनों को शामिल किया जाता है।

सामाजिक सुरक्षा का उद्गम और विकास
(Origin & Growth of Social Security)

सामाजिक जोखिमों को पूरा करने का तरीका भूतकाल में गरीब राहत पद्धतियाँ थी। कई देशों में अधिनियम पास किए गए थे। सामाजिक सहायता दया समाज का दायित्व समझा जाता था। सबसे पहले सन् 1601 में इंगलैण्ड में सामाजिक सहायता हेतु निर्धन कानून (*Poor Laws*) पास किए गए। इसके पश्चात् धीरे-धीरे सरकार द्वारा इस प्रकार की सहायता की मात्रा और किस्म में सुधार किया गया। अब सामाजिक सहायता सामाजिक बीमा के पूरक रूप में सामाजिक सुरक्षा का महत्वपूर्ण अंग बन गई है। इंग्लैंड में अनिवार्य बेरोजगार बीमा (Compulsory Unemployment Insurance) के साथ-साथ बेरोजगारी सहायता योजनाएँ (Unemployment Assistance Schemes) स्थाई और सुव्यवस्थित आधार पर चलाई जा रही हैं।

सामाजिक बीमा (Social Insurance) का उद्गम सर्वप्रथम जर्मनी में सन् 1883 में अनिवार्य दुर्घटना बीमा *अधिनियम* (Compulsory Accident Insurance Act, 1883) पास करने से होता है। इसके पश्चात् वृद्धावस्था तथा बीमारी आदि के लिए भी अधिनियम बनाए गए। सन् 1883 के पूर्व सन् 1850 और सन् 1883 में क्रमशः फ्रांस और इटली सरकार ने सामाजिक बीमा योजना शुरू कर रखी थी।

सन् 1942 में सर विलियम बेवरिज द्वारा दी गई व्यापक सामाजिक बीमा और अन्य सेवाओं पर प्रतिवेदन प्रकाशित होने के पश्चात् एक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। यह रिपोर्ट इंग्लैण्ड में एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना लागू कराने में

महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। रोजगार, चिकित्सा, शिक्षा, वृद्धावस्था पेंशन, समान कार्य हेतु समान मजदूरी या वेतन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में समानता आदि मूलभूत अधिकार एवं जोखिम हैं जिनके लिए एक विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना होना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I L O) ने भी अपने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों में सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किए हैं और उन प्रस्तावों व सिफारिशों को सदस्य देशों में लागू करवाने का प्रयास सराहनीय रहा है। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने समय समय पर सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय प्रमापों का निर्धारण किया है और इसके साथ ही सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को तैयार करने, क्रियान्वयन करने और प्रशासन आदि के सम्बन्ध में सदस्य देशों को तकनीकी सलाह दी है। उदाहरणार्थ भारत में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत कर्मचारी राज्य बीमा योजना तैयार करने हेतु तकनीकी सलाह दी है।

इंग्लैण्ड में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in U.K.)

सामाजिक सुरक्षा और बीमा कार्यक्रम वर्तमान समय में ब्रिटेन के सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हो गए हैं। ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा का अध्ययन ऐतिहासिक क्रमानुसार तीन भागों में विभक्त कर किया जा सकता है—

1 प्राचीन व्यवस्था—निर्धन सहायता कानून,
2 बेवरिज योजना के पूर्व सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था, एवं
3 बेवरिज योजना और सामाजिक सुरक्षा की अन्य वर्तमान व्यवस्थाएँ।

प्राचीन व्यवस्था

सामाजिक सुरक्षा की भावना ब्रिटेन में अति प्राचीन समय से ही विद्यमान थी। पहले वृद्धों, निर्धनों तथा विधवाओं को गिरजाघरों द्वारा सहायता दी जाती थी। कुछ व्यक्ति निजी रूप से भी सहायता देते थे। किन्तु गिरजाघरों की अवस्था अच्छी न होने से इस सम्बन्ध में सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक हो गया। सन् 1536 में एक अधिनियम पारित किया गया जिसमें अपाहिजों, निर्धनों और आलसियों को दो प्रकार के वर्गों में (काम न करने वालों को) बाँट दिया गया। अपाहिज निर्धनों को लाइसेन्स दिए जाते थे और वे भिक्षा माँग सकते थे, किन्तु आलसियों को लाइसेंस नहीं मिलता था और वे भिक्षा माँगने पर दण्डित किए जाते थे। इसी वर्ष एक अन्य अधिनियम पास करके निर्धनों को तीन श्रेणियों में बाँट दिया गया—वृद्ध और अपाहिज जिनके लिए चन्दा एकत्रित करने की व्यवस्था की गई, योग्य व्यक्ति जो कार्य चाहते हों, एवं आलसी व्यक्ति जिनके लिए दण्ड की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम की व्यवस्थाएँ अधिक दिनों तक न चल सकीं। सन् 1547 में लन्दन में निर्धनों की सहायतार्थ कोष के लिए कर लगाए जाने की एक नई योजना चालू की गई। सन् 1593 में एक नया निर्धन अधिनियम बनाया गया। सन् 1601 में एक

महत्त्वपूर्ण दरिद्रता अधिनियम बना जिसके द्वारा पहले के सभी अधिनियमों को संगठित कर एक रूप दिया गया। सन् 1782 के एक अन्य महत्त्वपूर्ण अधिनियम 'गिलबर्ट अधिनियम' के अन्तर्गत न्यायाधीशों को अधिकार दिया गया कि मजदूरों की मजदूरी बहुत ही कम है, उन्हें वे 'निर्धन सहायता कोष' से सहायता दें। यह व्यवस्था अच्छी थी, किन्तु पूँजीपतियों ने इसका दुरुपयोग किया और श्रमिकों को सहायता दिलाने के उद्देश्य से मजदूरी घटाना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1832 में नियुक्त निर्धन कानून आयोग (Poor Law Commission) के प्रतिवेदन के आधार पर सन् 1834 में एक निर्धनता कानून संशोधन अधिनियम (Poor Law Amendment Act) बनाया गया जिसके अन्तर्गत निर्धनों को दी जाने वाली सहायता की मात्रा कमिश्नरों द्वारा निर्धारित की जाने की व्यवस्था की गई। सन् 1905 में सरकार ने निर्धनता की समस्या और इसके विभिन्न पहलुओं की जाँच के लिए शाही आयोग बैठाया जिसने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए, यथा—सुधार-गृहों को समाप्त करना, विभिन्न प्रकार की सहायताओं में सामञ्जस्य स्थापित करना, आयु व चरित्र तथा साधनों के आधार पर संस्थाओं को बनाना, लेबर एक्सचेंजेज व्यवस्था करना, केन्द्र द्वारा निर्धन सहायता कार्य पर नियन्त्रण रखना आदि। आयोग के सुझावों को धीरे-धीरे कार्यान्वित किया गया। परिणामस्वरूप निर्धन सहायता की व्यवस्था समाप्त हो गई। सन् 1909 में वृद्धावस्था पेंशन अधिनियम और सन् 1911 में बीमा अधिनियम पारित हुए जिनसे निर्धनों को पर्याप्त लाभ मिला।

सन् 1919 में बेरोजगारी बीमा योजना (Unemployment Insurance Scheme) प्रारम्भ की गई। यह योजना श्रमिकों, मालिकों और राज्य के अंशदानों पर आधारित है। इसके अन्तर्गत एक वयस्क को वर्ष में 15 हफ्ते 7 शिलिंग का साप्ताहिक लाभ प्राप्त हो सकता था, जबकि 18 वर्ष से कम उम्र के श्रमिकों को इसका केवल आधा ही लाभ दिया जाता था।

सन् 1920 में अनिवार्य राज्य बीमा योजना को सभी शारीरिक और गैर-शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों जिनको प्रतिवर्ष 250 पौण्ड से अधिक आय प्राप्त नहीं होती है, पर लागू कर दी गई। अंशदान की दरों में वृद्धि कर दी गई। इसके अन्तर्गत मिलने वाले लाभों में वृद्धि करके पुरुष श्रमिक के लिए 15 शिलिंग प्रति सप्ताह और 12 शिलिंग महिला श्रमिक के लिए कर दिए गए तथा 18 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिक को इनसे आधा लाभ मिलेगा। सन् 1931 में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था अधिनियम (National Economy Act, 1931) पास किया गया जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी बीमा अंशदानों में वृद्धि तथा इनसे प्राप्त लाभों में कमी कर दी गई। सन् 1934 में श्रमिकों को वर्गों में विभाजित कर दिया गया। एक वर्ग वह था जिसमें निर्धनता कानूनों के अन्तर्गत सहायता मिलती थी और दूसरे वर्ग में वे श्रमिक रखे गए जो कि बीमा में अपना अंशदान देते हैं। सन् 1936 में अंशदानों में परिवर्तन किए गए। पुरुष श्रमिक और मालिक द्वारा 9 शिलिंग प्रति सप्ताह तथा महिला श्रमिक द्वारा 8 शिलिंग और राज्य द्वारा इसी के बराबर अंशदान करना निश्चित हुआ।

इसी वर्ष कृषि बेरोजगारी हेतु भी एक बेरोजगार बीमा योजना चालू की गई। इसमें मालिक, श्रमिक और राज्य द्वारा 4 6 शिलिंग और महिला श्रमिक के लिए 4 शिलिंग अंशदान रखा गया। लाभ की दरें पुरुष और महिला श्रमिक हेतु क्रमशः 14 शिलिंग और 12 शिलिंग 6 पैंस प्रति सप्ताह तथा वयस्क और अवयस्क के लिए 7 शिलिंग और 3 शिलिंग रखे गए। युद्ध के पश्चात् बेरोजगारी बीमा योजना समाप्त कर दी गई और इसका स्थान सामाजिक सुरक्षा योजना ने ले लिया।

बेवरिज योजना से पूर्व सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था
(Social Security Measures before the Beveridge Plan)

ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा के संदर्भ में प्राचीन व्यवस्था का उल्लेख हम कर चुके हैं। सामाजिक सुरक्षा के इतिहास में दूसरा चरण हम बेवरिज योजना से पूर्व की सामाजिक व्यवस्था को मान सकते हैं। 1942 में सर विलियम बेवरिज ने सामाजिक सुरक्षा के लिए एक बहुत ही व्यापक योजना प्रस्तुत की थी जिसे बेवरिज योजना कहा जाता है। इस योजना के आधार पर ही सन् 1946 में कानून बनाकर इंग्लैण्ड के प्रत्येक नागरिक के लिए व्यापक सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र की व्यवस्था कर दी गई है। इसमें जीवन में घटित होने वाले प्रायः सभी संकटों से सुरक्षा का प्रबन्ध है। किन्तु इस बेवरिज योजना से पूर्व भी इंग्लैण्ड में सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में कुछ कदम उठाए जा चुके थे जिन्हें जानना भी उपयोगी है—

(क) श्रमिक क्षतिपूर्ति (Workmen's Compensation)—ब्रिटेन में सर्वप्रथम श्रमिक क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत व्यवस्था की गई कि यदि श्रमिक मिल-मालिकों की असावधानी के कारण दुर्घटना ग्रस्त हो जाएँ तो नियोक्ता को उन्हें क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी। सन् 1897 में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम (Workmen's Compensation Act) पास हुआ जिसे उन उद्योगों में लागू किया गया जिनमें जोखिम अधिक थी। यह व्यवस्था की गई कि क्षतिपूर्ति की राशि लेने के लिए श्रमिक न्यायालयों की शरण ले सकते। अधिनियम को और अधिक सुधारने के लिए सन् 1906 में एक नया अधिनियम पारित किया गया जो सभी उद्योगों में लागू किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत वे सभी श्रमिक आ गए जिनकी वार्षिक आय 250 पौण्ड से कम थी। औद्योगिक बीमारियों के लिए भी श्रमिकों की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की गई। श्रमिक कारखानों में काम करते समय पूरी तरह घायल हो जाएँ तो उन्हें आजन्म आर्थिक सहायता दिया जाना निश्चित किया गया। मृत्यु हो जाने की स्थिति में श्रमिकों के आश्रितों को तीन साल की मजदूरी के बराबर क्षतिपूर्ति दी जाने की व्यवस्था की गई। अधिनियम का दुरुपयोग न किया जाए इसके लिए यह शर्त भी रख दी गई कि क्षति जान बूझकर अथवा श्रमिक की असावधानी के कारण न हुई हो। सन् 1923 में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में एक संशोधन करके पन्द्रह वर्ष से कम आयु के आश्रितों को अतिरिक्त सहायता दी जाने की व्यवस्था की गई। साप्ताहिक वृत्ति की दरें भी बढ़ाई गईं। इसके बावजूद श्रमिक क्षतिपूर्ति सम्बन्धी यह योजना सन् 1946 तक चलती रही जब तक कि इसका स्थान नेशनल इंश्योरेंस इंडस्ट्रीयल इंजरीज स्कीम (National Insurance Industrial Injuries Scheme) ने नहीं ले लिया।

(ख) स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)—राष्ट्रीय स्वास्थ्य (National Health Insurance) सन् 1911 में चालू किया गया। इस योजना के अन्तर्गत 16 वर्ष से ऊपर और 65 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिक जिनकी वार्षिक आय 250 पौण्ड से अधिक नहीं है, सम्मिलित किए गए हैं। इस योजना के अन्तर्गत नकदी और चिकित्सा दो रूपों में लाभ प्राप्त होते हैं। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को 15 शिलिंग, अविवाहित महिला को 12 शिलिंग, विवाहित महिला को 10 शिलिंग, 26 सप्ताहों के लिए बीमारी लाभ (Sickness benefits) प्रदान करने का प्रावधान है। चन्दे और लाभ की दरों में सामयिक परिवर्तन किए जाते रहे हैं। असमर्थता लाभ (Disablement benefits) भी क्रमश 7 शिलिंग, 6 शिलिंग और 5 शिलिंग प्रदान किया जाता है। मातृत्व लाभ में 40 शिलिंग मिलते हैं।

(ग) वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pensions)—यह पेंशन वृद्धावस्था पेंशन अधिनियम सन् 1908 (Old Age Pensions Act, 1908) के अन्तर्गत चालू की गई। इस योजना हेतु वित्तीय व्यवस्था सामान्य करों से की जाती है। सन् 1925 और सन् 1929 के अधिनियमों द्वारा सभी व्यक्ति जो स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत आते थे, उनको वृद्धावस्था पेंशन योजना में भी शामिल कर लिया गया। सन् 1938 में श्रमिकों, महिलाओं और मालिकों का अंशदान क्रमश 5½ पैंस, 3 पैंस और 5½ पैंस थे। 65 और 70 वर्ष की आयु के बीच वाले पुरुष श्रमिक और महिला श्रमिकों को जिनका बीमा कराया हुआ है, 10 शिलिंग प्रति सप्ताह दिया जाता था। इसके साथ श्रमिकों की महिलाओं को भी 10 शिलिंग प्रति सप्ताह दिया जाता था। सन् 1925 में विधवा माताओं और निर्धनों को भी अंशदान के आधार पर पेंशन योजना का लाभ दिया जाने लगा।

सामाजिक बीमा योजनाओं के अतिरिक्त पेंशन योजना, बचत योजना, बेरोजगारी लाभ योजना आदि मालिकों द्वारा चालू की गई थी। बेवरिज योजना के पूर्व प्रचलित सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सभी योजनाएँ दोषपूर्ण थीं। इन योजनाओं में कितने ही श्रमिकों को सम्मिलित नहीं किया गया था तथा लाभ व अंशों के आधार पर भी समरूपता का अभाव था।

बेवरिज योजना और अन्य व्यवस्थाएँ
(The Beveridge Plan & Other Facilities)

सन् 1941 में सर विलियम बेवरिज को सामाजिक बीमा और अन्य सेवाओं का अध्ययन करने तथा इनके विषय में सुझाव देने हेतु नियुक्त किया गया। सन् 1942 में इन्होंने एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे बेवरिज योजना (Beveridge Plan) कहा जाता है। यह एक व्यापक योजना है जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी, बीमा अथवा अविवाहित होने पर व्यक्ति और महिलाओं को समुचित आय प्रदान की जाती है और विवाह, प्रसूति और मृत्यु के समय भी सहायता दी जाती है।

बेवरिज ने सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता के कारणों के आठ तत्त्व बताए हैं और सभी आवश्यकताओं को विभिन्न बीमा साधनों से प्राप्त किया जाना सम्भव बताया है। ये निम्नांकित हैं—

1. बेरोजगारी– किसी समर्थ व्यक्ति को रोजगार न मिलने पर उसे रोजगार लाभ प्रदान किए जाते हैं।

2 असमर्थता (Disability)—बीमारी अथवा दुर्घटना के कारण कार्य करने में असमर्थ होने पर श्रमिकों को असमर्थता लाभ और औद्योगिक पेंशन के रूप में लाभ प्राप्त होता है।

3 जीविका-साधन की हानि (Loss of Livelihood) होने पर श्रमिकों को प्रशिक्षण लाभ (Training Benefit) प्रदान किया जाता है।

4 सेवामुक्ति (Retirement) —उम्र के कारण सेवा-मुक्ति होने पर श्रमिकों को सेवा मुक्ति पेंशन प्रदान की जाती है।

5 महिला को विवाह सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विवाह अनुदान, प्रसूति अनुदान और अन्य आवश्यक लाभ प्रदान किए जाते हैं।

6. दाह संस्कार व्यय (Funeral Expenses) हेतु दाह संस्कार अनुदान प्रदान किया जाता है।

7 बाल्यावस्था (Childhood) हेतु बच्चों का भत्ता 16 साल की आयु तक शिक्षा प्रदान करने हेतु दिया जाता है।

8 शारीरिक बीमारी (Physical Disease) हेतु मुफ्त चिकित्सा सुविधाओं द्वारा इलाज किया जाता है। यह व्यापक स्वास्थ्य सेवा और चिकित्सा के बाद पुनर्वास द्वारा प्रदान किया जाता है।

योजना क्षेत्र (Scope of the Plan)—यह योजना देश के प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होती है। इस योजना को लागू करने के लिए देश की जनसंख्या को 6 वर्गों में विभाजित किया गया है—

1 बिना किसी आय-सीमा के सभी कर्मचारियों को जिनको वेतन तथा मजदूरी मिलती है और वे किसी प्रसंविदा के अन्तर्गत कार्य करते हैं,

2 मालिक और अन्य व्यक्ति जो लाभपूर्ण व्यवसायों में लगे हुए हैं

3 कार्यशील आयु की गृहपत्नियाँ,

4 कार्यशील आयु के अन्य व्यक्ति जो कि लाभपूर्ण व्यवसायों में नहीं लगे हुए हैं,

5 कार्यशील आयु से नीचे के व्यक्ति अर्थात् स्कूल छोड़ने की आयु से कम आयु वाले, अर्थात् 16 वर्ष से कम आयु वाले बच्चे, एवं

6 कार्यशील आयु से अधिक आयु वाले रिटायर्ड व्यक्ति।

इस प्रकार इंगलैण्ड की सामाजिक सुरक्षा योजना, सामाजिक बीमा और सहायता की विद्यमान सभी योजनाओं से व्यापक है तथा यह प्रत्येक व्यक्ति, महिला और बच्चे को किसी न किसी बिन्दु पर इसमें सम्मिलित करती है। उपरोक्त वर्ग सम्पूर्ण जनसंख्या को शामिल करते हैं। मालिक और धनी व्यक्ति लाभ प्राप्त नहीं करते हैं लेकिन उन्हें अंशदान देना आवश्यक है। बच्चे, रिटायर्ड व्यक्ति और गृहपत्नियों को किसी प्रकार का अंशदान नहीं देना पड़ता है।

योजना के अन्तर्गत अंशदान (Contribution under the Plan)—जहाँ तक योजना में अंशदान देने का प्रश्न है, इसके अन्तर्गत व्यक्ति और महिलाओं के लिए क्रमश 4 शिलिंग 3 पैस और 3 शिलिंग 6 पैस रखे जाने का प्रावधान था। अंशदान में आयु अनुसार अन्तर पाए जाते है। इस योजना के अन्तर्गत व्यक्ति और महिला के लिए मालिक द्वारा दिया जाने वाला अंशदान क्रमश. 3 शिलिंग 3 पैस और 2 शिलिंग 6 पैस है।

योजना के अन्तर्गत लाभ (Benefits under the Plan)—इस योजना के अन्तर्गत जन्म से मृत्यु तक लाभ प्राप्त होते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् आश्रितो को लाभ मिलता है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न लाभ प्रदान किए जाते है—

1 **गृहपत्नियों के लाभ (Benefits for Housewives)**—गृहपत्नी को किसी प्रकार का अंशदान नही देना पड़ता है फिर भी उसको छ प्रकार के लाभ मिलते है—

(a) विवाह हेतु अनुदान 10 पौंड तक।

(b) 25 पौंड का प्रसूति अनुदान—प्रत्येक जन्मे बच्चे के लिए (Maternity *Grant for each child born*)–*यदि रोजगार से लगी है तो।*

(c) विधवापन लाभ (Widow's Pension)—प्रथम 26 सप्ताह तक 16 20 पौंड+प्रत्येक बच्चे के लिए 5 65 पौंड (पारिवारिक भत्ते सहित)।

(d) यदि बिना गलती के तलाक दिया जाता है तो उसे विधवा लाभ दिया जाएगा।

(e) पत्नी को अथवा अन्य आश्रित को 9 80 पौंड+6 10 पौंड के अन्य भत्तो की दर से (साप्ताहिक) बीमारी लाभ (Sickness Benefit) दिया जाता है। बीमारी लाभ की यह साप्ताहिक दर प्रत्येक बच्चे के लिए (पारिवारिक भत्तो सहित) 3·10 पौंड है। उल्लेखनीय है कि यदि पति कमा रहा है तो पत्नी को उपरोक्त बीमारी लाभ 6 90 पौंड प्रति सप्ताह ही मिलेगा, पर यदि पति सेवा निवृत्त हो तो वह स्त्री 4 80 पौंड प्रति सप्ताह पाने की हकदार होगी। 28 सप्ताह बाद बीमारी लाभ के स्थान पर, जहाँ आवश्यक हो, असमर्थता लाभ (Invalidity Benefit) लागू कर दिया जाता है जो उस समय तक लागू रहता है जब तक कि व्यक्ति की असमर्थता बनी रहती है अथवा जब तक कि बीमार व्यक्ति पेंशन की आयु प्राप्त नही कर लेता।[1]

2. **बच्चों का भत्ता (*Children's Allowance*)**—किसी भी परिवार में बिना माता-पिता की आय तथा पद को ध्यान में रखे हुए पहले बच्चे को छोड़कर शेष सभी बच्चो को यह लाभ मिलता है। यह भत्ता 8 शिलिंग मिलता है। माता-पिता कमाने के योग्य न होने पर प्रथम बच्चे को भी भत्ता दिया जाता है।

3 **बेरोजगारी और बीमारी लाभ (Unemployment & Sickness Benefits)**—इसके अन्तर्गत अकेले व्यक्ति को 24 शिलिंग और विवाहित व्यक्ति को

1 Fact Sheets on Britain, May, 1975

40 शिलिंग प्रति हफ्ते की दर से लाभ मिलता है। एक बेरोजगार व्यक्ति जिसके दो बच्चे और पत्नी है तो उसे 50 शिलिंग प्रति हफ्ते की दर से लाभ मिलता है। यदि कोई 6 मास तक बेरोजगार रहता है तो उसे किसी प्रशिक्षण केन्द्र में प्रवेश लेना पड़ता है। वहाँ उसे बेरोजगारी भत्ते के बराबर प्रशिक्षण भत्ता मिलता है।

इस योजना के अन्तर्गत 13 हफ्ते की असमर्थता वाले व्यक्ति को बीमार मान लिया जाता है तो बीमार लाभ दिया जाता है। इसके पश्चात् साप्ताहिक भुगतान उसकी आय के दो तिहाई के बराबर कर दिया जाता है जो कि प्रमाप दर से कम नहीं होता।

इस योजना में श्रमिक क्षतिपूर्ति का प्रावधान भी है। यदि दुर्घटना घातक है तो उसके आश्रितों को एक मुश्त में 300 पौण्ड का अनुदान दिया जाता है।

4. दाह संस्कार अनुदान (Funeral Grant)—विभिन्न व्यक्तियों को आयु के अनुसार मृत्यु होने पर दाह संस्कार हेतु अनुदान दिया जाता है। वयस्क की मृत्यु पर 20 पौण्ड, 10 से 21 वर्ष की आयु वाले की मृत्यु पर 15 पौण्ड, 3 से 10 वर्ष की आयु वालों की मृत्यु पर 10 पौण्ड और 3 वर्ष से कम आयु वाले की मृत्यु पर 6 पौण्ड दाह संस्कार के रूप में अनुदान देने का प्रावधान है।

5. वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pensions)—इस योजना के अन्तर्गत व्यक्ति को 65 वर्ष तथा महिला को 60 वर्ष की उम्र प्राप्त कर लेने पर वृद्धावस्था पेंशन प्रदान की जाती है। यह पेंशन अकेले व्यक्ति को 23 शिलिंग और विवाहित जोड़े को 40 शिलिंग दी जाती है।

योजना का प्रशासन और लागत (Administration & Cost of the Plan)—सर बेवरिज का मत था कि इस योजना के प्रशासन के लिए एकीकृत प्रशासन का दायित्व होना चाहिए और इसके लिए सामाजिक सुरक्षा मन्त्रालय एक सामाजिक बीमा कोष के साथ स्थापित करना चाहिए। प्रारम्भ में यह सिफारिश स्वीकार नहीं की गई। लेकिन बाद में राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (Ministry of National Insurance) का सृजन किया गया।

इस योजना की लागत सन् 1945 और 1965 में क्रमशः 697 पौण्ड और 858 पौण्ड आँकी गई। यह लागत और भी अधिक बढ़ी है क्योंकि कीमतों में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

योजना का क्रियान्वयन (Implementation of Plan)—सरकार द्वारा बेवरिज योजना को देश में सामाजिक सुरक्षा का ढाँचा तैयार करने हेतु सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया। युद्धोत्तर काल के पश्चात् विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना लागू करने के लिए कई अधिनियम पास किए गए जो कि जुलाई, 1948 से लागू हुए। वर्तमान समय में परिवार भत्ता, राष्ट्रीय बीमा, औद्योगिक दुर्घटना बीमा, राष्ट्रीय सहायता और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा आदि रूपों में इंग्लैण्ड में न्यूनतम जीवन स्तर बनाए रखने के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रणाली प्रचलित है।

परिवार भत्ता अधिनियम, सन् 1945 (Family Allowance Act of

1945) के अन्तर्गत सबसे पहली योजना प्रथम बच्चे को छोड़कर अन्य बच्चो को भत्ता देने के लिए चलाई गई। इन भत्तो की दर मे समय-समय पर परिवर्तन किया गया है।

राष्ट्रीय बीमा अधिनियम, सन् 1946 (National Insurance Act, 1946) के अन्तर्गत वे सभी बच्चे आ जाते है जो कि स्कूल को छोड़ने की उम्र से अधिक के हैं। वृद्ध व्यक्तियो, बच्चो, विवाहित महिलाओ और कम आय वाले व्यक्तियो को छोड़कर सभी को इसमे निश्चित अशदान प्रति सप्ताह देना पड़ता है। अशदान देने वालो को तीन वर्गों—नियोजित व्यक्ति, स्वय नियोजित व्यक्ति और अनियोजित व्यक्ति—मे बाँटा गया है। अधिनियम के अन्तर्गत बीमारी, बेरोजगारी, प्रसूति, विधवा, सरक्षक भत्ता, रिटायर्ड पेंशन और मृत्यु अनुदान आदि विभिन्न प्रकार के लाभ मिलते हैं। प्रथम वर्ग वाले व्यक्तियो को सभी लाभ प्राप्त होते हैं। दूसरे वर्ग वाले व्यक्तियो को बेरोजगारी और औद्योगिक दुर्घटनाओ हेतु लाभो को छोड़कर शेष सभी लाभ प्राप्त होते हैं। तीसरे वर्ग मे आने वाले व्यक्तियो को बीमारी, बेरोजगारी औद्योगिक दुर्घटनाओ और प्रसूति लाभो को छोड़कर सभी लाभ मिलते है।

राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक दुर्घटनाएँ) अधिनियमो द्वारा सन् 1946 के पश्चात् कार्य करते समय हुई दुर्घटनाओ और औद्योगिक बीमारियो आदि के लिए बीमा योजना चलाई गई है। औद्योगिक चोट अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक बीमारी अथवा दुर्घटना पर तीन प्रकार के लाभ प्रदान किए जाते हैं—

(i) दुर्घटना अथवा बीमारी के कारण अस्थाई रूप से प्रति सप्ताह चोट भत्ता (Injury Allowance) दिया जाता है। यह चोट अथवा बीमारी के कारण कार्य करने मे असमर्थ होन पर दिया जाता है। यह लाभ 26 सप्ताह तक की अवधि हेतु दिया जाता है। प्रति सप्ताह भत्ता दर £12·55 + dependant's allowances है।[1]

(ii) चोट अथवा बीमारी के परिणामस्वरूप श्रमिक की असमर्थता लाभ (Disablement Benefit) दिया जाता है। यह चोट लाभ अवधि (Injury Benefit Period) समाप्ति के पश्चात् दिया जाता है। यह अधिक से अधिक £ 19 + dependants' allowances हो सकता है।[2]

(iii) मृत्यु लाभ (Death Benefit) जब किसी दुर्घटना अथवा बीमारी के कारण श्रमिक की मृत्यु हो जाती है यह उसके आश्रितो को दिया जाता है। वयस्क के लिए यह सामान्यत. 30 पौण्ड और बच्चो के लिए कुछ कम है।

राष्ट्रीय सहायता अधिनियम, 1948 (National Assistance Act of 1948) के अन्तर्गत जरूरतमन्द व्यक्तियो को सहायता दी जाती है। जिन व्यक्तियो को भूतकाल मे राज्य और स्थानीय सरकारो द्वारा सहायता दी जाती थी वे श्रमिक या व्यक्ति भी इस अधिनियम मे शामिल किए गए है। जो लोग सामाजिक सुरक्षा

1-2. Fact Sheets on Britain (Social Security) May 1975, p. 2.

सेवाओं के अन्तर्गत नहीं आते हैं तथा अपने आप को बनाए रखने में असमर्थ हैं उन सभी को वित्तीय सहायता दी जाती है। कुछ दशाओं में कल्याणकारी सेवाएँ शुरू की गई हैं जिनके अन्तर्गत बेघरबार और अपंग लोगों को शरणार्थी गृहों में प्रवेश दिया जाता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत सभी ब्रिटिश नागरिकों को चिकित्सा सुविधाएँ दी जाती हैं, चाहे वे अंशदान देते हैं अथवा नहीं। सभी लागत सरकार वहन करती है।

परिवार भत्तों, राष्ट्रीय बीमा और औद्योगिक चोट योजना के प्रशासन के लिए पेंशन और राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (Ministry of Pensions & National Insurance) की स्थापना कर दी गई है। इसका मुख्यालय लन्दन में रखा गया है। प्रादेशिक और स्थानीय कार्यालय भी स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय सहायता और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का प्रशासन क्रमशः राष्ट्रीय सहायता मण्डल (National Assistance Board) और स्वास्थ्य मन्त्री द्वारा किया जाता है।

बाल अधिनियम 1948 (Children Act of 1948) के अन्तर्गत स्थानीय सरकारों का यह दायित्व है कि कोई भी 17 वर्ष से कम आयु का बच्चा जिसके माता-पिता नहीं हैं अथवा जिसे त्याग दिया गया है अथवा उसके माता-पिता उसकी देखभाल नहीं कर सकते हैं, को अपनी देखभाल में ले लें। इसके अतिरिक्त कुछ ऐच्छिक संगठनों द्वारा भी कल्याणकारी कार्य किए जा रहे हैं। उदाहरणार्थ सामाजिक सेवाओं की राष्ट्रीय परिषद्, परिवार कल्याण संघ, प्रसूति एवं बच्चा कल्याण की राष्ट्रीय परिषद्। ब्रिटिश रेडक्रॉस सोसाइटी ने भी महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी सेवाएँ प्रदान की हैं।

इस प्रकार इगलैण्ड में सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना वर्तमान समय में है। जन्म से मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् उसके आश्रितों को भी सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत लाभ प्रदान किए जाते हैं।

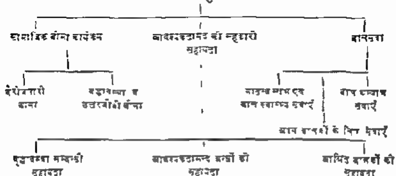
अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in U. S. A.)

"कोई भी व्यक्ति जो किसान बनना चाहता था उसे 160 एकड़ भूमि अमेरिकी सरकार द्वारा प्रदान की जाती थी। यह सामाजिक सुरक्षा का प्रारम्भिक स्वरूप था।"[1] अमेरिका एक धनी देश है जहाँ पर रोजगार का ऊँचा स्तर बनाए रखने में सफलता मिली है। फिर भी व्यक्ति स्वयं औद्योगीकरण से उत्पन्न जोखिमों से अपना आप रक्षा नहीं कर सकता है, इसलिए अमेरिकी सरकार ने भी इन जोखिमों से रक्षा करने हेतु सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ शुरू की हैं।

अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा का श्रीगणेश सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 (Social Security Act, 1935) के पास होने के बाद हुआ। इस

1. *Saxena R C* : Labour Problems & Social Welfare, p. 453.

अधिनियम में समय-समय पर संशोधन किए गए हैं। वर्तमान समय में सामाजिक सुरक्षा का ढाँचा निम्न प्रकार है[1]—



सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 एक संघीय अधिनियम है। यह अधिनियम वृद्धावस्था एवं उत्तरजीवी बीमा योजना को ही चलाता है और शेष योजनाएँ राज्य सरकारों द्वारा संघीय सरकार के कोषों की सहायता से चलाई जाती है। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत निम्न योजनाएँ चलाई गई हैं—

1. वृद्धावस्था, उत्तरजीवी और असमर्थता बीमा (Old Age, Survivors & Disability Insurance)

इसका प्रशासन सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 के संघीय सरकार के अधीन है। वृद्धावस्था पेन्शन पद्धति हेतु मालिक और कर्मचारी भुगतान करते हैं। इस अधिनियम में 1939 में संशोधन करके रिटायरमेंट के पहले या बाद मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्ति की पत्नी और बच्चों को भी पेन्शन देने का प्रावधान रखा गया। सन् 1956 में असमर्थता के लाभ को भी इस अधिनियम में शामिल कर लिया गया।

वृद्धावस्था और उत्तरजीवी बीमा का वित्त प्रबन्ध मालिकों और श्रमिकों की कर देय वार्षिक आय (4200 डॉलर तक) का 2·2 प्रतिशत तथा स्वयं नियोजित व्यक्तियों की आय का 3% द्वारा किया जाता है। यह दर उस समय तक बढ़ाई जाती रहेगी जब तक मालिकों व श्रमिकों के लिए 4% और स्वयं नियोजित व्यक्तियों के लिए 6% न हो जाए।

व्यक्तियों को 65 वर्ष पर और औरतों को 62 वर्ष पर रिटायरमेंट पेन्शन दी जाती है। सन् 1957 में अकेले व्यक्ति के लिए अधिकतम पेन्शन 108·50 डॉलर प्रतिमाह थी और विवाहित के लिए यह 162·80 डॉलर थी। एक विधवा, को 81·50 डॉलर, एक विधवा और एक बच्चे को 162·80 डॉलर, एक विधवा

1. *Saxena, S. C.* : Labour Problems & Social Security, p. 706.

ग्रौर दो बच्चों को 200 डॉलर दिया जाता है। यदि ग्राश्रितों को ग्रतिरिक्त नहीं दिया जाता है तो ग्रसमर्थता पेन्शन वृद्धावस्था पेन्शन ही होगी। इस ग्रधिनियम में ग्रसमर्थ व्यक्तियों का शीघ्र पुनर्वास कराने का भी प्रावधान रखा गया है।

2 बेरोजगारी बीमा

(Unemployment Insurance)

तीसा की महान् मन्दी में कई लाख ग्रमेरिकी बेरोजगार हो गए। वे रोजगार पाने में ग्रसमर्थ रहे। इस ग्रावश्यकता को ध्यान में रखते हुए बेरोजगारी बीमा का चालू की गई। सामाजिक सुरक्षा ग्रधिनियम, 1935 में ही इसका प्रावधान रखा गया है जिसका वित्त प्रबन्ध मालिकों के ग्रशदान से होगा। सामान्य प्रमापों (General Standards) निर्धारण संघीय सरकार करती है ग्रौर विस्तार से प्रावधान राज्यों द्वारा तैयार किए जाते हैं। किसी भी उद्योग का मालिक यदि वर्ष में कम से कम 20 हफ्ते चार या चार से ग्रधिक श्रमिकों को काम में लगाता है तो उसे बेरोजगारी बीमा कोष (Unemployed Insurance Fund) ग्रशदान देना पड़ता है। ग्रमेरिका का नियोजित व्यक्तियों का दो तिहाई भाग इस योजना के ग्रन्तर्गत ग्राता है। बेरोजगार व्यक्तियों को दिया जाने वाला भुगतान व ग्रवधि विभिन्न प्रान्तों में ग्रलग-ग्रलग है। सामान्यतया यह राशि श्रमिक की मजदूरी का ग्राधार होती है। कुछ राज्यों में ग्राश्रितों की संख्या के ग्राधार पर इसमें वृद्धि कर दी जाती है इस योजना से न केवल बेरोजगार व्यक्ति व उसके ग्राश्रितों को ही सुरक्षा मिलती है बल्कि उसको यह ग्रवसर प्रदान करती है कि उसकी योग्यता व ग्रनुभव वाली नौकरी की तलाश कर सके। इसके साथ ही मन्दी से ग्रर्थ-व्यवस्था की रक्षा भी करती है।

3. सार्वजनिक सहायता

(Public Assistance)

सन् 1935 के सामाजिक सुरक्षा ग्रधिनियम के ग्रन्तर्गत इस प्रकार सहायता का प्रावधान रखा गया है। यह सहायता तीन वर्गों को प्रदान की जाती है —

(i) जरूरतमन्द वृद्ध व्यक्तियों को जिनको बीमा योजना के ग्रन्तर्गत सहायता या लाभ नहीं मिलते हैं उनको सार्वजनिक सहायता देकर उनकी मदद की जा सकती है।

(ii) वे बच्चे जिनको माता-पिता की मृत्यु, ग्रसमर्थता या ग्रनुपस्थिति के कारण त्याग दिया गया है उन्हे भी इस प्रकार की सहायता देने का प्रावधान है।

(iii) जरूरतमन्द ग्रन्धे व्यक्ति भी इसके ग्रन्तर्गत शामिल किए गए है।

सन् 1950 में इस योजना को स्थाई या पूर्ण रूप से ग्रसमर्थता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को भी शामिल कर लिया गया है।

इस प्रकार की सहायता जरूरतमन्द व्यक्तियों को राज्य सरकारों द्वारा दी जाती है। इसको वित्तीय सहायता संघीय सरकार द्वारा दी जाती है।

4. श्रमिक क्षतिपूर्ति
(Workmen's Compensation)

सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 के अतिरिक्त राज्य व संघीय सरकार द्वारा कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति करने का भी प्रावधान है। सबसे पहले संघीय कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1908 (Federal Employee's Compensation Act of 1908) पास किया गया था। धीरे-धीरे अन्य राज्यों में भी इस तरह के अधिनियम पास कर दिए गए हैं। सन् 1948 से सभी राज्यों में इस प्रकार के अधिनियम से सुरक्षा प्रदान की जाती है। मृत्यु होने पर दाह संस्कार व्यय तथा आश्रितों को नकदी लाभ दिए जाते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत चोट की लागत को उत्पादन की लागत माना जाता है। विभिन्न राज्यों में स्थाई, अस्थाई असमर्थता तथा मृत्यु पर दिए जाने वाले मुआवज़े की राशि अलग-अलग है। अस्थाई असमर्थता के लिए कर्मचारी की औसत मजदूरी का 2/3 भाग दिया जाता है। भुगतान अवधि भी विभिन्न राज्यों में 104 से 700 सप्ताह तक है। कुछ राज्यों में समयावधि और भुगतान की सीमाएँ निश्चित हैं जो क्रमशः 260 से 800 सप्ताह और 6500 डॉलर से 20,000 डॉलर तक है।

व्यावसायिक बीमारियों से होने वाली असमर्थता को भी चोट की भाँति लाभ प्रदान किए जाने चाहिए। इसके विषय में भी विभिन्न राज्यों में कानून बनाए गए हैं।

5. बीमारी अथवा अस्थाई असमर्थता
(Sickness or Temporary Disability)

अल्पकाल में बीमार होने पर बीमारी लाभ नकदी के रूप में प्रदान किए जाते हैं। दीर्घकालीन बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में भी यह लाभ दिया जाता है। इस प्रकार का लाभ संघीय और राज्य सरकारों द्वारा अलग-अलग वर्गों के श्रमिकों को प्रदान किए जाते हैं। यह लाभ 20 सप्ताह तक के लिए श्रमिक की मजदूरी का आधा हिस्सा दिया जाता है।

पूर्णतया अथवा स्थायी रूप से असमर्थता होने पर स्वयं व उसके आश्रितों को मासिक लाभ प्रदान किए जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत असमर्थ व्यक्तियों को व्यावसायिक पुनर्वास सेवा के संघीय राज्यीय कार्यक्रम (Federal State Programme of Vocational Rehabilitation Service) के पुनर्वास को प्रोत्साहन दिया जाता है। संघीय सरकार द्वारा युद्ध में हुए अपङ्ग व असमर्थ व्यक्तियों को भी क्षतिपूर्ति दी जाती है।

6. बच्चों के लिए कार्यक्रम
(Programmes for Children)

सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 1935 के अन्तर्गत बच्चों को बीमा लाभ अथवा सहायता प्रदान करने का भी प्रावधान रखा गया है। संघीय सरकार राज्य सरकारों को प्रसूति और शिशु स्वास्थ्य सेवाओं, अपंग बच्चों की सेवा और अन्य शिशु-कल्याण

सेवाओं के चलाने के लिए कानून बनाती है तथा इन सभी सेवाओं के लिए राज्य सरकारों को अनुदान भी दिया जाता है ।

उपरोक्त सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अतिरिक्त ऐच्छिक आधार पर चलाई जाने वाली विभिन्न स्वास्थ्य अथवा बीमारी बीमा सेवाएँ अमेरिकी श्रमिकों के लिए चलाई जाती हैं । निजी संस्थाएँ भी सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ, उदाहरणार्थ बीमार और जरूरतमन्द, पाठशालाओं और अस्पतालों के लिए विभिन्न लाभप्रद सेवाएँ प्रदान करती हैं ।

रूस में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in USSR)

रूस में सामाजिक सुरक्षा उपायों को संविधानिक गारण्टी दी गई है और उनको प्राप्त करने के तीन कारण हैं—

1 रूस की अर्थव्यवस्था का तीव्र गति से विकास हो रहा है तथा बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय में से हिस्सा दिलाने के लिए सामाजिक सुरक्षा लागू करनी होती है,

2 समाजवादी देश होने के कारण लोगों का कल्याण करें, एवं

3 श्रम संघों द्वारा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग से प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन प्राप्त करने में सहायता मिलती है ।

रूस में सामाजिक सुरक्षा सभी श्रमिकों और कर्मचारियों पर लागू होती है । सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी, गारण्टीड रोजगार, चिकित्सा सुविधा, प्रसूति लाभ, श्रमिक क्षतिपूर्ति, वृद्धावस्था पेंशन, असमर्थता पेंशन, उत्तरजीवी पेंशन, व्यावसायिक बीमारियों के विरुद्ध बीमा, असमर्थ और वृद्धावस्था गृहों हेतु प्रावधान, स्वास्थ्य और सेनीटोरिया के लिए विस्तृत प्रावधान आदि उपाय अथवा योजनाएँ शामिल की गई हैं । सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ सामुदायिक फार्मों के कर्मचारियों को भी प्रदान की जाती हैं ।

रूस में सामाजिक बीमे की विशेषताएँ
(Features of Social Insurance in USSR)

रूस में सामाजिक बीमा योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नाङ्कित हैं—

1 केवल नियोजित व्यक्तियों का बीमा किया जाता है ।

2 बेरोजगारी बीमा योजना नहीं है । कानून से बेरोजगारी को समाप्त कर दिया गया है ।

3 बीमा के पूर्ण लाभों को प्राप्त करने हेतु श्रम संघों का सदस्य होना पूर्व शर्त है । गैर सदस्यों को केवल आधे लाभ दिए जाते हैं ।

4 सामाजिक बीमा योजनाओं का संगठन, प्रशासन और निरीक्षण का कार्य श्रम संघों द्वारा किया जाता है । श्रम संघों की केन्द्रीय संस्था का स्वयं का अपना सामाजिक बीमा विभाग है ।

5 सामाजिक बीमा की लागत का वहन सम्बन्धित संस्थान द्वारा किया जाता है । इसमें सम्बन्धित संस्थान द्वारा अंशदान दिया जाता है ।

6 रूस की सामाजिक बीमा योजना न केवल श्रमिकों के कल्याण मे वृद्धि का साधन है, बल्कि यह आर्थिक विकास मे उत्पादन मे वृद्धि करने का भी एक प्रमुख साधन मानी जाती है।

7 यदि कोई श्रमिक सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत मिलने वाले लाभों के प्रशासन और श्रम संघो के हस्तक्षेप से कोई शिकायत रखता है तो इसके लिए वह गारण्टीड सामाजिक सुरक्षा लाभो हेतु स्थानीय न्यायालय मे अपील कर सकता है।

वर्तमान समय मे रूस मे श्रमिक के अस्थाई असमर्थ होने पर सहायता तथा स्थाई असमर्थता व वृद्धावस्था के लिए पेंशन देने का प्रावधान है। यदि किसी श्रमिक को चोट अथवा बीमारी के कारण अस्थाई असमर्थता हो जाती है तो उसे उसकी औसत मजदूरी का शत-प्रतिशत सहायता के रूप मे दिया जाता है।

सामाजिक बीमा योजना

रूस मे प्रारम्भिक कठिनाइयो के कारण सामाजिक बीमा योजना के सिद्धान्तो को नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत सन् 1922 मे शुरू किया गया। एक श्रम संहिता की घोषणा की गई। इसके अन्तर्गत चिकित्सा, अस्थाई असमर्थता पर लाभ, दाह-संस्कार हेतु भुगतान, असमर्थता, वृद्धावस्था अथवा मृत्यु के पश्चात् पेंशन आदि का प्रावधान रखा गया था। रूस मे सामाजिक बीमा योजना का वित्त प्रबन्ध प्रबन्धको द्वारा किया जाता है। प्रबन्ध श्रमिको के मजदूरी बिल का कुछ प्रतिशत सामाजिक बीमा कोष (Socal Insurance Fund) मे जमा कराते हैं। इसी अनुपात मे वे श्रमिको की मजदूरी मे से घटा लेते है। यह प्रतिशत 4·4 से 9 8 तक होता है जो कि उत्पादन की दशाओ पर निर्भर करता है। श्रमिको को कुछ भी भुगतान नही करना पड़ता है। चिकित्सा सहायता वस्तु के रूप मे दी जाती है जो कि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत न आकर सामाजिक सेवाओ के अन्तर्गत आती है। सामाजिक बीमा योजना केवल नियोजित श्रमिको पर ही लागू होती है। कृषि श्रमिक इसके अन्तर्गत नही आते है क्योकि उनकी रक्षा किसानो के सामूहिक संगठनों (Peasants' Collect ve Organisations) द्वारा की जाती है।

रूस की सामाजिक बीमा योजना के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं—

1. सन् 1933 से ही इस योजना का प्रशासन श्रम संघो द्वारा किया जाता है। इस योजना की संस्थाएँ कोष और कार्य सभी श्रम संघो के हैं।

2 इस योजना के अन्तर्गत केवल नियोजित व्यक्तियो का ही बीमा किया जाता है।

3 इस योजना मे अंशदान केवल नियोजको या मालिको द्वारा ही दिए जाते हैं। मालिक एक मुश्त मे ही सामाजिक बीमा कोष मे श्रमिको की मजदूरी बिल का प्रतिशत के रूप मे जमा करा देता है।

4. इस योजना के अन्तर्गत मिलने वाले लाभ केवल उन्ही श्रमिको को दिए जाते है जिन्होने श्रम संघो की सदस्यता ग्रहण कर ली है। जो सदस्य नहीं हैं उनको केवल आधे लाभ ही मिलते हैं।

5 यह योजना सरकारी आन्दोलन के रूप में श्रम की स्थिरता और उत्पादन में वृद्धि हेतु चलाई जाती है। सबसे अधिक लम्बे समय तक कार्य करने वाले को ही अधिक लाभ मिलते हैं।

6 बेरोजगारी बीमा समाप्त कर दिया गया है। यह सन् 1930 में प्रथम पचवर्षीय योजना में मानव-शक्ति की माँग में वृद्धि करके समाप्त कर दिया गया है।

रोजगार के कारण बीमारी अथवा चोट से यदि अस्थायी असमर्थता हो जाती है तो औसत आमदनी का शत-प्रतिशत लाभ के रूप में श्रमिक को दिया जाता है। अन्य मामलों में नौकरी की अवधि के आधार पर लाभ प्रदान किए जाते हैं। उदाहरणार्थ 6 या अधिक वर्ष की नौकरी वाले को 100%, 3 से 6 वर्ष के रोजगार हेतु 80% 2 से 3 वर्ष हेतु 60% और 2 वर्ष से कम को 50% औसत मजदूरी का भाग लाभ के रूप में दिया जाता है। श्रम सघों की सदस्यता न होने पर इन लाभों का आधा मिलेगा।

प्रत्येक व्यक्ति और महिला जिन्होंने क्रमश 60 और 55 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है, पेंशन प्राप्त करने के अधिकारी हैं। रोजगार के कारण बीमारी और चोट से उत्पन्न स्थायी असमर्थता (Permanent D sability) हेतु भी पेंशन दी जाती है। दूसरे मामलों में यह आयु और रोजगार की अवधि पर निर्भर करता है। पेंशन की राशि श्रमिकों को अन्त में मिलने वाली मजदूरी पर निर्भर करती है। अधिकतम पेंशन अन्तिम मजदूरी का 66% दी जाती है।

सामाजिक बीमा योजना के अलावा रूस में बीमारी की चिकित्सा तथा अन्य सुविधाओं में वृद्धि करने हेतु सामाजिक सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। ये सेवाएँ निम्नलिखित हैं—

1 प्रत्येक व्यक्ति को नि शुल्क चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

2 किसी भी संस्थान में निरन्तर 11 माह तक कार्य करने पर 2 सप्ताह की वेतन सहित छुट्टियाँ दी जाना।

3 श्रम सघों और औद्योगिक संस्थानों द्वारा चलाए जाने वाले विश्राम-गृहों का श्रमिकों द्वारा उपयोग करना। यह उपयोग उनकी नौकरी की अवधि पर निर्भर करता है।

4 रविवार तथा अन्य सार्वजनिक छुट्टियों पर कस्बों में स्थित रेस्ट पार्कस आदि का उपयोग करना।

5 सभी को प्राथमिक शिक्षा की नि शुल्क सुविधाएँ प्रदान करना।

6 प्रत्येक महिला को मातृत्व लाभ (Maternity Ben.fits) प्रदान करना।

माताओं का कल्याण और उनको सरक्षण प्रदान करना सरकार का प्राथमिक दायित्व समझा जाता है। इसके विषय में कई श्रम कानून बनाए गए हैं। किसी भी गर्भवती महिला को रोजगार देने से मना करना कानूनी अपराध है। इसके उल्लघन पर 6 माह की जेल तथा 1000 रूबल आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है।

महिला की मजदूरी मे से किसी प्रकार की कटौती नही की जाएगी। गर्भावस्था मे हल्का काय दिया जाता है। उनको ट्राम्स, रेल व बसो मे सुरक्षित स्थान प्रदान किए जाते है। यदि 2 वर्ष का वच्चा बीमार हो जाता है तो उसकी माता को विशेष छुट्टी प्रदान की जाती है।

रूस मे अविवाहित माताओ और उनके वच्चो को भी सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। वच्चे के पालन-पोषण हेतु राज्य की ओर से भत्ता दिया जाता है। अन्य माताओ को जो सुविधाएँ व लाभ मिलते हैं वे ही अविवाहित माताओ को भी मिलते है। अधिक वच्चो वाली माँ को रूस मे विशेष भत्ता भी दिया जाता है।

भारत में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in India)

भारत मे सामाजिक सुरक्षा एक नया दृष्टिकोण नही है। कुछ नियोजक पहले से ही अपने श्रमिको को पेशन, प्रोविडेण्ट फण्ड और ग्रेच्युटी आदि लाभ देते थे और कल्याणकारी कार्य भी किए गए हैं। इस सम्बन्ध मे हमारे देश मे श्रम कानूनो का भी प्रभाव न ो रहा है। सन् 1947 से पूर्व ही हमारे देश मे श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 और विभिन्न प्रान्तो मे मातृत्व लाभ अधिनियम पास किए जा चुक थे।[1]

किसी भी देश मे सामाजिक सुरक्षा की योजना शुरू करने हेतु अन्य उपाय भी काम मे लेने पड़ते हैं उदाहरणार्थ पूर्ण रोजगार नीति, श्रमिको की सुरक्षा और अच्छी कार्य दशाओ हेतु विधान, चिकित्सा, शिक्षा और आवास सुविधाएँ, आदि। हमारे देश मे वि ेष रूप स औद्योगिक श्रमिको हेतु सामाजिक सुरक्षा शुरू की गई है।[2]

हमारे देश मे यद्यपि प्राचीन समय से ही सयुक्त परिवार प्रथा, पचायत, निर्धन गृहो आदि सामाजिक सस्थाओ द्वारा जरूरतमन्दो की कुछ-न-कुछ सहायता ा जाती रही है, लेकिन मामाजिक सुरक्षा पर दूसरे महायुद्ध तक कोई विशेष ध्यान न ी दिया गया। शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour, 1931) तक ने इस प्रकार की योजना की आवश्यकता पर जोर नही दिया क्योकि हमारे देश मे स्थायी श्रम-शक्ति का अभाव था और श्रमिक परिवर्तन (Labour Turnover) भी अधिक होता था।

वेवरिज रि ो[3] (Beveridge Report) के प्रकाशन के पश्चात् भारत मे सामाजिक बीमा योजना पर ध्यान दिया जाने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न देशो मे समाजवादी सरकारों की स्थापना हुई तथा श्रमिक असतोष के कारण श्रमिकों की स्थिति सुधारने हेतु कई देशों मे सामाजिक बीमा योजना तैयार की गई। हमारे देश मे भी सामाजिक सुरक्षा योजन ् प्रारम्भ करने की दिशा में विभिन्न कदम उठाए गए।

1. *Giri, V V* : Labour Problems in Indian Industry, p. 262.
2. *Vaid, K. N* : State & Labour in India, p 110.

भारत में वर्तमान व्यवस्था
(Present Position in India)

एक पूरा सामाजिक बीमा योजना में निम्नलिखित मुख्य-मुख्य तत्व पाए जाते हैं—

(1) बीमारी और असमर्थता बीमा
(Sickness and Invalidity Insurance)
(2) दुर्घटना बीमा (Accident Insurance)
(3) प्रसूति बीमा (Maternity Insurance)
(4) बेरोजगारी बीमा (Unemployment Insurance)
(5) वृद्धावस्था बीमा (Old Age Insurance)
(6) उत्तरजीवी बीमा (Survivorship Insurance)

उपरोक्त आवश्यकताओं के लिए अभी हमारे देश में पूर्ण रूप से सामाजिक बीमा योजना शुरू नहीं की गई है। केवल कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (Employees' State Insurance Act, 1948) और कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम, 1952 (Employees' Provident Fund Act of 1952) पास करके इस दिशा में कदम उठाया गया है। वर्तमान समय में सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत अग्रांकित योजनाओं का समावेश किया गया है—

1 औद्योगिक दुर्घटनाओं और बीमारियों हेतु क्षतिपूर्ति का प्रावधान श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 (Workmen's Compensation Act, 1923) के अन्तर्गत किया गया है।

2 महिला श्रमिकों को मातृत्व लाभ, मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत दिए जाते हैं।

3 स्वास्थ्य बीमा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत किया जाता है।

4 छँटनी मुआवजा (Retrenchment Compensation) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के तहत दिया जाता है।

5 प्रोवीडेन्ट फण्ड का प्रावधान कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम, 1952 (Employees' Provident Fund Act, 1952) के अन्तर्गत है।

6 कोयला खान भविष्य निधि (प्रोवीडेन्ट फण्ड) प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1948

7 उपदान (ग्रेच्युटी) भुगतान अधिनियम 1972 के अन्तर्गत कर्मचारियों को ग्रानुतोषिक का हकदार बनाया गया है। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत वर्तमान में प्रचलित विभिन्न अधिनियमों को विस्तार से समझना उपयोगी होगा।

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
(Workmen's Compensation Act of 1923)

इस अधिनियम का उद्देश्य किसी औद्योगिक दुर्घटना तथा औद्योगिक बीमारी

से श्रमिक को क्षतिपूर्ति करना होता है। दुर्घटना से श्रमिक की मृत्यु हो सकती है अथवा स्थाई एवं अस्थाई असमर्थता प्राप्त होती है। इस आकस्मिकता में बचाव करने हेतु नियोजक द्वारा श्रमिकों को क्षतिपूर्ति करना एक वैधानिक दायित्व है।

यह अधिनियम रेल कारखानों, नाविक व समुद्र पर काम करने वाले कुछ श्रमिकों, डाक तार, नहर, चाय, रबड़, कहवा उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों, विद्युत् स्टेशनों, गोदामों, वेतन पाने वाले, मोटर ड्राइवरों आदि तथा 10 या 10 से अधिक श्रमिक शक्ति से कार्य करते हैं और 500 रु. मासिक से अधिक वेतन न पाने वालों पर भी लागू होता है। लेकिन यह अधिनियम आकस्मिक श्रमिकों, सशस्त्र सेनाओं और मालिक के व्यवसाय को छोड़ कर अन्य उद्देश्य से लगाए गए श्रमिकों पर लागू नहीं होता है। जो श्रमिक कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करते हैं उन्हें भी इस अधिनियम के अन्तर्गत लाभ प्राप्त नहीं होंगे।

यदि श्रमिक को काम करते समय किसी दुर्घटना से चोट लग जाए तो मालिक द्वारा मुआवजा दिया जाएगा।

यदि असमर्थता (Incapability) 3 दिन से अधिक नहीं है तथा श्रमिक के स्वयं के दोष के कारण चोट लग जाती है तो उन किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति नहीं दी जाएगी। यदि श्रमिक की मृत्यु हो जाती है तो उसे मुआवजा दिया जाता है। व्यावसायिक बीमारियों (Occupational Diseases) हेतु भी अधिनियम की तीसरी अनुसूची में क्षतिपूर्ति करने का प्रावधान है।

मुआवजे की राशि चोट की प्रकृति तथा श्रमिक की औसत मासिक मजदूरी पर निर्भर करती है। चोट को तीन वर्गों में रखा गया है—उदाहरणार्थ चोट से मृत्यु को प्राप्त होना, स्थाई असमर्थता और अस्थाई असमर्थता।

मृत्यु हेतु क्षतिपूर्ति की कम से कम राशि 500 रु. तथा अधिकतम राशि 4,500 रु. स्थायी असमर्थता में यह राशि 700 रु. से 6,300 रु. तक तथा अस्थाई असमर्थता में न्यूनतम मजदूरी वाले श्रमिक को आधे महीने की मजदूरी दी जाती है।

श्रमिक की मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को मुआवजा दिया जाता है। वैधानिक आश्रित तथा अवैधानिक आश्रित दोनों वर्गों को क्षतिपूर्ति नियोजक द्वारा दी जाती है।

इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक नियोजक का यह दायित्व है कि वह किसी भी घातक दुर्घटना की सूचना आयुक्त, श्रमिक क्षतिपूर्ति (Commissioner for Workmen's Compensation) को दे। यदि वह इस दुर्घटना का दायित्व स्वीकार कर लेता है तो उसे मुआवजे की राशि आयुक्त के पास में जमा करा देनी चाहिए। यदि मालिक दायित्व स्वीकार नहीं करता है तो आयुक्त मृतक के आश्रितों को उनके न्यायालय में इस सम्बन्ध में अपना अधिकार (Claim) मांग सकता है। मालिक इस सम्बन्ध में प्रसंविदा द्वारा मुआवजा नहीं चुका सकता। दाह-संस्कार हेतु व्यय

आयुक्त कुल मुआवजे की राशि में से 26 रु काट कर दे सकता है। मालिक मुआवजे की 100 रु तक की अग्रिम राशि दे सकता है।

इस अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। प्रत्येक राज्य सरकार ने आयुक्त, श्रमिक क्षतिपूर्ति नियुक्त कर दिए हैं जो कि मुआवजे सम्बन्धी मामलों की जाँच, सुनवाई और फैसला देकर श्रमिकों की मदद करते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत दुर्घटना, मुआवजे की राशि आदि के सम्बन्ध में मालिक को प्रतिवेदन भेजना पड़ता है। इस अधिनियम का समय समय पर संशोधन करके इसका क्षेत्र का विस्तार कर दिया गया है।

इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों तथा उनकी क्रियाशीलता को देखने से पता चलता है कि यह अपने आप में एक पूर्ण अधिनियम नहीं है। इसकी निम्नलिखित सीमाएँ हैं—

1 मालिक इस अधिनियम को अनुचित बताते हैं। उनका कहना है कि श्रमिक की गलती के कारण मृत्यु होने पर मालिकों को क्षतिपूर्ति अदा करनी पड़ती है। इससे उन पर वित्तीय भार पड़ता है।

2 छोटे संस्थानों द्वारा श्रमिकों को क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती है। वे किसी न किसी तरह इस दायित्व को टालने में सफल हो जाते हैं। बड़े संस्थानों द्वारा भी छोटी चोटों की रिपोर्ट नहीं की जाती है।

3 क्षतिपूर्ति सम्बन्धी मामलों को निपटाने में देरी लगती है। सम्बन्धित अधिकारियों का कार्यभार पहले ही अधिक होता है।

4 ठेका श्रम के सम्बन्ध में ठेकेदार ठेके द्वारा मुआवजा देता है। रसीद पूरी राशि की ली जाती है जबकि भुगतान कम राशि में होता है।

5 इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी प्रकार की चोट अथवा व्यावसायिक बीमारी होने पर चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं किया जाता है। चिकित्सा का प्रबन्ध आवश्यक है।

इस अधिनियम के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) ने सुझाव दिया है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति हेतु एक केन्द्रीय कोष (Central Fund for Workmen's Compensation) की स्थापना की जाए। इस कोष में सभी मालिकों द्वारा प्रतिमाह अपनी मजदूरी बिल का कुछ प्रतिशत जमा करना चाहिए जिससे कि अधिनियम के प्रशासन तथा दिए गए लाभों की लागत का वहन किया जा सके। इस कोष का नियन्त्रण कर्मचारी राज्य बीमा निगम (Employee's State Insurance Corporation) द्वारा होना चाहिए। यह निगम दुर्घटनाग्रस्त श्रमिकों और उनके आश्रितों को समय समय पर भुगतान करता रहेगा। यदि श्रमिक असमर्थता के कारण बेरोजगार रहता है तो उसको क्षतिपूर्ति की ऊँची दर दी जानी चाहिए।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
(Maternity Benefit Act of 1961)

मातृत्व लाभ महिला श्रमिकों को बच्चे के जन्म के पूर्व तथा पश्चात् कार्य

से अनुपस्थित रहने के परिणामस्वरूप हुई मजदूरी की हानि के रूप में मुआवजा दिया जाता है जिससे महिला श्रमिक व उसके बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा असर नहीं पड़े तथा आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़े। इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) ने प्रस्ताव 1919 में ही पास कर दिया था। लेकिन भारत में इसे स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि भारतीय महिला श्रमिक प्रवासी होती हैं, बच्चा होने से पूर्व ही वे वापिस अपने घर लौट जाती हैं तथा चिकित्सा सुविधाओं का भी अभाव है। विभिन्न राज्यों में समय-समय पर अधिनियम पास कर दिए गए हैं। लेकिन अधिनियमों में समरूपता का अभाव होने के कारण सन् 1961 में मातृत्व लाभ अधिनियम पास किया गया।

यह अधिनियम कारखानों, खानों अथवा बागानों पर लागू होता है लेकिन यह उन कारखानों या संस्थानों पर लागू नहीं होता जिन पर कि कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 लागू होता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत उसी महिला श्रमिक को लाभ प्राप्त होगा जिसने बच्चा होने से पूर्व 160 दिन कार्य कर लिया है। इसके अन्तर्गत 12 सप्ताह—6 सप्ताह बच्चा होने के दिन के पूर्व और 6 सप्ताह बाद में—की अवधि हेतु लाभ मिलता है। लाभ की दर महिला श्रमिक की प्रतिदिन की औसत मजदूरी होती है।

अधिनियम के अन्तर्गत 25 रु चिकित्सा बोनस (Medical Bonus) के रूप में मिलते हैं। कुछ राज्य अधिनियमों के अन्तर्गत नि:शुल्क चिकित्सा, प्रसूति बोनस, पालने की व्यवस्था, अतिरिक्त आराम आदि लाभ भी प्राप्त होते हैं।

अधिनियम के अनुसार मातृत्व छुट्टी (Maternity Leave) की अवधि में किसी भी महिला को नौकरी से नहीं हटाया जा सकता है। इसके लिए मालिक को दण्डित किया जा सकता है। इस अधिनियम के प्रशासन की जिम्मेदारी प्रत्येक राज्य में कारखाना निरीक्षकों की है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत महिला श्रमिकों को समुचित आराम और वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। फिर भी इस अधिनियम में निम्न दोष देखने को मिलते हैं—

1. विभिन्न अधिनियमों में समरूपता का अभाव है। इसी उद्देश्य से समय-समय पर इन अधिनियमों में संशोधन किए गए हैं।

2. बच्चे के जन्म के पूर्व तथा बाद में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है।

3 विभिन्न प्रावधानों का मालिकों द्वारा अपवंचन किया जाता है। महिला श्रमिकों की अज्ञानता के कारण इसके अन्तर्गत मिलने वाले लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल पाते हैं। मालिक भी इस अधिनियम से बचने हेतु पुरुषों को काम पर लगाते हैं अथवा विधवाओं व वृद्धाओं को रोजगार पर लगाते हैं।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 और उसके अधीन बनाई गई योजना (Employees' State Insurance Act, 1948)

विभिन्न देशों में बीमारी बीमा सम्बन्धी योजना पर विचार किया गया।

भारत मे भी सन् 1928 मे इस पर विधान-सभा मे विचार किया गया। शाही श्रम आयोग, सन् 1931 ने भी बीमारी बीमा के सम्बन्ध मे जांच हेतु समिति नियुक्त करने की सिफारिश की। इसी के साथ एक ऐसी योजना चालू करने की सिफारिश की जो कि एक सम्यान पर आधारित हो। इस सिफारिश के अनुसार एक ऐसी योजना तैयार की जाए जिसके अन्तर्गत चिकित्सा लाभ प्रदान करना राज्य सरकार की जिम्मेदारी हो तथा वित्तीय लाभ मालिकों और श्रमिकों के सयोग से प्राप्त किया जाए। औद्योगिक श्रमिकों हेतु बीमारी बीमा योजना हेतु प्रोफेसर अडारकर की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1944 मे दी। प्रो० अडारकर ने केवल एक बीमारी बीमा योजना दी थी। बाद मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन के दो विशेषज्ञों श्री स्टेक और श्री राव ने इस रिपोर्ट की जाँच करके एक बड़ी एकीकृत बीमा योजना की सिफारिश की। इसमे मातृत्व लाभ, औद्योगिक चोट लाभ और बीमारी बीमा योजना तीनों को शामिल किया गया। इसके परिणामस्वरूप सरकार ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, सन् 1948 पास किया।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 जो विद्युत का प्रयोग करने वाले ऐसे बारहमासी कारखानों पर लागू होता है, जिनमे 20 या उससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं डॉक्टरी देख-रेख और इलाज, बीमारी के दौरान नकद भत्ते, प्रसूति और काम करते हुए लगी चोट के लिए लाभों, काम करते हुए चोट लगने के कारण श्रमिक की मृत्यु पर उसके आश्रितों के लिए पेंशन और बीमाशुदा व्यक्ति की अन्त्येष्टि पर खर्च के लिए 100 रुपये से अनधिक अन्त्येष्टि सहायता की व्यवस्था करता है। बीमाशुदा व्यक्तियों के परिवारों के सदस्यों को अस्पताल मे भर्ती होकर इलाज कराने सहित डॉक्टरी देख-रेख की सुविधा भी उत्तरोत्तर उपलब्ध कराई जा रही है।

प्रशासन—कर्मचारी राज्य बीमा योजना का प्रशासन कर्मचारी राज्य बीमा निगम (क० रा० बी० नि०) नामक एक निर्वाचित निकाय करता है, जिसके सदस्य कर्मचारियों, नियोजकों, केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, चिकित्सीय व्यवसाय और ससद् का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस निगम के सदस्यों मे से सदस्य लेकर गठित की गई एक स्थाई समिति इस योजना के प्रशासन के लिए कार्यपालक निकाय के रूप मे काम करती है। चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं की व्यवस्था से सम्बन्धित मामलों के बारे मे निगम को सलाह देने के लिए एक चिकित्सा लाभ परिषद् भी विद्यमान है। महानिदेशक, जो कि निगम का मुख्य कार्यपालक अधिकारी है, निगम का और इसकी स्थाई समिति का पदेन सदस्य भी है।

पाँच प्रकार के लाभ—इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों को पाँच प्रकार के लाभ दिए जाते हैं वे निम्नांकित हैं—

(i) **बीमारी लाभ (Sickness Benefit)**—यदि बीमा कराए हुए व्यक्ति की बीमारी का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है तो उसे नकदी मे भुगतान प्राप्त होता है। यह 365 दिनों मे से अधिकतम 56 दिनों हेतु दिया जाता है। बीमारी लाभ

की राशि दैनिक औसत मजदूरी की आधी होनी चाहिए। जिस व्यक्ति को यह लाभ मिलता है वह निर्धारित डिसपेन्सरी में रहेगा।

(ii) मातृत्व लाभ (Maternity Benefit) —इसके अन्तर्गत 12 सप्ताह के लिए नकद भुगतान दिया जाता है। लाभ की दर औसत मजदूरी (दैनिक) के बराबर दी जाती है।

(iii) असमर्थता लाभ (Disablement Benefit)—रोजगार में चोट तथा बीमारी से उत्पन्न असमर्थता लाभ प्रदान किया जाता है। अस्थाई असमर्थता के लिए दैनिक औसत मजदूरी का पूर्ण भाग लाभ के रूप में नकदी में दिया जाता है। स्थाई असमर्थता होने पर श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत दी जाने वाली दर के आधार पर लाभ दिया जाता है।

(iv) आश्रितों का लाभ (Dependants' Benefit)—किसी श्रमिक की रोजगार में मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को लाभ प्रदान किया जाता है। विधवा स्त्री को पूरी दर का ½ भाग, वैधानिक पुत्रों और अविवाहित लड़कियों को कुल दर का ⅖ भाग 15 वर्ष की आयु तक प्रदान किया जाता है। यदि शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तो यह लाभ उनको 18 वर्ष की आयु तक दिया जाता है। यदि मृतक के विधवा पत्नी, लड़के-लड़कियां नहीं हैं तो उसके माता-पिता को यह लाभ दिया जाएगा। लेकिन यह लाभ उसकी पूरी दर (Full rate) से अधिक नहीं दिया जाता है।

(v) चिकित्सा लाभ (Medical Benefit)—इसके अन्तर्गत बीमा कराए व्यक्ति को उस हफ्ते में भी चिकित्सा लाभ दिया जाता है जिसमें उसका अंशदान दिया जाता है। बीमारी, मातृत्व और असमर्थता लाभ प्राप्त करने योग्य श्रमिकों को चिकित्सा लाभ प्रदान किया जाता है। बीमारी, रोजगार, चोट और प्रसूति में निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। यह लाभ बीमा चिकित्सालय अथवा अस्पताल में प्रदान किए जाते हैं।

चिकित्सा रक्षा के लाभ अब बीमा कराए गए श्रमिकों के परिवारों को भी दिए जाने लगे हैं।

इस अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारी बीमा न्यायालयों (Employees' Insurance Courts) की स्थापना राज्यों द्वारा कर दी गई है जो कि इससे सम्बन्धित झगड़ों का निपटारा करेंगे। जिन स्थानों पर न्यायालय नहीं वहां विशेष अधिकरण (Special Tribunals) स्थापित कर दिए गए हैं।

उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 (National Commission on Labour, 1969) ने भी इस अधिनियम के सम्बन्ध में कुछ सिफारिशें की थी, जो निम्नलिखित हैं—

1. जहां पर कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल हैं वहीं पर पूर्ण रूप से चिकित्सा महाविद्यालय (Medical Colleges) खोले जाने चाहिए। ये निगम अथवा राज्यों द्वारा चलाए जाने चाहिए। यदि प्रशिक्षण हेतु निगम द्वारा वित्त प्रबन्ध किया जाता है तो प्रशिक्षणार्थियों को 5 वर्ष तक इन अस्पतालों में कार्य करना चाहिए।

2. यदि राज्य कर्मचारी बीमा अस्पतालों में रोगी शय्याएँ खाली हैं तो उन्हें सामान्य जनता के उपयोग हेतु दिया जाना चाहिए।

3 निगम को राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् (National Safety Council) के साथ मिल कर काय करना चाहिए।

श्रम मंत्रालय की रिपोर्ट 1976 77 के अनुसार अधिनियम की कुछ अन्य बातें और उसका क्रियान्वयन

जैसा कि कहा जा चुका है कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 के उपबंधों को ऐसे कारखानों उद्योगों में लागू किया जाता है जिनमें बिजली का प्रयोग होता है और जिनमें 20 या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं। अधिनियम की धारा 1 (5) के अनुसार कुछ राज्य सरकारों द्वारा निम्नलिखित नई श्रेणियों के प्रतिष्ठानों पर भी अधिनियम के उपबन्ध लागू कर दिए गए हैं —

(1) ऐसे छोटे कारखाने जो बिजली का प्रयोग करते हैं और जिनमें 10 से 19 के बीच व्यक्ति नियोजित हैं तथा बिजली का प्रयोग न करने वाले ऐसे छोटे कारखाने जिनमें 20 या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं और

(2) ऐसी दुकानें होटल रेस्तरां सिनेमा रंगशालाएं (थियेटर) मोटर परिवहन और समाचार-पत्र प्रतिष्ठान जिनमें 20 या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं।

बीमा क्षेत्र— वर्ष 1976 77 के दौरान इस योजना को 18 केन्द्रों में 1 78 लाख और कर्मचारियों पर लागू किया गया। डाक्टरी देख रेख की सुविधा का लाभ भी 1 68 लाख और परिवारों (बीमाशुदा व्यक्ति) को दिया गया। 31 दिसम्बर 1976 की स्थिति के अनुसार इस योजना के अन्तर्गत 400 केन्द्रों के 52 86 लाख कर्मचारी आ गए थे। *बीमा शुदा व्यक्तियों सहित चिकित्सा लाभानुभोगियों की* कुल संख्या 221 53 लाख थी।

निर्माण परियोजनाएं—वर्ष 1976–77 के दौरान कर्मचारी राज्य बीमा परियोजनाओं के लिए निर्माण भूमि की लागत की बाबत लगभग 10 46 करोड़ रुपये की राशि मन्जूर की गई थी। 31 दिसम्बर, 1976 तक देश भर में कर्मचारी राज्य बीमा परियोजनाओं के निर्माण के लिए 68 06 करोड़ रुपये की कुल राशि मन्जूर की गई।

निम्नलिखित 7 कर्मचारी राज्य बीमा परियोजनाएँ, जो निर्माणाधीन थी वर्ष 1976-77 के दौरान पूर्ण की गई तथा चालू की गई—

क्रमांक	परियोजना का नाम	व्यवस्था किए गए पलंगों/नियुक्त किए गए डॉक्टरों की संख्या
1	कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल कनबहाल (उड़ीसा)	40
2	कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल उल्लासनगर (महाराष्ट्र)	100
3	कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल ग्वालियर (मध्यप्रदेश)	75
4	कर्मचारी राज्य बीमा उप भवन (अनेक्सी) कावेरी-नगर (तमिलनाडु)	10
5	कर्मचारी राज्य बीमा औषधालय रामागुण्डम (आंध्र प्रदेश)	2 डॉक्टर
6	कर्मचारी राज्य बीमा औषधालय उदयपुर (राजस्थान)	2 डॉक्टर
7	कर्मचारी राज्य बीमा औषधालय चण्डीगढ़	2 डॉक्टर

इस निगम ने सन् 1976 के अन्त तक 10,886 पलंगों वाले 59 पूर्णांग कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालों, 475 पलंगों वाले 25 कर्मचारी राज्य बीमा उपभवनों और 175 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालयों का निर्माण किया है तथा इनमें कार्य आरम्भ किया है। इनके अतिरिक्त 4509 पलंगों वाले 18 कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल, 272 पलंगों वाले 14 कर्मचारी राज्य बीमा उपभवन और 18 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालय विभिन्न राज्यों में निर्माणाधीन हैं और इनमें कुछ शीघ्र ही इस्तेमाल के लिए तैयार हो जाएँगे। इसके अलावा कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत 32 कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल 4 कर्मचारी राज्य बीमा उपभवन और 120 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालयों के निर्माण की योजना बनाई गई है, ताकि पलंगों आदि की कमी पूरी हो जाए। इस योजना के अधीन पूर्णकालिक/अंशकालिक चलते-फिरते औषधालयों और नियोजकों के ऐसे औषधालयों, जिनका इस्तेमाल श्रमिक कर सकते हैं, की कुल संख्या (किराए के परिसरों में स्थित औषधालयों सहित) 895 थी। बीमाकृत व्यक्तियों और उनके परिवारों के इस्तेमाल के लिए अब कुल 15,545 पलंग उपलब्ध हैं। इनमें कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत इस्तेमाल के लिए अन्य अस्पतालों में आरक्षित किए गए पलंग भी शामिल हैं।

किए गए सुधार—कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने परिवार नियोजन के लिए प्रोत्साहन के रूप में नसबन्दी/बन्ध्यकरण ऑपरेशन कराने वाले बीमाकृत व्यक्तियों को वर्धित बीमारी सुविधा देने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। वर्धित बीमारी सुविधा लाभ साधारण बीमारी सुविधा लाभ की दर से दुगुनी दर से पहली अगस्त, 1976 से देय है। यह लाभ अस्पताल में दाखिल होने/ऑपरेशन होने, जैसा भी मामला हो, कि तारीख से मिलता है और इन मामलों में दो दिनों की प्रतीक्षा अवधि लागू नहीं होती। यह लाभ नसबन्दी के मामले में 7 दिनों तक और बन्ध्यकरण ऑपरेशन के लिए 14 दिनों तक उपलब्ध है और यह अवधि ऑपरेशन के कारण हुई बीमारी या ऑपरेशन के बाद उत्पन्न तकलीफों के मामले में बढ़ाई जा सकती है। इस अवधि की गणना उन दिनों में नहीं की जाएगी जिनके लिए बीमारी सुविधा लाभ दिया जाता है। तपेदिक, कोढ़ आदि जैसे रोगों के लिए दिए जाने वाले वर्धित बीमारी सुविधा लाभ की दर में पहली अप्रेल, 1976 से 25% की वृद्धि कर दी गई है। पहली अप्रेल, 1977 से कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत डॉक्टरी देख-रेख पर खर्च की वर्तमान सीमा को वर्धित डॉक्टरी देख-रेख (अर्थात् परिवारों के लिए अस्पताल में भर्ती करके इलाज की सुविधा को छोड़कर सभी सुविधाएँ) के लिए 75 रु० से बढ़ाकर 80 रु० प्रति वर्ष प्रति कर्मचारी किया जा रहा है और पूर्ण डॉक्टरी देखरेख (अर्थात् परिवारों के लिए अस्पताल में भर्ती करके इलाज को सुविधा सहित सभी सुविधाएँ) के लिए 95 रु० से बढ़ाकर 105 रु० प्रति कर्मचारी प्रतिवर्ष किया जा रहा है। बीमाकृत व्यक्तियों के लिए भी चिकित्सा सुविधा की अवधि को एक वर्ष में 56 दिन से बढ़ाकर 91 दिन किया जा रहा है।

प्रशिक्षण—जनवरी से अक्तूबर, 1976 के दौरान विभिन्न केन्द्रों में आयोजित किए गए 45 प्रतिशत पाठ्यक्रमों में 1,083 लिपिक वर्ग के कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया गया। बीमा निरीक्षकों/प्रबन्धकों के लिए नई दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, हैदराबाद और त्रिचुर में 8 प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाए गए और इनमें 168 अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया गया। मध्यप्रबन्ध-स्तर के 49 अधिकारियों अर्थात् उप-क्षेत्रीय निदेशकों/सहायक क्षेत्रीय निदेशकों/लेखा अधिकारियों/उपलेखा अधिकारियों ने अप्रैल और सितम्बर, 1976 के दौरान दिल्ली में चलाए गए दो इन सर्विस प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का लाभ उठाया।

कर्मचारी भविष्य निधि और परिवार पेंशन निधि अधिनियम, 1952 और तदधीन बनाई गई योजनाएँ

प्रयोज्यता—कर्मचारी भविष्य निधि और परिवार पेंशन निधि अधिनियम, 1952 को 1952 में 6 मुख्य उद्योगों पर शुरू करके दिसम्बर 1976 के अन्त तक 150 उद्योगों/प्रतिष्ठानों के वर्गों पर लागू कर दिया गया था। प्रारम्भिक उद्योग थे—सीमेन्ट, सिगरेट, विद्युत, यांत्रिक और सामान्य इंजीनियरिंग वस्तुएँ लोहा और इस्पात, कागज तथा वस्त्र-उद्योग जिनमें 50 या इससे अधिक श्रमिक लगे हों। अधिनियम ने केन्द्रीय सरकार को अधिकार दिया है कि इसे किसी भी कारखाने और अन्य उद्योगों पर लागू किया जा सकता है जहाँ 50 या इससे कम श्रमिक लगे हुए हों। 1960 में संशोधन करके 20 या इससे अधिक काम करने वाले संस्थानों में भी यह अधिनियम लागू कर दिया गया।

प्रशासन—अधिनियम और तदधीन बनाई गई योजना के उपबन्धों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित की गई कर्मचारी भविष्य निधि, अधिनियम के अधीन गठित एक त्रिपक्षीय केन्द्रीय न्यासी बोर्ड के अधिकार में है जो इस निधि का प्रशासन करता है। केन्द्रीय भविष्य निधि आयुक्त कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी तथा बोर्ड के सचिव हैं। देश भर के विभिन्न प्रतिष्ठानों में कर्मचारी भविष्य निधि योजना का प्रशासन करने के लिए इस समय निधि के 15 क्षेत्रीय कार्यालय हैं। अधिनियम और भविष्य निधि योजना का प्रशासन करने में अन्तर्ग्रस्त व्यय की पूर्ति छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानों से प्रशासनिक प्रभारों और छूट प्राप्त प्रतिष्ठानों के नियोजकों से निरीक्षण प्रभारों के उद्ग्रहण में से की जाती है, जिनकी दर क्रमशः वेतन (अर्थात् मूल मजदूरी, महँगाई भत्ता, प्रतिधारण भत्ता, यदि कोई हो, खुराक सम्बन्धी रियायत यदि कोई हो, का नकद मूल्य) 0 37 रुपये प्रतिशत और 0 09 रुपये प्रतिशत है।

सदस्यता—सितम्बर, 1976 के अन्त में शुल्क दाताओं की संख्या 80 63 लाख थी—30 61 लाख छूट प्राप्त प्रतिष्ठानों में और 50 02 लाख छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानों में। 30 सितम्बर, 1976 को छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानों की संख्या 68,466 थी।

अंशदान की बढ़ी हुई दर—30 सितम्बर, 1976 को अंशदान की बढ़ी हुई 'वेतन' के 8 प्रतिशत की दर, ऐसे 94 विशिष्ट उद्योगों/प्रतिष्ठानों के वर्गों पर लागू

थीं, जिनमें 50 या उससे अधिक व्यक्ति नियोजित किए गए थे। पहले यह दर $6\frac{1}{4}\%$ (श्रमिक की मजदूरी का) थी। अशदान मालिकों व श्रमिकों को बराबर-बराबर देना पड़ता है। यदि नियोजक स्वयं तथा उसके श्रमिकों का अशदान नहीं देता है तो उसकी सम्पत्ति को नीलाम किया जा सकता है। अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक को 15 साल की सदस्यता प्राप्त करने पर मालिक द्वारा दिए गए अशदान और उन पर ब्याज दिया जाता है। यदि श्रमिक की नौकरी 10 वर्ष तथा 15 वर्ष से कम हो तो 85 प्रतिशत, 5 वर्ष लेकिन 10 वर्ष से कम हो तो 75 प्रतिशत, 3 वर्ष किन्तु 5 वर्ष से कम हो तो 50 प्रतिशत और 3 वर्ष से कम होने पर 25 प्रतिशत मालिक द्वारा दिए गए अशदान का भाग श्रमिक को मिलता है।

ब्याज की दर—सदस्यों के भविष्य निधि सचयनों (छूट न प्राप्त) में वर्ष 1976–77 के लिए जमा किए जाने वाले ब्याज की दर 7 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी।

अशदान और वापसियां—सितम्बर, 1976 के अन्त में छूट न प्राप्त दोनों प्रकार के प्रतिष्ठानों में एकत्रित की गई भविष्य निधि अशदानों की कुल राशि 4429 13 करोड़ रुपये (अग्रगामी आँकड़े) थी और वापस की गई कुल राशि 1795·54 करोड़ रुपये (अग्रगामी आँकड़े) थी।

निवेश—पहली अप्रैल से 31 दिसम्बर 1976 की अवधि निवेश का पैटर्न इस प्रकार था[1]—

निवेश का प्रकार	कुल निवेश की प्रतिशतता (1-4-76 से 31-12-76 तक)
(1) केन्द्रीय सरकार द्वारा सृष्ट तथा निर्गमित लोक ऋण अधिनियम, 1944 (1944 का 18) की धारा 2 के खण्ड (2) में यथा परिभाषित सरकारी प्रतिभूतियाँ।	25 प्रतिशत से अन्यून
(2) किसी भी राज्य सरकार द्वारा सृष्ट तथा निर्गमित लोक ऋण अधिनियम 1944 (1944 का 18) की धारा 2 के खण्ड (2) में यथा-परिभाषित सरकारी प्रतिभूतियाँ।	25 प्रतिशत से अन्यून।
(3) कोई अन्य परिक्राम्य प्रतिभूतियाँ या बाण्ड, जिनका मूलधन तथा जिन पर ब्याज केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा पूर्णत तथा बिना शर्त गारंटीकृत है।	(2) और (3) मिलाकर
(4) 7-वर्षीय राष्ट्रीय बचत प्रमाण-पत्र (दूसरा निर्गम और तीसरा निर्गम) डाकघर सावधि निक्षेप।	30 प्रतिशत से अनधिक
(5) भारत सरकार के वित्त मन्त्रालय (आर्थिक कार्य विभाग) की अधिसूचना संख्या एफ–16 (1) पी डी/75, तारीख 30 जून, 1975 द्वारा आरम्भ की गई विशेष निक्षेप योजना।	20 प्रतिशत से अनधिक

1. वही, पृष्ठ 6J-J1.

सितम्बर, 1976 के अन्त मे निवेश की कुल राशि 3214 55 करोड रुपये थी, जिसम से 1453 04 करोड रुपये छूट प्राप्त प्रतिष्ठानो से सम्बन्ध रखती है और शेष अर्थात् 1761 51 करोड रुपये छूट प्राप्त प्रतिष्ठानो से सम्बन्ध रखती है ।

अन्तिम भुगतान सम्बन्धी दावो का निपटारा—पहली जनवरी, 1976 से 30–9–76 तक की अवधि के दौरान कुल 2,60,184 दावे (आगे लाए गए दावों सहित) निपटारे के लिए उठाये गए थे, जिनमे से 2,42,291 दावे निपटा दिए गए और 30 सितम्बर, 1976 को 17,893 मामले निपटाने के लिए शेष रह गए थे । दावो के निपटाने म 5,960 12 लाख रुपय का भुगतान किया गया । 93 प्रतिशत दावे निपटा दिए गए तथा 30 दिनो के अन्दर अन्दर उनका भुगतान कर दिया गया। प्रति दावा अदा की गई औसत राशि लगभग 2,448 रुपये बैठती हैं ।

सांविधिक निधि से पेशगियाँ—पहली जनवरी, 1976 से 30 सितम्बर, 1976 की अवधि के दौरान सदस्यो को न लौटाई जाने वाली निम्नलिखित पेशगियाँ दी गई थी —

क्रमांक	पेशगी का प्रकार	मामलों की सख्या	भुगतान की गई राशि (लाख रुपयों में)
1	जीवन बीमा पालिसी मे धन लगाना	35,011	57 00
2	निवास स्थान/मकान की खरीद और/या निवास स्थान का निर्माण	9,205	230 34
3	प्रतिष्ठानो के अस्थायी रूप से बन्द होने के कारण प्रभावित श्रमिक	25,591	108 32
4	उपभोक्ता सहकारी/साख/आवास समितियो के शेयर खरीदना	130	0 08
5	सदस्यो तथा श्रमिको के परिवार की गम्भीर बीमारी के लिए	5,628	48 87
6	छटनी किए गए सदस्यो को बेरोजगारी सहायता पेशगी	—	—
7	पुत्री की शादी और बच्चो की मैट्रिकोत्तर शिक्षा	39,010	464 46
8	सदस्यो की चल या अचल सम्पत्ति को असाधारण प्रकार की प्राकृतिक विपत्तियों के कारण हुई क्षति	21,888	40 00
9	कारखाना/प्रतिष्ठानो की बिजली की आपूर्ति मे कटौती के कारण प्रभावी श्रमिक	1,321	3 54

छूट प्राप्त प्रतिष्ठान—अधिनियम की धारा 17 और योजना के पैरा 27 क के अधीन उन प्रतिष्ठानो और सदस्यो को कर्मचारी भविष्य निधि योजना 1952 के उपबन्धो मे छूट दी जा रही है जिनके निजी भविष्य निधि और/या पेंशन या उपदान सम्बन्धी नियम, सांविधानिक योजना के नियमो से कम लाभदायक नही हैं। छूट प्राप्त प्रतिष्ठानो की सख्या दिसम्बर, 1975 को 2701 थी, जो बढकर सितम्बर, 1976 के अन्त मे 2846 हो गई।

रिजर्व तथा जब्ती खाता—छूट न प्राप्त ऐसे प्रतिष्ठानो के सम्बन्ध मे, जहाँ निधि छोडकर जाने वाले सदस्यो को नियोजको का पूरा अशदान नही दिया जाता, अदा न किया गया अशदान (ब्याज सहित) रिजर्व तथा जब्ती खाते मे जमा कर दिया जाता है। 30 सितम्बर 1976 तक जब्त की गई कुल राशि 15·93 करोड रुपये (अगामी) थी।

विशेष रिजर्व निधि—विशेष रिजर्व निधि का, जो सितम्बर 1960 में स्थापित की गई थी, सचालन सन् 1976–77 के दौरान जारी रहा। जहाँ नियोजक सदस्यो की मजदूरी मे से काटे गए भविष्य निधि अशदानो की पूर्ण या आंशिक राशि को निधि मे जमा कराने मे विफल रहे वहाँ विशेष रिजर्व निधि की राशि का उपयोग निधि छोडकर जाने वाले सदस्यो (छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो मे) को या उनके नामित व्यक्तियो/उत्तराधिकारियों को भविष्य निधि सचयनो के भुगतान के लिए किया गया। 30 सितम्बर, 1976 तक रिजर्व तथा जब्ती खाते मे से इस निधि मे अन्तरित किए गए 85 लाख रुपये तथा छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो के नियोजकों से बकाया राशि के रूप मे वसूल किए गए 39 93 लाख रुपये की कुल राशि मे से 118 56 लाख रुपये की राशि का भुगतान किया जा चुका था। 30 सितम्बर, 1976 को निधि मे शेष बची राशि 6·37 लाख रुपये थी।

मृत्यु सहायता निधि—जनवरी, 1964 मे मृत्यु सहायता निधि का गठन इस विचार से किया गया कि छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो के मृत सदस्यों के नामित व्यक्तियो उत्तराधिकारियो को वित्तीय सहायता प्रदान की जाए, ताकि उन्हें कम से कम 500 रुपये की अदायगी सुनिश्चित हो सके। पहली अगस्त, 1969 से यह सीमा 500 रुपये से बढाकर 750 रुपये कर दी गई। इस निधि मे से सहायता ऐसे मृत सदस्यों के नामित व्यक्तियों/उत्तराधिकारियो को दी जाती है जिनका वेतन उनकी मृत्यु के समय 500 रुपये प्रति माह से अधिक नही होता। 30 सितम्बर, 1976 तक इस ८ मे से 89 65 रुपयें की राशि का भुगतान किया गया।

अतिरिक्त उपलब्धियाँ (अनिवार्य निक्षेप) अधिनियम, 1974 के अधीन जमा राशि का वापसी भुगतान—कर्मचारी भविष्य निधि सगठन द्वारा जिसे यह कार्य सौंपा गया था, अतिरिक्त महँगाई भत्ते की पहली किस्त और मजदूरी की दूसरी किस्त का भुगतान किया जाना था। 31 जनवरी, 1977 को देय राशि और वापस लौटाई गई राशि की स्थिति इस प्रकार थी—

	मजदूरी	दत्त राशि	वापस की गई राशि
1.	पहली किस्त	9 33 करोड़	8 96 करोड़
	दूसरी किस्त	9 87 ,,	9·27 ,,
2.	महगाई भत्ता	95·60 ,,	90 87 ,,

कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा स्कीम, 1976—भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 में पहली अगस्त, 1976 को सशोधन करके केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियों को जीवन बीमा लाभ प्रदान करने के लिए जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा स्कीम बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। तदनुसार, कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा स्कीम, 1976 नामक एक योजना अधिसूचित की गई और पहली अगस्त, 1976 से लागू की गई। नवम्बर, 1976 के अन्त तक इस स्कीम के अन्तर्गत प्राप्त अशदान और प्रशासनिक प्रभार तथा प्राप्त और निपटाए गए दावों की सख्या का ब्यौरा इस प्रकार है—

(1)	नियोजकों से प्राप्त अशदान	2,68,47,492·00 रु
(2)	प्रशासनिक प्रभार	57,00,337 00 रु.
(3)	प्राप्त दावों की सख्या	58
(4)	निपटाए गए दावों की सख्या	कुछ नहीं

दावों को निपटाने की कार्यवाही की जा रही है।

कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम 1952 और उसके अधीन बनाई गई योजनाओं में किए गए महत्त्वपूर्ण सशोधन—कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 में निम्नलिखित सशोधन किए गए—

क (1) पैरा 68 ख(1) में सशोधन किया गया है, जिससे आवासगृह या आवास स्थान खरीदने के लिए पेशगी का भुगतान सीधे राज्य सरकार या सहकारी समिति, सस्थान न्यास स्थानीय निकाय या आवास वित्तीय निगम को जैसी भी स्थिति हो, किया जाएगा और न कि सदस्य को।

(2) पैरा 68 ख(2) में सशोधन किया गया है, जिससे इस पैरा के अधीन निधि के सदस्य को पेशगी का हकदार बनाने के लिए सदस्यता की अवधि को सात वर्ष से घटाकर पांच वर्ष कर दिया गया है।

(3) पैरा 68(ख) (5), 68ग(6) और 68छ (6) में सशोधन किया गया है जिससे सदस्य के अपने आवासगृह में अतिरिक्त निर्माण, पर्याप्त परिवर्तन या आवश्यक सुधार करने के लिए छः मास की मूल मजदूरी और महँगाई भत्ते के बराबर अतिरिक्त पेशगी एक बार और केवल एक किस्म में दी जा सकती है। यह पेशगी आवास गृह का निर्माण-कार्य पूरा होने की तारीख में पांच वर्ष की अवधि के बाद ही ग्राह्य है।

ख. पैरा (3) (ख) मे सशोधन किया गया है ताकि 30 सितम्बर, 1976 से ऐपेटाइट, एस्बेस्टोस कंल्साइट बाला क्ले, कुरुविन्द, मरवात लाल स्फटिक धातु, सिलिका (मेंड), काचमणी, गेरू, क्रोमाइट, ग्रेफाइट और फ्लोराइट खानो को इस स्कीम के अन्तर्गत लाया जा सके।

ग. पैरा 18(4) मे यह स्पष्ट करने के लिए सशोधन किया गया है कि जब कोई मत्री क्षेत्रीय समिति या बोर्ड का सदस्य या अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है और ऐसे केन्द्रीय बोर्ड या क्षेत्रीय समिति की बैठक मे, जैसी भी स्थिति हो, उपस्थित होता है, तब उस को यात्रा भत्ता और दैनिक भत्ता उन्ही नियमो के अनुसार मिलेगा, जो उसे सरकारी कार्य के लिए की गई यात्राओ के सम्बन्ध मे लागू होते हैं और इनका भुगतान वही प्राधिकरण करेगा जो उन्हे वेतन देता है।

घ पैरा 26-क मे सशोधन किया गया है जिससे 11 दिसम्बर, 1976 से निधि की सदस्यता का हकदार बनने के लिए उच्चतम वेतन सीमा 1000 रुपये प्रतिमाह से बढाकर 1600 रु० प्रतिमाह कर दी गई।

बकाया राशियो की वसूली—भविष्य निधि अशदानो की बकाया राशि मार्च, 1976 के अन्त मे 20 68 करोड रुपये थी, जो घटकर सितम्बर, 1976 के अन्त में 18 58 करोड़ रुपये रह गई। परिवार पेंसन अशदान की बकाया राशि मार्च, 1976 के अन्त मे 54·81 लाख रुपये थी यह भी घटकर सितम्बर, 1976 के अन्त मे 52·89 लाख रुपये रह गई।

कोयला खान भविष्य निधि योजना[1]

प्रयोज्यता—कोयला खान भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम 1948 के अधीन बनाई गई कोयला खान भविष्य निधि योजना भारत की सभी कोयला खानो पर लागू होती है। यह योजना, जो शुरू मे पश्चिम बंगाल और बिहार राज्यो की कोयला खानो मे आरम्भ की गई थी, बाद मे क्रमिक रूप से असम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, नागालैण्ड और उडीसा मे लागू कर दी गई। आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान के लिए अलग योजनाएँ बनाई गई और उन्हे इन राज्यो मे स्थित कोयला खानो मे अक्तूबर 1955 मे लागू किया गया था। एक और नई योजना की भी तैयारी की गई और उसे पहली जनवरी, 1967 से नेवेली लिग्नाइट निगम की कोयला खानो और अनुषगी सगठनो पर लागू किया गया। अधिनियम को पहली सितम्बर, 1971 को जम्मू कश्मीर राज्य पर लागू किया गया और कोयला खान भविष्य निधि योजना, 1948 इस राज्य की कोयला खानो पर पहली अक्तूबर, 1971 से लागू की गई।

सीमाक्षेत्र—जनवरी, 1976 से दिसम्बर, 1976 के दौरान 32 नई कोयला/अनुषंगी कोयला खान भविष्य निधि योजना के अन्तर्गत लाए गए। 31 दिसम्बर,

1. वही, पृष्ठ 66–73.

1976 को इस योजना के अन्तर्गत आ चुकी कोयला खानों/अनुषगी सगठनो की कुल सख्या 1061 थी। यद्यपि 1976–77 के दौरान 32 नई कोयला खानें/अनुषगी सगठन इस योजना के अन्तर्गत लाए गए तो भी राष्ट्रीयकरण के बाद कोयला खानों के पुनर्गठन के कारण इस योजना के अन्तर्गत अन्तत आए खनिको की सख्या कम हो गई।

सदस्यता—शामिल न किए गए वर्गों को छोड़कर, ऐसे सभी व्यक्तियो के लिए जो कोयला खानो मे या कोयला खानो के सम्बन्ध मे सीधे नियोजको द्वारा या ठेकेदारो द्वारा या ठेकेदारो की मार्फत नियोजित किए जाते हैं, निधि का सदस्य बनना आवश्यक है, जब वे एक कैलेण्डर तिमाही म पृथ्वी के ऊपर नियोजित होने की सूरत मे 60 दिन की हाजिरी और भूमि के नीचे नियोजित होने की सूरत म 48 दिन की हाजिरी पूरी कर लें। जनवरी से दिसम्बर, 1976 की अवधि के दौरान 59,417 व्यक्तियो को निधि के नए सदस्यो के रूप मे सूचीबद्ध किया गया और 31 दिसम्बर, 1976 को पजीकृत सदस्य सख्या 15,98,385 तक पहुँच गई, 31 दिसम्बर, 1976 को निधि मे अशदान देने वाले सदस्यो की वास्तविक सख्या 6,62,857 थी।

अशदान—निधि के सदस्यो के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी कुल परिलब्धियो के 8 प्रतिशत की दर से अनिवार्य रूप से अशदान दें। नियोजको को बराबर का अशदान देना पडता है। यदि सदस्य चाहे तो वे अपनी अनिवार्य अशदान के अलावा, अपनी कुल परिलब्धियो के 8 प्रतिशत तक की दर से स्वैच्छिक अशदान भी दे सकते हैं। जनवरी, 1976 से दिसम्बर, 1976 की अवधि के दौरान वसूल किए गए अशदानो की राशि इस प्रकार थी—

अशदानो की किस्म	31-12-75 तक वसूल की गई राशि	जनवरी से दिसम्बर 1976 के दौरान वसूल की गई राशि	31-12-76 तक वसूल की गई राशि
अनिवार्य अशदान (जिसमे 12-3-47 से 30-9-48 तक की अवधि के लिए बोनस मे से दिया गया आरम्भिक अशदान शामिल है)	209 18	35 10	244 28
स्वैच्छिक अशदान	0 27	0 02	0 28
कोयला खान जमा सम्बद्ध (लिक्ड) बीमा निधि	—	0 06	0 06
	209 45	35 18	244 62

31 दिसम्बर, 1976 को स्वैच्छिक अशदान देने वाले सदस्यो की सख्या 2688 थी।

निवेश—न्यासी बोर्ड के निर्णय के मुताबिक निधि की ऐसी राशियों का निवेश, जिनकी निधि छोड़कर जाने वाले सदस्यो आदि को तत्काल लौटाने की आवश्यकता नही होती, निम्नलिखित पैटर्न के अनुसार किया जाता है जो 19 मार्च, 1976 से लागू हुआ—

(i) केन्द्रीय सरकार द्वारा सृष्ट तथा निर्गमित लोक ऋण अधिनियम, 1944 (1944 का 18) की धारा 2 मे यथा परिभाषित सरकारी प्रतिभापित सरकारी प्रतिभूतियाँ	25 प्रतिशत से अन्यून
(ii) किसी भी राज्य सरकार द्वारा सृष्ट तथा निर्गमित लोक ऋण अधिनियम 1944 (1944 का 18) की धारा 2 मे यथा परिभाषित सरकारी प्रतिभूतियाँ	5 प्रतिशत से अन्यून
(iii) कोई अन्य परिक्राम्य प्रतिभूतियाँ/बाण्ड, जिनका मूलधन तथा जिन पर ब्याज केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा पूर्णत तथा बिना शर्त गारण्टीकृत है	20 प्रतिशत से अन्यून
(iv) डाकघर सावधि निक्षेप	30 प्रतिशत से अनधिक
(v) भारत सरकार के वित्त मन्त्रालय (आर्थिक कार्य विभाग) की अधिसूचना सख्या एफ-16(1)/पी डी./75 तारीख 30-6-75 द्वारा आरम्भ की गई विशेष निक्षेप योजना	20 प्रतिशत से अनधिक

31 दिसम्बर, 1976 को निधि के निवेश का कुल प्रत्यक्ष मूल्य इस प्रकार था—

(vi) 31 दिसम्बर, 1975 को निधि के निवेशो का प्रत्यक्ष मूल्य (कोयला खान भविष्य निधि कार्यालय प्रतिष्ठान भविष्य निधि और कोयला खान भविष्य निधि कर्मचारी पेंशन एव उपादान निधि को शामिल न करते हुए)	239 43 करोड़
(vii) पहली जनवरी, 1976 से 31 दिसम्बर, 1976 की अवधि के दौरान किए गए निवेशो का प्रत्यक्ष मूल्य	100 71 करोड
योग	340 14 करोड़
(viii) घटाइए : जनवरी, 1976 से 31 दिसम्बर, 1976 के दौरान परिपक्व हुई/बदली गई/बेची गई प्रतिभूतियाँ	7·41
(ix) 31 दिसम्बर, 1976 को निधि के कुल निवेश का प्रत्यक्ष मूल्य	332·73

धन-वापसी—वार्धक्य निवृत्ति छटनी, कार्य करने में पूर्ण अक्षमता और मृत्यु के मामलों में भविष्य निधि की पूरी रकम लौटा दी जाती है। अन्य मामलों में सदस्यता की अवधि पर निर्भर करते हुए नियोजकों के अंशदान का एक भाग (उसके ब्याज सहित) जब्त किया जाता है। पहली जनवरी से 31 दिसम्बर, 1976 तक की अवधि के दौरान तय किए गए दावों की संख्या और लौटाई गई राशि नीचे दर्शाई गई है—

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	तय किए गए दावों की संख्या	लौटाई गई राशि
31 दिसम्बर 1975 तक	6,18,020	57 25
पहली जनवरी से 31 दिसम्बर, 1976 तक की अवधि के दौरान	14,404	9 11
जोड़ 31 दिसम्बर, 1976 तक	6,32,424	66 36

वसूल न की जाने वाली पेशगियाँ—इस योजना में उपभोक्ता सहकारी समितियों के शेयर खरीदने, मकान बनाने, बीमा पालिसियों में धन लगाने और पुत्रियों के विवाह एवं बच्चों की उच्च शिक्षा से सम्बन्धित व्यय की पूर्ति के लिए वसूल न की जाने वाली पेशगियाँ देने की व्यवस्था है। विभिन्न प्रयोजनों के लिए दी गई पेशगियों का ब्यौरा नीचे दिया गया है—

(करोड़ों रुपये में)

पेशगी की किस्म	भुगतान की अवधि	सदस्यों की संख्या जिन्हें पेशगियाँ दी गईं	दी गई राशि
1	2	3	4
(i) मकान बनाने के लिए पेशगी	31-12-75 तक	12,265	2 15
	जनवरी से दिसम्बर, 1976 के दौरान	57	0 02
	योग	12 322	2 17
(ii) जीवन बीमा पालिसियों की किस्तों का भुगतान करने के लिए पेशगी (सीधे जीवन बीमा निगम किस्तों का भुगतान किया गया)	31-12-75 तक	17,165	1 40
	जनवरी से दिसम्बर, 1976 के दौरान	322	0 16
	योग 31-12-76 तक	17,487	1 56

(करोड़ रुपयो मे)

1	2	3	4
(iii) पुत्रियो की शादी के लिए पेशगी	31-12-75 तक	—	—
	जनवरी से दिसम्बर, 1976 के दौरान	16,485	2 03
	जोड़ 31-12-76 तक	16,485	2 03
(iv) बच्चो की मैट्रिक के बाद की शिक्षा के लिए पेशगी	31-12-75 तक	—	—
	जनवरी से दिसम्बर, 1976 के दौरान	17	0·002
	जोड़ 31-12-76 तक	17	0 002

मृत्यु सहायता निधि—ऐसे मामलों मे जहां सदस्य की मृत्यु कोलियरी की सेवा छोड़ने की तारीख से दो वर्ष की दर हो जाती है, वहाँ मृत सदस्य की निधि मे संचयन की राशि 750 रुपये से जितनी कम पड़ती है, उतनी राशि मृत्यु सहायता निधि मे दी जाती है। योजना के उपबन्धो के अधीन सदस्यो के खातो मे से जब्त किए गए नियोजको के अंशदान और उसके ब्याज की राशियो से मृत्यु सहायता निधि के लिए धन की व्यवस्था की जाती है। मृत्यु सहायता निधि मे से निम्नलिखित भुगतान किए गए—

(रुपये लाखो मे)

	ऐसे मामलो की संख्या जिनमे भुगतान मृत्यु सहायता निधि मे से किया गया	मृत्यु सहायता निधि मे से भुगतान की गई राशि
31-12-1975 तक	1593	4·13
जनवरी से दिसम्बर, 1976 के दौरान	98	0 34
जोड़ 31-12-76 तक	6191	4 47

बकाया राशियों की वसूली—निधि की बकाया देय राशियों में वृद्धि होती रही है यह तथ्य नीचे दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट हो जाएगा—

(रुपये करोड़ में)

निम्नलिखित तिथि को स्थिति	प्रशदानों की देय राशियाँ	हरजाना	जोड़
31-3 71	6 30	0 92	7 22
31-3-72	9 27	1 21	10 48
31-3 73	10 91	1 81	12 72
31-3 74	13 84	2 05	15 89
31-3-75	14 38	2 00	16 45
31 3-76	12·18	9 37	21 55

तथापि, सरकारी क्षेत्र की कोयला कम्पनियों ने 31 मार्च,1976 तक की अपनी सभी बकाया राशियों का भुगतान कर दिया।

अभियोजन—दिसम्बर, 1976 के अन्त में 31 55 करोड़ रुपये की कुल देय राशि में से 12 79 करोड़ रुपये वसूल करने के लिए प्रमाणपत्र मामले न्यायालयों में लम्बित पड़े थे। इसके अतिरिक्त, उस तारीख के कोयला खान भविष्य निधि प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम के अधीन 540 अभियोजन और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 406 के अधीन 8 अभियोजन भूतपूर्व कोलियरी नियोजकों के विरुद्ध न्यायालयों में लम्बित थे।

व्यवस्था—कोयला खान भविष्य निधि योजना की व्यवस्था एक त्रिपक्षीय न्यासी बोर्ड द्वारा की जाती है और इसकी व्यवस्था के खर्च का वहन उस विशेष महसूल से किया जाता है जो श्रमिकों और नियोजकों की निधि में अनिवार्य प्रशदान के 3 5% की दर से नियोजकों पर लगाया जाता है। इस समय देश भर के विभिन्न कोयला क्षेत्रों में कोयला खान भविष्य निधि और कोयला खान परिवार पेंशन योजनाओं की व्यवस्था के लिए निधि के 8 क्षेत्रीय कार्यालय हैं।

महत्त्वपूर्ण परिवर्तन—वर्ष के दौरान, कोयला खान भविष्य निधि योजना में, (1) उपभोक्ता सहकारी समितियों के शेयर खरीदने के लिए वापस न की जाने वाली पेशगी की राशि को बढ़ाने, (2) सहकारी उधार समितियों के शेयर खरीदने के लिए व्यवस्था करने, (3) कतिपय परिस्थितियों में भविष्य निधि से भुगतान की जाने वाली जीवन बीमा पालिसियों का पुन प्रत्यर्पित (रीग्रसाइनिंग) करने, और (4) न्यासी बोर्ड की बैठकों के लिए कोरम को कम करने के लिए संशोधन किए गए।

परिवार पेंशन योजनाएँ—कर्मचारी परिवार पेंशन योजना, 1971 और कोयला खान परिवार पेंशन योजना, 1971 जो पहली मार्च, 1971 से चालू हुई थी, श्रमिकों को लाभ पहुँचाती रही। 30 सितम्बर, 1976 को इन दोनों योजनाओं के अन्तर्गत आने वाले श्रमिकों की कुल संख्या क्रमश 32 24 लाख और 5 31 लाख थी।

कोयला खान भविष्य निधि जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना—केन्द्रीय सरकार ने कोयला उद्योग के कर्मचारियों के लिए पहली अगस्त, 1976 को कोयला खान जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना, 1976 आरम्भ की। इस योजना के अन्तर्गत, किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु पर, जो कोयला खान भविष्य निधि का सदस्य है, भविष्य निधि की देय राशि प्राप्त करने का हकदार, व्यक्ति, भविष्य निधि की राशि के अतिरिक्त, मृत व्यक्ति के लेखे में पिछले तीन वर्षों की औसत शेष राशि (बशर्ते कि यह राशि 1000 रुपये से कम नहीं है) के बराबर राशि जो अधिक से अधिक 10,000) रुपए हो सकती है, प्राप्त करने का भी हकदार है। कर्मचारी को कोई अंशदान नहीं देना होगा। इस योजना और इसकी व्यवस्था पर खर्च का वहन नियोजकों तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा 2:1 के अनुपात में किया जाएगा।

उपदान भुगतान अधिनियम, 1972
(The Payment of Gratuity Bill, 1972)

जिन उद्योगों में प्रोविडेण्ट फण्ड अथवा पेन्शन योजनाएँ नहीं हैं, उनमें उपदान या (आनुतोषिक ग्रेच्युटी) की माँग की जाने लगी और उदार नियोजितों ने श्रम संघों से समझौता करके इस प्रकार की योजना चालू करने पर सहमति प्रकट की। सर्वप्रथम सन् 1971 में केरल और पश्चिम बंगाल की राज्य-सरकारों ने उपदान अधिनियम पास किए जिनके अन्तर्गत कारखानों, बागानों, दुकानों और अन्य संस्थानों को शामिल किया गया। शीघ्र ही एक केन्द्रीय अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई और दिसम्बर, 1971 में उपदान भुगतान विधेयक लोकसभा में पेश कर दिया गया जो पारित होकर सन् 1972 में अधिनियम बन गया।

उपदान संदाय अधिनियम, 1972 में प्रतिमास, 1000 रुपये या उससे कम मजदूरी पाने वाले कर्मचारियों को उपदान के भुगतान की व्यवस्था की गई है। यह अधिनियम निम्नलिखित पर लागू होता है[1]—

(1) प्रत्येक कारखाना, खान, तेल क्षेत्र, बागान, पत्तन और रेलवे कम्पनी;

(2) किसी राज्य में दुकानों और प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में इस समय लागू किसी भी कानून के अर्थ के अन्तर्गत आने वाली प्रत्येक दुकान और प्रतिष्ठान, जिसमें 10 या उससे अधिक व्यक्ति नियोजित हैं या पिछले बारह महीनों में किसी भी दिन नियोजित थे, और

(3) ऐसे अन्य प्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानों का वर्ग, जिनमें 10 या अधिक कर्मचारी नियोजित हैं या पिछले बारह महीनों में किसी भी दिन नियोजित थे, जिन्हें केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट करें। इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार ने मोटर परिवहन श्रमिक अधिनियम, 1961 की धारा 2 (छ) में यथा परिभाषित मोटर परिवहन उपक्रमों को निर्दिष्ट किया है बशर्ते कि उनमें 10 या अधिक व्यक्ति नियोजित हों।

1. वही, पृष्ठ 73-74.

सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष या उसके छः मास से अधिक भाग के लिए कर्मचारियों द्वारा प्राप्त अन्तिम मजदूरी दरों पर आधारित 15 दिनों की मजदूरी की दर से परिगणित उपदान नियोजक द्वारा देय है, परन्तु इस राशि की अधिकतम सीमा 20 महीनों की मजदूरी है। तथापि किसी मौसमी प्रतिष्ठान में नियोजित कर्मचारी के मामले में नियोजक को प्रत्येक मौसम के लिए सात दिनों की मजदूरी की दर से उपदान देना अपेक्षित है।

कर्मचारी द्वारा कम से कम पाँच वर्ष की लगातार सेवा किए जाने के बाद, (1) वार्धक्य निवृत्ति (2) सेवा निवृत्ति या त्याग-पत्र, (3) दुर्घटना या बीमारी के कारण मृत्यु या बीमारी के कारण मृत्यु या विकलांगता की वजह से नौकरी समाप्त होने पर उसे उपदान दिया जाता है। 5 वर्षों की सेवा की अर्हक अवधि, दुर्घटना या या बीमारी के कारण हुई मृत्यु या विकलांगता के मामलों पर लागू नहीं होती।

सामाजिक सुरक्षा की एकीकृत योजना
(Integrated Scheme of Social Security)

औद्योगिक श्रमिकों को प्रदान की जाने वाली विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में एकरूपता लाने तथा प्रशासनिक व्यय को कम करने के लिए एक एकीकृत योजना पर शुरू से ही विचार किया गया है। इसी उद्देश्य हेतु श्री वी. के. आर. मैनन की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया। इस अध्ययन दल ने अग्रलिखित सिफारिशें की थीं—

1 कर्मचारी बीमा व प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियमों का प्रशासन एक होना चाहिए।

2 बीमा अधिनियम में मालिकों के हिस्से को 4½% से बढ़ाया जाए तथा राज्य सरकारों के चिकित्सा व्यय को घटाकर ½ कर दिया जाए।

3 प्रोविडेन्ट फण्ड के तहत मालिकों और श्रमिकों के अंशदान को बढ़ाकर 8⅓% कर दिया जाए। साथ ही 20 या इससे अधिक कार्यरत वाले संस्थानों पर भी यह अधिनियम लागू किया जाए।

4 प्रोविडेन्ट फण्ड को वृद्धावस्था पेंशन तथा ग्रेच्युटी में बदल दिया जाए।

कर्मचारी राज्य बीमा रिव्यू समिति ने भी सिफारिश की कि प्रशासनिक व्यय को कम करने हेतु दोनों अधिनियमों का प्रशासन एक कर देना चाहिए। अल्पकालीन लाभ कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत दिए जाने चाहिए तथा दीर्घकालीन लाभ कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम 1952 के अन्तर्गत दिए जाने चाहिए।

अभी तक सामाजिक बीमा योजना की प्रगति काफी नहीं हुई है। बीमारी, प्रसूति और क्षतिपूर्ति बीमा के क्षेत्र में कुछ अच्छी प्रगति हुई है।

जहाँ तक सामाजिक सुरक्षा की सामान्य योजना का प्रश्न है वर्तमान परिस्थितियों में यह हमारे देश में सम्भव नहीं है। अतः सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत सभी औद्योगिक श्रमिकों को लाना होगा और बाद में धीरे-धीरे अन्य श्रमिकों को भी इसके अन्तर्गत लाया जा सकता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 (National Comm ssion on Labour) का सुझाव था कि एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की जानी चाहिए जिसमें सभी धन एक ही कोष में एकत्रित किया जाए और इसी कोष में से जरूरतमंद व्यक्तियों को भुगतान किया जा सके। अंशदानों में वृद्धि करके एक अलग से कोष बनाया जाए जो कि सरकार के पास रहेगा। इस कोष में से श्रमिकों को अन्य आकस्मिकताओं के शिकार होने पर सहायता मिल सकेगी। गरीबी, बेरोजगारी और बीमारी को समाप्त करने के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना अपनाना आवश्यक है। श्रम सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता को मिलाकर एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार करना आवश्यक है।

विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की प्रगति और क्रियान्वयन से भी हमें अब पता चला है कि हमारे देश में औद्योगिक श्रमिकों हेतु एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की जाए। लेकिन इस प्रकार की व्यापक योजना तैयार करने व लागू करने में कई कठिनाइयाँ आएँगी, जैसे चिकित्सा सुविधाओं की कमी, वित्तीय और प्रशासनिक कठिनाइयाँ, कृषि श्रमिकों और जनसंख्या के अन्य वर्गों को शामिल करने में कठिनाइयाँ आदि। अत वर्तमान परिस्थितियों में मौजूदा अधिनियमों के क्षेत्रों को व्यापक करना होगा और उनका क्रियान्वयन भी प्रभावपूर्ण करना होगा।

कुछ नये श्रम-विधान, श्रम-कानूनों, विनियमों में संशोधन और नये विधान सम्बन्धी प्रस्ताव

भारत सरकार श्रम मन्त्रालय की 1976-77 की वार्षिक रिपोर्ट में कुछ नये श्रम-विधानों, श्रम-कानूनों–विनियमों में संशोधनों और नये विधान सम्बन्धी प्रस्तावों का उल्लेख किया गया है। रिपोर्ट का विवरण इस प्रकार है—

I नये श्रम-विधान

बीड़ी श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम, 1976 और बीड़ी श्रमिक कल्याणनिधि अधिनियम, 1976—संसद के दोनों सदनों द्वारा यथापारित श्रमिक कल्याण उपकर विधेयक 1976 को राष्ट्रपति की स्वीकृति क्रमशः 7 अप्रैल 1976 तथा 10 अप्रैल 1976 को प्राप्त हुई। इन अधिनियमों में बीड़ी उद्योग में नियोजित श्रमिकों से सम्बन्धित कल्याण कार्यों के वास्ते धन जुटाने के लिए बीड़ी निर्माण हेतु गोदाम से जारी किए गए तम्बाकू पर उपकर लगाने तथा उसे वसूल करने की व्यवस्था की गयी है। ये अधिनियम और बीड़ी श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम 1976 के अधीन बनाए गए नियम 15 फरवरी 1977 से लागू किए गए। बीड़ी श्रमिकों के कल्याण निधि अधिनियम 1976 के अधीन नियम तैयार किए जा रहे हैं।

लोहा अयस्क खान तथा मैंगनीज अयस्क खान श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम, 1976 और लोहा अयस्क खान तथा मैंगनीज अयस्क खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम 1976—संसद के दोनों सदनों द्वारा यथा–पारित लोहा अयस्क खान तथा मैंगनीज अयस्क खान श्रमिक कल्याण उपकर विधेयक, 1976

को और लोहा अयस्क खान तथा मैंगनीज अयस्क खान श्रमिक कल्याण निधि विधेयक 1976 को राष्ट्रपति की स्वीकृति क्रमश 7 अप्रैल 1976 और 10 अप्रैल 1976 को प्राप्त हुई। लोहा अयस्क खानो म नियोजित व्यक्तियो के लिए एक कल्याण निधि पहले से ही विद्यमान है। नये अधिनियमा का प्रयोजन लोहा अयस्क तथा मैंगनीज अयस्क खानो म नियोजित श्रमिको के लिए एक सयुक्त कल्याण निधि स्थापित करना और मैंगनीज खानो म नियोजित व्यक्तियो के कल्याण हेतु धन जुटान के लिए मैंगनीज अयस्क पर एक नया उपकर वसूल करना है। लोहा अयस्क पर लगा वर्तमान उपकर तथा लोहा अयस्क खान श्रमिको का इस समय दी जा रही सुविधाएँ जारी रहेगी।

समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976—राष्ट्रपति द्वारा 26 सितम्बर 1975 को जारी किए गए समान पारिश्रमिक अध्यादेश 1975 का स्थान 1 फरवरी 1976 को एक अधिनियम ने ले लिया। अधिनियम की धारा 1(3) म यह व्यवस्था है कि यह अधिनियम उस तारीख को लागू होगा जिसे केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा नियत करेगी, परन्तु यह तारीख अधिनियम के पारित हो जाने की तारीख से 3 वर्ष व्यतीत होने से पहले की होगी। अलग अलग प्रतिष्ठानो के या रोजगारों के लिए अलग अलग तारीखें नियत की जा सकती हैं। अब तक इस अधिनियम को 14 रोजगारों मे लागू किया जा चुका है, जिनका ब्यौरा इस रिपोर्ट के पैरा 5 14 म दिया गया है।

इस अधिनियम म महिलाओ के लिए रोजगार के अवसर बढाने हेतु सलाहकार समितियाँ गठित करने की व्यवस्था की गई है। अब तक गठित की गयी समितियो का ब्यौरा पैरा 5 13 म दिया गया है।

समान पारिश्रमिक अध्यादेश, 1975 के अधीन बनाए गए नियमो का स्थान 11 मार्च 1976 को समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 के अधीन बनाए गए नियमो ने ले लिया।

बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम 1976—बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) अध्यादेश 1975 जिसे राष्ट्रपति द्वारा 24 अक्तूबर 1975 को जारी किया गया था, का स्थान 9 फरवरी के 1976 को ससद के एक अधिनियम ने ले लिया। इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियम 28 फरवरी 1976 को प्रकाशित किए गए।

विक्रय सवर्धन कर्मचारी (सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1976—विक्रय सवर्धन कर्मचारी (सेवा की शर्तें) अधिनियम 1976 जिसका उद्देश्य कतिपय प्रतिष्ठानो के विक्रय सवर्धन कर्मचारियों की सेवा की शर्तों का विनियमन करना है, ससद द्वारा पारित किया गया और 25 जनवरी 1976 को इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। यह अधिनियम 6 मार्च 1976 को लागू हुआ। इस अधिनियम का कार्यान्वयन राज्य सरकारें करती हैं। तथापि केन्द्रीय सरकार ने विक्रय सवर्धन कर्मचारी (सेवा की शर्तें) नियम 1976 बनाया तथा उन्हें 8 मार्च 1976 को अधिसूचित किया। ये नियम राज्य सरकारों के लिए मार्ग-दर्शक का काम करेंगे।

II श्रम कानूनों/विनियमों में संशोधन

कर्मचारी भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम 1952 और कोयला खान भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1948—कर्मचारी भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम 1952 और कोयला खान भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1948 मे पहली अगस्त 1976 से संशोधन करके केन्द्रीय सरकार को जमा सम्बद्ध बीमा योजनाएँ बनाने का अधिकार दिया गया, ताकि इन दो अधिनियमो के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियो को जीवन बीमे की सुविधाएँ प्रदान की जा सकें। तदनुसार, कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना 1976 और कोयला खान जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना, 1976 नामक दो योजनाएँ अधिसूचित की गयी हैं तथा ये पहली अगस्त 1976 से लागू की जा रही हैं।

इन योजनाओ मे यह व्यवस्था है कि इन दो अधिनियमो के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारी की मृत्यु की सूरत मे, उनके भविष्य निधि सचयो को प्राप्त करने के हकदार व्यक्ति अतिरिक्त भुगतान के हकदार होंगे जिसकी राशि पिछले तीन वर्षों के दौरान मृत व्यक्ति के भविष्य निधि खाते मे पडी औसत बाकी धनराशि (बैलेंस) के बराबर होगी, परन्तु इस अतिरिक्त भुगतान की राशि 10,000 रुपये से अधिक नहीं होगी। शेष राशि लाभानुभोगी व्यक्ति के नाम से बैंक मे खोले जाने वाले बचत खाते में जमा कराई जाएगी।

इस योजना के अन्तर्गत कर्मचारी को कोई अंशदान नहीं देना पडेगा, परन्तु इस योजना के अन्तर्गत देय सुविधा-राशि का हकदार बन सकने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने भविष्य निधि खाते मे कम से कम 1000 रुपये की औसत बाकी धनराशि (बैलेंस) जमा रखे। इस बारे मे किए गए भुगतान की राशि न तो कुर्क की जा सकेगी और न ही उस पर कोई आय कर ही लगाया जा सकेगा।

इस योजना के अन्तर्गत नियोजको तथा केन्द्रीय सरकार को प्रतिमाह कर्मचारियो के वेतन बिलो की राशि पर हर 100 रुपये के लिए क्रमश 50 पैसे तथा 25 पैसे अंशदान देना होगा। इसके अतिरिक्त नियोजक तथा केन्द्रीय सरकार वेतन बिल के हर 100 रुपये पर प्रशासनिक प्रभारो के रूप में क्रमशः 10 पैसे और 5 पैसे की दर से अंशदान देंगे।

औद्योगिक विवाद अधिनियम 1948 में संशोधन—संसद ने औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम 1976 पारित किया जिसमे एक नया अध्याय 5—ख शामिल है। इस अधिनियम को राष्ट्रपति की स्वीकृति 16 फरवरी 1976 को प्राप्त हुई। इस अधिनियम मे ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानो के नियोजको के लिए जो 300 या उससे अधिक कर्मकारो को नियोजित करने वाले कारखानों, खानें और बागान हैं, यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे कर्मकारों को जबरी छुट्टी (ऐसी जबरी छुट्टी को छोडकर जो विद्युत की कमी या दैवी दुर्घटना के कारण हो) पर भेजने या उनकी छटनी करने से पहले विनिर्दिष्ट प्राधिकारी से पूर्वानुमति प्राप्त करें। किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान को बन्द करने से पूर्व भी उन्हें सम्बद्ध सरकार से

पूर्व स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। केन्द्रीय क्षेत्र के सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी श्रम मंत्रालय का सचिव है। अध्याय 5–ख के प्रयोजनों के लिए ऐसी कम्पनियाँ, जिनकी प्राप्ति शेयर पूँजी में से 51 प्रतिशत पूँजी केन्द्रीय सरकार की है, और संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून द्वारा उसके अन्तर्गत स्थापित किया गया कोई भी निगम केन्द्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यह संशोधित अधिनियम 5 मार्च 1976 को लागू हुआ।

कर्मकार प्रतिकार अधिनियम 1923 में संशोधन—कर्मकार प्रतिकार अधिनियम 1923 में 21 मई 1976 को कर्मकार प्रतिकार (संशोधन) अधिनियम 1976 द्वारा पूर्वापेक्षी प्रभाव से अर्थात् पहली अक्तूबर 1976 से संशोधन किया गया। संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध ये थे—

(I) अधिनियम के अन्तर्गत आने के लिए मजदूरी सीमा 500 प्रतिमाह से बढ़ाकर 1000 प्रतिमाह कर दी गयी है, और

(II) अधिनियम की अनुसूची 4 में निर्धारित प्रतिकर की दरों में समुचित संशोधन किया गया।

प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961 में संशोधन—प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961 में 3 अप्रैल 1976 को प्रसूति प्रसुविधा (संशोधन) अधिनियम 1976 द्वारा संशोधन करके इस अधिनियम के अधीन ऐसे महिला कर्मचारियों को प्रसूति लाभों के भुगतान की व्यवस्था की गयी है जो कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 के अन्तर्गत आते हैं और जो उस अधिनियम में विनिर्दिष्ट राशि से अधिक मजदूरी प्राप्त करते हैं। यह संशोधी अधिनियम पहली मई 1976 को लागू किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1948 में संशोधन—कारखाना (संशोधन) अधिनियम 1976 जो श्रम मन्त्रियों के सम्मेलनों, राष्ट्रीय श्रम आयोग तथा राज्यों के मुख्य कारखाना निरीक्षकों के समय-समय पर हुए सम्मेलनों की सिफारिशों पर आधारित हैं, संसद द्वारा पारित किया गया और इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति 4 सितम्बर 1976 को प्राप्त हुई। यह अधिनियम 26 अक्तूबर 1976 को लागू किया गया। संशोधी अधिनियम के विभिन्न समर्थकारी उपबन्धों के अधीन राज्य सरकारों के मार्ग दर्शन तथा उनके द्वारा अपनाए जाने के लिए आदर्श नियम भी बनाए गए हैं।

मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 में संशोधन—12 नवम्बर, 1975 को जारी किए गए एक संशोधी अध्यादेश द्वारा मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 की परिधि का विस्तार करके 1000 रुपये प्रति माह तक प्राप्त करने वाले नियोजित व्यक्तियों को उसकी परिधि में लाया गया। इस अध्यादेश में सम्बन्धित कर्मचारियों के लिखित प्राधिकार देने पर बैंकों द्वारा या बैंक के कर्मचारियों के खातों में रकम जमा करके मजदूरी का भुगतान करने की व्यवस्था भी की गई है। इसमें (सम्बन्धित कर्मचारियों द्वारा विधिवत् प्राधिकार दिए जाने पर) मजदूरी में से प्रधानमन्त्री के राष्ट्रीय राहत कोष या केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र में अधिसूचित की गयी ऐसी ही अन्य निधियों की बाबत कटौतियाँ करने की व्यवस्था भी है। इस अध्यादेश का स्थान 11 फरवरी 1976 को मजदूरी संदाय (संशोधन) अधिनियम 1976 ने लिया है।

III विचाराधीन नये विधान

बागान श्रम (संशोधन) विधेयक 1973—इस विधेयक का उद्देश्य बागान को अधिनियम की परिधि में लाने सम्बन्धी अन्य बातों के साथ-साथ क्षेत्रफल (एकड़ों में) तथा नियोजित व्यक्तियों की संख्या सम्बन्धी सीमा को कम करके अधिनियम को और अधिक बागानों पर भी लागू करना, बागानों के अनिवार्य पंजीकरण की व्यवस्था करना और वयस्कों तथा बच्चों के साप्ताहिक कार्य-घण्टों में कमी करना है। इस विधेयक को जिसे राज्य सभा में 1973 में पेश किया गया था, संसद की संयुक्त प्रवर समिति को भेजा गया। संयुक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट 3 मार्च 1975 को दी। इस संयुक्त समिति की सिफारिशें सरकार के विचाराधीन हैं।

IV नये विधान सम्बन्धी प्रस्ताव

भवन तथा निर्माण उद्योग में सुरक्षा सम्बन्धी विधान—भवन तथा निर्माण उद्योगों में सुरक्षा की व्यवस्था करने के लिए विधान बनाने का विचार है। विधि मन्त्रालय से परामर्श करके प्रस्तावित विधान का ब्यौरा तैयार किया जा रहा है।

शिशु अधिनियम में संशोधन—पास शुदा शिशुओं को अन्य बातों के साथ-साथ रोजगार के मामले में नियोजकों द्वारा प्राथमिकता दिलाने के लिए शिशु अधिनियम 1961 में संशोधन करने का विचार है।

कृषि श्रमिकों के कल्याण के लिए विधान—केरल कृषि श्रमिक अधिनियम 1974 के आधार पर कृषि श्रमिकों के कल्याण के लिए तैयार किया गया विधेयक, जिसका अनुमोदन कृषि श्रमिक सम्बन्धी स्थायी समिति ने 19 जुलाई 1975 को किया था, विचाराधीन है।

V अन्य प्रस्ताव

बोनस संदाय अधिनियम 1965 में संशोधन—25 सितम्बर 1975 को जारी किए गए अध्यादेश द्वारा बोनस संदाय अधिनियम, 1965 में किए गए संशोधनों के अनुसार वार्षिक वेतन (मजदूरी के 4% के अन्यून न्यूनतम बोनस या 100 रुपये की राशि, जो भी अधिक हो, देय है, बशर्ते कि 'बांटने के लिए अधिशेष' (एलोकेबल सरप्लस) उपलब्ध हो। ऐसे उदाहरण सरकार के ध्यान में लाए गए हैं जिनमें लाभ के बावजूद 'बांटने के लिए कोई अधिशेष' नहीं था और परिणामस्वरूप कोई बोनस नहीं दिया गया। इसलिए कानून में संशोधन करने का निर्णय किया गया जिससे यह व्यवस्था हो सके कि निवल लाभ होने पर कम से कम 100 रुपये (15 वर्ष से कम आयु वाले कर्मचारियों के लिए 60 रुपये) के बराबर न्यूनतम बोनस देय होगा, भले ही 'बांटने के लिए अधिशेष' उपलब्ध न हो। बोनस से सम्बन्धित औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में न्याय-निर्णय करने वाले न्यायाधिकरणों को यह अधिकार देने का भी निर्णय किया गया है कि वे केवल तुलन-पत्र की संगणना का ही नहीं बल्कि उसमें दर्ज विभिन्न मुद्दों के औचित्य की भी जांच करें, यदि उनके सम्बन्ध में श्रमिक चुनौती दें और सम्बन्धित न्यायाधिकरण का यह समाधान हो जाए कि श्रमिकों का तर्क सही है।

9 भारत में वर्तमान कारखाना अधिनियम

(SALIENT FEATURES OF PRESENT FACTORY LEGISLATION IN INDIA)

सबसे पहली सूती वस्त्र मिल बम्बई के स्थानीय वस्त्र व्यापारी श्री सी एन- डावर ने सन् 1851 में स्थापित की। इस उद्योग का तीव्र विकास हुआ और सन् 1872-73 में 18 सूती वस्त्र मिलें हो गई जिनमे 10 हजार श्रमिक कार्य करते थे। इन मिलो में बच्चो और महिलाओ के कार्य की दशाएँ अमानवीय थी। मेजर मूरे (Major Moore) ने बम्बई सूती वस्त्र विभाग के प्रशासन (Administration of Bombay Cotton Department) पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के अनुसार इन मिलो में लम्बे कार्य के घण्टे, महिलाओ और छोटी उम्र के बच्चो की कार्य दशाओ का विवरण देखने को मिलता है।[1]

आधुनिक उद्योगो के विकास के बाद भारतीय नियोजक बिना किसी कारखाना अधिनियम की बाधा के श्रमिको से किसी भी प्रकार से कार्य लेने में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे।[2]

सन् 1881 के पूर्व श्रम मामलो में सरकारी नीति एक स्वतन्त्र नीति थी। अधिकांश कारखानो मे काय के घण्टे सूर्योदय से सूर्यास्त तक थे। महिला और बच्चे श्रमिको को अधिक रोजगार दिया जाता था। श्रमिको को न तो किसी अवधि के अनुसार और न ही साप्ताहिक छुट्टियाँ दी जाती थी।[3]

हमारे देश मे कारखाना श्रमिको की दशाओ की ओर ध्यान हमारे उदारवादी नियोजकों राजनीतिज्ञो का नहीं गया बल्कि लकाशायर और मैनचेस्टर सूती वस्त्र उद्योगो के मालिको ने यह महसूस किया कि भारत मे सूती वस्त्र उद्योग तेजी से विकास की ओर बढ रहा है। इसका कारण यह था कि यहाँ पर कार्य के घण्टे सूर्योदय से सूर्यास्त तक के थे तथा श्रमिको को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी। साथ ही यहाँ पर किसी प्रकार का कारखाना कानून नही था। इस कारण श्रम लागत विदेशी श्रम लागत की तुलना मे बहुत कम थी। वहाँ के मिल मालिको ने भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट से इसके विषय मे निवेदन किया। सन् 1875 मे इसकी जाँच

1. *Vaid, K N* State & Labour in India p 34
2. *Saxena R C* : Labour Problems & Social Welfare, p. 674
3. *Giri, V. V* : Labour Problems in Indian Industry, p. 127.

हेतु एक आयोग का गठन किया गया। आयोग ने बताया कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक श्रमिकों से कार्य लिया जाता है। साप्ताहिक छुट्टी का अभाव तथा छोटे बच्चो से कार्य लेना (8 वर्ष की आयु तथा कभी-कभी इससे भी कम आयु वाले बच्चो से कार्य) आदि के विषय मे जानकारी दी गई। आयोग ने एक साधारण अधिनियम जिससे कार्य के घण्टे, साप्ताहिक छुट्टी, बच्चो की आयु निश्चित करना आदि नियमित किए जाएँ, पास करने की सिफारिश की। इस जानकारी के पश्चात् श्रमिको मे भी जागृति उत्पन्न हुई और कई जगह श्रमिको ने विरोध प्रकट किया, हड़ताले हुई। परिणामस्वरूप कारखाना अधिनियम, 1881 पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1881
(Factory Act of 1881)

यह अधिनियम एक साधारण अधिनियम था जिसके अन्तर्गत बच्चो की सुरक्षा तथा स्वास्थ्य एव सुरक्षा सम्बन्धी उपायो का प्रावधान किया गया था। यह अधिनियम उन सभी संस्थानो पर लागू किया गया जिनमे 100 या इससे अधिक श्रमिक शक्ति से कार्य करते थे और जो चार माह से अधिक चलते थे।

अधिनियम मे व्यवस्था की गई कि 7 वर्ष से कम आयु के बच्चे को कार्य पर नही लगाया जा सकेगा तथा 7 से 12 वर्ष की आयु वाले बच्चो से 9 घण्टे प्रतिदिन से अधिक कार्य नही लिया जा सकेगा। प्रतिदिन एक घण्टे का बीच मे रेस्ट दिया जाएगा तथा साप्ताहिक छुट्टी भी दी जाएगी।

खतरनाक मशीनो को ढकने तथा कारखाना निरीक्षको की नियुक्ति इस अधिनियम के क्रियान्वयन हेतु सिफारिश की गई। स्थानीय सरकारो को इस अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाने के अधिकार प्रदान किए गए और जिला अधिकारियो को इसके प्रशासन के लिए अधिकार दिए गए।

इस अधिनियम के अन्तर्गत पुरुष महिला श्रमिको के सरक्षण हेतु कोई प्रावधान नही था। यही कारण था कि श्रमिक- श्रमिको के हितैषी तथा लकाशायर व मैनचेस्टर मिलो के मालिक इस अधिनियम से असन्तुष्ट नही हुए। बम्बई सरकार ने सन् 1884 मे कारखाना आयोग (Factory Commission) नियुक्त किया। इस आयोग ने बाल व महिला श्रमिको को सरक्षण प्रदान करने हेतु अधिनियम पास करने की सिफारिश की, लेकिन इसे क्रियान्वित नही किया जा सका। सन् 1890 मे बर्लिन मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे बाल तथा महिला श्रमिको की दशा सुधारने की सिफारिश की। ब्रिटेन ने इन सिफारिशों को भारतीय कारखानो पर लागू करने के लिए कहा। परिणामस्वरूप कारखाना अधिनियम, 1891 पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1891
(Factory Act of 1891)

यह अधिनियम उन कारखानो पर जिनमे 50 या इससे अधिक श्रमिक जो शक्ति से कार्य करते हो, लागू किया गया। स्थानीय सरकारे यदि चाहे तो 20 या

उससे अधिक कार्य करने वाले श्रमिको पर भी अधिनियम लागू किया जा सकता था। अधिनियम मे व्यवस्था की गई कि 9 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिको को रोजगार नही दिया जाए तथा 9 से 14 वर्ष की आयु वाल बाल श्रमिको से 7 घण्टे से अधिक कार्य नही लिया जाए। बाल और महिला श्रमिको को रात को, 8 बजे साय से 5 बजे प्रात तक कार्य न कराने का प्रावधान रखा गया। महिला श्रमिको हेतु प्रतिदिन 11 घण्टे तथा 1½ घण्टे का बीच मे रेस्ट का प्रावधान रखा गया। सभी श्रमिको हेतु साप्ताहिक अवकाश का प्रावधान भी था। इस अधिनियम मे निरीक्षण, सफाई और उजालदानो की व्यवस्था हेतु भी नियम बनाए गए।

इस अधिनियम मे प्रौढ श्रमिको के कार्य के घण्टो मे कमी नहीं की गई। इसका विरोध किया गया। परिणामस्वरूप सन् 1906 म सूती वस्त्र समिति (Textile Committee, 1906) और सन् 1907 म कारखाना आयोग की नियुक्ति की गई। इनकी सिफारिशो के आधार पर सन् 1911 मे कारखाना अधिनियम पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1911
(Factory Act of 1911)

सन् 1905 मे बम्बई की मिलो मे बिजली आ जाने से, रात को अधिक कार्य के घण्टे काम लिया जाने लगा। कलकत्ता की जूट मिलो मे भी अधिक कार्य के घण्टे हो गए। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रथम बार वयस्क पुरुष श्रमिक के लिए कार्य के घण्टे प्रतिदिन 12 रखे गए। बीच मे एक घण्टे का रेस्ट भी दिया जाने लगा। किसी भी कारखाने मे कोई भी श्रमिक सायकाल 7 बजे से प्रात 5 बजे के बीच कार्य नही कर सकता था। बाल श्रमिको के प्रतिदिन के कार्य के घण्टे घटाकर 6 कर दिए तथा रात को कार्य पर लगाना मना कर दिया। मौसमी कारखानो पर भी इस अधिनियम को लागू कर दिया गया। बाल श्रमिको हेतु प्रमाण-पत्र आवश्यक कर दिया। स्वास्थ्य और सुरक्षा तथा निरीक्षण सम्बन्धी प्रावधानो को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करने की सिफारिश की गई।

कारखाना अधिनियम, 1922
(Factory Act of 1922)

सन् 1914 मे प्रथम महायुद्ध छिड गया। तीव्र औद्योगिक विकास से श्रमिको मे अपने अधिकारो के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। लाभ मे वृद्धि हुई, लेकिन बढती हुई कीमतो के कारण श्रमिको की मजदूरी कम बढी। सन् 1919 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) की स्थापना होने से भी कारखाना अधिनियम मे परिवर्तन लाना आवश्यक होगया था। यह अधिनियम उन सभी कारखानो पर लागू कर दिया गया जहाँ पर शक्ति स 20 श्रमिको से कम काम नही करते थे। राज्य सरकारें 10 या 10 से अधिक श्रमिको वाले सस्थानो पर भी इस अधिनियम को लागू कर सकती थी। वयस्क श्रमिको के लिए प्रतिदिन और प्रति सप्ताह क्रमश 11 और 60 घण्टे निश्चित किए गए। बाल श्रमिको के कार्य के घण्टे सभी प्रकार के कारखानों मे 6 घण्टे

प्रतिदिन नियत किए गए। बाल श्रमिको हेतु न्यूनतम आयु और अधिकतम आयु क्रमश 12 वर्ष और 15 वर्ष रखी गई।

यह अधिनियम सन् 1923 और 1926 मे संशोधित किया गया। सन् 1928 मे शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour, 1928) की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट सन् 1931 मे पेश की। रिपोर्ट के आधार पर सन् 1934 का कारखाना अधिनियम पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1934
(Factory Act of 1934)

इस अधिनियम के अन्तर्गत कारखानो को मौसमी और साल भर चलने वाले कारखानो को दो वर्गों मे विभाजित किया गया। मौसमी कारखाने वे कारखाने माने गए जो कि वर्ष मे 180 दिन कार्य करते थे। वर्ष भर चलने वाले कारखानों मे वे कारखाने रखे गए जो साल मे 6 माह से अधिक चलते हों।

वर्ष भर चलने वाले कारखानो मे अधिकतम कार्य के घण्टे वयस्क श्रमिको हेतु 10 प्रतिदिन और 54 प्रति सप्ताह रखे गए। मौसमी कारखानो (Seasonal Factories) मे ये क्रमश 11 प्रतिदिन और 60 प्रति सप्ताह रखे गए। बाल श्रमिक के कार्य के घण्टे घटा कर 5 कर दिए गए। कार्य का फैलाव (Spread over) प्रथम बार इस अधिनियम मे रखा गया। इसमे वयस्क श्रमिको और बाल श्रमिको हेतु यह कार्य फैलाव क्रमश 13 और 6½ घण्टे प्रतिदिन रखा गया। अतिरिक्त कार्य करने पर सामान्य दर का 1½ गुना भुगतान श्रमिको को किया जाएगा। इसमे प्रथम बार किशोर श्रमिक (Adolescents) का नया वर्ग रखा गया। 15 वर्ष से 17 वर्ष की आयु वाले इसमे रखे गए। मशीनो को ढकने, सुरक्षा उपाय, कल्याणकारी कार्य तथा कृत्रिम नमी बनाए रखने आदि के सम्बन्ध मे भी अधिनियम मे प्रावधान रखे। इस अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकारो पर रखा गया। इसके लिए मुख्य कारखाना निरीक्षक और कारखाना निरीक्षको की नियुक्तियाँ की गईं।

संशोधित कारखाना अधिनियम, 1946
(Amended Factory Act of 1946)

सन् 1934 का कारखाना अधिनियम सन् 1936, 1940, 1941, 1944, 1946 तथा 1947 मे संशोधित किया गया और अन्त मे इसका स्थान वर्तमान कारखाना अधिनियम, 1948 ने लिया।

सातवें श्रम सम्मेलन, 1945 ने 48 घण्टे प्रति सप्ताह के सिद्धान्त को स्वीकार किया। इस संशोधित अधिनियम के अनुसार वर्ष भर चलने वाले कारखानो मे कार्य के घण्टे 9 प्रतिदिन तथा 48 प्रति सप्ताह रखे गए तथा मौसमी कारखानों मे घटाकर 10 प्रतिदिन और 54 प्रति सप्ताह रखे गए। कार्य का फैलाव (Spread over) वर्ष भर वाले कारखानो और मौसमी कारखानो में घटाकर क्रमश: 10½ और 11 घण्टे कर दिए गए। अतिरिक्त कार्य हेतु साधारण दर का दुगुना भुगतान करने का प्रावधान रखा गया। सन् 1947 के संशोधन द्वारा जिन कारखानो मे 250 श्रमिको से अधिक कार्य करते हैं, वहाँ केन्टीन का प्रावधान रखा गया।

कारखाना अधिनियम, 1948
(Factories Act of 1948)

अधिनियम के कई दोष थे। सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण प्रावधान समुचित तथा सन्तोषप्रद नहीं थे। इस अधिनियम के अन्तर्गत छोटे संस्थानों तथा कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिकों को शामिल नहीं किया गया था।

कारखाना अधिनियम, 1948 का उद्देश्य कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के रक्षा, स्वास्थ्य और कल्याणकारी कार्यों को प्रोत्साहन करना है। यह जम्मू-कश्मीर को छोड़कर सभी राज्यों पर लागू होता है। वे कारखाने जहाँ 10 या 10 से अधिक श्रमिक शक्ति से कार्य करते हैं तथा 20 या 20 से अधिक श्रमिक बिना शक्ति से कार्य करते हैं, इस अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे किसी भी रोजगार पर यह अधिनियम लागू कर सकती हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत मौसमी तथा वर्ष भर चलने वाली सभी फैक्ट्रीज के अन्तर को समाप्त कर दिया गया है।

इस अधिनियम में विभिन्न बातें सम्मिलित की गई हैं। वे निम्नलिखित हैं—

1. **कार्य के घण्टे (Hours of Work)**—कम कार्य के घण्टे श्रमिक की कार्य-कुशलता पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं। अतः इस अधिनियम में वयस्क श्रमिकों हेतु अधिकतम कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह 48 और प्रतिदिन 9 निश्चित किए गए हैं। 5 घण्टे के कार्य के बाद ½ घण्टे का मध्यान्तर दिया जाएगा। कार्य का फैलाव (Spread over) 10½ घण्टे से अधिक नहीं होगा। राज्य सरकारों को अधिकार दिया गया है कि वे कुछ व्यक्तियों के कार्य के घण्टे साप्ताहिक छुट्टी आदि में छूट दे सकती हैं। फिर भी कुल कार्य के घण्टे 10, किसी भी दिन कार्य का फैलाव 12 घण्टे, अतिरिक्त कार्य हेतु दुगुनी मजदूरी दर आदि का पालन किया जाएगा।

2. **सवेतन छुट्टी (Leave with Wages)**—प्रत्येक श्रमिक को सवेतन साप्ताहिक छुट्टी दी जाएगी। इसके अतिरिक्त निम्न दरों पर सवेतन वार्षिक छुट्टियाँ (Annual leave with wages) दी जाएँगी—

(i) एक प्रौढ़ श्रमिक को 20 दिन कार्य करने पर 1 दिन सवेतन छुट्टी दी जाएगी। परन्तु वर्ष में न्यूनतम 10 दिन की सवेतन छुट्टी मिलेगी।

(ii) एक बालक को 15 दिन कार्य करने पर 1 दिन सवेतन छुट्टी मिलेगी और वर्ष में न्यूनतम 14 दिन की सवेतन छुट्टी मिल सकेगी।

(iii) यदि किसी श्रमिक को बिना अर्जित छुट्टियों का उपभोग किए ही सेवा से मुक्त कर दिया जाता है अथवा स्वयं नौकरी छोड़ देता है तो नियोजक का कर्त्तव्य है कि उन दिनों का वेतन उसे दिया जाए।

3. **नवयुवकों को रोजगार (Employment of Children)**—14 वर्ष से कम आयु वाले नवयुवकों को रोजगार नहीं दिया जाएगा। 15 और 18 वर्ष की आयु के बीच वाले श्रमिक को प्रौढ़ (Adolescent) माना गया है। इन नवयुवकों को आयु सम्बन्धी डॉक्टरी प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक है। उन्हें कार्य करते समय टोकन रखना पड़ेगा। यह प्रमाण-पत्र 12 महीने तक वैध होगा।

4. महिला श्रमिकों को रोजगार (Employment of Women)—कोई भी महिला श्रमिक मशीन चालू करते समय सफाई, तेल डालने आदि का कार्य नहीं करेगी। कपास की धुनाई वाले यन्त्र का उपयोग करने पर वहाँ महिला श्रमिक को कार्य पर नहीं लगाया जाएगा। जहाँ 50 या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ छोटे बच्चों को पालने (Creches) की सुविधा दी जानी चाहिए।

कोई भी महिला श्रमिक 7 बजे साय से 6 बजे प्रात के बीच काम नहीं करेगी। इसी अवधि में बाल श्रमिको से भी कार्य नहीं लिया जा सकेगा।

महिला श्रमिक के कार्य के अधिकतम घण्टे सप्ताह में 48 और प्रतिदिन 9 से अधिक नहीं होगे।

खतरनाक क्रिया में महिला श्रमिको को कार्य पर नहीं लगाया जाएगा। अतिरिक्त कार्य हेतु सामान्य दर का दुगुना भुगतान किया जाएगा।

5. स्वास्थ्य एवं सुरक्षा (Health & Safety)—इस अधिनियम के अन्तर्गत स्वास्थ्य एव सुरक्षा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण आदेशो का प्रावधान है जिससे श्रमिक का स्वास्थ्य और सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जा सके।

स्वास्थ्य सम्बन्धी निम्न आदेश इस अधिनियम में शामिल किए गए हैं—

(i) प्रत्येक कारखाने को पूर्ण रूप से साफ किया जाएगा और किसी तरह का कूडा-करकट कारखाने के किसी भी भाग में नहीं डाला जाएगा।

(ii) प्रत्येक कारखाने में शुद्ध वायु आने तथा अशुद्ध वायु जाने हेतु पर्याप्त झरोखे होने आवश्यक हैं।

(iii) यदि किसी निर्माण क्रिया से धूल इत्यादि उड़ती है तो उसकी सफाई की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

(iv) कारखानो में अधिक शुष्कता अथवा नमी नहीं होनी चाहिए। कृत्रिम नमी करने वाले कारखानो में इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़े।

(v) इस अधिनियम के बाद बनाए गए कारखानो में प्रत्येक श्रमिक हेतु 500 क्यूबिक फीट स्थान तथा पर्व के कारखानो में 350 क्यूबिक फीट स्थान होना जरूरी है। इससे अत्यधिक भीड़ को कम किया जा सकेगा।

(vi) कारखानो में कार्यरत श्रमिको हेतु पर्याप्त प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक प्रकाश की व्यवस्था की जानी चाहिए। जहाँ होकर श्रमिक आते जाते हैं वहाँ पर भी इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

(vii) प्रत्येक कारखाने में श्रमिको हेतु पीने के ठण्डे पानी की व्यवस्था की जानी चाहिए। जहाँ श्रमिक 250 या इससे अधिक हैं वहाँ पर रेफ्रीजरेटर की व्यवस्था होनी चाहिए।

(viii) प्रत्येक कारखाने में पर्याप्त सख्या में पुरुषों व महिला श्रमिको हेतु अलग-अलग शौचालय तथा पेशाब-घरों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ix) प्रत्येक कारखाने में थूकने के लिए थूकदानों की पूर्ण व्यवस्था की जानी चाहिए।

इस अधिनियम के अन्तर्गत सुरक्षा सम्बन्धी अग्रलिखित उपायों का प्रावधान किया गया है—

(i) मशीनों को ढक कर रखा जाए तथा खतरनाक मशीनरी की देखभाल प्रशिक्षित प्रौढ़ व्यक्ति द्वारा ही की जानी चाहिए।

(ii) बाल तथा महिला श्रमिकों को खतरनाक मशीनों पर नहीं लगाया जाएगा।

(iii) यान्त्रिक शक्ति द्वारा चलाई जाने वाली मशीन को अच्छी तरह से कारखाने में फिट किया जाना चाहिए। भार उठाने वाली मशीनों तथा लिफ्ट आदि की भी समय-समय पर देखभाल करनी चाहिए। इससे दुर्घटनाएँ कम होंगी।

(iv) इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य सरकार को अधिकार है कि वह बाल, पुरुष व महिला श्रमिकों द्वारा उठाए जाने वाले बोझ को निश्चित करे। इससे अधिक भार नहीं उठाया जाए क्योंकि यह श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है।

6 कल्याणकारी उपाय (Welfare Measures)—इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों के कल्याण में वृद्धि करने हेतु निम्न आदेशों का प्रावधान किया गया है—

(i) प्रत्येक कारखाने में श्रमिकों को अपने हाथ मुँह धोने की सुविधाएँ होनी चाहिए।

(ii) कपड़े धोने, उन्हें सुखाने और टाँगने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(iii) प्रत्येक कारखाने में प्राथमिक चिकित्सा सुविधा (First Aid Appliance) प्रदान की जानी चाहिए।

(iv) जिन कारखानों में 250 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं उनमें कैन्टीन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(v) जहाँ पर 150 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ पर आहार कमरों (Lunch Rooms) की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(vi) जिन कारखानों में 50 या अधिक महिला श्रमिक कार्य करती हैं, वहाँ उनके बच्चों के लिए पालनों (Creches) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(vii) जिन कारखानों में 500 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ कल्याण अधिकारी (Welfare Officer) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

सभी कारखाना मालिकों का यह दायित्व है कि रोजगार के कारण उत्पन्न किसी बीमारी अथवा दुर्घटना के विषय में सूचना वे तत्काल सरकार तथा कारखाने हेतु नियुक्त चिकित्सकों को दें। नियुक्त चिकित्सकों को भी व्यावसायिक बीमारियों वाले श्रमिकों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट मुख्य कारखाना निरीक्षक (Chief Inspector of Factories) को दे देनी चाहिए।

इस अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है। मुख्य कारखाना निरीक्षक सबसे बड़ा अधिकारी होता है और उसके अन्तर्गत वरिष्ठ

कारखाना निरीक्षक और कारखाना निरीक्षक आते है जो अपने-अपने क्षेत्र में इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानो को क्रियान्वित करने का कार्य करते हैं।

भारतीय कारखाना अधिनियम,1948 के दोष
(Defects of the Indian Factories Act of 1948)

श्रम जाँच समिति, 1946 (Labour Investigation Committee,1946) ने विभिन्न कारखाना अधिनियमो मे पाए जाने वाले दोषो का उल्लेख किया था। यह अधिनियम पिछले कुछ वर्षों मे अनेक दोषो का शिकार रहा है—

1 यह अधिनियम बडे औद्योगिक संस्थानो मे सन्तोषप्रद ढग से क्रियान्वित किया जा रहा है, लेकिन छोटे और मौसमी कारखानो में यह अधिनियम सन्तोषप्रद ढग से लागू नही किया जा सका है। इन कारखानो मे कार्य के घण्टो, अतिरिक्त कार्य, बालकों की नियुक्ति, सुरक्षा, स्वास्थ्य और सफाई से सम्बन्धित प्रावधानों को पूर्ण रूप से लागू नही किया जा सका है। नियोजको द्वारा श्रमिको के झूँठे प्रमाण-पत्र, अतिरिक्त कार्य हेतु दोहरे रजिस्टर आदि रखकर निरीक्षको को धोखा दिया जाता है।

2 निरीक्षको की संख्या कम होने से और कारखानो की संख्या अधिक होने से कई कारखाने साल भर मे एक बार भी नही देख सकते हैं। निरीक्षक भी तकनीकी बातो की ओर ज्यादा ध्यान रखते हैं जबकि मानवीय समस्याओ की प्रायः उपेक्षा करते है। अत निरीक्षको की संख्या मे वृद्धि की जानी चाहिए जिससे इस अधिनियम का क्रियान्वयन प्रभावपूर्ण ढग से हो सके।

3 कुशल एव ईमानदार कारखाना निरीक्षको की कमी है। अधिकांश निरीक्षक कारखाने का पूर्ण निरीक्षण किए बिना ही निरीक्षण प्रतिवेदन तैयार कर लेते है तथा मालिको से रिश्वत लेकर उनके दोषो को रिपोर्ट मे नही दिखाते है।

4 अधिनियम का बार-बार उल्लघन करने का प्रमुख कारण यह भी है कि दोषियो पर दण्ड कम किया जाता है। एक मालिक पर 100-150 का जुर्माना किया जाता है जबकि उसकी पैरवी के लिए निरीक्षक के आने-जाने मे ही हजारो रुपये व्यय हो जाते हैं। अतः दोषी व्यक्तियों को दण्डित समय पर और पर्याप्त रूप मे किया जाना चाहिए।

5 यह अधिनियम अनियन्त्रित कारखानो (Unregulated Factories) पर लागू नही होता है। इन कारखानों मे श्रमिको का शोषण किया जाता है तथा अमानवीय दशाओ मे उनको कार्य करना पडता है। अतः इस अधिनियम को विस्तृत करके अनियन्त्रित कारखानो पर लागू किया जाना चाहिए।

इस अधिनियम के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु कारखाना निरीक्षको की संख्या बढाया जाना आवश्यक है। उनके अधिकारो और स्तर मे भी वृद्धि की जानी चाहिए। ईमानदार और कार्यकुशल निरीक्षको की नियुक्ति अपेक्षित है। विभिन्न प्रान्तो मे पाया जाने वाली असमानता को समाप्त किया जाना चाहिए। श्रमिको को भी इस अधिनियम के विभिन्न प्रादेशो के बारे मे बताया जाना चाहिए।

10 भारत में श्रमिकों का श्रवास; नियोजक व श्रम-संघों तथा सरकार द्वारा दी गई श्रम कल्याण सुविधाएँ

(HOUSING OF LABOUR IN INDIA; LABOUR WELFARE FACILITIES PROVIDED BY EMPLOYERS, TRADE UNIONS AND GOVERNMENT)

भारत मे श्रमिको का ग्रावास समस्या का स्वरूप
(Housing of Labour in India : Nature of the Problem)

ग्रावास का वित्त प्रवन्धन ग्रौर क्रियान्वयन निजी उद्यमियो द्वारा किया जाता था। लेकिन यह नीति उस समय ही उचित है जब ग्रधिकांश जनसख्या कृषि मे लगी हुई हो। स्वतन्त्रता की नीति के कारण से ग्रौद्योगीकरण हुग्रा ग्रौर तीव्र ग्रौद्योगीकरण स्थानीय केन्द्रो पर ग्रधिक होने से ग्राबादी बढ़ने लगी। इससे ग्रावास की समस्या उत्पन्न हुई। बिना योजना के ही ग्रावास-व्यवस्था की जाने लगी। इससे झुग्गी भौंपडियो का विकास हुग्रा।[1]

ग्रौद्योगिक ग्रायोग सन् 1918 (Industrial Commission) ने इस समस्या की ग्रोर ध्यान ग्राकर्षित किया। लेकिन इस सिफारिश की ग्रोर ग्रधिक ध्यान नहीं दिया गया।

रोटी, कपड़ा ग्रौर मकान मानव की तीन ग्राधारभूत ग्रावश्यकताएँ हैं जिनमे मकान महत्वपूर्ण ग्रावश्यकता है। देश मे ग्रावास व्यवस्था बढ़ती हुई ग्रौद्योगिक जनसख्या की तुलना मे कम रही। जगह की कमी, भूमि की ऊंची लागत ग्रादि के कारण ग्रावास व्यवस्था पूर्ण रूप से बढ़ती हुई जनसख्या के लिए पर्याप्त नही रही। धीरे धीरे ग्रावास-दशाग्रो की स्थिति बिगड़ती गई।

शाही श्रम ग्रायोग ने प्रमुख ग्रौद्योगिक केन्द्रो की ग्रावास व्यवस्था का विवरण देते हुए बताया कि मकान एक दूसरे से सटे हुए थे। उनमे कोई रोशनदान की तथा सफाई की व्यवस्था नही थी। एक ही कमरे मे कई व्यक्ति रहते थे। सूर्य का प्रकाश भी नही ग्राता था। पानी की भी समुचित व्यवस्था नही थी। रात को इन बस्तियों मे कोई भी ग्रा-जा नही सकता था।

1. *Giri, V V* Labour Problems in Indian Industry, p 303

आवास व्यवस्था के अन्तर्गत न केवल चारदीवारी शामिल की जाती है, बल्कि आवास के आसपास के वातावरण को भी शामिल किया जाता है। आवास व्यवस्था का अर्थ ऐसे आवास से है जहाँ श्रमिक आराम से रह सके, एक ऐसे वातावरण से है जो श्रमिको हेतु स्वास्थ्यप्रद हो तथा ऐसी सुविधाओ से है जो कि श्रमिक के स्वास्थ्य व कार्य-क्षमता पर अच्छा प्रभाव डाले। श्रमिको का निवास ऐसी जगह होना चाहिए, जहाँ स्वच्छ वायु, प्रकाश व जल आसानी से मिलते हो। चिकित्सा शिक्षा, मनोरंजन, खेलकूद आदि की सुविधाएँ भी श्रमिको को मिलनी चाहिएँ।

बुरी आवास व्यवस्था से औद्योगिक श्रमिक कई बुराइयो का शिकार बन जाता है, जैसे शराब पीना, बीमारी, अनैतिकता, अपराध, अनुपस्थितता आदि। इससे अधिक अस्पतालो और जेलो की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

आवास व्यवस्था एक मानवीय आवश्यकता है जिसे राष्ट्रीय योजना मे शामिल करना आवश्यक है।

आवास की समस्या त्रिमुखी है—

1. सामाजिक समस्या (Social Problem)—यह गंदी बस्तियो की समस्या से सम्बन्धित है। प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो मे अधिक भीड़-भाड से आवास समुचित रूप से न मिलने के कारण इन निम्न वर्ग के लोगो द्वारा गन्दी बस्तियाँ बनाली गई हैं। मद्रास की चेरी, कानपुर के अहाता, कलकत्ता की बस्ती, बम्बई और अहमदाबाद की चाल बस्तियाँ, गन्दी बस्तियो के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। विश्व के सम्भवतः किसी भी औद्योगिक क्षेत्र मे इस प्रकार की गन्दी बस्तियाँ देखने को नही मिलती हैं।

2. आर्थिक समस्या (Economic Problem)—आवास व्यवस्था का श्रमिक के स्वास्थ्य पर पर्याप्त प्रभाव पडता है। खराब आवास से कई प्रकार की बीमारियो को प्रोत्साहन मिलता है। इसका श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है। कार्य-कुशलता घटती है और उत्पादन मे गिरावट आ जाती है।

3 नागरिक समस्या (Civic Problem)—शहरी क्षेत्रो मे अधिक जनभार से नागरिको के आवास पर भी बुरा प्रभाव पडता है। श्रमिक भी एक नागरिक है और इस समस्या का समाधान होना आवश्यक है।

खराब आवास व्यवस्था के दोष
(Defects of Bad Housing)

प्रो. आर. सी. सक्सेना के अनुसार, "अच्छे घरो का अर्थ गृह-जीवन की सम्भावना, सुख और स्वास्थ्य है तथा बुरे घरो का अर्थ है गन्दगी, शराबखोरी, बीमारी, व्यभिचार और अपराध।"[1]

1. खराब आवास व्यवस्था का स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पडता है। आवास और स्वास्थ्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा ये दोनो औद्योगिक श्रमिक की कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इससे कई प्रकार की बीमारियाँ फैल जाती हैं।

1 *Saxena R. C.*: Labour Problems & Social Welfare, p 246.

2 खराब गृह-व्यवस्था के कारण ही श्रमिकों में प्रवास की प्रवृत्ति (Migratory Character of Labour) को प्रोत्साहन मिलता है। भारतीय श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से आकर औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं। लेकिन ग्रामीण और शहरी आवास में रात दिन का अन्तर देखने को मिलता है। खुली हवा, प्रकाश, शुद्ध जल तथा अच्छा वातावरण आदि का शहरी क्षेत्रों में अभाव होने के कारण वे कुछ दिन कार्य करते हैं और फिर वापिस अपने गाँव को चले जाते हैं।

3 खराब आवास व्यवस्था के कारण कई सामाजिक बुराइयाँ (Social evils) उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणार्थ—शराबखोरी, अनैतिकता, अपराध, जुआ खेलना आदि। औद्योगिक बस्तियों में स्त्री-पुरुष का अनुपात असमान होने के कारण अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है। श्रमिक बिना परिवार के रहने के कारण जुआखोरी, शराबखोरी, अपराध आदि बुराइयों का शिकार हो जाता है।

अपर्याप्त और खराब आवास व्यवस्था के कारण ही औद्योगिक अशान्ति, अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन आदि को प्रोत्साहन मिलता है। ये सभी औद्योगिक उत्पादन को कम करते हैं, जिसका राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

आवास व्यवस्था की इन अभाग्यशाली परिस्थितियों से विवश होकर डॉ राधाकमल मुखर्जी ने ठीक ही लिखा है कि, "भारतीय औद्योगिक बस्तियों की दशा इतनी भयंकर है कि वहाँ मानवता को निर्दयता के साथ अभिशापित किया जाता है। महिलाओं के सतीत्व का अपमान किया जाता है एवं देश के भावी आधार-स्तम्भ शिशुओं को प्रारम्भ से विष से सिंचित किया जाता है।"[1]

आवास की इन खराब दशाओं का चित्रण करते हुए श्री मीनू मसानी ने कहा था कि, "भगवान् ने विश्व को बनाया, मनुष्य ने शहरों को और राक्षसों ने गन्दी बस्तियों को बनाया।"

सन् 1952 में स्वर्गीय नेहरू ने कानपुर की आवास व्यवस्था को देखकर गुस्से में कहा था, "इन गन्दी बस्तियों को जला दिया जाए।"

आवास : किसका उत्तरदायित्व ?
(Housing : Whose Responsibility ?)

खराब आवास व्यवस्था के कारण श्रमिकों की कार्य कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों में प्रवासिता, औद्योगिक अशान्ति, श्रमिक परिवर्तन, अनुपस्थिति आदि सभी तत्त्वों के लिए खराब आवास व्यवस्था जिम्मेदार है। कई सामाजिक बुराइयाँ उदाहरणार्थ शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन, अपराध आदि खराब आवास व्यवस्था के ही परिणाम हैं।

इन सभी बुरे प्रभावों को समाप्त करने हेतु एक अच्छी आवास व्यवस्था का होना आवश्यक है। हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छे मकान में सपरिवार सुखी और प्रसन्न रहे। एक अच्छी आवास व्यवस्था हेतु किसे जिम्मेदार बनाया जाए। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

1 *Dr R K Mukerjee* The Indian Working Class, p 230.

श्रमिकों का कहना है कि आवास व्यवस्था करना मालिकों का उत्तरदायित्व है। सरकार को इसके लिए कारखाना अधिनियम, 1948 में संशोधन कर इसे शामिल किया जाए। जहाँ मालिक यह नहीं कर सकता है वहाँ श्रमिकों को आवास भत्ता दिया जाना चाहिए।

मालिकों का कथन है कि आवास व्यवस्था राज्य और स्थानीय निकायों द्वारा प्रदान की जानी चाहिए क्योंकि आवास व्यवस्था के लिए भूमि प्राप्त करना और मकान बनाना एक महँगी व्यवस्था है जो कि मालिक द्वारा वहन नहीं की जा सकती है।

सरकार के कथनानुसार आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मालिकों का है क्योंकि अच्छी आवास व्यवस्था से प्राप्त लाभ मालिकों को ही प्राप्त होंगे। अच्छी आवास व्यवस्था से श्रमिकों की प्रवासिता, अनुपस्थिति, श्रमिक परिवर्तन, शराबखोरी जुआखोरी, वेश्यागमन आदि दोष कम हो जाएँगे। श्रमिकों की कार्य-कुशलता, बढ़ेगी, उत्पादन अधिक होगा और इससे मालिकों के लाभ में वृद्धि होगी। कई समितियों व आयोगों ने भी आवास के उत्तरदायित्व के बारे में अपने अलग-अलग विचार दिए हैं।

शाही श्रम आयोग के अनुसार आवास का उत्तरदायित्व सरकार और स्थानीय निकायों का है। राष्ट्रीय योजना समिति ने कहा था कि इसका उत्तरदायित्व अनिवार्य रूप से मालिकों पर डाला जाना चाहिए। स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति सन् 1946 ने भी आवास का दायित्व सरकार पर ही डाला है। श्रम अनुसंधान समिति ने सुझाव दिया है कि आवास हेतु आवास मण्डलों (Housing Boards) की स्थापना की जानी चाहिए। आवास हेतु पूँजी वित्त का प्रबन्ध राज्यों द्वारा किया जाना चाहिए और क्रियाशील व्यय वहन करने का दायित्व मालिकों और श्रमिकों पर होना चाहिए।

आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व किसी एक पक्ष पर नहीं डाला जा सकता क्योंकि यह समस्या एक जटिल समस्या है तथा इसमें भूमि प्राप्त करना और मकान बनाने हेतु माल तथा वित्त का प्रबन्ध करना आदि कठिनाइयाँ आती हैं, जिन्हें किसी एक पक्ष द्वारा हल करना आसान नहीं है। अतः आवास व्यवस्था हेतु न केवल राज्य सरकारों को ही उत्तरदायी बनाया जाए बल्कि स्थानीय सरकारों और मालिकों को भी इस हेतु तैयार किया जाना चाहिए। यह एक संयुक्त उत्तरदायित्व है जिसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों की संस्थाओं, मालिकों तथा सरकारों का सहयोग अपेक्षित है।

गन्दी बस्तियों की समस्या (Problem of Slums)

भारतीय औद्योगिक श्रमिकों की आवास व्यवस्था अच्छी नहीं है। वे गन्दी बस्तियों में रहते हैं। इन गन्दी बस्तियों को विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। बम्बई में चाल (Chawl), मद्रास में चेरी (Cherry),

कलकत्ता में बस्ती (Basti) और कानपुर में अहाता (Ahatas) के नाम से जानी जाती हैं। इन औद्योगिक क्षेत्रों में गन्दी बस्तियों को प्रारम्भिक निर्माण नियमों में ढिलाई, श्रमिकों की उदासीनता, भूमि का ऊँचा मूल्य आदि के कारण मिला है। गन्दी बस्तियाँ हमारे देश की दरिद्रता की निशानी हैं। शिक्षा की कमी, अधिक जनभार और योजना के अभाव के परिणामस्वरूप गन्दी बस्तियों का विकास हुआ है।

गन्दी बस्तियाँ एक राष्ट्रीय समस्या बन गई हैं क्योंकि आवास मानव की एक प्रमुख आवश्यकता है जिसे पूरा करना प्रत्येक कल्याणकारी सरकार का दायित्व हो जाता है। इन गन्दी बस्तियों के कारण कार्य कुशलता में कमी, अनैतिकता, शराबखोरी, जुआखोरी, औद्योगिक अशान्ति आदि रूपों में हमें भारी कीमत चुकानी पड़ती है। इसलिए गन्दी बस्तियों का उन्मूलन अत्यन्त आवश्यक है। सन् 1952 में स्वर्गीय नेहरूजी ने कानपुर की गन्दी बस्तियों को समाप्त करने अथवा उन्हें जला देने के लिए कहा था। संसद् सदस्य श्री बी. शिवाराव ने भी इन गन्दी बस्तियों को समाप्त करने के लिए युद्ध स्तर पर कार्य करने को कहा था।

गन्दी बस्तियों की समस्या का हल तीन दृष्टिकोणों द्वारा किया जा सकता है। प्रथम, गन्दी बस्तियों की सफाई (Slum clearance) करना। यह एक दीर्घकालीन समस्या है। योजनाबद्ध तरीके से इस समस्या को हल करना होगा। दूसरा गन्दी बस्तियों का सुधार (Slum improvement) करना। जहाँ गन्दी बस्तियों को साफ करना सम्भव नहीं है तथा सुधार सम्भव है, वहाँ यह कार्य किया जाना चाहिए। इसे वर्तमान समय में ही शुरू करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक सुविधाएँ उदाहरणार्थ सड़कें, चिकित्सा और शिक्षा आदि प्रदान करना चाहिए। तीसरी गन्दी बस्तियों को रोकने (Slum prevention) का सरकार को कानून बनाना चाहिए जिससे गन्दी बस्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिले। योजनाबद्ध तरीके से आवास व्यवस्था की जानी चाहिए। गृह निर्माण सम्बन्धी नियमों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू किया जाना चाहिए।

गन्दी बस्तियों की सफाई हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निश्चित कार्यक्रम रखे गए हैं और उन पर व्यय किया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में गन्दी बस्तियों की सफाई को आवास सम्बन्धी नीति का आवश्यक अंग माना गया है। इसके लिए गृह निर्माण की राशि 38·5 करोड़ रुपयों में से योजना बनाकर व्यय करने का प्रावधान रखा गया था। दूसरी योजना में गन्दी बस्तियों की सफाई हेतु 20 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया था जिसे बाद में घटाकर 13 करोड़ रुपये कर दिया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में गन्दी बस्तियों के उन्मूलन और सुधार हेतु 28 6 करोड़ रुपये रखे गए थे। चौथी पंचवर्षीय योजना में इस कार्य हेतु 60 करोड़ रुपये का प्रावधान था। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में भी गन्दी बस्तियों के उन्मूलन तथा सुधार हेतु पर्याप्त ध्यान दिया गया है। सन् 1958 में गन्दी बस्तियों की सफाई पर सलाहकार समिति (Advisory Committee on Slum Clearance) द्वारा दी गई रिपोर्ट में निम्न सिफारिशें की थी—

1 गन्दी बस्तियो की सफाई समस्या को नागरिक विकास समस्या का एक अभिन्न अंग माना जाए।

2 सुगमतापूर्वक कार्य चलाने हेतु केन्द्रीय मन्त्रालय को यह कार्य-भार सौंप दिया जाए।

3 कार्य प्रारम्भ करने हेतु बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली कानपुर और अहमदाबाद की गन्दी बस्तियो को सुधारा जाए।

4 वर्तमान गन्दी बस्तियो मे आधारभूत सुविधाएँ—सडके, प्रकाश, जल, चिकित्सालय, पाठशाला आदि की व्यवस्था की जाए।

5 अधिक गन्दी बस्तियो वाले औद्योगिक क्षेत्रो मे अधिक धन राशि का उपयोग किया जाए।

आवास समस्या का आकार, विनियोजन और उपलब्धियाँ

भारत मे आवास की समस्या बडी जटिल है, जिसके लिए एक तो बडे पैमाने पर धन की आवश्यकता है और दूसरे इसका समाधान व्यक्तियो, सहकारियो, राज्य सरकारो और केन्द्र सरकार के समन्वित तथा दीर्घकालीन प्रयासो पर निर्भर करता है। शहरी और ग्रामीण दोनो इलाको मे आवास की भारी कमी है और जो मकान उपलब्ध हैं, उनमे से अधिकांश घटिया दर्जे के हैं। यदि आवास की सामान्य समस्या को लें तो देश मे आवास की कमी से सम्बन्धित सही-सही आँकडे यद्यपि उपलब्ध नही हैं, किन्तु सन् 1971 की गणना के अनुसार देश मे 1 45 करोड मकानो की कमी है—29 लाख शहरो मे और 1 16 करोड देहात मे। राष्ट्रीय भवन निर्माण सगठन के एक हाल के अध्ययन के अनुसार, जिसमे परिवारो की सख्या मे वृद्धि और सन् 1971–74 मे मकानो की सख्या मे वृद्धि को ध्यान मे रखा गया था, पाँचवी योजना शुरू होने से पूर्व देश मे 1 56 करोड मकानो की कमी होने का अनुमान था, 38 लाख शहरी क्षेत्रो मे और 1 18 करोड ग्रामीण क्षेत्रो मे। सन् 1971 की जन-गणना के अनुसार लगभग 9·7 करोड परिवारो मे विभाजित देश की कुल 54 करोड 80 लाख जनसख्या के लिए व्यवहार योग्य आवास एकांश 8 25 करोड (सन् 1961 मे 6 करोड 84 लाख) थे। इनमे से 6 64 करोड एकांश (सन् 1961 मे 5 71 करोड) ग्रामीण क्षेत्रो मे और 1·61 करोड (सन् 1961 मे 1 करोड 13 लाख) शहरी क्षेत्रो मे थे।

आवास के लिए धन

आवास के लिए धन राशि की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें करती है। भारत का जीवन बीमा निगम भी इनके प्रयासो मे सहयोग देता है। भारत सन् 1976 के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने आवास और नगर विकास के लिए 200 करोड रुपये का एक आवर्ती कोष स्थापित किया है। इस कोष का प्रबन्ध आवास और नगर विकास निगम के हाथ मे है, जो आवास परियोजनाओ के लिए राज्य सरकारो, राज्य आवास बोर्डों तथा आवास और नगर विकास प्राधिकरणो को ऋण देता है।

विनियोजन ग्रौर उपलब्धियाँ

पहली तीन पचवर्षीय योजनाम्रो ग्रौर बाद की तीन एकवर्षीय योजनाम्रो मे सार्वजनिक क्षेत्र म विभिन्न सामाजिक ग्रावास योजनाम्रो पर कुल मिलाकर 324 27 करोड रु खच किए गए। इस ग्रवधि मे लगभग 5 लाख मकान बनाए गए। ग्रनुमान है कि निजी क्षेत्र म गृह-निर्माण ग्रौर ग्रन्य निर्माण कार्यों पर 2,400 करोड रु खच किए गए। सावजनिक क्षत्र म विभिन्न सामाजिक ग्रावास योजनाम्रो पर कुल मिला कर 469 91 करोड रुपया खर्च हुग्रा। निजी क्षेत्र मे ग्रावास एव निर्माण कार्यों पर ग्रनुमानत 2,400 करोड रुपये खच किए गए। सब राज्य सरकारो तथा केन्द्र शासित प्रशासनो का सन् 1974–75 का योजना परिव्यय राज्य क्षेत्र योजनाम्रो के सन्दर्भ मे 52 39 करोड रुपय था जिसम से 8 32 करोड रु की राशि उन भूमिहीन मजदूरो को ग्रावास भूमि देने की योजना के लिए सुरक्षित रखी जाएगी जो सरकार के न्यूनतम ग्रावश्यकता कार्यक्रम का ग्रग है। बागानो मे काम करने वाले मजदूरो की ग्रार्थिक सहायता के लिए सन् 1974–75 म 80 लाख रुपये की राशि का प्रबन्ध किया गया। विभिन्न सामाजिक ग्रावास योजनाम्रो के ग्रन्तर्गत ग्रप्रेल, 1975 तक निर्मित मकानो की सख्या 6,38,500 थी(पूर्वोक्त योजना के ग्रन्तर्गत निर्मित 3,923 मकानों सहित)। भारतीय जीवन बीमा निगम ने विभिन्न राज्य सरकारो एव दिल्ली विकास प्राधिकरण को सन् 1974–75 तक 200 55 करोड रुपये ऋण स्वरूप दिए। ग्रावास ग्रौर शहरी विकास निगम ने 16 राज्यो ग्रौर 2 केन्द्र शासित प्रदेशो की 175 ग्रावास योजनाम्रो के ग्रन्तगत मकान बनाने के लिए 126 56 करोड़ रुपये के ऋण की मन्जूरी दी जिसके ग्रन्तगत 92,700 मकान ग्रौर 18,000 से ग्रधिक विभिन्न श्रेणियो के प्लाटो के विकास शामिल हैं। इसमे से बहुत बडी मात्रा समाज के कमजोर वर्गों के लिए है।

पाँचवी योजना मे, मूल प्रारूप के ग्रनुसार, ग्रावास कार्यक्रमो के लिए राज्य क्षेत्र मे 343 करोड रुपय ग्रौर केन्द्रीय क्षेत्र मे 237 16 करोड रुपये की व्यवस्था की गई। इसके ग्रतिरिक्त रेलवे, डाकतार, रक्षा, बन्दरगाह न्यास ग्रादि के केन्द्रीय विभागो तथा केन्द्रीय सरकार के सावजनिक प्रतिष्ठानो के द्वारा ग्रावास कार्यक्रमो पर लगभग 450 करोड रुपये खर्च किए जाने की सम्भावना व्यक्त की गई। निजी क्षेत्र के द्वारा ग्रावास पर लगभग 3 640 करोड रुपये की पूँजी लगाए जाने का ग्रनुमान लगाया गया। सितम्बर, 1976 मे पचवर्षीय योजना पर पुनर्विचार पूरा हुग्रा ग्रौर राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकृत सशोधित योजना मे कहा गया कि मुख्य बल समाज के पिछडे वर्गों की हालत को सुधारने पर है। सशोधित योजना मे पुलिस के लिए ग्रावास सहित ग्रावास के लिए जो परिव्यय दिखाया गया वह राज्य क्षेत्र मे 505 56 करोड रुपया ग्रौर केन्द्रीय क्षेत्र मे 95 36 करोड रुपया ग्रर्थात् कुल 600 92 करोड रुपया था। मार्च, 1977 मे ऐतिहासिक सत्ता परिवर्तन के बाद जनता पार्टी की सरकार ने पाँचवी पचवर्षीय योजना को ग्रवधि से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त कर 1 ग्रप्रेल, 1978 से नई राष्ट्रीय योजना लागू कर दी है।

फरवरी, 1978 के बजट भाषण मे केन्द्रीय वित्तमन्त्री श्री एच एम. पटेल ने संकेत दिया कि योजना आयोग की नई विकास नीति तैयार कर रहा है और राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा विचार-विमर्श के बाद इसे अन्तिम रूप दे दिया जाएगा।

भवन निर्माण क्षेत्र मे प्रशिक्षण

भवन-निर्माण क्षेत्र मे अनुसन्धान और तकनीकी प्रगति का कार्य राष्ट्रीय भवन-निर्माण सगठन करता है, जिसकी स्थापना सन् 1954 मे भारत सरकार द्वारा भवन-निर्माण और आवास सम्बन्धी तकनीकी विषयो के लिए एक सलाहकार और समन्वय करने वाले निकाय के रूप मे की गई थी। यह सगठन भवन-निर्माण के लिए विभिन्न पहलुओ पर, इमारती सामान के प्रयोग मे सुधार और आवास सम्बन्धी सामाजिक और आर्थिक पहलुओ पर अनुसन्धान कार्य भी करता है। राष्ट्रीय भवन-निर्माण सगठन के अन्तर्गत वल्लभ विद्यानगर (आनन्द), बगलौर, कलकत्ता, चण्डीगढ, और नई दिल्ली मे पाँच ग्रामीण आवास शाखाएँ काम कर रही है, जो ग्रामीण आवास और ग्राम आयोजन के बारे मे अनुसन्धान, प्रशिक्षण और विस्तार कार्य करती हैं। राष्ट्रीय भवन-निर्माण और आवास सम्बन्धी आँकडे एकत्र करने वाली राष्ट्रीय सस्था है, 'इस्काप' क्षेत्र के लिए सयुक्त राष्ट्रसघ के क्षेत्रीय आवास केन्द्र के रूप मे भी कार्य करता है।

आवास समस्या के हल के लिए सरकारी योजनाएँ

आवास समस्या के हल के लिए सरकारी योजनाओ मे, (क) राज्य योजनाएँ, (ख) केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाएँ सम्मिलित हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख योजनाओं का उल्लेख करेंगे—

1. सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना, 1952 (Subsidised Industrial Housing Scheme, 1952)—प्रथम योजना की सिफारिश के आधार पर भारत सरकार ने राज्यो, मालिको और श्रमिको से विचार-विमर्श करने के बाद यह योजना तैयार की। इस योजना के अन्तर्गत तीन प्रकार के मकान निर्माण हेतु सहायता और ऋण देने का प्रावधान किया गया—

(i) वे मकान जिनका निर्माण राज्य सरकारो द्वारा अथवा कानूनन मण्डलो जैसे विकास मण्डल, सुधार ट्रस्ट आदि द्वारा किया जाएगा।

(ii) निजी मालिको द्वारा अपने सस्थान मे कार्यरत श्रमिकों द्वारा बनाए जाने वाले मकान।

(iii) श्रम सहकारी समितियो द्वारा बनाए जाने वाले मकान।

प्रथम प्रकार के मकानों के निर्माण हेतु कुल निर्माण व्यय का 50% सहायता तथा 50% ऋण 25 वर्ष मे चुकाने योग्य देना केन्द्रीय सरकार ने स्वीकार किया। शेष दोनो प्रकार के मकानो के निर्माण हेतु कुल निर्माण लागत का 25% सहायता तथा 25% ऋण (15 वर्ष हेतु) देने का प्रावधान रखा गया।

यह योजना सन्तोषप्रद नही रही और इसमे कई बार सशोधन किया गए।

2 समेकित सहायता प्राप्त आवास योजना, 1966 (Integrated Subsidised Housing Scheme, 1966)—उपरोक्त योजना संशोधन सन् 1966 में कर दिया गया और इस औद्योगिक श्रमिकों तथा आर्थिक दृष्टि से कमजोर समाज के वर्ग की समेकित सहायता प्राप्त आवास योजना कहा जाने लगा। यह योजना औद्योगिक श्रमिकों और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल समाज के उन वर्गों के लिए है जिनकी मजदूरी या आमदनी प्रति माह 350 रु से अधिक नहीं है। इस योजना के अन्तर्गत मकान बनाकर किराए पर दे दिए जाते हैं और किराए में निर्माण पर आए स्वीकृत धन का 50% तक सहायता के रूप में दे दिया जाता है। 30 अप्रैल 1975 तक 1 82 223 मकान बनाए जा चुके थे।

3 बागान श्रमिकों हेतु सहायता प्राप्त आवास योजना 1951 (Subsidised Housing Scheme for Plantation Workers)—बागान श्रम अधिनियम 1951 (Plantation Act of 1951) के अन्तर्गत प्रत्येक मालिक को श्रमिक व उसके परिवार हेतु आवास व्यवस्था करने का दायित्व है। बागान श्रमिकों हेतु सहायता प्राप्त आवास योजना सन् 1956 में बनाई गई। इसके अन्तर्गत मालिकों को पुनर्निर्माण लागत का 50% ऋण तथा 25% सहायता देने का प्रावधान है। बनाए गए मकान बिना किराए के लिए जाते हैं। सन् 1966 में श्रमिकों की आवास व्यवस्था हेतु पुनः लागत का 90% (66% ऋण और 25% सहायता) देने का प्रावधान रखा गया।

4 निम्न आय वर्ग आवास योजना 1954 (Low Income Group Housing Scheme 1954)—यह योजना सन् 1954 में शुरू की गई। इसमें उन श्रमिकों तथा उनकी सहकारी समितियों को ऋण देने की व्यवस्था है जिनकी वार्षिक आय 7200 रुपये से अधिक नहीं है। ऋण की राशि विकसित भूमि की लागत के 80% तक होती है और अधिकतम ऋण राशि 14 500 रु तक होती है। 30 अप्रैल 1975 तक 2 43 047 मकान बनाए जा चुके थे।

5 गन्दी बस्ती उन्मूलन और सुधार योजना 1956 (Slum Clearance and Improvement Scheme)—यह योजना सन् 1956 में शुरू की गई। इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के माध्यम से नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायों को गन्दी बस्ती के उन्मूलनार्थ 50% आर्थिक सहायता तथा 37½% ऋण देती है। यह सहायता उन परिवारों को बसाने हेतु दी जाती है जिनकी आय 250 रुपये प्रति माह से अधिक नहीं है तथा जो विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों की गन्दी बस्तियों में रहते हैं। सन् 1970 में केन्द्रीय सरकार ने पश्चिम बंगाल सरकार को कलकत्ता की श्रम बस्तियों में आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने हेतु शत प्रतिशत सहायता देने का निर्णय लिया।

6 मध्यम आय वर्ग योजना 1959 (The Middle Income Group Housing Scheme, 1959), इस योजना के अन्तर्गत जो सन् 1959 में प्रारम्भ हुई थी मकान बनाने के लिए ऋण सामान्यतः उस धनराशि में से दिया जाता है जिसे

भारतीय जीवन बीमा निगम ऋण के रूप मे राज्यो को देता है। केन्द्र शासित प्रदेशो को यह धन केन्द्रीय सरकार देती है। इस योजना के अन्तर्गत मकान बनाने के लिए ऋण उन व्यक्तियो को दिया जाता है जिनकी वार्षिक आय 7,201 रुपये से 18,000 रुपये के बीच होती है। ऋण मकान की लागत का 80% तक होता है और यह अधिकतम 27,500 रुपये तक हो सकता है। ऋण के पात्र व्यक्तियो को बने बनाए मकान खरीदने के लिए भी ऋण मिलता है। 30 अप्रेल, 1975 तक 33,844 *मकान बनाए जा चुके थे।*

7. किराया आवास योजना, 1959 (The Rental Housing Scheme, 1959)—किराया आवास योजना राज्य सरकारो के कर्मचारियों के लिए है और यह सन् 1959 मे प्रारम्भ की गई थी। इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारें अपने कर्मचारियो के लिए मकान बनवाती हैं और उन्हे किराये पर देती हैं, 30 अप्रेल, 1975 तक 23,669 मकान बन चुके थे।

8 झुग्गी-झोपड़ी उन्मूलन योजना, 1960 (Jhuggi-Jhopri Removal Scheme, 1960)—*यह योजना सन् 1960 मे लागू की गई। योजना का उद्देश्य जुलाई सन् 1960 से पूर्व सरकारी भूमि पर अनधिकृत रूप से रहने वालो की झुग्गी झोपड़ियो को हटाना तथा उनको अन्यत्र बसाना था। यह केवल दिल्ली संघीय प्रदेश मे ही लागू है।*

9. ग्रामीण आवास परियोजना कार्यक्रम, 1957 (The Village Housing Projects Scheme, 1957)—यह योजना सन् 1957 से शुरू की गई। इस कार्यक्रम मे ग्रामीणो को मकान बनाने के लिए ऋण देने की व्यवस्था है। यह ऋण निर्माण लागत का 80% तक हो सकता है और अधिकतम 4,000 रुपये होता है। ग्रामो के वातावरण-सुधार के लिए गलियाँ और नालियाँ बनवाने के लिए भी इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋण दिया जाता है। 30 अप्रेल, 1975 तक 56,858 मकान और लगभग 246 किलोमीटर लम्बी गलियाँ तथा 189 किलोमीटर लम्बी नालियाँ बनाई गईं।

10 भूमि अधिग्रहण और विकास योजना, 1959 (The Land Acquisition Development Scheme, 1959)—इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारें और केन्द्र शासित क्षेत्रो के शहरी क्षेत्रो मे भूमि का अधिग्रहण और विकास करते हैं, ताकि मकान बनाने के इच्छुक व्यक्तियो को, विशेषकर निम्न आय वर्ग के व्यक्तियो को, उचित मूल्य पर विकसित प्लाट मिल सकें। इसका उद्देश्य भूमि के मूल्य मे स्थिरता लाना, नगर विकास के कार्य को युक्ति संगत बनाना और स्वयंपूर्ण सुविधा युक्त बस्तियो के निर्माण को बढ़ावा देना है। 30 अप्रेल, 1975 तक विभिन्न राज्य सरकारो ने 10,800 हैक्टर से अधिक भूमि का अधिग्रहण और 5,665 हैक्टर से अधिक भूमि का विकास कर लिया था।

11. भूमिहीन मजदूरो को आवास निर्माण के लिए मुफ्त जमीन देने की योजना, 1971 (*A Scheme for Providing Free House-sites for Landless*

Workers 1971)—भूमिहीन मजदूरों को मकान बनाने के लिए मुफ्त जमीन देने की एक योजना सन् 1971 से चालू है। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों को मकान के लिए मुफ्त जमीन देने के वास्ते भारत सरकार जहाँ कहीं आवश्यक हो राज्य सरकारों को मकानों की जमीन के विकास और भूमि के अधिग्रहण पर आने वाले खर्च की पूर्ति के लिए पूरी सहायता देती है। साधारणत एक भूमिहीन परिवार को मकान के लिए अधिकतम 100 वर्ग गज जमीन दी जाती है। 31 मार्च 1974 तक 15 राज्य सरकारों की परियोजनाओं को जिनके लिए 19 77 करोड़ रु की केन्द्रीय सहायता थी और जिनके अन्तर्गत 8 85 502 मकानों के लिए भूमि की व्यवस्था या स्वीकृति दी जा चुकी थी। इसके अतिरिक्त 15 राज्यों—आंध्र बिहार गुजरात हरियाणा, हिमाचल प्रदेश कर्नाटक केरल मध्य प्रदेश महाराष्ट्र उड़ीसा पंजाब राजस्थान तमिलनाडु उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल तथा 3 संघ राज्य क्षेत्रों चण्डीगढ़ दिल्ली तथा पाण्डिचेरी ने ऐसे कानून बनाए हैं जिनसे भूमिहीन मजदूरों को गाँवों में उसी भूमि पर मकान बनाने का अधिकार मिल सके जिन पर उनका कब्जा है। पाँचवीं योजना के प्रारम्भ में यह योजना राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत कर दी गई। राज्य सरकार अब अपने अपने अधिकार क्षेत्र में सम्बद्ध परियोजनाओं की एक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के रूप में योजना की शर्तों के अनुसार जाँच कर सकती हैं और उन्हें स्वीकृति दे सकती हैं। सन् 1976 तक बिहार हरियाणा हिमाचल प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल की राज्य सरकारों ने 88 878 आवास भूमि के प्रबन्ध के लिए 1 27 करोड़ रुपये की मंजूरी दी थी। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों को मकानों के लिए जमीन देने के वास्ते पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्यों की वार्षिक योजना राशि में 108 करोड़ 16 लाख रु की व्यवस्था की गई थी। भारत सरकार ने इस योजना के तत्परता से कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारों को कुछ निर्देश जारी किए हैं। 31 दिसम्बर 1975 तक बेघर ग्रामीण श्रमिकों को 58 35 लाख से अधिक घर बनाने की जगहें दी जा चुकी थीं।

औद्योगिक आवास से सम्बन्धित विधान
(Legislation Relating to Industrial Housing)

स्वतन्त्रता से पूर्व हमारे देश में औद्योगिक आवास से सम्बन्धित एक ही अधिनियम था। वह भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1933 (Land Acquisition Act of 1933) था। इसके अन्तर्गत श्रमिकों हेतु मकान बनाने के लिए मालिकों को भूमि प्राप्त करने में सहायता मिलती थी। अभ्रक खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1946 (Mica Mines Labour Welfare Fund Act of 1946) कोयला खान श्रम कल्याण अधिनियम 1947 (Coal Mines Labour Welfare Fund Act of 1947) और लोहा खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम 1961 (Iron-ore Mines Labour Welfare Fund Act of 1961) आदि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए गृह निर्माण का प्रावधान रखा गया है। इसके

अतिरिक्त कई राज्यो द्वारा भी आवास व्यवस्था के लिए अधिनियम पास किए गए हैं। उदाहरणार्थ—बम्बई आवास मण्डल अधिनियम 1948, मध्य प्रदेश आवास मण्डल अधिनियम 1950, 1955 का मैसूर आवास मण्डल अधिनियम, 1952 का हैदराबाद श्रम आवास अधिनियम, 1956 का पजाब औद्योगिक आवास अधिनियम, 1955 का उत्तर प्रदेश औद्योगिक आवास अधिनियम, आदि। इन अधिनियमो के अन्तर्गत विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिए आवास व्यवस्था के प्रावधान रखे गए है।

आवास योजनाओ की धीमी प्रगति के कारण
(Causes of Slow Pace of Housing Scheme)

आवास व्यवस्था का दायित्व सरकार, मालिक, श्रम सघो तथा अन्य सगठनो पर सयुक्त रूप से है। इसी सयुक्त उत्तरदायित्व को ध्यान मे रखते हुए देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् इन वर्गों द्वारा विभिन्न आवास योजनाएँ चलाई गई हैं। इन आवास योजनाओ द्वारा बढ़ती हुई श्रमिको की आवास व्यवस्था की माँग की तुलना मे पूर्ति कम हुई है। आवास योजनाएँ धीमी गति से चली हैं। इसके कुछ प्रमुख कारण ये हैं—

1 सरकारी योजनाएँ लाल-फीताशाही की शिकार रही है। सरकारी कार्य धीरे-धीरे होने से आवास योजनाओ की प्रगति भी धीमी दर से हुई है।

2. मकान निर्माण हेतु कच्चे माल को पर्याप्त मात्रा और समय पर मिलने मे कठिनाई के कारण से भी धीमी प्रगति हुई है। सीमेण्ट, लोहा आदि माल पर्याप्त मात्रा मे और समय पर नही मिल सका है।

3 कुछ औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिक 10 रुपये माहवार भी मकान किराया देने मे असमर्थ होने से सरकार अधिक मकान बनाने मे असमर्थ रही है।

4. मालिको को सहायता तथा ऋण के रूप मे मिलने वाली राशि के अतिरिक्त राशि प्राप्त करने मे कठिनाई होती है।

5 भूमि अधिग्रहण करना, कच्चा माल प्राप्त करना आदि कठिनाइयों के कारण मालिको द्वारा आवास योजना की प्रगति धीमी रही है।

6 श्रमिक अशिक्षित तथा अज्ञानी होने के कारण श्रम सहकारी समितियाँ बनाने मे असमर्थ हैं और इनके अभाव मे निर्माण की गति को बढ़ाया नही जा सकता।

7. श्रम सहकारी समितियो को भी मकानो के निर्माण हेतु भूमि प्राप्त करने तथा कच्चा माल—सीमेण्ट, लोहा आदि प्राप्त करने मे कठिनाई आती है। इसमे श्रम सहकारी समितियो द्वारा बनाए जाने वाले मकानो की संख्या अधिक नहीं बढ़ सकी है।

सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास को सफलता हेतु उपाय
(Measure for Successful Industrial Housing Scheme)

राज्य सरकारो, मालिको और श्रम सहकारिताओ द्वारा सहायता प्राप्त

औद्योगिक आवास योजना मे अधिक रुचि नही दिखाई है। इसकी सहायता हेतु श्री वी वी गिरी (V V Giri) ने जो सुझाव दिए थे, वे अनुकरणीय हैं[1]—

1 जो स्थान काम करने के क्षेत्रो से दूर हैं और उनमे श्रमिको की बस्तियाँ बस जाती है वहा से श्रमिको के आने-जाने के लिए राज्य सरकारो और स्थानीय संस्थाओ को यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध करनी चाहिए।

2 श्रमिको की बस्ती मे सार्वजनिक सेवाओ तथा अन्य दूसरी सुविधाओ को उपलब्ध किया जाना चाहिए, उदाहरणार्थ बाजार, डाक घर और स्कूल का प्रबन्ध।

3 जहाँ तक सम्भव हो सके प्रत्येक श्रमिक को एक अलग भूमि का टुकडा दिया जाए जिसमे सभी प्रकार की सुविधाएँ हो। श्रमिको को वहाँ अपने श्रम से मकानो का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

4 मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 म इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि राज्य सरकारें सीधे श्रमिको के वेतन से ऋण की राशि प्राप्त कर सकें।

5 यह योजना उन औद्योगिक श्रमिको के लिए भी काम मे लाई जानी चाहिए जो राज्य सरकारो और केन्द्रीय सरकार के नौकर हैं।

6 जिन श्रमिको के लिए मकान की व्यवस्था नही हो सकी है उनमे से कम से कम 20% के लिए भी यदि मालिक मकान बनवाना चाहे तो उन्हे बढी हुई दर पर 3 से 5 साल तक के लिए वित्तीय सहायता और ऋण देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

7 वैधानिक रूप से बाध्य करने की नीति को काम मे लाया जाना चाहिए तथा राज्य सरकारो को चाहिए कि वे मालिको को उचित दर पर भूमि देने की व्यवस्था करें। वित्तीय सहायता और ऋण देने की दिशा मे भी आगे कदम बढाया जाना चाहिए।

8 यदि कोई अन्य योजना बनाई जाती है तो उसके लिए भी वित्तीय सहायता देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

9 वित्तीय सहायता और ऋण मे वृद्धि करके श्रमिको की सहकारी समितियो को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। राज्य सरकारें इन समितियो को 'न लाभ न हानि' के आधार पर अच्छी भूमि देने की व्यवस्था कर सकती हैं।

10 ऋण वापस लेने की किस्तो मे रियायत की जानी चाहिए, विशेष रूप से श्रमिको की सहकारी समितियो के लिए।

आवास मन्त्रियों के सम्मेलनो द्वारा आवास नीति की समीक्षा

आवास नीति बनाने की जिम्मेदारी केन्द्र और राज्यो के आवास, नगर-विकास और नगर आयोजन मन्त्रियो की है। हम यहाँ 1973, 1974 तथा 1975 मे हुए राज्यो के आवास मन्त्रियो के तीन सम्मेलनो में जो आवास नीति निश्चित की गई, उनका उल्लेख करेंगे।

1. *Giri, V V.* · Labour Problems in Indian Industry, 1959, p. 312-13.

1973 के सम्मेलन की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी[1] - (1) देहात मे भूमिहीन मजदूरो को मकान बनाने के लिए भूमि देने की योजना पाँचवी योजना मे केन्द्रीय क्षेत्र मे जारी रहनी चाहिए। जिन भूमिहीन व्यक्तियो के पास मकान के लिए जमीन है, उन्हे मकान बनाने का अधिकार दिया जाना चाहिए और उन्हे ऐसा दस्तावेजी कानून सबूत मुहैया किया जाना चाहिए, जो अदालत को मान्य हो। भूमि अधिग्रहण सम्बन्धी कार्य मे होने वाले विलम्ब को दूर करने के लिए भूमि अधिग्रहण कानून का सशोधन किया जाना चाहिए। (2) तीन लाख से कम आबादी वाले शहरो पर भी गन्दी बस्तियो के सुधार की केन्द्रीय योजना को लागू करने की गुंजाइश होनी चाहिए। (3) आवास, जल सप्लाई, जोडने वाली सडके, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, रोजगार और मनोरञ्जन की सुविधाओं को ग्रामीण विकास का अभिन्न अग समझा जाना चाहिए और ग्रामीण क्षेत्रो के बहुमुखी विकास का कार्य शुरू किया जाना चाहिए। (4) आवास और नगर विकास निगम को इस बात की अनुमति मिलनी चाहिए कि वह उन ऋणो के सम्बन्ध मे भी सरकारी गारण्टी को प्रतिभूति समझें, जिनमें ब्याज की दर 7 प्रतिशत से अधिक है। (5) आवास और नगर विकास निगम से आवास ऋण प्राप्त करने के सम्बन्ध मे 6½ प्रतिशत (6¾ प्रतिशत ऋण, ¼ प्रतिशत की तुरन्त भुगतान के लिए छूट) ब्याज की रियायती दर प्राप्त करने के लिए निर्माण व्यय की वित्तीय योजना मे आर्थिक दृष्टि से पिछडे वर्ग के लिए निर्धारित 25 प्रतिशत की जो वर्तमान न्यूनतम सीमा है, उसे और कम कर दिया जाना चाहिए। (6) आवास की जमीन के विकास के लिए विश्व बैंक से जो उपलब्ध हो, उसे तथा आवास सम्बन्धी सेवाओं को आवास और नगर विकास निगम के जरिए मुहैया किया जा सकता है। (7) पर्यटन-स्थलो के विशिष्ट महत्त्व को ध्यान मे रखते हुए ऐसे स्थलो के विकास और सुधार के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता दी जानी चाहिए। (8) राज्य सरकारो को राज्य योजना व्यय मे से कम से कम 5 प्रतिशत धनराशि आवास और नगर विकास क्षेत्रो के लिए रखनी चाहिए।

1974 के सम्मेलन की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें ये थी—(1) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारो द्वारा अपनायी जाने वाली राष्ट्रीय आवास नीति की समीक्षा करने और इसके बारे मे सुझाव देने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग स्थापित किया जा सकता है। (2) क्रियान्वित की जा रही सामाजिक आवास योजनाओ की विस्तार से जाँच के लिए मन्त्रियो की एक उच्च स्तरीय समिति स्थापित की जा सकती है। (3) एक ऐसी उच्च स्तरीय समिति स्थापित की जा सकती है जिसमे सम्बद्ध मन्त्रालयो के प्रतिनिधि हो, और जो सविधान मे हुए 25वें संशोधन को ध्यान में रखते हुए भूमि अधिग्रहण कानून की जाँच करे और सुझाव दे कि इस कानून को किस प्रकार सर्वोत्तम ढग से सशोधित किया जा सकता है, ताकि शहरी क्षेत्रो और शहरीकरण-योग्य सीमाओ मे भूमि का अधिग्रहण तेजी और सरलता से किया जा

1. भारत 1975.

सके । (4) देहात में मकान बनाने और ग्रामीण विकास के अन्य कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए एक अलग ग्रामीण वित्त निगम स्थापित किया जा सकता है ।

अक्तूबर 1975 में राज्यों के आवास मन्त्रियों के एक सम्मेलन में पिछले सम्मेलनों में दिए गए सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए उठाए गए कदमों पर ध्यान दिया तथा इन सुझावों को कार्यान्वित करने की गति को तीव्रतर करने के लिए विभिन्न तरीकों और साधनों पर विचार किया । सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार थे—(1) देश में सन्तुलित शहरी तथा क्षेत्रीय विकास प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय शहरीकरण नीति अपनाई जाए, (2) राष्ट्रीय आवास नीति अपनाने के लिए शीघ्र ही राष्ट्रीय आवास आयोग स्थापित किया जाए, (3) संस्थागत वित्त तथा अन्य वित्त के जरिए ग्रामीण विकास के साथ-साथ ग्रामीण आवास कार्यक्रम कार्यान्वित करने के लिए ग्रामीण आवास निगम की स्थापना की जाए, (4) राज्य सरकारों को अपने वार्षिक अनुदानों में से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को आवास देने के लिए राशि अलग रखने को कहा गया है, (5) केन्द्रीय सरकार को कानून बनाना चाहिए ताकि खाली शहरी तथा शहरी बनाई जा सकने वाली भूमि को सरकार नगरों में रहने वाले निर्धन लोगों की आवासीय स्थिति को सुधारने के लिए प्रयोग में ला सकें, (6) तकनीकी सुधार करके, स्थानीय सामान का प्रयोग करके तथा सार्वजनिक आवास एजेंसियों के ऊपरी खर्च कम करके मकानों की कीमत घटाई जानी चाहिए (7) वर्तमान पूंजी निवेश को बढ़ाकर राज्य सरकारों की उपलब्ध संस्थागत पूंजी का उचित भाग आवास निर्माण के लिए रखा जाना चाहिए तथा (8) ग्रामीण कामगारों को आवास स्थल देने की परियोजना पुनः केन्द्रीय क्षेत्र को दे दी जाए ताकि इसे प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित किया जा सके ।

श्रम कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र
(Definition & Scope of Labour Welfare)

विभिन्न समितियों, और सम्मेलनों, आयोगों द्वारा श्रम-कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र के विषय में भिन्न-भिन्न विचार दिए हैं ।

श्रम शाही आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour, 1931) के अनुसार, "श्रम कल्याण एक लचीला शब्द है जिसके एक देश से दूसरे देश में अलग अलग अर्थ निकलते हैं । यह विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाज, औद्योगीकरण की मात्रा और श्रमिक का शैक्षणिक विकास आदि के अनुसार बदलता रहता है ।"[1]

श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए कृषि जांच समिति (Agricultural Enquiry Committee) ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि श्रमकल्याण क्रियाओं के अन्तर्गत श्रमिकों के बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक एवं आर्थिक विकास के कार्यों को शामिल किया जाना चाहिए । ये कार्य चाहे सरकार, नियोक्ता या अन्य संस्थानों द्वारा ही क्यों न किए जाएँ । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की एशियाई

1 Report of the Royal Commission on Labour, 1931, p 261

प्रादेशिक सम्मेलन की द्वितीय रिपोर्ट के अनुसार, "श्रम कल्याण से ऐसी सेवाओं और सुविधाओं को समझा जाना चाहिए, जो कारखानो के अन्दर या निकटवर्ती स्थानो मे स्थापित की गई हो ताकि उनमे काम करने वाले श्रमिक स्वस्थ और शान्तिपूर्ण परिस्थितियो मे अपना काम कर सकें तथा अपने स्वास्थ्य और नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने वाली सुविधाओं का लाभ उठा सकें।'[1]

जून, सन् 1956 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की 39वी बैठक के अनुसार निम्नलिखित सेवाओं और सुविधाओं को श्रम कल्याण क्रियाओं के अन्तर्गत रखा गया है—

1 संस्थान मे अथवा पास मे भोजन की व्यवस्था।

2 आराम और मनोरञ्जन की सुविधाएँ।

3 जहाँ सार्वजनिक यातायात असमुचित अथवा अव्यावहारिक है वहाँ श्रमिको के आने-जाने के लिए यातायात की सुविधा।

श्रम कल्याण क्रियाओं के क्षेत्र का सबसे अच्छा विवरण श्रम अनुसंधान समिति, 1946 (Labour Investigation Committee, 1946) द्वारा दिया गया है। इसके अनुसार, "श्रम कल्याण क्रियाओं मे वे सभी क्रियाएँ शामिल की जाती हैं जो श्रमिको की बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति के लिए की जाती हैं। ये कार्य चाहे नियोक्ता, सरकार या अन्य संस्थानो द्वारा किया जाए तथा साधारण अनुबन्ध या विधान के अन्तर्गत श्रमिको को जो मिलना चाहिए उसके अलावा किए गए हो। इस परिभाषा के अन्तर्गत हम आवास, चिकित्सा और शिक्षा सुविधाएँ पोषाहार (कैन्टीन की व्यवस्था), आराम और मनोरञ्जन की सुविधाएँ, सहकारी समितियाँ, नर्सरी और पालने, सफाई की सुविधाएँ, सवेतन छुट्टियाँ, सामाजिक बीमा, ऐच्छिक रूप से अकेले अथवा संयुक्त रूप से श्रमिको के साथ मे मालिक द्वारा बीमारी और मातृत्व लाभ योजनाएँ, प्रोविडेण्ट फण्ड, ग्रेच्युटी और पेंशन आदि का समावेश कर सकते हैं।"[2]

श्रम कल्याण कार्य का वर्गीकरण
(Classification of Labour Welfare Work)

श्रम कल्याण शब्द का एक व्यापक अर्थ मे प्रयोग किया जाता है। श्रम कल्याण कार्यों को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है—

1. वैधानिक कल्याण कार्य (Statutory Welfare Work)—ये कल्याण कार्य हैं जो मालिको द्वारा श्रमिको को कानूनी तौर पर प्रदान किए जाते है। विधान मे श्रमिको के कल्याण हेतु न्यूनतम स्तर निश्चित कर दिए जाते है और इनका उल्लंघन करने वाले मालिको को दण्डित किया जा सकता है। इनमे कार्य की दशाएँ, कार्य घण्टे, प्रकाश, सफाई और स्वास्थ्य सम्बन्धित विषय आते हैं।

1. Report II of the I L O Asian Regional Conference, p. 3
2. Report Labour Investigation Committee, p. 345.

2 ऐच्छिक कल्याण कार्य (Voluntary Welfare Work)—ये वे कल्याण कार्य हैं जो मालिकों द्वारा स्वेच्छा से किए जाते हैं। ये उदारवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। यदि हम इन्हें गहराई से देखें तो इस प्रकार के कार्यों से न केवल श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि होती है बल्कि मालिक व श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित होने से औद्योगिक झगड़ों में कमी आती है। इस प्रकार के कार्य ऐच्छिक संस्थाओं जैसे वाई एम सी ए (Y M C A) द्वारा भी प्रदान किए जाते हैं।

3 पारस्परिक अथवा संयुक्त कल्याण कार्य (Mutual Welfare Work)—ये कल्याण कार्य संयुक्त रूप से मालिकों और श्रमिकों द्वारा किए जाते हैं। इसमें श्रम संघों द्वारा श्रम कल्याण हेतु किए गए कार्य शामिल किए जाते हैं।

श्रम कल्याण कार्य का दूसरा वर्गीकरण भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) कारखाने के अन्दर प्रदान किए जाने वाले कल्याण कार्य (Intra mural Activities)—इसके अन्तर्गत सम्मिलित किए जाते हैं जैसे पीने का पानी, कन्टीन, धावन चिकित्सा सुविधा और विश्रामालय आदि।

(ii) कारखाने के बाहर के कल्याण कार्य (Extra mural Activities)—ये कारखाने के बाहर प्रदान किए जाते हैं और इनके अन्तर्गत शैक्षणिक और मनोरञ्जन की सुविधाएँ खेलकूद और चिकित्सा सुविधाओं आदि का समावेश किया जाता है। बीमारी, बेरोजगारी वृद्धावस्था आदि के समय दी जाने वाली वित्तीय सुविधाएँ भी इसके अन्तर्गत आती हैं।

श्रम कल्याण कार्य के उद्देश्य
(Aims of Labour Welfare Work)

कल्याणकारी क्रियाओं का उद्देश्य मानवीय, आर्थिक और नागरिक आधार माना गया है।[1]

1 मानवीय आधार (Humanitarian)—श्रम एक उत्पादन का मानवीय साधन है। श्रमिक कुछ सुविधाएँ अपने आप प्राप्त नहीं कर पाता है क्योंकि उसकी निम्न आय है। वह निर्धन है अतः इन सुविधाओं को मानवीय आधार पर प्रदान किया जाता है।

2 आर्थिक आधार (Economic Basis)—श्रम कल्याण क्रियाओं से श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है तथा श्रम और पूँजी के बीच मधुर सम्बन्ध होने से औद्योगिक विवाद भी कम हो जाते हैं। अधिक उत्पादन से न केवल मालिक को ही लाभ प्राप्त होता है बल्कि समूचे राष्ट्र और प्रत्येक समाज के वर्गों को भी होता है।

3 नागरिक आधार (Civic Basis)—श्रम कल्याण कार्यों से श्रमिकों के उत्तरदायित्व और इज्जत में वृद्धि होती है। वह अपने आपको एक अच्छा नागरिक समझने लगता है।

1 *Saxena R C* Labour Problems & Social Welfare, p 299

भारत में कल्याण कार्य की आवश्यकता
(Necessity of Welfare Work in India)

भारतीय श्रमिक किन दशाओ मे कार्य करते है और उनमे कौनसी विशेषताएं पायी जाती है— इन बातो पर विचार करते हुए कल्याण कार्य की आवश्यकता का निम्नलिखित आधारो पर अध्ययन किया जा सकता है—

1 भारतीय श्रमिक की कार्य दशाएं खराब है। वहाँ श्रमिको को कार्य के अधिक घण्टे, अस्वस्थ वातावरण आदि के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। इन दशाओ मे कार्य करने के पश्चात् श्रमिक अपनी थकान को दूर नही कर सकता। वह कई सामाजिक बुराइयो का शिकार बन जाता है। उदाहरणार्थ शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन, अन्य अपराध आदि। अत इन बुराइयो को समाप्त करने का एक मात्र साधन श्रम कल्याण क्रियाएँ प्रदान करना है।

2 *श्रम कल्याण कार्य के अन्तर्गत शिक्षा, चिकित्सा, खेलकूद, मनोरंजन,* आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती है। इनसे श्रमिकों व मालिकों के बीच मधुर सम्बन्धो को प्रोत्साहन मिल सकेगा। परिणामस्वरूप औद्योगिक शान्ति की स्थापना की जा सकेगी।

3 विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी क्रियाओ से श्रमिक विभिन्न कारखानो की ओर आकर्षित होगे। वे रुचि लेकर कार्य करेंगे और इसके परिणामस्वरूप एक स्थायी एव स्थिर श्रम शक्ति (Permanent & Stable Labour Force) का उदय होगा।

4 अच्छी आवास व्यवस्था, कैन्टीन, बीमारी और अन्य लाभों के रूप मे कल्याणकारी कार्य करने के फलस्वरूप श्रमिको की मानसिक दशा मे परिवर्तन होगा। वे कारखाने मे अपना योगदान समझ सकेंगे। इससे श्रमिको की अनुपस्थिति, श्रमिक परिवर्तन आदि मे कमी होगी और श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होगी।

5 केन्टीन, मनोरंजन, चिकित्सा, मातृत्व और बाल कल्याण सुविधाएँ और शैक्षणिक सुविधाओ से समाज को कई लाभ प्राप्त होगे। केन्टीन से श्रमिको को सस्ता और अच्छा भोजन, मनोरंजन से रिश्वतखोरी, शराबखोरी, जुआखोरी आदि की समाप्ति, बीमारियो की समाप्ति और मानसिक दक्षता तथा आर्थिक उत्पादकता आदि रूपो मे सामाजिक लाभ (Social Advantages) प्राप्त होते है।

6. *हमारे देश ने तीव्र आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन का मार्ग* अपनाया है। अत विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु एक सतुष्ट श्रम शक्ति (Contended Labour Force) का होना आवश्यक है और इसके लिए श्रम कल्याण कार्य की आवश्यकता है।

भारत में कल्याण कार्य
(Welfare Work in India)

हमारे देश मे कल्याण कार्यो पर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही ध्यान दिया जाने लगा। निर्मित वस्तुओ की माँग मे वृद्धि, कीमतो मे निरन्तर वृद्धि, औद्योगिक

ऐसो म आवास समस्या औद्योगिक अशान्ति आदि तत्त्वों ने सरकार, मालिकों, श्रमिकों और अन्य सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा संस्थाओं का ध्यान आकर्षित किया। श्रम कल्याण कार्य करने का श्रेय मुख्यतः निम्नलिखित संस्थाओं को है—

(1) केन्द्रीय सरकार, (2) राज्य सरकार, (3) उद्योगपति या मालिक, (4) श्रमिक-संघ, (5) समाज-सेवी संस्थाएं तथा, (6) नगरपालिकाएँ।

1 केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित कल्याण कार्य
(Welfare Activities of the Central Govt.)

दूसरे महायुद्ध तक श्रम कल्याण क्षेत्र म भारत सरकार द्वारा बहुत कम कार्य किया गया। सन् 1922 म अखिल भारतीय कल्याण सम्मेलन (All India Welfare Conference, 1922) म कल्याण समस्याओं पर विचार किया तथा देश म कल्याण कार्य के समन्वय पर अधिक जोर दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के प्रस्ताव के कारण सन् 1926 म कल्याण कार्य के सम्बन्ध म आँकड़े एकत्रित करने हेतु प्रान्तीय सरकारों को आदेश दिए गए। द्वितीय महायुद्ध तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रम कल्याण कार्य की ओर सरकार ने अधिक ध्यान देना शुरू किया। कोयला और अभ्रक खानों में श्रम कल्याण कोषों की स्थापना तथा प्रमुख उद्योगों म प्रोविडेन्ट फण्ड आदि के शुरू करने से इस क्षेत्र म कल्याण कार्यों को प्रोत्साहन मिला। भारत सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में श्रमिकों की कार्यदशाओं के नियमन और कल्याणकारी सेवाएँ प्रदान करने के लिए कई अधिनियम पास किए। सन् 1944 और सन् 1946 म क्रमशः कोयला और अभ्रक खानों में श्रम कल्याण कोषों की स्थापना की गई जिनके अन्तर्गत मनोरंजन, शिक्षा और चिकित्सा आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। कारखाना अधिनियम, 1948, खान अधिनियम, 1952, बागान श्रम अधिनियम, 1952, मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम, 1961, लोहा खान श्रम कल्याण अधिनियम, 1961, आदि के अन्तर्गत केन्टीन, पालने, विश्रामालय, धोने की सुविधाएँ, चिकित्सा सुविधा और श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त करना, काम की दशाओं का नियमन आदि प्रावधान हैं। इनसे श्रमिकों के कल्याण म वृद्धि होती है तथा उनकी कार्यकुशलता बढ़ती है। उपरोक्त सभी कल्याण कार्य कानूनन है जिनको प्रदान करना प्रत्येक मालिक का दायित्व है।

कल्याण कार्यों के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त श्रम कल्याण कोषों के निर्माण में भी एक महत्त्वपूर्ण योजना का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इन कोषों में अंशदान स्वैच्छिक आधार पर श्रमिकों, सरकारी अनुदान, अर्थदण्ड की प्राप्तियाँ, ठेकेदारों से छूट, केन्टीन के लाभ, सिनेमाओं से प्राप्त आय आदि से प्राप्त होता है। यह योजना सन् 1946 मे बनाई गई। इस प्रकार के कोष कई सरकारी संस्थानों में स्थापित कर दिए गए हैं। इनसे आन्तरिक और बाह्य खेल, पुस्तकालय और वाचनालय, रेडियो, शिक्षा और मनोरंजन आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। विभिन्न संस्थानों और श्रम संघों द्वारा प्रसूति-केन्द्रों, शालाओं और सामाजिक सेवा केन्द्रों को चलाने के लिए अनुदान भी दिए जाते हैं।

भारत सरकार के श्रम कल्याणकारी कार्यों ग्रौर व्यवस्थाग्रो का सुन्दर विवरण वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ 'भारत 1976' मे निम्नानुसार दिया गया है—

कारखानो, खानो ग्रौर बागानो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए 1948 के कारखाना ग्रधिनियम, 1952 के खान ग्रधिनियम 1951 के बागान ग्रधिनियम ग्रौर 1966 के बीडो तथा सिगार कर्मचारी (रोजगार की स्थितियां) ग्रधिनियम के ग्रन्तर्गत सुविधाजनक वातावरण बनाए रखने के लिए कैन्टीन, विश्राम स्थल, छोटे बच्चों की देखभाल की बाड़ियां, चिकित्सा सहायता, शिक्षा ग्रौर मनोरंजन के साधन जैसी सुख-सुविधाएँ जुटाई गई हैं। 1970 के ठेका मजदूर (नियमन तथा उन्मूलन) ग्रधिनियम के ग्रनुसार ठेके पर काम करने वाले मजदूरो को भी सुविधाएं देना जरूरी है। जिन कारखानो मे 500 या इससे ग्रधिक कर्मचारी काम करते हैं उनमे कर्मचारियो की सुख-सुविधाग्रो की देखभाल के लिए कल्याण ग्रधिकारी की नियुक्ति करनी ग्रावश्यक है।

खानें—खानो मे काम करने वाले श्रमिको की भलाई के लिए कोयला, ग्रभ्रक, कच्चा लोहा, चूने का पत्थर ग्रौर डोलोमाइट खानो मे कल्याण कोष स्थापित किए गए है। इन कोषो के लिए धन, कोक ग्रौर कोयला खानो मे भेजे जाने वाले कोयले पर शुल्क लगा कर, ग्रभ्रक के निर्यात पर मूल्य चुंगी कर लगा कर, कच्चे लोहे के खनन उद्योगो मे उत्पादन पर उपकर लगा कर ग्रौर लोहा तथा इस्पात, सीमेंट ग्रौर दूसरे कारखानो द्वारा खपत किए जाने वाले चूने के पत्थर ग्रौर डोलोमाइट पर शुल्क लगा कर इकट्ठा किया जाता है। इन कल्याणकारी कार्यों मे श्रमिको ग्रौर उनके ग्राश्रितो के लिए ग्रावास, चिकित्सा, शिक्षा ग्रौर मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएँ शामिल हैं। इसमे यह भी व्यवस्था है कि दुर्घटना होने पर राहत तथा ग्रन्य लाभ भी दिए जा सकें।

गोदी मजदूर—बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, काण्डला, मद्रास, मारमुगोग्रा, विशाखापट्टनम ग्रौर ग्रन्य बन्दरगाहो पर काम करने वाले गोदी कर्मचारियो के लिए ग्रनेक कल्याणकारी कार्य चालू है। इनमे मकानो, चिकित्सा बच्चो के स्कूल की फीस की प्रतिपूर्ति तथा मनोरंजन ग्रौर कैन्टीन ग्रादि की सुविधाएँ शामिल हैं। कुछ बन्दरगाहो मे उचित दर की दुकानें ग्रौर उपभोक्ता सहकारी समितियाँ भी काम कर रही हैं।

बागान मजदूर—1951 के बागान श्रम ग्रधिनियम के ग्रन्तर्गत सब बागान मालिक ग्रावासी कर्मचारियो ग्रौर उनके परिवारो को मकान देते हैं ग्रौर उनके लिए ग्रस्पताल ग्रौर ग्रौषधालय चलाते हैं। कहीं-कहीं मजदूरो के बच्चो की शिक्षा के लिए प्राथमिक स्कूल भी चलाए जा रहे हैं। इसी तरह चाय बोर्ड के ग्रनुदान से कुछ चाय बागानो मे कुछ उपयोगी दस्तकारियाँ जैसे सिलाई, बुनाई ग्रौर टोकरी ग्रादि बनाना सिखाया जाता है ग्रौर मनोरंजन की भी सुविधाएं दी जाती हैं।

सन् 1960 मे उक्त ग्रधिनियम मे संशोधन करके इस बात की रोकथाम की गई कि बागानो के मालिक ग्रपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए ही बागान के ग्रलग-ग्रलग टुकड़े करके न दिखा सकें।

मोटर परिवहन मजदूर—सन् 1961 के मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम में परिवहन कर्मचारियों के कल्याण और उनके काम की परिस्थिति के नियमन का प्रावधान है। इसमें कैंटीनें विश्राम के लिए कमरे, वर्दी छुट्टी आदि देने और काम के घण्टे तय करने की विभिन्न योजनाएँ चालू हैं। इस कानून का परिपालन राज्य सरकार करती है जिसके लिए उन्होंने आवश्यक नियम बनाए हैं।

केन्द्रीय अधिकरणों की कल्याण निधियाँ—केन्द्रीय अधिकरणों में कल्याण निधियाँ सन् 1966 में स्वैच्छिक आधार पर स्थापित की गई थी। मजदूरों और कर्मचारियों की सामाजिक और शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनकी क्षमता बढ़ाई जा रही है। लेकिन इस विषय में एक मत नहीं होने से कोई सन्तोषप्रद कार्य नहीं किया गया है। बम्बई, उत्तर प्रदेश राजस्थान मध्यप्रदेश जैसे प्रान्तों में विभिन्न खानों में कार्यरत श्रमिकों हेतु श्रम कल्याण कोष अधिनियम पास किए गए हैं।

(2) राज्य सरकारों द्वारा किए गए श्रम कल्याण कार्य (Welfare Activities of the State Governments)

केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी कल्याणकारी कार्य किए गए हैं। महाराष्ट्र गुजरात व राजस्थान में श्रम कल्याण केन्द्र (Labour Welfare Centres) चलाए जाते हैं। इन श्रम कल्याण केन्द्रों पर महिला विभाग और पुरुष विभाग हैं। महिला विभाग में महिला दर्जी तथा महिला सुपरवाइजर होती है। महिला दर्जी श्रमिकों की स्त्रियों को सिलाई सम्बन्धी कार्य सिखाती है जबकि महिला सुपरवाइजर छोटे छोटे बच्चों तथा महिलाओं को पढ़ाने का कार्य करती हैं। ये श्रमिकों के परिवारों में जाती हैं और इस प्रकार की क्रियाओं के विषय में जानकारी देती हैं। पुरुष विभाग में गेम्स सुपरवाइजर, संगीत शिक्षक, वैद्य या कम्पाउण्डर होते हैं। आन्तरिक व बाह्य खेलकूद वाचनालय, पुस्तकालय, चिकित्सा सुविधा, रेडियो, फिल्म दिखाना आदि सुविधाएँ पुरुष विभाग द्वारा प्रदान की जाती हैं। इनके ऊपर श्रम कल्याण निरीक्षक होता है जिसका कार्य सम्बन्धित कल्याण केन्द्रों की विभिन्न गतिविधियों को देखना तथा उनमें समन्वय स्थापित करना है। उत्तर प्रदेश, बिहार मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि राज्य सरकारों ने भी श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना की है। इन केन्द्रों पर संगीत शिक्षक द्वारा संगीत की शिक्षा भी दी जाती है। इन केन्द्रों की संख्या औद्योगिक श्रमिकों की संख्या की तुलना में कम है। इन केन्द्रों की विभिन्न गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए पर्याप्त वित्त व्यवस्था होनी चाहिए। महिला विभाग के अन्तर्गत महिला दर्जी द्वारा चलाए जाने वाले कार्य में वृद्धि करने हेतु अधिक सिलाई मशीनें खरीदनी चाहिए तथा उनकी समय-समय पर मरम्मत भी की जानी चाहिए। श्रमिकों के बच्चों की शिक्षा हेतु भी अधिक सुविधा प्रदान करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इन कल्याण केन्द्रों की प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों को भी हिस्सा दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा केन्द्रों को चलाया जाना चाहिए। सरकार को कोई ऐसा विधान बनाना चाहिए जिससे मालिक भी कल्याण कार्यों में अपना योगदान दे सकें।

(3) नियोजकों या मालिको द्वारा कल्याण कार्य (Welfare Work by Employers)

नियोजको द्वारा कल्याण कार्य स्वेच्छा से न करके विधान के अन्तर्गत प्रदान किए गए हैं। केण्टीन, पालने, विश्रामालय स्नान एवं धोने की सुविधाएँ, चिकित्सा सुविधाएँ आदि विभिन्न अधिनियमो के अन्तर्गत दी जाती हैं। *कल्याण कार्य पर किए गए व्यय को मालिको ने 'अपव्यय' (Wastage) माना है जबकि अब अध्ययन से पता चला है कि इससे श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है और इसे अपव्यय न मानकर विनियोग (Investment) माना जाता है।* अधिकांश उद्योगपति कल्याण कार्यों के प्रति अनुदार भावना रखते है। फिर भी अब प्रगतिशील तथा उदारवादी विचारधारा वाले मालिको ने विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे श्रम कल्याण कार्य किए है, जो मुख्यत निम्न प्रकार हैं—

(i) **सूती वस्त्र उद्योग**—बम्बई की सूती वस्त्र मिलो मे चिकित्सालय, पालने, केण्टीन, अनाज की दूकानो की सुविधाएँ आदि प्रदान की जाती है।

नागपुर की एम्प्रेस मिल्स ने इस क्षेत्र मे प्रशसनीय कार्य किया है। चिकित्सा सुविधाएँ सन्तोषप्रद है। एक पत्रिका का भी प्रकाशन किया जाता है। बीमारी लाभ कोष की भी स्थापना की गई है।

देहली क्लोथ एव जनरल मिल्स मे कर्मचारी लाभ कोष ट्रस्ट बना रखा है। यह श्रमिको और प्रबन्धको के चुने व्यक्तियो द्वारा चलाया जाता है। लम्बी बीमारी, शादी, दाह सस्कार और अच्छे विशेषज्ञो के इलाज आदि के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। हायर सैकेण्डरी, मिडिल तथा तकनीकी पाठशालाएँ चलाई जाती है। एक सप्ताहिक डी. सी. एम. गजट भी प्रकाशित किया जाता है।

मद्रास की बकिंघम एव कर्नाटक मिल्स द्वारा अच्छा चिकित्सालय चलाया जाता है। महिलाओ को सफाई, बच्चो के पालन-पोषण, रोगो को रोकने आदि का ज्ञान देने हेतु विशेष कक्षाएँ चलाई जाती है।

बगलौर मे ऊनी, सूती और रेशम मिल्स द्वारा भी कल्याण कार्यों का अच्छा समन्वय किया गया है। चिकित्सालय, प्रसूति और बाल कल्याण केन्द्र आदि की सन्तोषप्रद सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

अन्य अधिकांश सूती वस्त्र मिलो मे श्रम कल्याण कार्य सन्तोषप्रद हैं। फिर भी इन कार्यों मे विभिन्न केन्द्रो पर समानता नही पाई जाती है।

(ii) **जूट उद्योग (Jute Mill Industry)**—इस उद्योग मे श्रम कल्याण कार्य करने वाली एक मात्र सस्था भारतीय जूट मिल्स सघ (Indian Jute Mills Assocation) है। यह मालिको की सस्था है। इसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे कल्याण केन्द्र चलाए जाते हैं। इसके द्वारा आन्तरिक व बाह्य खेल, मनोरजन सुविधाएँ, पुस्तकालय, वाचनालय, प्राथमिक शालाएँ, श्रमिको के बच्चो को छात्रवृत्तियाँ देना आदि कल्याणकारी कार्य किए जाते हैं।

(iii) **इजीनियरिंग उद्योग (Engineering Industry)**—कई मिलो मे चिकित्सालय, केण्टीन, शैक्षणिक और मनोरजन सुविधाएँ प्रदान की जाती है। टाटा

आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा 8 चिकित्सालय और अच्छी साज सज्जा वाले अस्पताल का व्यवस्था की गई है। प्रसूति और बाल कल्याण केन्द्र भी चलाए जाते है। इस कम्पनी द्वारा 3 हाई स्कूल 11 मिडिल स्कूल 16 प्राइमरी स्कूल, 9 रात्रि स्कूल और रात्रिकालीन तकनीकी स्कूल चलाए जाते है। इस प्रकार 14 लाख रु प्रति वर्ष शिक्षा पर व्यय किए जाते हैं। 12 श्रम कल्याण केन्द्र चलाए जाते है।

कागज चीनी सीमेन्ट चमड़ा रासायनिक, पदार्थ तेल आदि उद्योगो म अस्पताल चिकित्सालय शिक्षा और मनोरंजन सुविधाएँ आदि मालिकों द्वारा प्रदान की जाती हैं।

(iv) बागान (Plantations)—इस उद्योग म श्रम कल्याण कार्यों हेतु बागान श्रम अधिनियम 1951 (Plantations Labour Act of 1951) म प्रावधान रखे गए हैं। गम्भीर बीमारी हेतु बागानो म अस्पतालो की व्यवस्था है। असम म 19 अस्पताल और 6 चिकित्सालय खोले गए है जहाँ पर बागान श्रमिकों का इलाज किया जाता है। कल्याण कार्यों हेतु असम बागान श्रमिकों हेतु असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण कोष अधिनियम 1959 (Assam Tea Plantations Employees Welfare Fund Act of 1959) पास किया गया है। इस कोष का निर्माण राज्य या केन्द्रीय सरकार के अनुदान मालिकों से प्राप्त दण्ड राशियों एच्छिक दान तथा अन्य उपाय धन से किया गया है।

कोयला लोहा और अभ्रक की खानो म काम करने वाले श्रमिकों के कल्याण के लिए श्रम कल्याण कोष की स्थापना की गई है। इन कोषों की सहायता से चिकित्सा सुविधाएँ आन्तरिक एवं बाह्य खेलकूद मनोरंजन वाचनालय पुस्तकालय आदि की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

(4) श्रम संघों द्वारा कल्याण कार्य

(Labour Welfare by Trade Unions)

भारतीय श्रम संघो का कार्य अपने सदस्यों के वेतन तथा उनकी कार्य दशाओं म सुधार हेतु मालिकों से संघर्ष करने तक ही सीमित रहा है। श्रमिकों के लिए रचनात्मक कार्य करने म उनका योगदान बहुत कम रहा है। श्रमिक संघ निर्धन होने से इस क्षेत्र म अपना योगदान देने म समर्थ नहीं रहे हैं। फिर भी कुछ श्रेष्ठ श्रम संघों ने अपने सीमित कोषों से श्रम कल्याण कार्यों के क्षेत्र म अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

अहमदाबाद सूती वस्त्र श्रम संघ (Ahmedabad Textile Labour Association) ने कल्याण कार्य के क्षेत्र म प्रशंसनीय कार्य किया है। यह संघ अपनी आय का 75% कल्याण कार्यों पर व्यय करता है। इसके अन्तर्गत 25 केन्द्र चलते हैं जहाँ पर सांस्कृतिक कार्यक्रम वाचनालय पुस्तकालय आन्तरिक व बाह्य खेलकूद मनोरंजन चिकित्सा आदि सुविधाएँ उपलब्ध है। संघ द्वारा 9 शिक्षा संस्थाएँ चलाई जाती हैं जिनम 6 स्कूल 2 अध्ययन भवन तथा 1 बालिका छात्रावास है। संघ द्वारा श्रमिकों के बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। इस संघ द्वारा मजूर संदेश (Majur Sandesh) नाम का पत्र भी निकाला जाता है।

कानपुर की मजदूर सभा (Mazdoor Sabha) द्वारा भी श्रमिकों के कल्याण के लिए वाचनालय, पुस्तकालय और चिकित्सालय की सुविधाएँ प्रदान की गई है।

रेल कर्मचारी संघों ने भी अपने सदस्यों हेतु क्लब खोलना, सहकारी समितियाँ, मुकदमे की पैरवी आदि रूपों में कल्याणकारी कार्य किए हैं।

इंदौर की मिल मजदूर यूनियन (Mill Mazdoor Union, Indore) द्वारा एक श्रम कल्याण केन्द्र चलाया जाता है। यह केन्द्र तीन विभागों के अन्तर्गत चलाया जाता है। बाल मन्दिर और महिला मन्दिर। इन केन्द्रों पर शिक्षा, स्वास्थ्य सिलाई, शारीरिक प्रशिक्षण आदि की सुविधाएँ प्रदान की जाती है।

अधिकांश श्रमिकों के संगठन ने श्रम कल्याण कार्य में अधिक रुचि नहीं ली है। इसका सबसे प्रमुख कारण वित्तीय कठिनाई का होना है।

(5) समाजसेवी संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य
(Welfare Work by Social Service Agencies)

कुछ समाज सेवी संस्थाओं द्वारा भी श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। इन संस्थाओं में 'बम्बई समाज सेवी लीग' 'सेवा सदन समिति' 'बम्बई प्रेसीडेन्सी महिला मण्डल,' 'वाई एम. सी ए,' आदि प्रमुख है। बम्बई की समाज सेवा लीग द्वारा रात्रिकालीन शिक्षण संस्थाएँ चलाई जाती हैं। इससे श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार होगा। पुस्तकालय वाचनालय, स्काउटिंग मनोरंजन व खेलकूद की व्यवस्था, सहकारी समितियों की स्थापना आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती है। पूना और बम्बई की सेवा सदन समितियों द्वारा बाल व महिलाओं को सामाजिक, शैक्षणिक और चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान की जाती है। ये सामाजिक कार्यकर्ताओं को तैयार करने का कार्य भी करती हैं। पश्चिम बंगाल में महिला समितियों द्वारा गाँव-गाँव में जाकर शिक्षा प्रसार और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के कार्य किए जाते हैं। इस प्रकार श्रम कल्याण कार्यों के क्षेत्र में इन सामाजिक सेवा संस्थाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण और सराहनीय रहा है। इनके प्रचार, प्रसार, और प्रोत्साहन के कारण हमारे देश में श्रमिक कल्याण कार्य के क्षेत्र में कई कानून बनाए जा सके है।

(6) नगरपालिकाओं द्वारा श्रम कल्याण कार्य
(Labour Welfare Work by Municipalities)

नगर निगमों और नगरपालिकाओं द्वारा भी श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र में अपना योगदान दिया गया है। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, मद्रास और अजमेर के नगर निगमों द्वारा सहकारी साख समितियों की व्यवस्था की गई है। बम्बई नगर निगम द्वारा एक अलग से कल्याण विभाग (Welfare Department) चलाया जाता है। कानपुर व अजमेर के नगर निगमों द्वारा प्राथमिक शालाएँ चलाई जाती हैं। कलकत्ता नगर निगम द्वारा रात्रि शालाएँ, शिशु सदन तथा केन्टीन आदि चलाने की व्यवस्था है। दिल्ली और तमिलनाडु में प्रौढ़ शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

कई नगरपालिकाओं में प्रोविडेन्ट फण्ड योजना भी चलाई जाती है। बम्बई की औद्योगिक बस्तियों में ह चालू रहा जाता है, वहाँ श्रमिकों हेतु आन्तरिक तथा बाह्य खेलों, वाचनालयों तथा मनोरंजन सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाता है।

श्रम कल्याण कार्य के विभिन्न पहलू
(Various Aspects of Labour Welfare Work)

श्रम कल्याण कार्य के पहलू उद्योग की प्रकृति, उसकी स्थिति, काम में प्रगति एवं संगठन के ढंग और उसके परिणाम पर निर्भर करते हैं। कुछ महत्वपूर्ण श्रम कल्याण कार्य के पहलू नीचे दिए गए हैं—

1 कैन्टीन (Canteens)—किसी भी औद्योगिक संस्थान में कैन्टीन के महत्व को स्वीकार किया गया है। इसका संस्थान के श्रमिकों के स्वास्थ्य, कुशलता और कल्याण पर प्रभाव पड़ता है। इसका उद्देश्य सस्ता और पौष्टाहारयुक्त भोजन सुलभ कराना है। इसमें श्रमिक एक दूसरे के अधिक निकट आते हैं और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

किसी भी संस्थान में कैन्टीन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसमें पर्याप्त वस्तुएँ हों साफ सुथरी जगह हो और अच्छे वातावरण में कारखाने में इसे स्थापित किया जाए। यह न लाभ न हानि, (No Profit No Loss) के आधार पर चलाया जाना चाहिए। प्रबन्धकों द्वारा इसे अनुदान दिया जाना चाहिए। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, डी सी एम लिवर ब्रादर्स आदि द्वारा बहुत ही सुन्दर कैन्टीन सुविधाएँ प्रदान की हैं। कारखाना अधिनियम, 1948 खान अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत 250 या इससे अधिक श्रमिक होने पर कारखाने तथा खानों के मालिक द्वारा कैन्टीन की व्यवस्था करनी पड़ती है। बागान श्रम अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत 150 या इससे अधिक श्रमिक होने पर कैन्टीन की व्यवस्था करना आवश्यक है।

2 पालने (Creches)—छोटे बच्चों के लिए पालनों की व्यवस्था करना आवश्यक है क्योंकि महिला श्रमिक कार्य करती रहती हैं तथा बच्चों को मिट्टी आदि खान गन्दे होने आदि से बचाने के लिए इसकी व्यवस्था आवश्यक है। भारत सरकार ने विभिन्न राज्य सरकारों को कानून द्वारा पालनों की व्यवस्था हेतु कानून बनाने का निर्देश दिया है। कारखानों में जहाँ 50 या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करती हैं वहाँ पर पालनों की व्यवस्था की जानी चाहिए। खान अधिनियम व बागान अधिनियम में भी पालने की व्यवस्था करने का प्रावधान है।

श्रम अनुसंधान समिति, 1946 ने कहा था कि अधिकांश कारखानों में पालनों की स्थिति असन्तोषजनक है। कार्य के स्थान से यह व्यवस्था दूसरे कोने पर की जाती है जहाँ पर उनकी देखभाल के लिए कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया जाता है और न ही बच्चों को खेलने के लिए खिलौने आदि की व्यवस्था की जाती है।

पालने की अच्छी व्यवस्था होने पर बच्चे की माँ अपने बच्चे की सुरक्षा और आराम से रुचि लेकर कार्य करती है जिससे उसकी कार्य-कुशलता बढ़ती है। मदुरा

मिल्स, बकिंघम और कर्नाटक मिल्स तथा डी सी एम मे पालनो की व्यवस्था सन्तोषप्रद है ।

3. मनोरंजन सुविधाएँ (Recreational Facilities)—श्रम अनुसन्धान समिति (*Labour Investigation Committee*) ने मनोरजन सुविधाओ पर जोर दिया है । सारे दिन का थका हुआ श्रमिक कार्य की थकावट, नीरसता आदि को दूर स्वय के साधनो से नही कर सकता । इस थकावट, नीरसता आदि को दूर करने हेतु नाटक, वाद-विवाद, सिनेमा, रेडियो, सगीत, वाचनालय, पुस्तकालय व पार्क आदि की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिएँ । मनोरजन की सुविधाओ के अभाव मे श्रमिक कई सामाजिक बुराइयो (Social Vices) उदाहरणार्थ—शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन आदि का शिकार बन जाता है । मनोरजन सुविधाओ की ओर मालिको व सरकारो द्वारा कोई विशेष ध्यान नही दिया गया था । श्रम अनुसन्धान समिति ने सुझाव दिया है कि मनोरजन की सुविधाएँ प्रदान करना मालिको का ऐच्छिक उत्तरदायित्व होना चाहिए । उन पर किसी प्रकार का वैधानिक दायित्व नही होना चाहिए ।

4 चिकित्सा सुविधाएँ (Medical Facilities)--श्रमिको की कार्यकुशलता पर उसके स्वास्थ्य का प्रभाव पडता है । अच्छे स्वास्थ्य हेतु चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिएँ । बीमारी और खराब स्वास्थ्य के कारण श्रमिको मे अनुपस्थिति, श्रमिक परिवर्तन, श्रम प्रवासिता तथा औद्योगिक अकुशलता तथा अशान्ति को प्रोत्साहन मिलता है ।

समूचे देश मे ही चिकित्सा सुविधाएँ असमुचित तथा अपर्याप्त है । मालिको द्वारा प्रदान की गई ये सुविधाएँ भी असन्तोषजनक हैं । श्रम अनुसधान समिति ने कहा है कि चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने का प्रमुख दायित्व सरकार का है फिर भी इन सुविधाओ हेतु मालिको और श्रमिको का सहयोग भी अपेक्षित है ।

कारखाना अधिनियम, 1946 के अन्तर्गत कुछ राज्यो मे चिकित्सा सुविधाओ की देख-रेख हेतु चिकित्सा निरीक्षको की नियुक्ति की गई है ।

5 धोने और नहाने की सुविधाएँ (Washing & Bathing Facilities)–कारखाना अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत कपडे धोने तथा गन्दे हाथ पैर धोने तथा नहाने की पूर्ण व्यवस्था का प्रावधान है । श्रमिको को अपने गन्दे कपडे धोकर सुखाने तथा टाँकने की व्यवस्था भी की गई है । कारखाना अधिनियम के अतिरिक्त खान अधिनियम, मोटर यातायात कर्मचारी अधिनियम, बागान श्रम अधिनियम, आदि के अन्तर्गत धोने और नहाने की सुविधाओ के सम्बन्ध मे प्रावधान किए गए है ।

6 शैक्षणिक सुविधाएँ (Educational Facilities)—श्रमिको मे अशिक्षा कई बुराइयों की जननी है । अतः श्रमिको मे शिक्षा का प्रसार करना और इनको सुविधाएँ प्रदान करना प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का उत्तरदायित्व हो जाता है । शिक्षा से श्रमिको की मानसिक दक्षता और आर्थिक उत्पादकता मे वृद्धि होती है । औद्योगिक विकास के कारण तीव्र गति से उत्पादन के विभिन्न तरीको मे परिवर्तन हो रहा है । इसम वही श्रमिक अधिक सफल हो सकता ह जिसमे कुशलता प्राप्त करने

की क्षमता है। श्रम अनुसंधान समिति (Labour Investigation Committee) ने शिक्षा के सम्बन्ध में राज्यों पर जिम्मेदारी डाली है। यही कारण है कि सन् 1958 में श्रमिकों की शिक्षा हेतु एक केन्द्रीय मण्डल (Central Board for Workers Education) की स्थापना की गई। इस बोर्ड के माध्यम से श्रमिकों की शिक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम लिया गया है। इस बोर्ड के अन्तर्गत सरकार द्वारा शिक्षा अधिकारियों (Education Officers) की नियुक्ति की जाती है। ये शिक्षा अधिकारी प्रादेशिक कार्यालयों में चुने हुए श्रमिकों को श्रम कानून तथा अन्य विषयों पर शिक्षा देते हैं। उन्हें श्रमिकों के अध्यापक (Workers Teachers') कहा जाता है। ये बाद में अपने संस्थानों में वापिस जाकर श्रमिकों में शिक्षा के प्रसार का कार्य करते हैं।

उपरोक्त श्रम कल्याण कार्य के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने पर हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इन विभिन्न पहलुओं को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने पर श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इन पर जो व्यय किया जाता है वह अपव्यय न होकर विनियोग माना जाता है क्योंकि इससे श्रमिक के स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता तथा जीवन-स्तर पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ता है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है और लोगों का जीवन स्तर उन्नत होता है। इन सब लाभों को ध्यान में रखते हुए सरकार, मालिकों, श्रम संघों तथा समाज सेवी संस्थाओं का यह दायित्व हो जाता है कि वे संयुक्त रूप से मिलकर इन विभिन्न पहलुओं को प्रोत्साहित करें। सरकार को न्यूनतम स्तर निर्धारित करके उनके प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु मशीनरी को सुदृढ़ करना चाहिए। मालिकों को इस वैधानिक दायित्व को पूरी तरह निभाना चाहिए। मालिकों को इस दिशा में एक उदारवादी और प्रगतिशील विचारधारा को अपनाना होगा। उन्हें इस व्यय को अपव्यय न समझकर विवेकपूर्ण विनियोग (Rationale Investment) समझना चाहिए क्योंकि इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ती है और इसके परिणामस्वरूप उसके लाभ में वृद्धि होती है।

श्रम कल्याण कार्य को सरकार, मालिक और श्रम संघों द्वारा एक संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility) समझना चाहिए। कोई भी अकेला पक्ष इस कार्य को सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है क्योंकि इन पर वित्तीय लागत अधिक आती है, जिसे अकेला पक्ष वहन नहीं कर सकता है।

हमारे देश में श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र में अच्छी शुरूआत कर दी गई है। फिर भी इस कार्य के मार्ग में कई बाधाएँ आती हैं जैसे श्रमिकों की प्रवासिता की विशेषता, श्रम संघों में प्रभावपूर्ण संगठन की कमी, श्रम संघों के पास कोषों की कमी, श्रमिकों की अशिक्षा तथा अन्य सामाजिक और आर्थिक दशाएँ जो वर्तमान समय में हमारे देश में हैं। लेकिन इन बाधाओं के बावजूद भी सभी पक्षों-सरकार, श्रम संघों और मालिकों को संयुक्त रूप से मिलकर यह करना चाहिए। इसे एक सुनियोजित योजना बनाकर तेजी से लागू किया जाना चाहिए, सफलता अवश्य मिलेगी।

Appendix—1

श्रमिकों के कल्याण और रहन-सहन की दशा

कोयला, अभ्रक, लोह अयस्क, चूना पत्थर और डोलोमाइट खानों में नियोजित श्रमिकों को कल्याण सुविधाएँ प्रदान करने के लिए नियोजकों और राज्य सरकारों के प्रयासों को अनुपूरित करने के लिए कल्याण निधियाँ स्थापित की गई हैं। कोयला खान और अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधियाँ लगभग 30 वर्ष पूर्व स्थापित की गई थी, जबकि लोह अयस्क खान श्रमिक कल्याण निधि सन् 1963 में और चूना पत्थर तथा डोलोमाइट श्रमिक कल्याण निधि दिसम्बर, 1973 में स्थापित की गई थी। कल्याण संगठन, जो कि अपनी-अपनी निधियों की व्यवस्था करते हैं, उपलब्ध साधनों के अन्तर्गत, देश के हर भाग में रहने वाले खनिकों और उनके आश्रितों के रहन-सहन की दशाओं को सुधारने का काम कर रहे हैं। इन कल्याण संगठनों के कार्य-कलापों का विस्तृत विवरण भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट सन् 1976-77 में है जिसका संक्षेप यहाँ दिया जा रहा है—

I. कोयला खानों में कल्याण-कार्य

कोयला खान श्रमिक कल्याण संस्था के कार्य-कलापों के लिए धन की व्यवस्था, कोयला खानों से भेजे गए कोयले और कोक पर 17 जनवरी, 1973 से 75 पैसे प्रति मीटरी टन की दर से उपकर लगाकर, की जाती है। उपकर से प्राप्त धन-राशि को दो लेखों अर्थात् सामान्य कल्याण लेखे और आवास लेखे में 17 अक्तूबर, 1973 से 3 2 के अनुपात में विभाजित किया जाता है। मोटे तौर पर सामान्य कल्याण कार्य जैसे जलपूर्ति, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन के लिए धन की व्यवस्था सामान्य कल्याण खाते में से की जाती है और कोयला खान श्रमिकों के आवास के लिए धन की व्यवस्था आवास खाते में से की जाती है। इस निधि की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा त्रिपक्षीय सलाहकार समिति के माध्यम से की जाती है। स्थानीय स्तर पर त्रिपक्षीय कोयला-क्षेत्र उप-समिति इस समिति की सहायता करती है।

सामान्य कल्याण खाते में वर्ष 1975-76 में निधि की आय और व्यय क्रमशः 561·34 लाख रुपये (अन्तिम) और 335·58 लाख रुपये (अन्तिम) थे। इसकी तुलना में वर्ष 1976-77 के लिए निधि की अनुमानित आय और व्यय क्रमशः 391·35 लाख रुपये और 383·50 लाख रुपये है।

II अभ्रक खानों में कल्याण कार्य

अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम 1946 में जिसके अन्तर्गत अभ्रक खान श्रमिक कल्याण संस्था का गठन किया गया था भारत से निर्यात किए जाने वाले सारे अभ्रक पर उसके मूल्य के अनुसार 6½% की अधिकतम दर तक सीमा शुल्क के रूप में उपकर लगाने की व्यवस्था है। उपकर की वर्तमान दर जो कि मूल्य के अनुसार 2¾% थी 15 जुलाई 1974 से बढ़ाकर 3½% कर दी गई है। वसूल किया गया उपकर अभ्रक का उत्पादन करने वाले आन्ध्र प्रदेश बिहार और राजस्थान के राज्य में कल्याण कार्यों की व्यवस्था करने के लिए आवंटित किया जाता है। इन तीनों क्षेत्रों अर्थात् आन्ध्र प्रदेश बिहार और राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में निधि का प्रशासन एक त्रिपक्षीय सलाहकार समिति द्वारा किया जाता है जिसके अध्यक्ष सम्बन्धित राज्य के श्रम मन्त्री होते हैं। केन्द्रीय त्रिपक्षीय सलाहकार बोर्ड इन तीनों क्षेत्रों में निधि के कार्य-कलापों की पुनरीक्षा तथा समन्वय करता है

15 अक्तूबर 1976 को हुई केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की आठवीं बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार उपकर को मूल्य के अनुसार 3½% से बढ़ाकर 5% करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए श्रम मन्त्रालय के वित्तीय सलाहकार की अध्यक्षता में एक त्रिपक्षीय उप-समिति का गठन किया गया है।

सन् 1976 77 के दौरान निधि की अनुमानित आय और व्यय क्रमश 60 लाख और 61 92 लाख है। सन् 1975-76 के दौरान अनुमानित आय और व्यय क्रमश 50 लाख और 60 45 लाख रुपए हैं।

III लोहा अयस्क खानों में कल्याण-कार्य

लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था लौह अयस्क खान श्रम कल्याण उपकर अधिनियम 1961 के अधीन स्थापित की गई थी जिसमें उत्पादित लोहा अयस्क पर 50 पैसे प्रति मीटरी टन से अनधिक दर से उपकर लगाने की व्यवस्था है। तथापि उपकर की वास्तविक दर 25 पैसे प्रति मीटरी टन थी। लौह अयस्क खान श्रम कल्याण उपकर (संशोधन) अधिनियम 1970 जिसमें लौह अयस्क पर उपकर वसूल करने की वर्तमान पद्धति में परिवर्तन की व्यवस्था की गई है पहली अक्तूबर 1974 से लागू हुआ। संशोधित अधिनियम के अधीन किसी भी खान में उत्पादित सारे लोहा अयस्क पर उपकर लगाने और उत्पादक खानों द्वारा उसका भुगतान किए जाने की बजाय उपकर सीमा शुल्क के रूप में (जहाँ लौह अयस्क का निर्यात होता है) और उत्पाद शुल्क के रूप में (जहाँ उसका उपयोग देश के अन्दर ही होता है) लगाया जाना है। पहली अक्तूबर 1974 से वसूल की गई रकम पर निगरानी रखने के लिए केन्द्रीय उपकर आयुक्त का एक कार्यालय नई दिल्ली में स्थापित किया गया है।

सन् 1976 77 के दौरान निधि की अनुमानित आय तथा व्यय क्रमश 350 लाख रुपए और 214 06 लाख रुपए है। सन् 1975 76 के दौरान निधि

की अनुमानित आय तथा व्यय क्रमश 88 25 लाख रुपए और 132 21 लाख रुपए थी।

यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार द्वारा आन्ध्र प्रदेश बिहार मध्य प्रदेश महाराष्ट्र, कर्नाटक उड़ीसा और गोवा, दमन व दीव के संघ राज्य क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित त्रिपक्षीय सलाहकार समितियो के माध्यम से लागू किया जाता है। राजस्थान ही एकमात्र ऐसा लोहा अयस्क उत्पादक राज्य है जिसमे लोहा अयस्क का उत्पादन अपेक्षाकृत कम होने के कारण किसी भी सलाहकार समिति का गठन नहीं किया गया है। लोहा अयस्क खान श्रमिकों के लिए कल्याण सुविधाओं की व्यवस्था करने हेतु छ क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किए गए हैं। क्षेत्रीय कल्याण संस्थाओं के कार्यकलापो का समन्वय करने के लिए एक त्रिपक्षीय केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की भी स्थापना की गई है। केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की दसवी बैठक 16 अगस्त 1976 को हुई। बोर्ड द्वारा पहले की गई सिफारिशो पर फरवरी, 1969 मे प्रोटोटाइप स्कीम विकास समिति स्थापित की गई थी, ताकि वह लोहा अयस्क खनन क्षेत्रो मे कार्यान्वित किए जाने हेतु प्रोटोटाइप स्कीमो की सिफारिश करे और लोहा अयस्क खनन क्षेत्रो की परिस्थितियो को ध्यान म रखते हुए प्रत्येक योजना के सम्बन्ध मे लागतो, आर्थिक सहायताओ और किरायो की उच्चतम सीमा के बारे मे सुझाव दे। उस समिति द्वारा सिफारिश की गई 18 योजनाओ मे से 16 योजनाएँ सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई है तथा 2 योजनाएँ छोड दी गई है। इसके अलावा 7 और योजनाएँ स्वीकार कर ली गई है।

IV. चूना पत्थर और डोलोमाइट खानो मे कल्याण-कार्य

चूना-पत्थर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1972 और उसके अधीन बनाए गए नियम पहली दिसम्बर, 1973 से लागू हुए। इस अधिनियम मे ऐसे चूना पत्थर और डोलोमाइट पर उपकर लगाने और वसूल करने की व्यवस्था है जिसका उपयोग लोहा और इस्पात सयत्र तथा सीमेण्ट और अन्य कारखाने करते है। प्रारम्भ मे उपकर की दर चूना-पत्थर और डोलोमाइट के प्रति मीटरी टन के लिए 20 पैसे निर्धारित की गई है। अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमो को लागू करने के लिए देश को पाँच क्षेत्रो मे बाँटा गया है, जिनके मुख्यालय जबलपुर (मध्य प्रदेश), भुवनेश्वर (उड़ीसा), कर्मा (बिहार), भीलवाडा (राजस्थान) तथा बगलौर (कर्नाटक) मे है और इनके कार्यान्वियन का कार्य कुछ वर्तमान खान कल्याण आयुक्तो, उप खान कल्याण आयुक्तो और राज्यो के श्रमायुक्तों को सौपा गया है। प्रत्येक क्षेत्र की एक क्षेत्रीय सलाहकार समिति होगी, जिसमे सरकार, चूना-पत्थर तथा डोलोमाइट खानो के मालिको और इन खानो मे नियोजित व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करने वाले समान सदस्य शामिल होंगे, जिनमे एक महिला सदस्या भी होगी। केन्द्र मे एक केन्द्रीय सलाहकार समिति होगी।

वर्ष 1976-77 के दौरान निधि की अनुमानित आय और व्यय क्रमश 75 लाख रुपए और 46 33 लाख रुपए है। वर्ष 1975-76 के दौरान वास्तविक आय और व्यय क्रमश 60 लाख रुपए और 15 13 लाख रुपए हुआ।

V बीड़ी श्रमिकों का कल्याण

बीड़ी कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1976, बीड़ी कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1976 और बीड़ी कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1976 के अधीन बनाए गए नियम 15 फरवरी, 1977 को लागू हुए। बीड़ी कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत नियम बनाए जा रहे हैं और इन नियमों को यथाशीघ्र लागू किया जाएगा।

बीड़ी के उत्पादन के सम्बन्ध म गोदाम से किसी व्यक्ति को, किसी प्रयोजना के लिए, दिए गए तम्बाकू पर 25 पैसे प्रति किलो ग्राम की दर से उपकर लगाने और एकत्र करने क लिए बीड़ी कर्मकार कल्याण उपकर अधिनियम, 1976 मे व्यवस्था है। यह अनुमान लगाया गया है कि हर वर्ष लगभग 1 82 करोड रुपए उपकर वसूल होगा। उपकर से प्राप्त राशि का उपयोग बीड़ी श्रमिकों के कल्याण तथा उनको चिकित्सा, आवास, शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएँ देने के लिए किया जाएगा।

Appendix—2

सुरक्षा और काम-काज की दशाएं[1]

(क) खानों में सुरक्षा

खान सुरक्षा महानिदेशालय को खान अधिनियम, 1952 के उपबन्धों को लागू करने का कार्य सौंपा गया है। यह अधिनियम खानों में सुरक्षा और काम-काज की दशाओं को विनियमित करता है। यह निदेशालय कोयला खानों के सम्बन्ध में खान अधिनियम, 1952 के अधीन बनाए गए नियमों और विनियमों, खान व्यावसायिक प्रशिक्षण नियमों और खान बचाव नियमों तथा गैर कोयला खानों के सम्बन्ध में खान शिशु कक्ष नियमों और खान प्रसूती प्रसुविधा नियमों को भी लागू करता है। इस महानिदेशालय के अधिकारियों को जिन्हें खान अधिनियम, 1952 के अधीन खान निरीक्षकों के रूप में नियुक्त किया जाता है, कोयला खान (संरक्षण और विकास) अधिनियम, 1974 के अधीन निरीक्षण तथा भराई के कार्यों के सम्बन्ध में और भूमि अर्जन (खान) अधिनियम के अधीन रेलवे के नीचे खनन कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में भी कुछ उत्तरदायित्व दिए गए हैं। यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि खान सुरक्षा संबधी अपेक्षाओं का पूर्णरूपेण पालन किया जा रहा है, इस निदेशालय के अधिकारी खानों का नियमित रूप से निरीक्षण करते रहते हैं। वे सभी घातक दुर्घटनाओं, गंभीर और छोटी दुर्घटनाओं तथा खतरनाक घटनाओं की भी जांच करते हैं जिनमें जान हानि नहीं हुई होती। इन जांचों से दुर्घटनाओं के कारणों और उनके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों का पता लगाने तथा इस प्रकार की दुर्घटनाओं की आवृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक उपचारी उपाय बताने का दोहरा प्रयोजन हल होता है।

खान अधिनियम, 1952 में अन्य बातों के साथ-साथ खान के प्रबन्धकों द्वारा प्रत्येक घातक और गंभीर दुर्घटना तथा विनियमों में दी गई खतरनाक घटनाओं की तत्काल सूचना देने की व्यवस्था है।

वर्तमान खदानों में बाढ़ के क्षेत्रों और खतरों (या तो उसी खान में या साथ की खानों में जलाक्रान्त क्षेत्रों से तथा जलाशयों और भूमि की सतह के ऊपरी

1. श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1976-77 से उद्धृत।

और भीतरी जल मार्गों से) पता लगाने के लिए 1976 में एक विशेष अभियान चलाया गया। इस प्रक्रिया में, जलाक्रांत क्षेत्रों के आसपास के क्षेत्रों में खनन कार्य के लिए सभी पुराने अनुज्ञा पत्रों तथा भारत में उन सभी कोयला खानों में, जिनमें बाढ़ होने की संभावना का खतरा है, बाढ़ के खतरे से बचने के लिए निर्धारित किए गए वर्तमान एहतियाती उपायों का पुनरीक्षण किया गया। जहाँ कहीं आवश्यक समझा गया अतिरिक्त एहतियाती उपाय किए गए।

खान व्यावसायिक प्रशिक्षण नियम, 1966 के उपबन्धों के अधीन सभी नए श्रमिकों को काम पर नियोजित करने से पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम का प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है और उन सभी श्रमिकों को जो पहले से काम पर लगे हैं समय समय पर पाँच वर्षों में कम से कम एक बार पुनश्चर्या प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है। इन नियमों के अधीन, खान श्रमिकों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण को एक क्रमिक कार्यक्रम के रूप में आरम्भ किया गया। यह कार्यक्रम प्रारम्भ में झरिया और रानीगंज कोयला क्षेत्रों की कोयला खानों में शुरू किया गया और बाद में अन्य कोयला तथा गैर कोयला खानों में लागू किया गया। इन नियमों में श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने की परिकल्पना की गई है। दिसम्बर 1976 के अन्त तक कोयला खानों में 76 व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र और गैर-कोयला खानों में 104 केन्द्र विद्यमान थे।

कोयला खान विनियम 1957 में खान मैनेजरों, सर्वेक्षकों, ओवरमैनों, सरदारों, शाट फायररों आदि को योग्यता प्रमाण पत्र प्रदान करने की व्यवस्था है, ताकि यह सुनिश्चित कराया जा सके कि इन पदों पर केवल अर्हता प्राप्त व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाता है।

खानों में सुरक्षा तथा अन्य सम्बद्ध मामलों पर विचार विमर्श करने के लिए खान सुरक्षा महानिदेशालय के अधिकारियों द्वारा खानों में व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर मासिक बैठकें आयोजित की जाती हैं। खानों में सुरक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति में की गई प्रगति का पता लगाने के लिए प्रत्येक बैठक में लिए गए निर्णयों पर अनुवर्ती कार्यवाई की जाती है और बाद में आगामी बैठकों में उनकी पुनरीक्षा की जाती है। ये बैठकें सामंजस्य और सद्भावना का वातावरण पैदा करने के अतिरिक्त कानून के प्रवर्तन के प्रेरक पहलू के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं।

कोयला खान बचाव नियम, 1959 के अधीन विभिन्न कोयला क्षेत्रों में बचाव केन्द्र स्थापित किए गए हैं। ये बचाव केन्द्र खान श्रमिकों को भूमि के नीचे बचाव और रिकवरी कार्य में प्रशिक्षण देते रहे, बचाव यन्त्रों तथा अन्य उपस्करों का अनुरक्षण करते रहे, खानों में बचाव तथा रिकवरी कार्य करते रहे और खानों में कोई विस्फोट होने या आग लगने या जहरीली या ज्वलनशील गैसों के निकास की सूरत में खतरे को कम करने के लिए सभी व्यवहार्य कदम उठाते रहे।

(ख) कारखानों में सुरक्षा

कारखाना अधिनियम 1948 में कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की

सुरक्षा सुनिश्चित कराने की व्यवस्था की गई है। ये उपबन्ध मशीनरी की फेंसिंग, नई मशीनों की केसिंग होइस्ट लिफ्ट, क्रेन, चेन और प्रेशर प्लाट जैसे उपकरणों और सयत्रों के परीक्षण और निरीक्षण, श्रमिकों को सुरक्षा उपकरण देने खतरनाक फ्यूम और आग की स्थिति आदि से बचाव के पूर्वोपायों के बारे में है। इस अधिनियम में यह भी निर्धारित किया गया है कि किन परिस्थितियों में किशोर व्यक्तियों को खतरनाक मशीनों पर लगाया जा सकता है। इस अधिनियम द्वारा ऐसी जगह महिलाओं और बच्चों को काटन प्रेसिंग के लिए नियोजित करने पर रोक लगाई गई है जहाँ 'काटन ओपनर' कार्य कर रहा हो। यह अधिनियम राज्य सरकारों को स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस अधिनियम के सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्धों के कार्यान्वयन के लिए विस्तृत नियम बनाने का अधिकार प्रदान करता है। राज्य सरकारों को पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों द्वारा उठाए या ढोए जाने वाले अधिकतम भार की सीमा निर्धारित करने का भी अधिकार दिया गया है। उक्त अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियम राज्य सरकारों द्वारा कारखाना निरीक्षकों के माध्यम से लागू किए जाते हैं।

कारखाना सलाह सेवा और श्रम-विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय, जो सारे देश में कारखाना अधिनियम के कार्यान्वयन को समन्वित करने के लिए उत्तरदायी है, मॉडल नियम बनाता है और जब कभी आवश्यक होता है, तब राज्यों के मुख्य कारखाना निरीक्षकों से परामर्श करके कारखाना अधिनियम मे सशोधन प्रस्तावित करता है। यह सगठन सरकार, उद्योग तथा अन्य सम्बन्धित पक्षों को सुरक्षा, स्वास्थ्य और श्रमिकों के कल्याण से सम्बन्धित मामलों में परामर्श देता है और (1) कारखाना अधिनियम के कार्यान्वयन, (2) कारखाना निरीक्षकों के प्रशिक्षण, (3) औद्योगिक स्वास्थ्य तथा परिवेशी समस्याओं, जिनमें कारखानों में स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरे शामिल है, और (4) विभिन्न राज्यों के मुख्य कारखाना निरीक्षकों के वार्षिक सम्मेलन आयोजित करने सम्बन्धी प्रश्नों पर कार्यवाही करता है।

(ग) पत्तनों और गोदियों में सुरक्षा

भारतीय डाक श्रमिक अधिनियम, 1934 और उसके अधीन बनाए गए विनियम, सभी मुख्य पत्तनों में जहाजों में माल लादने और जहाजों से माल उतारने के काम में नियोजित श्रमिकों की दुर्घटना से सुरक्षा से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अभिसमय संख्या 32 (सशोधित) को लागू करते है। इसके अतिरिक्त, डाक कर्मकार नियोजन का विनियमन अधिनियम, 1948 के अधीन बनाई गई गोदी श्रमिक (सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण) योजना, 1961 में सभी गोदी श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य और कल्याण के उपायों की व्यवस्था है और उन श्रमिकों के लिए सुरक्षा उपायों की व्यवस्था है जो भारतीय डाक श्रमिक विनियमन,1948 के अन्तर्गत नहीं आते। यह योजना सभी मुख्य पत्तनों में लागू रही।

वर्ष 1976–77 में बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के मुख्य पत्तनों में गोदी सुरक्षा के वरिष्ठ निरीक्षकों की देख-रेख में गोदी सुरक्षा निरीक्षणालयों ने काम

करना जारी रखा। ये अधिकारी अपने-अपने क्षेत्रों में अन्य मुख्य पत्तनों में निरीक्षालयों पर भी नियन्त्रण रखते हैं।

(घ) ठेका श्रमिकों का कल्याण और सेवा की शर्तें

ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 का उद्देश्य किसी भी प्रतिष्ठान में ऐसी प्रक्रिया, संक्रिया या किसी अन्य कार्य के सम्बन्ध में ठेका श्रम पद्धति का उन्मूलन करना है, जो अधिनियम में निर्धारित कतिपय मापदण्डों को ध्यान में रखते हुए समुचित सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए। जहाँ कहीं ऐसे श्रम का उन्मूलन करना सम्भव नहीं होता, वहाँ यह मजदूरी का भुगतान सुनिश्चित कराकर और आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करके ठेका श्रमिकों की सेवाशर्तों को विनियमित भी करता है।

केन्द्रीय ठेका श्रम सलाहकार बोर्ड 30 अक्तूबर, 1971 को स्थापित किया गया। इसका गठन केन्द्रीय सरकार को अधिनियम के कार्यान्वयन से उत्पन्न ऐसे मामलों में सलाह देने के लिए किया गया जो अधिनियम के अधीन इसे भेजे जाएँगे।



Appendix—3

आवास व शहरी विकास निगम द्वारा कम लागत के मकानों का निर्माण[1]

आवास एवं शहरी विकास निगम ने आगरा में कम लागत का एक छोटा मकान बनाने में सफलता प्राप्त की है। इस मकान की लागत कुल 4100 रु. है (इसमें भूमि और विकास की लागत नहीं है)। निगम ने अब ऐसी तीन परियोजनाएँ-गाजियाबाद, बम्बई और हैदराबाद में चालू की हैं। प्रत्येक शहर में क्रमशः 280, 510 और 155 मकान बनाएँ जाएँगे।

निगम की इन परियोजनाओं के अन्तर्गत बनने वाले प्रत्येक मकान में एक कमरा, रसोई, शौचालय और स्नानघर होगा। गाजियाबाद में ऐसे मकान की लागत 5000 रु, बम्बई में 7000 रु और हैदराबाद में 4500 रु होगी। गाजियाबाद और हैदराबाद के मकानों के पास स्वतन्त्र प्लाट खाली है और इनका चारों तरफ विस्तार भी किया जा सकता है। बम्बई में दो मन्जिलें मकान बनाए जाएँगे। बम्बई में ऐसा पहला अवसर है जब अच्छे वातावरण में मकान की लागत 7000 रु. होगी।

इन तीनों परियोजनाओं पर हाल ही में काम शुरू हुआ है और सम्भवतः मार्च, 1979 तक मकान तैयार हो जाएँगे।

निगम द्वारा इन मकानों की कीमतों में और भी कमी करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इन परियोजनाओं को गाजियाबाद विकास प्राधिकरण, महाराष्ट्र आवास बोर्ड और आन्ध्र प्रदेश औद्योगिक निगम के सहयोग से पूरा किया जा रहा है।

1. भारत सरकार प्रेस विज्ञप्ति, दिनांक 6 जनवरी 1978.

Appendix—4

नई आवास नीति

श्री सिकन्दर बख्त (निर्माण, आवास, पूर्ति और पुनर्वास मन्त्री, भारत सरकार)

आवास, न केवल मनुष्य की तीन आधारभूत आवश्यकताओं में से एक है बल्कि यह एक आर्थिक गतिविधि भी है जिसका सहायक क्षेत्रों में आय और रोजगार पैदा करने पर गुणात्मक प्रभाव पड़ता है। व्यापक दृष्टि से देखें तो आवास से न केवल मनुष्य की प्राकृतिक विपदाओं से रक्षा होती है और उसे एकान्त मिलता है बल्कि सभी प्रकार से अच्छे रहन-सहन के लिए एक अच्छी मानव बस्ती का पर्यावरण भी मिलता है।

सन् 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या गत 50 वर्षों में 25 करोड़ से बढ़कर करीब 54 करोड़ 80 लाख हो गई। सन् 1961–71 के दौरान जनसंख्या में ढाई प्रतिशत की वृद्धि आँकी गई। सन् 1921–71 के दौरान भारत की जनसंख्या में 118% की वृद्धि हुई जबकि इस दौरान विश्व की जनसंख्या 93% और विकसित देशों की जनसंख्या 60% बढ़ी।

इस समय भारत की जनसंख्या 5,79,952 मानव बस्तियों में बँटी हुई है। लगभग 80% लोग 5,75,933 गाँवों में रहते हैं। शेष 20% लोग 3,119 ऐसे शहरी इलाकों में बसे हुए हैं जिनमें से प्रत्येक जनसंख्या 5,000 से लेकर लगभग 90 लाख तक है। गाँवों की औसत जनसंख्या 762 आँकी गई है। 20% से भी अधिक शहरी जनता देश के आठ महानगरों में बसी हुई है तथा 20% शहरी एक-एक लाख वाले 143 शहरों में बसे हुए हैं।

आवास समस्या के आयाम

राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन के अनुसार पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में अर्थात् एक अप्रेल, 1974 को देश में एक करोड़ 56 लाख मकानों (38 लाख मकान शहरी क्षेत्रों में तथा एक करोड़ 18 लाख मकान ग्रामीण क्षेत्रों में) की कमी थी। मकानों के निर्माण की रफ्तार जनसंख्या में वृद्धि की दर के मुकाबले कम

रहने के कारण यह कमी हर साल और अधिक बढ़ती गई। इस समय देश में मकान निर्माण की दर प्रतिवर्ष 1,000 की जनसंख्या के पीछे करीब 3 मकान है जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ ने विकासशील देशों के लिए प्रतिवर्ष 1,000 की जनसंख्या के पीछे 10 मकानों के निर्माण की सिफारिश की है।

अभी तक किसी भी पंचवर्षीय योजना में कोई भी लम्बी अवधि का आवास लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया है। इस क्षेत्र में सरकार द्वारा निभाई गई भूमिका में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों, औद्योगिक और बागान मजदूरों जैसे आर्थिक दृष्टि से कमजोर समाज के कुछ वर्गों के लोगों को मकान बनाने के लिए सरकारी मदद देना, भूमि अधिग्रहण और गृह निर्माण की मिली जुली परियोजनाएँ शुरू करने के लिए राज्य सरकारों और आवास बोर्डों को धन देना तथा निम्न और मध्यम आय वर्ग के लोगों को मकान बनाने के लिए सीमित आर्थिक सहायता मुहैया करना शामिल है।

अब तक आवास के क्षेत्र में किए गए प्रयासों का दूसरा पहलू यह है कि सार्वजनिक और निजी, दोनों क्षेत्रों में गृह निर्माण के कार्य से वास्तव में पिछड़े हुए लोगों—जो कि हमारे शहरी परिवारों का 75% है—को कोई लाभ नहीं पहुँचा। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि अभी तक हम ज्यादा सस्ते मकानों का निर्माण नहीं कर सके। इसका नतीजा यह निकला कि थोड़े से मकानों के निर्माण में ही काफी धन लग गया। अब इसको तुरन्त बदलने की जरूरत है।

अब समय आ गया है जबकि हमें इस क्षेत्र में लक्ष्य निर्धारित करने के लिए गम्भीरता से सोचना चाहिए ताकि हम हर परिवार को एक निश्चित अवधि में मकान मुहैया करने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास कर सकें। यदि हम अगले 20 वर्षों में लक्ष्य प्राप्त करना चाहें तो आर्थिक साधनों की हमें क्या कठिनाई हो सकती है? इसके लिए हमें काफी संख्या में मकानों का निर्माण करना होगा।

(क) जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़े अतिरिक्त परिवारों के लिए
(ख) मौजूदा पुरानी किस्म के घरों का पुनर्निर्माण
(ग) मकान निर्माण में वर्तमान कमी को 20 वर्षों में पूरा करना

ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रतिवर्ष 47 लाख 50 हजार मकान (12 लाख 50 हजार शहरी क्षेत्रों में और 35 लाख मकान ग्रामीण क्षेत्रों में) बनाने का कार्यक्रम होगा।

इस प्रकार के निर्माण कार्यक्रम के लिए इस क्षेत्र में अब तक किए गए निवेश से कहीं अधिक निवेश करना होगा। क्या हम इस समस्या को नियन्त्रण योग्य स्तर तक सुलझा नहीं सकते हैं? आवास निर्माण के लिए साधनों का उपयोग हमारे समाज के आर्थिक ढाँचे के अनुरूप होना चाहिए। इसके अन्तर्गत प्रत्येक आय वर्ग के लोगों के लिए उस आय वर्ग में परिवारों के समानुपात के अनुसार मकान बनाने की जरूरत है।

सस्ते मकान

गरीबो की आवास समस्या को कुछ कम करने का केवल एक ही रास्ता है और वह है अधिक सस्ते मकानों के निर्माण पर अधिक ध्यान देना और अधिक धन लगाना। स्थान और सेवा परियोजनाओं, जिनका उद्देश्य जल सप्लाई, मल निकासी, सड़कें, बिजली आदि की आधारभूत सुविधाओं वाले स्थान मुहैया करना है, से शहरी गरीबो की आवास स्थिति बेहतर बनाने में काफी मदद मिल सकती है। इस प्रकार की स्थान और सेवा परियोजनाएं स्थान आय और रोजगार के अवसरों के बीच प्रतिस्पर्द्धा ताकतों में सन्तुलन कायम करती है।

हम अधिकृत बस्तियो के प्रति और अधिक सार्थक दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। ग्रामीण क्षेत्रो में भूमिहीन श्रमिकों को दिए गए स्थायी रूप से बसने के अधिकार के समान अनधिकृत बस्तियो के निवासियो को भी अधिकार दिए जाने चाहिएँ ताकि वहाँ बसने वाले मौजूदा गन्दी बस्तियो के सुधार में दिलचस्पी लें। अनधिकृत बस्तियो के प्रति सही दृष्टिकोण यह होगा कि उनका विकास किया जाए न कि उनको मलियामेट किया जाए।

आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगो के लिए भारी सख्या में मकानो की जरूरत होगी। इसलिए सरकार द्वारा चलाई गई समाज आवास योजनाओ से समाज के निम्न आय वाले लोगो का अर्थात् जिनकी आय 1,000 रुपये प्रति माह से अधिक है अधिक लाभ मिलना चाहिए।

स्वस्थ वातावरण

ग्रामीण मकानो के स्तर पर विचार करते समय हमे इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि ग्रामीण आवास पर शहरी आवास की मान्यताओ और स्तरो की छाप न पड़े। ग्रामीण क्षेत्रो में आवास की समस्या प्राथमिक रूप से एक स्वस्थ वातावरण बनाने की समस्या है। इस दृष्टि से प्राथमिक रूप से ग्रामीण आवास स्तर वातावरण बेहतर बनाने और स्थान व सेवा किस्म की आवास योजनाएँ मुहैया करने के लिए निर्धारित किए जाने चाहिएँ। ग्रामीण आवास के लिए निर्माण स्तर और मानदण्ड स्थानीय उपलब्ध सामान तथा देहातो में मकान बनाने के लिए आमतौर पर उपयोग में लाए जाने वाले साज सामान के अनुरूप तय किए जाने चाहिएँ।

पाँचवीं योजना में आवास के क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के निवेश का अनुपात करीब 1 4 रहा। यदि 20 वर्षों के भीतर प्रत्येक परिवार को मकान देने का लक्ष्य प्राप्त करना है तो निजी क्षेत्र के वर्तमान योगदान को और अधिक बढ़ाना होगा। इसके लिए निजी क्षेत्र को आवास बनाने के लिए प्रोत्साहित करना होगा तथा साथ साथ तड़क भड़क वाले मकानों के निर्माण को निरुत्साहित करना होगा। भारी सख्या में मकान बनाने के लिए आर्थिक मदद देने के लिए राष्ट्रीयकृत वित्तीय सस्थाओ को बढ़ावा देने के लिए सहकारिताओ और निजी क्षेत्रो को प्रोत्साहित करने के प्रयास करने होंगे।

मकान बनाने में काम आने वाले साज-सामान के निर्माण को बढ़ावा

हमें महानगरीय केन्द्रों के समीप भवन निर्माण में काम आने वाले साज-सामान जैसे—चूना, ईंट, लकड़ी आदि तैयार करने वाले कारखानों के लगाए जाने का उचित प्रोत्साहन देने की जरूरत है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार की वस्तुएँ बनाने वाले कारखाने खोलते समय ग्रामीण आवास की जरूरतों तथा साथ-साथ देहाती इलाकों में आय और रोजगार पैदा करने की बात भी ध्यान में रखनी चाहिए।

आवास की नई नीति बहुमुखी बनानी होगी। इसमें देहाती इलाकों में पर्यावरण बेहतर बनाने तथा ग्रामीण बस्तियों में निम्न स्तर के लोगों की आवास स्थिति सुधारने पर जोर देना चाहिए।



Appendix—5

महाराष्ट्र की रोजगार गारंटी योजना[1]

(मूल्यांकन रिपोर्ट)

महाराष्ट्र के चार चुने हुए जिलो मे चलाई गई रोजगार गारंटी योजना के बारे मे किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि रोजगार के अवसर पैदा होने की स्थिति मे हर महीने परिवर्तन होता रहा है और नवम्बर, 1975 मे जहाँ 1 90 लाख लोगो को रोजगार दिया गया वहाँ मई, 1976 मे यह सख्या 7 16 लाख तक पहुँच गई।

यह अध्ययन योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन सगठन तथा महाराष्ट्र सरकार के अर्थ-विज्ञान और आँकडा निदेशालय द्वारा सयुक्त रूप से किया गया था। इसका उद्देश्य उन तत्वो का विश्लेषण करना है, जिन पर योजना की सफलता निर्भर करती है, तथा सरकार एव आयोजन क्रियान्वयन प्राधिकरणो को कार्रवाई करने के लिए सुझाव देना था।

अध्ययनो और सर्वेक्षणो के द्वारा नासिक,शोलापुर, भीर और भण्डारा जिलो के देहाती इलाको मे श्रमिक आय, मजदूरी तथा बुनियादी सुविधाओ के बारे मे सही तस्वीर प्रस्तुत करना था। इस अध्ययन के नतीजे और निष्कर्ष तो करीब एक वर्ष तक उपलब्ध हो सकेंगे।

रोजगार गारटी योजना का उद्देश्य लाभप्रद और उत्पादनोन्मुख रोजगार मुहैया करना है। इस योजना के अन्तर्गत वे सभी अकुशल व्यक्ति आते है जो परिश्रम करने को तैयार है परन्तु खेतो मे या खेती से बाहर या अन्य सहायक कार्यों मे अथवा सरकारी विभागो, जिला परिषदो और ग्राम पचायतो द्वारा चलाए जाने वाले ग्राम योजना या गैर योजना कार्यों मे इस प्रकार का कोई रोजगार नही पा सके हैं। सार्वजनिक कुओ को गहरा करने, भू सरक्षण और भूमि विकास कार्य, नाला और जल विभाग कारोबार प्रबन्ध और सेम लगाने को रोकने, वितरण और फार्म नहरें, पेड लगाने, जल प्रबन्ध तथा व्यापक भू-विकास योजनाओ आदि जैसे लघु सिंचाई से सम्बन्धित उत्पादन कार्यों को प्राथमिकता दी गई है। सडक कार्य केवल पहाडी और दूर दराज के क्षेत्रो, जहाँ अन्य उत्पादक रोजगार उपलब्ध नही है, मे ही किए जाएँगे।

सन् 1975–76 मे इस योजना पर तेजी से कार्य हुआ। इसलिए इस पर होने वाला खर्चा सन् 1974–75 मे जहाँ 13 54 करोड रुपये था वहाँ सन् 1975–76 मे बढ़कर 34 42 करोड रुपये हो गया।

---

1. भारत सरकार प्रेस विज्ञप्ति, दिनांक 29 जनवरी, 1978.

Appendix—6

मृत्यु राहत कोष से आर्थिक सहायता की राशि बढ़ाई गई[1]

(कर्मचारी भविष्य निधि अंशदायियों को लाभ)

कर्मचारी भविष्य निधि संगठन ने मृत्यु राहत कोष से आर्थिक सहायता की राशि बढा दी है। अंशदायी की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवार के सदस्यों, नामांकित व्यक्ति और उसके कानूनी हकदारों को कम से कम एक हजार रुपये मिलेंगे। यदि अंशदायी की निधि खाते में एक हजार रुपये से कम की राशि होगी तो भी उसके परिवार को कम से कम एक हजार रुपया मिलेगा।

यह सुविधा केवल उन्हीं अंशदायी कर्मचारियों पर लागू होगी, जिनका मृत्यु के समय मासिक वेतन *500* रुपये प्रतिमास से अधिक नहीं होगा।

जनवरी, 1964 में मृत्यु राहत कोष शुरू किया गया था और अब तक कोष से लगभग एक करोड़ रुपये का भुगतान हो चुका है। कोष के केन्द्रीय न्यासी मण्डल ने इस राहत को पहली अप्रेल, *1977* से तीन साल तक और लागू करने की सिफारिश की है। मण्डल ने मृत्यु राहत कोष से वित्तीय सहायता की राशि 750 रुपये के स्थान पर एक हजार रुपये करने की भी सिफारिश की है।

---

1. भारत सरकार प्रेस *विज्ञप्ति, दिनांक 30 जनवरी, 1978.*

Appendix—7

श्रम मन्त्रालय की संरचना और कार्य

श्रम मन्त्रालय राष्ट्रीय आधार पर रोजगार सेवा और दस्तकार प्रशिक्षण के विकास तथा व्यवस्था के अतिरिक्त औद्योगिक सम्बन्धो, मजदूरो और प्रबन्धको म सहयोग, विवादो का निपटारा, मजदूरी और काम-काज तथा सुरक्षा की अन्य दशाओ का विनियमन, श्रम कल्याण, समाज सुरक्षा, आदि श्रम मामलो के सम्बन्ध म सम्पूर्ण भारत के लिए नीति निर्धारित करने का उत्तरदायी है।

रेलवे, खानो, तेल क्षेत्रो, बैंकिंग और बीमा कम्पनियो, जिनकी शाखाएँ एक से अधिक राज्य मे हैं, मुख्य पत्तनो और केन्द्रीय सरकार के उपक्रमो म नियोजित श्रमिको के मामलो को छोडकर, जिनके सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार उत्तरदायी है, रोजगार और प्रशिक्षण के सिवाय सभी मामलो के बारे मे नीति के कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारें जिम्मेदार हैं परन्तु इस सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण रहेगा और राज्य सरकारो को उनके निदेशो का पालन करना होगा। केन्द्रीय सरकार श्रम मामलो मे राज्य सरकारो को उनके निर्देशो का पालन करना होगा। केन्द्रीय सरकार श्रम मामलो मे राज्य सरकारो के कार्यकलापो का समन्वय करती है और जब कभी भी आवश्यक होता है, तब उन्ह परामर्श देती है।

श्रम मन्त्रालय त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलनो और समितियो, द्विपक्षीय राष्ट्रीय पीपनिकाय और राष्ट्रीय औद्योगिक समितियो के लिए सचिवालय की भी व्यवस्था करता है और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यकलापो मे भारत के भाग लेने के लिए कडी रूप मे कार्य करता है।

श्रम मन्त्रालय के चार सलग्न कार्यालय और 29 अधीनस्थ कार्यालय हैं। इनका ब्यौरा इस प्रकार है—

I सलग्न कार्यालय

(1) रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशक, नई दिल्ली।
(2) मुख्य श्रमायुक्त (केन्द्रीय), नई दिल्ली।
(3) महानिदेशक, कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र, बम्बई।
(4) निदेशक, श्रम ब्यूरो, चण्डीगढ।

II अधीनस्थ कार्यालय

(1) महानिदेशक, खान सुरक्षा, धनबाद ।

(2) कोयला खान कल्याण आयुक्त, धनबाद ।

(3) कल्याण आयुक्त, अभ्रक खान श्रमिक कल्याण संस्था, भीलवाड़ा ।

(4) कल्याण आयुक्त, अभ्रक खान श्रमिक कल्याण संस्था, कालीचेडु, जिला नैलोर ।

(5) उप-कल्याण आयुक्त, अभ्रक खान श्रमिक कल्याण संस्था, कर्मा, डाकघर भुमरीतलैया, जिला हजारीबाग (बिहार)

(6) लोहा अयस्क खान उपकर आयुक्त, नई दिल्ली ।

(7) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था, बिहार और उड़ीसा (बिहार क्षेत्र), बाराजामदा, जिला सिंहभूमि ।

(8) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था, इन्दौर ।

(9) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था (गोवा क्षेत्र), पनजी-गोआ ।

(10) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था, काचीगुडा, हैदराबाद ।

(11) कल्याण तथा उपकर आयुक्त, चूना-पत्थर और डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण संस्था, बैंगलौर ।

(12) कल्याण तथा उपकर आयुक्त, चूना-पत्थर और डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण संस्था, जबलपुर ।

(13) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था, बिहार और उड़ीसा (उड़ीसा क्षेत्र) बारबिल जिला क्योंझर ।

(14) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था, बंगलौर ।

(15) कल्याण आयुक्त, लोहा अयस्क खान श्रमिक कल्याण संस्था (नागपुर क्षेत्र), पनजी-गोआ ।

(16) कल्याण और उपकर आयुक्त, चूना-पत्थर और डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण संस्था, कर्मा,डाकघर भुमरितलैया, जिला हजारीबाग ।

(17) कल्याण तथा उपकर आयुक्त, चूना-पत्थर और डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण संस्था, भीलवाड़ा (राजस्थान) ।

(18) कल्याण तथा उपकर आयुक्त, चूना-पत्थर और डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण संस्था, भुवनेश्वर ।

(19) अध्यक्ष, केन्द्रीय कोयला खान बचाव केन्द्र समिति, धनबाद ।

(20) पीठासीन अधिकारी, केन्द्रीय सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण एवं श्रम जांच न्यायालय और संराधन बोर्ड, निर्मल टावर, 26–बाराखम्भा रोड, नई दिल्ली ।

(21) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय सख्या 1, धनबाद ।
(22) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय सख्या 2, धनबाद ।
(23) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय सख्या 3, धनबाद ।
(24) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय, जबलपुर ।
(25) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय सख्या 1, बम्बई ।
(26) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय, कलकत्ता ।
(27) पीठासीन प्रधिकारी, केन्द्रीय सरकार प्रौद्योगिक न्यायाधिकरण एव श्रम न्यायालय सख्या 2, बम्बई ।
(28) सचिव, विवाचन बोर्ड, निर्मल टावर, बाराखम्भा रोड, नई दिल्ली ।
(29) सचिव, श्रमजीवी पत्रकार प्रौर गैर-पत्रकार समाचार-पत्र कर्मचारी मजदूरी बोर्ड, कुर्ला बम्बई ।



Appendix—8

राजस्थान में श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम की प्रगति[1]

राजस्थान मे श्रमिक शिक्षा कार्य गत 15 वर्षों से चल रहा है और इस अवधि मे राज्य सरकार, श्रम सगठनो एव औद्योगिक प्रतिष्ठानो के सहयोग से इस कार्यक्रम ने उल्लेखनीय प्रगति की है।

श्रमिक शिक्षा के कार्य का सचालन भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय के अधीन गठित श्रमिक शिक्षा मण्डल के तत्वावधान मे किया जाता है। श्रमिको को उनके अधिकारों और कर्त्तव्यो का बोध कराने के उद्देश्य से श्रमिक शिक्षा का कार्य देश में वर्ष 1958 से शुरू हुआ था। राजस्थान मे यह कार्य अक्तूबर, 1962 से शुरू हुआ। प्रारम्भ मे भीलवाड़ा नगर मे एक उप प्रादेशिक केन्द्र की स्थापना की गई। मार्च, 1965 मे इस केन्द्र को उपकेन्द्र से बढाकर पूर्णरूपेण प्रादेशिक केन्द्र का दर्जा दिया गया। अप्रेल, 1974 मे यह केन्द्र भीलवाडा से जयपुर स्थानातरित कर दिया गया। यह केन्द्र नियमित रूप से श्रमिक शिक्षक प्रशिक्षण सत्रो का आयोजन करके तथा समय-समय पर श्रमिक प्रशिक्षण एव अन्य विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन करके श्रमिको को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करता है। प्रादेशिक केन्द्र के अधीन इस समय राज्य के विभिन्न उद्योगो तथा श्रमिक बस्तियो मे 65 प्राथमिक केन्द्र भी चल रहे हैं।

गत 15 वर्षों में केन्द्र ने तीन-तीन माह के 54 पूर्णकालीन श्रमिक प्रशिक्षण सत्रो का आयोजन किया है जिनमे विभिन्न सार्वजनिक एव निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानो के 1234 श्रमिको ने भाग लिया। इस समय 55वां श्रमिक प्रशिक्षण सत्र चल रहा है जिसमे विभिन्न निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानो के 39 कर्मचारी भाग ले रहे हैं।

प्रशिक्षित श्रमिक शिक्षक प्राथमिक केन्द्रो मे समय-समय पर श्रमिको के प्रशिक्षण के लिए शिविरो का आयोजन करते हैं। राज्य मे चल रहे 65 प्राथमिक केन्द्रो मे अब तक ऐसे 2 हजार 735 शिविर लगाये जा चुके हैं जिनमे 58 हजार 15 श्रमिको को प्रशिक्षित किया जा चुका है।

1. भारत सरकार प्रेस विज्ञप्ति, दिनांक 29 जनवरी 1978.

विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम

केन्द्र द्वारा कुछ विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं जैसे अल्पावधि कार्यक्रम प्रबोधन कार्यक्रम, उत्पादकता शिक्षा कार्यक्रम तथा श्रमसघ पदाधिकारियो के लिए कार्यक्रम। अब तक अल्पावधि कार्यक्रम के अन्तर्गत एक दिवसीय शाला, त्रिदिवसीय गोष्ठी तथा अध्ययन गोष्ठियो के 387 आयोजन किए गए हैं जिनसे 14 हजार 271 श्रमिक लाभ उठा चुके हैं।

प्रशिक्षित श्रमिक शिक्षको के लिए पुन प्रबोधन के 42 कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं जिनसे 572 श्रमिक शिक्षको ने लाभ उठाया है। प्रशिक्षित श्रमिको के लिए 13 पुन प्रबोधन कार्यक्रम किए गए जिनसे 268 श्रमिको ने लाभ उठाया।

ग्रामीण श्रमिक शिक्षा

हाल ही मे भारत सरकार ने श्रमिक शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान की है। अभी तक श्रमिक शिक्षा का आयोजन सार्वजनिक अथवा निजी क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठानो के श्रमिको के लिए ही किया जाता था। अब सरकार ने इन श्रमिक शिक्षा केन्द्रो के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रो के श्रमिको को भी शिक्षा देने की व्यवस्था करने का निश्चय किया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीणो को साक्षर बनाने, उनको उनके कार्य से सम्बन्धित नवीनतम जानकारी देने आदि की इस प्रकार व्यवस्था की जाएगी जिससे वे अपने सभी कार्य करने के लिए सक्षम हो सकें।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत चालू वित्त वर्ष मे पहला दो दिवसीय शिविर गगानगर की सूरतगढ तहसील मे 22 एल बी डब्ल्यू गाँव मे किया गया। इसमे 40 ग्रामीण श्रमिको ने भाग लिया। इसी प्रकार के दो और शिविर सेवा मन्दिर, उदयपुर तथा राजस्थान आदिम जाति सेवा सघ के सहयोग से चित्तौडगढ जिले की तहसील प्रतापगढ के गाँव अरनोद तथा उदयपुर जिले की उदयपुर तहसील के गाँव बडगा मे लगाए जा चुके हैं। ऐसा चौथा शिविर इसी वित्त वर्ष म अभ्रक खान हितकारी सघ के सहयोग से आयोजित करने का कार्यक्रम है।



कर्मचारी राज्य बीमा योजना और अधिक उदार[1]

(श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य लाभ घरों की स्थापना)

कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने बीमाकृत व्यक्तियों के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले परिवारों को चिकित्सा सुविधाएँ मुहैया करने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। परन्तु इसके लिए शर्त है कि जिस जगह परिवार रहता है वह उस क्षेत्र में होना चाहिए जहां कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू है और कर्मचारी तथा उसका परिवार एक ही राज्य में रहते हों।

ये सुविधाएँ परिवार के उन सदस्यों को भी मिलेंगी जो छुट्टी या किसी दूसरे स्थान के लिए अस्थायी स्थानान्तरण पर बीमाकृत व्यक्ति के साथ रहते हैं। परन्तु वह स्थान ऐसे केन्द्र में होना चाहिए जहाँ पर कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू हो।

अभी हाल यहाँ हुई बैठक में, जिसकी अध्यक्षता केन्द्रीय श्रम मन्त्री, श्री रवीन्द्र वर्मा ने की, ऐसे बीमाकृत लोगों जिनका दवाई/इंजेक्शन के उल्टे असर के कारण निधन हो जाता है, के आश्रितों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता 2,500 रुपये से बढ़ाकर 5,000 रुपये की भी मंजूरी की गई।

निगम ने बीमाकृत सदस्यों और उनके परिवारों के लिए स्वास्थ्य लाभ घर स्थापित करने की स्वीकृति दे दी है। यह पहला अवसर है जबकि कर्मचारियों के लाभ के लिए देश में इस प्रकार का कार्यक्रम चलाने का प्रस्ताव है। यद्यपि पूरे देश में स्वास्थ्य लाभ घर बनाने की योजना है, फिर पहले चरण में बड़े औद्योगिक केन्द्रों में ऐसे कुछ घर बनाये जाएँगे। इस प्रकार के छोटे घर में 10 बिस्तरों की तथा बड़े से बड़े घर में 100 बिस्तरों की व्यवस्था होगी।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए श्रम मन्त्री, श्री रवीन्द्र वर्मा ने कहा कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम योजना असंगठित क्षेत्रों में या खेतीहर मजदूरों तक पहुँचने में सक्षम है।

सदस्यों ने सुझाव दिया कि 75 केस प्रतिदिन प्रति डॉक्टर के वर्तमान नियम के स्थान पर 60 केस प्रतिदिन प्रति डॉक्टर होना चाहिए था। आपात सेवाओं के प्रबन्ध के लिए चिकित्सा अधिकारियों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

---

1. भारत सरकार प्रेस विज्ञप्ति, दिनांक 25 फरवरी, 1978.

Appendix—10

राजस्थान में श्रम स्थिति एवं रोजगार नियोजन (1977–78)

राजस्थान राज्य मे सन् 1977–78 मे श्रम और रोजगार नियोजन की जो स्थिति रही, उसका संक्षिप्त चित्रांकन राजस्थान सरकार के आय-व्ययक अध्ययन सन् 1978–79 के अनुसार निम्नवत है।

श्रम स्थिति

सन् 1977 मे श्रम विवाद अधिक हुए जिसका मुख्य कारण मार्च, 1977 मे आपातकालीन स्थिति के हट जाने के फलस्वरूप श्रमिको को अपने अधिकारो की माँग करने की स्वतन्त्रता मिलना था। इस वर्ष 118 श्रम विवाद हुए जिसमे 69012 व्यक्ति प्रभावित हुए एव 707076 मानव दिवसो की क्षति हुई। सन् 1976 म केवल 16 श्रम विवाद हुए थे, जिसमे 1822 व्यक्ति प्रभावित हुए एव 9619 मानव दिवसो की हानि हुई थी।

अधिकाश श्रमिक असन्तोष का प्रदर्शन सन् 1977 के द्वितीय त्रैमास मे विशेषकर माह अप्रैल मे हुए। सन् 1977 मे हुए कुल श्रम विवाद, मानव दिवसो की हानि व प्रभावित श्रमिक का लगभग 1/5 भाग वर्ष के द्वितीय त्रैमास मे ही हुआ। वष मे 34 हडतालें हुई जिनम 18222 श्रमिक प्रभावित हुए एव 145504 मानव दिवसो की हानि हुई। इसके अतिरिक्त 8 तालाबन्दियाँ हुई जिसके फलस्वरूप 6276 श्रमिक प्रभावित हुए और 51034 मानव दिवसो की हानि हुई। इसके बाद से श्रमिक असन्तोष का अन्त होता जा रहा है।

सन् 1977 मे 299 श्रमिक सघो का पजीकरण हुआ, जिनकी सदस्य सख्या 53538 थी। इससे वर्ष के अन्त मे इनकी सख्या बढकर क्रमश 1523 व 246411 हो गई।

रोजगार नियोजन

सन् 1977–78 के विनियोजन के अनुसार अनुमान है कि राज्य मे 3 86 लाख व्यक्तियो को नियमित रूप से रोजगार उपलब्ध कराया जा सकेगा जबकि श्रम शक्ति मे अनुमानित वृद्धि केवल 2 75 लाख की होगी। इस प्रकार किसी सीमा तक बकाया बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सकेगा।

नियोजन कार्यालयों की सुविधाओं का लाभ इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा अधिक प्राप्त किया गया। इस वर्ष में 1976 की तुलना में पंजीकरण में 8·35% की वृद्धि हुई जबकि सन् 1976 में वर्ष 1975 की तुलना में केवल 2·61% की वृद्धि हुई थी। नियोजन कार्यालय के अतिरिक्त जनशक्ति विभाग द्वारा रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक बेरोजगार डिप्लोमा प्राप्त एवं इंजीनियरिंग स्नातकों का पंजीयन किया जाता है जो इनकी नियुक्तियों की विभिन्न सरकारी, अर्द्ध-सरकारी एवं स्वायत्तशासित संस्थाओं के कार्यालयों में व्यवस्था करती है। सन् 1977 में गत वर्ष की तुलना में नियुक्तियों में 7·06% की कमी रही जो कि आंशिक रूप से अधिसूचित रिक्तियों की 19·64% की कमी के कारण रही। नियोजन कार्यालयों में जीवित पंजिका पर प्रार्थियों की संख्या इस वर्ष के अन्त तक गत वर्ष की तुलना में 4·27% अधिक रही। नियोजन सम्बन्धी प्रमुख मंमक तालिका में दिए गए है—

मद	वर्ष			विगत वर्षों की अपेक्षा प्रतिशत में परिवर्तन	
	1975	1976	1977	1976	1977
1. पंजीकरण	173237	177769	192613	2·61	8·35
2. नियोजन	21191	18615	17299	(—)12·15	(—)7·06
3. रिक्त अधिसूचित	32843	32779	26353	(—)0·14	(—)19·64
4. जीवित पंजिका पर प्रार्थी	263729	272017	283630	3·14	4·27

नियोजन कार्यालयों के समक, बेरोजगारी की गहनता की पूर्ण माप न होकर केवल उसी स्थिति को प्रतिबिम्बित करते है जो कि नियोजन कार्यालयों में पंजीकृत होते हैं।

रोजगार बेरोजगार के त्रैमासिक उपसत्र के सर्वेक्षणों से यह प्रदर्शित होता है कि सन् 1977 में औसतन 2·5 लाख व्यक्ति (2 लाख ग्रामीण क्षेत्र में एव 0 50 लाख शहरी क्षेत्र में) बेरोजगार थे और लगभग 24 लाख व्यक्ति (21 5 लाख ग्रामीण क्षेत्र में एव 2 5 लाख शहरी क्षेत्र में) अल्प रोजगार थे। अल्प रोजगार में उन व्यक्तियों को सम्मिलित किया है जिन्होंने संदर्भ सप्ताह में 42 घण्टे से कम कार्य किया।

रोजगार एवं अल्प रोजगार की गहनता कृषि के मौसमी कार्य से प्रभावित होती है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि बेरोजगारों की संख्या त्रैमास समाप्ति दिसम्बर में अधिक होती है व जून त्रैमास में कम रहती है। रोजगार उपलब्ध कराने वाली योजनाओं को बनाते समय बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेरोजगारी में होने वाले सामयिक परिवर्तन को ध्यान में रखा जाता है।

ऐसा अनुमान है कि सन् 1978–79 में 2 75 लाख व्यक्ति (2·45 लाख पुरुष एवं 0·30 लाख स्त्रियां) राज्य की श्रम शक्ति में सम्मिलित होंगे जिसमें 2·25 लाख व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र के एव 0·50 लाख व्यक्ति शहरी क्षेत्र के होंगे।

वर्ष 1978–79 मे सिचाई एव विद्युत विस्तार के द्वारा कृषि विकास पर एव मूलभूत आन्तरिक सरचना पर अधिक जोर दिया गया है।

डी पी ए पी कमाण्ड एरिया डवलपमेंट, डेयरी डवलपमेंट, लघु सिंचाई इत्यादि योजनाओ पर काफी मात्रा मे धन खर्च किया जावेगा। इस प्रकार की समस्त योजनाओ से रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। इनके अतिरिक्त सड़क व भवन निर्माण तथा लघु व मध्यम उद्योगो के विस्तार के द्वारा भी रोजगार उपलब्ध कराने पर अधिक जोर दिया गया है।

कृषि मजदूरी

राजस्थान राज्य मे नवम्बर, 1975 से कृषि मजदूरो के न्यूनतम वेतन निम्न प्रकार निर्धारित किए गए हैं—

क्षेत्र	पुरुष एव स्त्री	बालक
1 सिचाई क्षेत्र (बड़ी सिचाई परियोजना)	6 00	4 00
2 सिचित क्षेत्र (मध्यम एव लघु सिचाई परियोजना)	5 00	3 33
3 असिंचित क्षेत्र	4 25	2 35

राज्य मे चुने गए 50 ग्रामो से मजदूरी की सूचना जो एकत्रित की जा रही है वह कृषि मजदूरी प्रविनियम के अनुसार हो है। राज्य स्तर पर सन् 1977–78 मे प्रतिदिन औसत मजदूरी जो कृषि कार्यक्रमों के लिए दी गई वह 6·19 रुपये पुरुषो के लिए, 5 23 रुपये स्त्रियो के लिए एव 3 92 रुपये बालक मजदूरो के लिए थी। जबकि सन् 1976–77 मे उक्त मजदूरी क्रमश 6 24 रुपये पुरुषो के लिए, 4 98 रुपये स्त्रियो के लिए एव 3 46 रुपये बालको के लिए थी। सन् 1977–78 मे (जुलाई से दिसम्बर 77) औसत कृषि मजदूरी जो सभी प्रकार के मजदूरों (कृषि व अन्य कार्य) को दी गई उसकी सीमा 5 10 रुपये से 10 87 रुपये पुरुषो के लिए, 4 58 रुपये से 7 64 रुपये स्त्रियो के लिए तथा 3 42 रुपये से 5 46 रुपये बालको के लिए पायी गई।

Appendix—11

असंगठित मजदूर[1]

केन्द्रीय सरकार द्वारा सन् 1978-83 के लिए आयोजना का जो मसविदा पिछले दिनों पेश किया गया उसमे 'कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता' देने की बात कही गई है। यह भी कहा गया है कि 'छोटे और सीमांतक किसानों, भूमिहीन मजदूरो, विशेषकर अनुसूचित जातियो और अनुसूचित आदिम जातियो की नियति को बेहतर बनाने की दिशा मे खास प्रयत्न किया जाएगा।

योजना बहुत उत्साहवर्द्धक है लेकिन इसके साथ इन क्षेत्रो से जुडे-बंधे ग्रामीण मजदूरो की नियति को बेहतर बनाने की समस्या का समाधान भी जरूरी है। शहरी क्षेत्रो मे मजदूरो के सगठित होने के कारण सघर्ष और समझौते का मिलाजुला कार्यक्रम आगे चलता रहता है। लेकिन असगठित क्षेत्र के लिए खास तौर से देश के विस्तृत देहातो मे जहाँ बड़े पैमाने पर ग्रामीण मजदूर रहते हैं, ऐसी कोई ठोस योजना सामने नही आ सकी है। जिन क्षेत्रो मे इस दिशा मे कुछ काम हुआ है वहाँ के मजदूर आम तौर पर यह स्वीकार करते हैं कि वे काफी दूर तक अपनी आर्थिक स्थिति का सुधार कर सकते हैं, कानून द्वारा मिले अपने अधिकारो का उपयोग कर सकते है बशर्ते कि वे सगठित हो जाएँ। लेकिन वे यह भी मानते हैं कि गाँव मे उन्हे सगठित करने का कोई प्रयास नही किया गया।

उनके असगठित होने का एक कारण तो उनके वर्ग का स्वरूप भी है। एक तरफ वे भूमिहीन खेतिहर मजदूर हैं जिन्हे कुछ जमीन तथा मजदूरी देकर उनकी गरीबी कम की जा सकती है। लेकिन सभी खेतिहर मजदूर भूमिहीन परिवारो से ही नही आते हैं। इसमे एक बड़ी सख्या उन लोगो की है जो छोटी मोटी खेती भी करते है और उस सिलसिले मे उन्हे थोड़े बहुत अपना ही करने को मिल जाता है। दूसरी तरफ दिहाडी पर काम करने वाले वे मजदूर हैं जिन्हें जमीदार कुछ अग्रिम धन देने के अलावा जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा भी दे देता है और वे निरन्तर उसकी दया की गिरफ्त मे छटपटाते रहते हैं। यदि इन मजदूरो को अब तक सगठित नही किया गया तो उसका कारण जमींदारो द्वारा स्थान विशेष मे उस वर्ग के कुछ लोगों को डरा धमका या फुसला बहला कर अपने पक्ष मे कर लेना होता है। जमीदार छोटे किसानो और मजदूरो दोनो का शोषण करता है। आन्दोलन के जोर न पकडने का कारण उसके नेतृत्व की दुविधा और कमजोरी भी है। एक कारण स्थानीय प्रशासन का उदासीन होना भी रहा है। एक तरफ सरकार भूमि वितरण

1. दिनमान 2-8 अप्रैल 1978, पृष्ठ 8.

या न्यूनतम मजदूरी के भुगतान के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति करती है तो दूसरी तरफ ऐसे आन्दोलन को दबाने के लिए भी सरकारी मशीनरी का ही इस्तेमाल किया जाता है। प्राय सरकारी अधिकारी और पुलिस किसी भी संघर्ष के अवसर पर बड़े लोगों का पक्ष लेते हैं। एक और कारण उनकी गरीबी है क्योंकि उनकी नियति रोज कुआँ खोदने और पानी पीने की होती है। इसलिए वे संघर्ष चलाने की स्थिति म नहीं होते। किसी भी प्रकार दबाव की राजनीति चला नहीं सकते अत कभी भी सौदेबाजी म उनका पलड़ा भारी नहीं पड़ता।

25वें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार जुलाई, 1970 से लेकर जून, 1971 के बीच देश मे औसतन प्रति भूमिहीन मजदूर की एक दिन की आमदनी 2 03 रुपए और छोटे खतिहर की 1 90 रु थी। भूमिहर मजदूरो की एक दिन की औसत मजदूरी मध्य प्रदेश, उड़ीसा आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र म 1 56 रु स लेकर 1 84 रु के बीच थी। इस मजदूरी का राष्ट्रीय औसत 2 रुपए 3 पैसे है। दूसरी तरफ गुजरात, बिहार तमिलनाडु उत्तर प्रदेश, पश्चिम बगाल और राजस्थान म यह मजदूरी 2 रुपए 3 पैसे से लेकर ढाई रुपए तक है। जिन राज्यो मे मजदूरी राष्ट्रीय औसत से ज्यादा है वे हैं—केरल, कश्मीर, असम, हरियाणा और पजाब जहाँ मजदूरी 3 रुपए 3 पैसे से लेकर 4 रुपए 72 पैसे के बीच है।

चिरतन समस्या . ग्रामीण मजदूरो की सबसे बड़ी समस्या उनकी बेरोजगारी है और यदि रोजगार है भी तो वह अस्थायी है और उसमे मजदूरी बहुत कम मिलती है। ज्यादातर ग्रामीण मजदूर पूरे वर्ष भर ऐसा रोजगार नही पाते जिसे लाभकर कहा जा सके। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा प्रस्तुत (अक्तूबर, 1972 और सितम्बर, 1973 के बीच) आँकड़ो के अनुसार ग्रामीण मजदूरो की कुल सख्या 19 करोड़ 86 लाख 30 हजार थी जिसम से 12 करोड़ 93 लाख 50 हजार कामों या खेती के काम से सम्बद्ध थे। शेष 6 करोड़ 92 लाख 80 हजार मजदूरो मे से 1 करोड़ 83 लाख बेरोजगार थे। इनके लिए पूरे वर्ष मे कोई काम नही था। 6 करोड़ 74 लाख 50 हजार मजदूर नियमित ढग से काम मे लगे हुए थे। इनमे 5 करोड़ 24 लाख दिहाड़ी वाले मजदूर थे।

बेरोजगारो की श्रेणी मे आने वाले और अत्यन्त कम मजदूरी पर काम करने वाले ग्रामीण मजदूरो के लिए जरूरी यह है कि उनके लिए ऐसी योजनाएँ बनाई जाएँ जिस से मजदूरी मिलने की अतिरिक्त सुविधाएँ सामने आएँ। विभिन्न सरकारी अभिकरण और योजना आयोग से लेकर ग्रामीण विकास सम्बन्धी विभाग इस समस्या से परिचित हैं। कुछ योजनाएँ भी सामने लाई गई हैं। लेकिन ऐसा क्या है कि या तो वे योजनाएँ उस स्तर तक पहुँच नही पाती हैं या उनका लाभ ग्रामीण मजदूरो को नही मिला। इसका परिणाम यह है कि ग्रामीण मजदूर आज भी गरीबी और बेबसी मे जी रहे हैं और उनकी इस स्थिति मे स्वतन्त्रता मिलने के 30-31 वर्ष के बाद भी कोई बड़ा अन्तर नही आया है।

यह तथ्य गहरी चिन्ता का विषय है कि गरीबी की रेखा से नीचे जीने वालो की सख्या दिन व दिन बढती जा रही है । एक अर्थशास्त्री ने अध्ययन और सर्वेक्षण के बाद लिखा था कि सन् 1960-61 और 1970-71 के बीच ग्रामीण भारत मे रहने वाले गरीब मजदूर वर्ग की सख्या 18 28 से 21 81% पर पहुँच गई । उससे कम गरीबी का अनुपात 60-61 मे 28 21% थी जो 70-71 मे 31 12 पर पहुँच गया । सामान्य ढग से गरीब का अनुपात 60-61 मे 38 11 था जो 70-71 मे बढ कर 43 16 हो गया ।

जहाँ तक ग्रामीण मजदूरी की स्थिति को बेहतर बनाने का प्रश्न है सविधान मे उसकी पूरी व्यवस्था और गारटी है । भारत वर्ष ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के उस प्रस्ताव का अनुमोदन किया था जिसमे ग्रामीण मजदूरो की बेहतरी के लिए एक स्वतन्त्र सगठन बनाने की बात की गई थी । राष्ट्रीय श्रम सस्थान ने भी आन्ध्र प्रदेश, बिहार, केरल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और पश्चिम बगाल मे शिविरो का आयोजन किया था । इन आयोजनो का उद्देश्य ग्रामीण मजदूरो मे नेतृत्व की क्षमता का विकास तथा उन्हे सरकार द्वारा चलाए जाने वाले ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो से परिचित कराना, बटाई खेती की मिल्कियत, काश्तकारी, न्यूनतम मजदूरी और श्रम सम्बन्धी कानूनो से परिचित कराना था । मजदूर शिक्षण के केन्द्रीय बोर्ड ने भी एक विस्तृत और दीर्घकालिक योजना तैयार की थी जिसके अन्तर्गत ग्रामीण मजदूरो मे अपने सगठन को विस्तृत करने और उसके लिए कार्यकर्त्ता तैयार करने की योजना थी ।

अक्तूबर, 1977 मे दिल्ली मे एक निपक्षीय समिति की बैठक मे मजदूर सघ के नेताओ ने यह बात साफ ढग से कही कि ग्रामीण मजदूरो का सगठन तैयार करने मे उनकी शिक्षा के स्तर का कम होना या उनकी गरीबी नही बल्कि वास्तविक बाधा जमीदारो का हिंसक विरोध है । इसके कारण सदैव कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा होती है ।

लेकिन इन मजदूरो को सगठित करने की दिशा मे अब तक कोई ठोस काम नही हुआ और इसके जिम्मेदार न केवल मजदूरो के हितो के लिए लडने वाले राजनीतिक दल बल्कि समाज का वह उच्च वर्ग और सम्पन्न वर्ग भी है जिसे इसमे अपने लिए खतरा दिखाई देता है ।

Appendix—12

भारत सरकार श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट

(1977–78 का प्रस्तावनात्मक और सामान्य विवरण)

आपातोत्तर परिस्थिति

केन्द्र मे नई सरकार द्वारा कार्यभार सभाल लिए जाने के तुरन्त बाद देश के अनेक भागो से औद्योगिक अशान्ति की रिपोर्ट प्राप्त हुई। प्रदर्शनो और कामबदियो सम्बन्धी इन रिपोर्टों से सरकार को चिन्ता हुई, परन्तु यह पता लगा कि ये प्रदर्शन तथा कामबदियाँ वस्तुत आपात स्थिति के अभिघाती अनुभवो के बाद अचानक पुन प्राप्त हुई आजादी की अभिव्यक्ति थी। आपात-स्थिति के दौरान राजनैतिक अत्याचारो, सेवाओ को समाप्त करने के लिए अधिकारो के दुरुपयोग, कार्य बढाने या आदमी नियोजित करने सम्बन्धी मापदण्डो मे कमी करने या भर्ती और पदोन्नति की नीतियो मे परिवर्तन करने सम्बन्धी प्रबन्धको के एकतरफा प्रयास की अनेक घटनाएँ हुई थी। चूंकि मतभेद की अभिव्यक्ति और श्रमिको के प्रत्याहार की सामान्य रीति को पूर्णत दबा दिया गया था, इसलिए श्रमिक कोई सामूहिक कार्यवाही कर सकने की स्थिति मे नही थे जिससे कि वे अपनी समस्याओ को हल कराने सम्बन्धी अपने चिर प्राप्त अधिकारो पर हो रहे अतिक्रमणो का सामना कर सकें। यहाँ तक कि वे विरोध तक भी प्रकट नही कर सकते थे। इसलिए, यह स्वाभाविक ही था कि आपात स्थिति के समाप्त किए जाने तथा श्रमिको के सामान्य अधिकारो के बहाल किए जाने के बाद श्रमिको ने अपनी उन भावनाओ को अभिव्यक्त किया जो दब कर रह गयी थी। उन्होने प्रदर्शनो और सामूहिक कार्यवाही द्वारा उन घोर अन्यायो की तरफ ध्यान दिलाया जो उनके साथ आपात स्थिति के दौरान किए गए थे।

सरकार ने इस बात का पता लगाना जरूरी समझा कि इस प्रकार की अशान्ति के क्या कारण हैं। तदनुसार श्रम मन्त्री ने श्रमिको तथा नियोजको के केन्द्रीय सगठनो के प्रतिनिधियो से अनेक बार परामर्श किया ताकि श्रम के क्षेत्र मे विद्यमान समस्याओ का पता लगाया जा सके। इस परामर्श के परिणामस्वरूप सरकार ने दोहरा प्रयास आरभ किया। एक प्रयास का उद्देश्य मालिक-कर्मचारी सबधो के क्षेत्र मे विद्यमान उन क्षोभक कारणो को दूर करना था जो आपात स्थिति के बाद विरासत मे मिले थे। दूसरे प्रयास का उद्देश्य और अधिक प्रभावी तत्र एव प्रक्रिया तैयार करके दीर्घकालिक उपाय करना था जिससे वैयक्तिक शिकायतो का तेजी से तथा न्यायपूर्ण

ढंग से निराकरण हो सके और सामूहिक विवाद भी शीघ्र तथा उचित ढंग से तय हो सके। सरकार को यह पता लगा कि ट्रेड यूनियन अधिकारों का खण्डन, अत्याचार, बोनस सन्दाय अधिनियम में किए गए संशोधन और अनिवार्य जमा योजना के अन्तर्गत की जाने वाली कटौतियां मुख्य क्षोभक कारण थे। सरकार ने घोषणा की कि वह श्रमिकों और ट्रेड यूनियनों के मूल अधिकारों के बहाल करने में विश्वास रखती है और उसने इन अधिकारों के स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग के लिए आवश्यक परिस्थितियां पैदा करने के लिए कदम उठाए। 8 33 प्रतिशत की दर से न्यूनतम बोनस बहाल कर दिया गया और अनिवार्य जमा योजना के अन्तर्गत कटौतियां समाप्त कर दी गई।

नौकरी से अलग किये गये कर्मचारियों की बहाली

जहाँ तक अत्याचार की घटनाओं का सम्बन्ध है, यह पता लगा कि आपात-स्थिति के दौरान सरकारी तथा निजी क्षेत्र के औद्योगिक उपक्रमों में बड़ी संख्या में कर्मचारियों को बरखास्त या पदच्युत किया गया था। मोटेतौर पर ये कर्मचारी तीन वर्गों के थे। प्रथम वर्ग में ऐसे कर्मचारी शामिल थे जिन्हें मीसा या भारत रक्षा तथा आतरिक सुरक्षा नियमों के अधीन नजरबन्दी के कारण काम से अनुपस्थिति के आरोप में नियोजकों ने सेवा से बरखास्त या पदच्युत कर दिया था। दूसरे वर्ग के मामले ऐसे कर्मचारियों से संबंधित थे जिन्हें इसलिए बरखास्त अथवा पदच्युत कर दिया गया था कि वे कुछ ऐसे संगठनों से सम्बद्ध थे जिन पर पिछली केन्द्रीय सरकार ने प्रतिबन्ध लगा रखा था या जो पिछली सरकार के कृपापात्र नहीं थे। तीसरा वर्ग उन कर्मचारियों का था जिन्हें आपात-स्थिति के वातावरण का लाभ उठा कर नियोजकों ने कानूनी प्रक्रिया या विहित पद्धतियों की उपेक्षा करके तथा स्वाभाविक न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण किए बगैर बरखास्त अथवा पदच्युत कर दिया गया था। भारत सरकार ने निर्णय किया कि इन सभी कर्मचारियों के साथ किए गए अन्याय को दूर किया जाए और तदनुसार राज्य सरकारों तथा नियोक्ता मन्त्रालयों को कुछ मार्गदर्शी हिदायतें जारी की गई। उन्हें यह सलाह दी गई कि प्रथम दो वर्गों के ऐसे सभी कर्मचारियों को (चाहे निजी क्षेत्र के हों या सरकारी क्षेत्र के) जो असाधारण अधिकारों के प्रयोग के कारण प्रभावित हुए थे, तत्काल बहाल कर दिया जाना चाहिए और मध्यवर्ती अवधि को वेतनवृद्धि, सेवा निवृत्ति लाभ आदि की प्राप्ति के लिए ड्यूटी माना जाना चाहिए। बाद में यह भी निर्णय किया गया कि इस प्रकार के सभी कर्मचारी मध्यवर्ती अवधि के लिए पूर्ण वेतन तथा भत्ते प्राप्त करने के हकदार होने चाहिएं, परन्तु इसके साथ ही यह शर्त भी रखी गई कि पूरा वेतन तथा भत्तों के भुगतान की यह रियायत उन कर्मचारियों को नहीं दी जानी चाहिए जो आपात-स्थिति के दौरान माफी मांगने पर जेल से रिहा कर दिए गए थे। तीसरे वर्ग में आने वाले मामलों के सम्बन्ध में मार्गदर्शी हिदायतों में यह परिकल्पना की गई कि उनकी पुनर्परीक्षा की जानी चाहिए और संबंधित कर्मचारियों को अपना पक्ष पेश करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यह भी स्पष्ट किया गया कि मराधन

तन्त्र को चाहिए कि वह इन मामलों की जांच करें और ऐसे हल निकालें जिनसे संबंधित पक्ष सन्तुष्ट हो जाए और जहां यह संभव न हो, वहां पैदा हुए औद्योगिक विवादों को न्याय निर्णय के लिए भेज दिए जाए। केन्द्रीय क्षेत्र के उपक्रमों के सम्बन्ध में केन्द्रीय मंत्रालयों विभागों से प्राप्त हुई रिपोर्टों से पता चलता है कि उक्त तीन वर्षों के सम्बन्ध में 146 उपक्रमों के कुल 264 व्यक्तियों को बहाल कर दिया गया था। राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों ने भी सूचित किया है कि उन्होंने अपने-अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले निजी तथा सरकारी दोनों क्षेत्रों के 1390 कर्मचारियों को बहाल किया है।

त्रिपक्षीय तन्त्र का पुन: स्थापन

सरकार ने विभिन्न स्तरों पर स्थापित किए गए द्विपक्षीय शीर्ष निकायों को भी बन्द करने का निर्णय किया, क्योंकि यह पाया गया कि उनका गठन अत्यन्त सीमित था। सरकार ने त्रिपक्षीय मंत्रणा की प्रणाली को पुन: स्थापित करने का निश्चय किया जिसे पिछली सरकार ने लगभग 6 वर्ष से निष्क्रिय कर रखा था। श्रम मंत्री ने यह बात स्पष्ट कर दी कि वह औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकमत की तलाश में सभी संबंधित पक्षों से यथासंभव व्यापकतम परामर्श करने के हक में हैं। तदनुसार, 6-7 मई,1977 को एक त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन बुलाया गया। यह सम्मेलन अद्वितीय था। पहली बार इसमें केन्द्रीय श्रमिक संगठनों के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में शामिल हुए जिन्हें पिछले कई वर्षों से प्रतिनिधित्व से वंचित रखा गया था। इस सम्मेलन में व्यापक औद्योगिक संबंध कानून, प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता, उपदान निधि की स्थापना भारतीय श्रम सम्मेलन के गठन और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श किया गया। इस सम्मेलन में यह सिफारिश की कि व्यापक औद्योगिक सम्बन्ध कानून और भावी भारतीय श्रम सम्मेलन के गठन से सम्बन्धित एक त्रिपक्षीय समिति गठित की जाए, जो औद्योगिक संबंध कानून से संबंधित समस्याओं का गहराई से अध्ययन करे। इस सम्मेलन ने यह भी सिफारिश की कि एक कम्पैक्ट कमेटी गठित की जाए जो प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता के क्षेत्र का अध्ययन करे और सरकार को रिपोर्ट पेश करे ताकि वह अपनी नीति बना सके। इस सम्मेलन की तीसरी सिफारिश ट्रेड यूनियनों, नियोजकों और विशेषज्ञों के प्रतिनिधियों को शामिल करके एक समिति के गठन के बारे में थी ताकि वह मूल्यों संबंधी आँकड़े एकत्र करने की वर्तमान प्रणालियों का अध्ययन करें तथा इस बात का भी अध्ययन करें कि क्या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक संबंधी प्राथमिक आँकड़ों के संकलन के काम के साथ ट्रेड यूनियनों को भी सम्बद्ध करना वाञ्छनीय है। जहां तक असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों का संबंध है,यह निर्णय किया गया कि उनकी समस्याओं पर विचार करने के लिए एक विशेष सम्मेलन बुलाया जाए। त्रिपक्षीय सम्मेलन के तुरन्त बाद श्रम मंत्रियों का एक सम्मेलन भी बुलाया गया ताकि देश में व्याप्त औद्योगिक संबंधों की स्थिति के बारे में अनौपचारिक विचार विनिमय किया जा सके।

व्यापक औद्योगिक सम्बन्ध कानून सम्बन्धी समिति

त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसरण में श्रम मंत्रालय ने जुलाई 1977 में श्रम मंत्री की अध्यक्षता में व्यापक औद्योगिक सम्बन्ध कानून और भारतीय श्रम सम्मेलन के गठन के बारे में एक 30 सदस्यीय त्रिपक्षीय समिति गठित की। इस समिति में 10 केन्द्रीय श्रमिक संगठनों का एक-एक प्रतिनिधि, निजी क्षेत्र के नियोजकों के छः प्रतिनिधि, केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के नियोजकों के तीन तथा राज्यों के सरकारी क्षेत्र का एक प्रतिनिधि, राज्य सरकारों के आठ और केन्द्रीय मंत्रालयों के दो प्रतिनिधि शामिल थे। इस समिति के जिम्मे यह काम लगाया गया कि वह ट्रेड यूनियनों, औद्योगिक विवादों सबंधी से सबंधित वर्तमान केन्द्रीय तथा राज्य श्रम कानूनों, स्थायी आदेशों और अनुशासन संहिता जैसी असांविधिक योजनाओं का अध्ययन करे और अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश करे कि व्यापक औद्योगिक सबंध कानून का सामान्य ढांचा क्या हो। चूंकि सरकार की यह नीति है कि जहाँ तक संभव हो, अधिकतम सलाह मशविरा किया जाए, इसलिए इस नीति के अनुसरण में इस समिति ने प्रस्तावित औद्योगिक सम्बन्ध कानून के बारे में सभी संबंधित पक्षों से सुझाव आमंत्रित किए। इस समिति ने दी गई दो माह की समय-सीमा के अन्दर-अन्दर अपना काम पूरा कर लिया और 21 सितम्बर, 1977 को अपनी रिपोर्ट सरकार को पेश कर दी। इस रिपोर्ट में औद्योगिक सबंध कानून के विषय पर नियोजकों, कर्मचारियों और कुछ राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों के विचार शामिल हैं। इस समिति ने सर्वसम्मति से यह सिफारिश की कि ट्रेड यूनियनों, स्थायी आदेशों और औद्योगिक विवादों के बारे में तीन केन्द्रीय कानूनों को समेकित कर दिया जाए। समिति ने इस कानून के विभिन्न पहलुओं को अंतिम रूप देने की बात सरकार पर छोड़ दी। श्रम मन्त्रालय ने नवम्बर, 1977 में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के श्रमायुक्तों, केन्द्रीय सरकार श्रम-न्यायालयों तथा औद्योगिक अधिकरणों के पीठासीन अधिकारियों का एक सम्मेलन आयोजित किया, ताकि वे प्रस्तावित कानून के कुछ पहलुओं पर विचार-विमर्श कर सकें। इस समिति की रिपोर्ट पर विचार विमर्श करने के लिए 7 नवम्बर, 1977 को श्रम मन्त्रियों का सम्मेलन भी बुलाया गया। यद्यपि, इस सम्मेलन में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए गए तथापि इस रिपोर्ट से उत्पन्न होने वाले कुछ आधारभूत प्रश्नों के बारे में काफी हद तक एकमत था।

इस समय सरकार इन प्रस्तावित कानूनों का ब्यौरा तैयार करने के काम में लगी है। सर्वोच्च न्यायालय ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में उल्लिखित 'उद्योग' शब्द के सीमा क्षेत्र के बारे में हाल ही में विस्तृत निर्णय दिया है और बम्बई राज्य और अन्य बनाम अस्पताल मजदूर सभा के मामले में अपने निर्णय को पुनः स्थापित करते हुए उसने यह निश्चित करने के लिए कुछ मापदण्ड निर्धारित किए गए हैं कि क्या कोई कार्य उद्योग के स्वरूप का है या नहीं।

1977 के दौरान औद्योगिक विवाद (केन्द्रीय नियम), 1957 में

संशोधन किया गया, ताकि मृत कर्मचारी के वैध उत्तराधिकारी मृत कर्मचारी को देय राशियों की संगणना के प्रयोजन के लिए श्रम-न्यायालय में प्रार्थना पत्र दायर कर सकें।

श्रमिकों की सहभागिता सम्बन्धी समिति

सरकार प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता के सिद्धान्त के बारे में वचनबद्ध है और इस बात के लिए उत्सुक है कि श्रमिकों की सहभागिता की कोई ऐसी योजना प्रारम्भ की जाए जो प्रभावी तथा सार्थक हो। इस नीति के अनुरूप सरकार ने सितम्बर, 1977 में श्रम मन्त्री की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की ताकि वह वर्तमान सांविधिक तथा असांविधिक योजनाओं का अध्ययन करे और यह सिफारिश करे कि राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था, कुशल प्रबन्ध और श्रमिकों के हितों को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए श्रमिकों की सहभागिता की व्यापक योजना की रूपरेखा क्या हो। समिति को यह सिफारिश करने के लिए कहा गया है कि श्रमिकों की सहभागिता की योजना में उद्योग में न्यास और पूंजी (इक्विटी) में श्रमिकों की सहभागिता के सिद्धान्त को किस सीमा तक और किस ढंग से व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है। इस समिति की अब तक दो बैठकें हुई हैं और आशा है कि यह समिति यथाशीघ्र अपनी रिपोर्ट पेश कर देगी।

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक सम्बन्धी समिति

सरकार द्वारा 31 मई, 1977 को नियुक्त की गई उपभोक्ता मूल्य सूचकांक सम्बन्धी समिति ने 6 फरवरी, 1978 को अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत कर दी। सरकार इस रिपोर्ट पर विचार कर रही है।

कृषि तथा वन्चित श्रमिक

ग्रामीण असंगठित श्रमिकों के बारे में 25 जनवरी, 1978 को एक विशेष सम्मेलन आयोजित किया गया। अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ, इस सम्मेलन में कृषिक्षेत्र के नियोजकों और श्रमिकों तथा ऐसे स्वैच्छिक संगठनों, संस्थाओं तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया जो ग्रामीण श्रमिकों के साथ काम में लगे हैं। सम्मेलन ने ग्रामीण श्रमिकों के संगठनों के समुचित विकास, कृषि श्रमिकों के कल्याण तथा रोजगार की सुरक्षा के सम्बन्ध में व्यापक केन्द्रीय कानून की जरूरत, केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर स्थायी समितियाँ/कृषि श्रमिक सैलों की स्थापना से सम्बन्धित अनेक विषयों के बारे में सिफारिशें कीं। सरकार सम्मेलन की सिफारिशों पर विचार कर रही है। ग्रामीण श्रमिक संगठनों के विकास को बढ़ावा देने के लिए सरकार को कितनी चिन्ता है, इसका साक्ष्य देने के लिए भारत ने 18 अगस्त, 1977 को ग्रामीण श्रमिकों के संगठन से सम्बद्ध अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय सख्या 141 का अनुसमर्थन कर दिया। उक्त अभिसमय में अनुसमर्थनकर्त्ता देशों से यह अपेक्षा की गई है कि वे स्वैच्छिक आधार पर ग्रामीण श्रमिकों के मजबूत और स्वतन्त्र संगठनों की स्थापना तथा विकास के काम को आसान बनाएं।

दिसम्बर, 1977 के अन्त तक ग्यारह राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में पता लगाए गए 1,02,060 बन्धित श्रमिकों में से 1,00,962 श्रमिकों को मुक्त कराया गया। इनमें से 28,728 को फिर से बसा दिया गया। राज्य सरकारों को सलाह दी गई है कि वे पुनर्वास को ग्रामीण विकास योजनाओं का अभिन्न अंग बनाएँ।

श्रम स्थिति

औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में मुख्य क्षोभक कारणों को दूर कर देने के बाद भी सरकार को यह प्रतीत हुआ कि औद्योगिक अशान्ति पूर्णतः समाप्त नहीं हुई। कुछ क्षेत्रों में ऐसा लगा मानो यह अशान्ति सर्वथा स्थानीय स्वरूप धारण कर रही हो, परन्तु यह आम धारणा कि औद्योगिक अशान्ति देश भर में फैल गई है, तथ्यों के विपरीत थी। फिर भी हिंसा और अनुशासनहीनता की घटनाओं से केवल प्रबन्धकों को ही नहीं, बल्कि जिम्मेदार ट्रेड यूनियन नेताओं को भी गम्भीर चिन्ता हुई। सरकार ने इस प्रकार के कार्यों की भर्त्सना की और यह स्पष्ट कर दिया कि वह किसी भी ट्रेड यूनियन के साथ पक्षपातपूर्ण सलूक करने की नीति नहीं अपनाएगी और यह कि ट्रेड यूनियन नेताओं को श्रमिकों से समर्थन प्राप्त करना चाहिए और यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उन्हें सहारा देने के लिए सरकार से अथवा प्रबन्धकों की ओर से बाहरी सहायता मिलेगी। इस घोषणा की सिफारिश राज्य सरकारों को भी दी गई, ताकि ट्रेड यूनियनों को यह भी स्पष्ट हो जाए कि उनके प्रति सरकार का रवैया क्या है। श्रम मन्त्री ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि हड़ताल को अन्तिम हथियार मानना चाहिए और औद्योगिक सामञ्जस्य की भावना के साथ वार्ता और परामर्श या न्याय-निर्णय की अन्य प्रक्रियाओं द्वारा सभव हल खोजने के लिए अवश्य ही हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। सरकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह ऐसे किसी भी करार या समझौते को आबद्ध कर नहीं मानेगी जो जबरदस्ती और हिंसा या घेराव दूसरे पक्ष से करवाया गया हो। गत एक वर्ष के दौरान सरकार की यह पूरी कोशिश रही है कि नियोजक कर्मचारी सम्बन्धों को मजबूत आधार प्रदान करने के लिए केवल अल्पावधि उपाय ही नहीं, बल्कि दीर्घकालिक उपाय भी किए जाएँ।

पिछले सात वर्षों के दौरान आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि प्रति वर्ष औसतन 200 लाख श्रम-दिनों की हानि हुई, परन्तु 1971 में कर्मचारियों और नियोजकों द्वारा भारत-पाक युद्ध के कारण प्रदर्शित किए गए संयम के कारण केवल 165·5 लाख श्रम-दिन नष्ट हुए, 1974 में रेल कर्मचारियों की हड़ताल के कारण नष्ट हुए श्रम-दिनों की संख्या बढ़कर 402·6 लाख हो गई। 1976 में आपात-स्थिति के कारण केवल 128 लाख श्रम-दिनों की हानि हुई। उपलब्ध अन्तिम आँकड़ों के अनुसार 1977 के दौरान 212·1 श्रम-दिन नष्ट हुए। 1971 और उसके बाद की श्रम स्थिति की उल्लेखनीय बात यह है कि तालाबन्दियों के कारण नष्ट हुए श्रम-दिनों की प्रतिशतता ने वृद्धि का रुख दर्शाया। 1976 में तालाबन्दियों के कारण 78·83% श्रमदिनों की हानि हुई, जबकि 1977 में तालाबन्दियों के कारण केवल 52 83% श्रम-दिन नष्ट हुए। 1977 के दौरान हुई

कुल हानि की केवल 10% समय हानि केन्द्रीय क्षेत्र में हुई। 1977 के दौरान हुई समय हानि में से सरकारी क्षेत्र में 15% समय हानि हुई थी।

केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र

इस समय आठ औद्योगिक अधिकरण एव श्रम न्यायालय हैं जो केन्द्रीय क्षेत्रों के सम्बन्ध म कार्यवाही कर रहे हैं। इनम से 3 धनबाद में हैं, दो बम्बई म तथा एक-एक कलकत्ता, जबलपुर और दिल्ली में। हाल ही में नई दिल्ली में स्थापित किया गया केन्द्रीय औद्योगिक अधिकरण एव श्रम न्यायालय केन्द्रीय क्षेत्र के विवादो के सम्बन्ध म कार्य करता है, जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश, पजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर और राजस्थान राज्य तथा दिल्ली और चण्डीगढ सघ राज्य क्षेत्र शामिल हैं। जब कभी आवश्यक होता है, तब केन्द्रीय सरकार राज्य अधिकरणो की सेवाओ का भी उपयोग करती है। केन्द्रीय सरकार अधिकरण एव श्रम न्यायालयो तथा राज्य सरकारो और प्रशासनो द्वारा गठित कुछ श्रम न्यायालयो को औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन सुविधाओ का नकदी मूल्य निर्धारित करने के लिए श्रम न्यायालय विनिर्दिष्ट किया गया है।

1977 के दौरान औद्योगिक विवादो में समझौते की विफलता के सम्बन्ध में प्राप्त हुई 1,003 रिपोर्टों म से 306 को न्याय निर्णय के लिए भेजा गया। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10–क के अधीन 3 पचनिर्णय हुए। आलोच्य वर्ष के दौरान प्रकाशित हुए 544 पचाटो म से 125 श्रमिको के पक्ष में थे, 103 पचाट श्रमिको के विरुद्ध, 134 सहमति पचाट और 182 'कोई विवाद नहीं' सम्बन्धी पचाट थे। कुछ प्रमुख विवादो में सरकार ने स्वीकार्य हल खोजने के लिए केन्द्रीय श्रम मन्त्री के स्तर पर हस्तक्षेप किया तथा सफलता प्राप्त की। इस प्रकार के उदाहरणो में पत्तनो तथा गोदियो में मजदूरी दरो में सशोधन के बारे में विवाद हिन्दुस्तान शिपयार्ड में मजदूरी दरो में सशोधन के बारे म विवाद, कलकत्ता पोर्ट बार्ज उद्योग में विवाद, बदरपुर थर्मल पावर परियोजना में विवाद, हैवी इजीनियरिंग कॉरपोरेशन, राँची म विवाद और सीमेट उद्योग में मजदूरी दरो में सशोधन करने के बारे म विवाद शामिल हैं।

मजदूरी-दरें, भत्ते और बोनस

केन्द्रीय सरकार द्वारा श्रमजीवी पत्रकारो और गैर-पत्रकार समाचार-पत्र कर्मचारियो के सम्बन्ध में अन्तरिम मजदूरी-दरें पहली अप्रैल, को अधिसूचित की गई थी और राज्य सरकारो से यह कहा गया कि वे उन्हे लागू करावें। दो मजदूरी बोर्डों से कर्मचारियो द्वारा अपने प्रतिनिधि वापिस ले लेने स जो गतिरोध पैदा हो गया था, उसे समाप्त हुआ माना जाता है, क्योंकि श्रम मन्त्रालय इन पक्षो से विचार-विमर्श कर रहा है।

श्रमिको के कमजोर तथा असगठित वर्गों की विशेषकर ऐसे श्रमिको की जिनकी आय परम्परागत रूप स कम चली आ रही है, मजदूरी-दरो में सुधार करने के लिए लगातार प्रयास किए गए। आलोच्य वर्ष के दौरान न्यूनतम मजदूरी

अधिनियम, 1948 के अधीन क्वार्टज़ाइट, क्वार्टज़ और सिलिका खानों के सम्बन्ध में न्यूनतम मजदूरी-दरें निर्धारित की गईं। इनसे इन खानों के कम मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को लाभ होगा, जिनकी संख्या बहुत अधिक है। अधिनियम के अधीन उपलब्ध प्रसुविधाओं को ग्रेनाइट खानों के श्रमिकों को भी उपलब्ध कराने के विचार से, ग्रेनाइट खानों को भी अधिनियम की अनुसूची में शामिल कर लिया गया। इन खानों तथा अनेक अन्य खानों जैसे फैल्सपार, रेडीक्लाइड लेटराइट तथा डोलोमाइट खानों के सम्बन्ध में भी न्यूनतम मजदूरी-दरें निर्धारित करने सम्बन्धी प्रस्ताव अधिसूचित कर दिए गए हैं।

कृषि के क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी-दरों में और अधिक बार संशोधन करने तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के प्रवर्तन को सुधारने के लिए प्रयास किए गए। 1975 के आस-पास अधिकांश राज्य सरकारें कृषि श्रमिकों की मजदूरी दरों में संशोधन कर चुकी थीं। इसके अलावा प्रवर्तन तन्त्र की पुनरीक्षा करने तथा उसे मजबूत बनाने के प्रयास भी जारी रहे। बीड़ी उद्योग के सम्बन्ध में नवम्बर, 1977 में राज्य सरकारों को यह सलाह दी गई थी कि न्यूनतम मजदूरी-दरों में संशोधन करने का काम पहली मई, 1978 तक पूर्ण कर दिया जाना चाहिए।

मजदूरी सन्दाय अधिनियम में संशोधन किया गया है, ताकि केन्द्रीय सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों के लाभ के लिए बनाई गई बीमा योजना के लिए अंशदान की बाबत कटौतियाँ की जा सकें।

समान पारिश्रमिक अधिनियम अब 22 रोजगारों पर लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के उपबन्धों को आर्थिक कार्य-कलाप के अन्य क्षेत्रों में क्रमिक रूप से लागू करने का विचार है।

बोनस सन्दाय अधिनियम में संशोधन करके अन्य बातों के साथ-साथ 8.33% की दर से न्यूनतम बोनस देने की व्यवस्था की गई, चाहे प्रतिष्ठान के पास आवंटनीय अधिशेष हो या न हो। बैंकिंग कम्पनियों और भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम को अधिनियम की परिधि के अन्तर्गत लाया गया और कुछ स्थितियों के अध्यधीन अधिनियम में निर्धारित फार्मूले से भिन्न फार्मूले के आधार पर समझौते के अनुसार बोनस के भुगतान की व्यवस्था की गई। यह संशोधन 1976 के किसी भी दिन से शुरू होने वाला लेखा वर्ष के सम्बन्ध में लागू होगा। बोनस के बारे में भावी नीतियों का निर्णय, मजदूरी-दरों, आय और मूल्यों सम्बन्धी समेकित नीतियों के भाग के रूप में किया जाएगा।

समाज सुरक्षा

कर्मचारी राज्य बीमा योजना को काम करते हुए 24 फरवरी, 1977 को 25 वर्ष पूरे हो गए। आरम्भ में इस योजना के अन्तर्गत लगभग 1·20 लाख औद्योगिक श्रमिक शामिल थे। दिसम्बर, 1977 के अन्त तक इस योजना के अन्तर्गत लाए जा चुके श्रमिकों की संख्या लगभग 55.28 लाख थी। आलोच्य वर्ष के दौरान दस केन्द्रों के लगभग 2·42 लाख श्रमिकों को इस योजना के अन्तर्गत लाया गया। चिकित्सा लाभ पाने वाले लाभानुभोगियों की संख्या बढ़कर 232.89 लाख हो गई।

निगम के अब 12,408 पलगो वाले 62 पूर्णांग कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल, 450 पलगो वाले 24 कर्मचारी राज्य बीमा उपभवन और 177 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालय हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न राज्यो मे 3461 पलगो वाले 18 कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालो, 354 पलगो वाले 18 कर्मचारी राज्य बीमा उपभवनो और 28 कर्मचारी राज्य बीमा औषधालयो का निर्माण हो रहा है। बीमाशुदा व्यक्तियो तथा उनके परिवारो के इस्तेमाल के लिए उपलब्ध पलगो की कुल सख्या इस समय 17,774 है। कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने बीमाशुदा व्यक्तियो को देय बीमारी प्रसुविधाओ की अवधि को पहली मई, 1977 से एक वर्ष मे 56 दिन से बढ़कर 91 दिन कर दिया है। इस प्रकार कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत बीमारी प्रसुविधाओ का स्तर अब उस स्तर के बराबर हो गया है जो विकासशील देशो के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अभिसमय मे निर्धारित किया गया है। इसके अलावा, स्थायी रूप से अशक्त हो गए ऐसे बीमाशुदा व्यक्तियों का या ऐसे मृत बीमा शुदा व्यक्तियो के आश्रितो को, जो रोजगार मे लगी चोट के कारण 31 मार्च, 1975 को या उससे पहले अशक्त हो गए, मर गए, देय स्थायी अशक्तता प्रसुविधा और आश्रित-प्रसुविधा पेंशन पहली अक्तूबर, 1977 से बढ़ा दी गई। यह भी निर्णय किया गया है कि जिस दिन से कोई बीमाशुदा व्यक्ति चिकित्सा सुविधा का हकदार बनता है, उसी दिन से बीमाशुदा व्यक्तियो के परिवार के सदस्यो को भी चिकित्सा सुविधा का हकदार बना दिया जाए, न कि 13 सप्ताह इन्तजार करने के बाद। यह भी निर्णय किया गया है कि बड़े औद्योगिक क्षेत्रो मे चन्द एक स्वास्थ्य-लाभ गृहों का निर्माण किया जाए, ताकि कतिपय परिस्थितियों में बीमाशुदा व्यक्तियो के परिवारो को भी चिकित्सा सुविधाएँ दी जा सकें और चिकित्सा-लाभ के भाग के रूप मे कृत्रिम अगो, डायलिसिस/ट्रांसप्लाट आदि की व्यवस्था की जा सके।

कर्मचारी भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम सितम्बर, 1977 के अन्त तक 154 उद्योगो/प्रतिष्ठानो के वर्गों पर लागू किया जा चुका है। उसी तारीख तक अशदान देने वालो की सख्या 88·50 लाख थी। वेतन के 8% की दर से अशदान की परिवर्धित दर 50 या उससे अधिक व्यक्तियो को नियोजित करने वाले 94 उद्योगो/प्रतिष्ठानो के वर्गों पर लागू थी। श्रमिक के भविष्य निधि सचयनो मे जमा किए जाने वाले ब्याज की दर वर्ष 1977–78 के सम्बन्ध मे 8% प्रति वर्ष थी। जनवरी-सितम्बर, 1978 के दौरान लगभग 2·53 लाख दावो के निपटान के सम्बन्ध मे कार्यवाही की गई। इनमे से लगभग 2·33 लाख दावो का निपटान कर दिया गया। 92% दावो का निपटान तथा भुगतान 30 दिनो के अन्दर-अन्दर कर दिया गया। मृत्यु राहत निधि से अधिकतम लाभ की राशि को अप्रैल, 1977 से बढ़ाकर 1,000 रुपये कर दिया गया। कर्मचारी भविष्य निधि योजना मे सशोधन करके उसके उपबन्धो को सरेस तथा जिलेटिन के निर्माण, पत्थर-खदानो, मछली ससाधन बीडी निर्माण आदि मे लगे अनेक प्रतिष्ठानों पर भी लागू किया गया। निधि के सदस्यो को पहली अगस्त, 1976 से कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना की प्रसुविधाएँ मिलती रहीं।

31 दिसम्बर, 1977 तक की स्थिति के अनुसार कोयला खान भविष्य निधि परिवार पेंशन और जमा सम्बद्ध बीमा योजनाओं के अन्तर्गत लाई जा चुकी कोयला खानों और सहायक संगठनों की कुल संख्या 994 थी। 31 दिसम्बर, 1977 की स्थिति के अनुसार कोयला खान भविष्य निधि में अंशदान देने वाले सदस्यों की वास्तविक संख्या लगभग 6.70 लाख थी। जनवरी-दिसम्बर 1977 के दौरान 34516 व्यक्ति नए सदस्य बनाये गए। मृत्यु राहत निधि के अधीन लाभ की राशि बढ़ाकर 1,000 रुपये कर दी गई। 31 मार्च, 1977 को निधि की बकाया देय राशि वही थी, जो 31 मार्च, 1976 को थी, अर्थात् 21.55 करोड़ थी। इस देय राशि की वसूली के लिए अभियोजन तथा प्रमाणपत्र मामले न्यायालयों में अनिर्णीत पड़े थे।

कल्याण और रहन-सहन की दशाएँ

कोयला, अभ्रक, लोह अयस्क और चूना पत्थर तथा डोलोमाइट खानों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित की गई कल्याण निधियां अन्य बातों के साथ-साथ इन खानों में नियोजित श्रमिकों को चिकित्सा, मनोरंजन, शिक्षा, जलपूर्ति और आवास सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करती रही।

कोयला खान श्रम कल्याण संस्था के अधीन विभिन्न कोयला क्षेत्रों में 3 केन्द्रीय और 12 क्षेत्रीय अस्पताल हैं। चान्दा कोयला क्षेत्रों में 30 पलंगों वाले एक क्षेत्रीय अस्पताल के निर्माण की व्यवस्था की जा रही है। तालचर में सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड के अस्पताल में विशिष्ट इलाज के लिए एक वार्ड का निर्माण भी किया जा रहा है। यह संस्था झरिया कोयला-क्षेत्रों में भुग्गा स्थान पर एक स्थिर ऐलोपैथिक औषधालय, असम कोयला-क्षेत्रों में शिलांग नामक स्थान पर एक चलते-फिरते चिकित्सा एकक, पाथरडीह में एक आयुर्वेदिक फार्मेसी तथा विभिन्न कोयला-क्षेत्रों में 29 आयुर्वेदिक औषधालयों की व्यवस्था करती रही। कोयला-क्षेत्रों में जल-पूर्ति की पुरानी समस्या को कम करने के लिए कोयला खान प्रबन्धकों/राज्य सरकारों आदि से यह अनुनय किया गया कि वे संस्था से लागत के 50% तक वित्तीय सहायता प्राप्त करके जलपूर्ति की योजनाओं को लागू करने का काम शुरू करें। खास जोयरामपुर और कोडागुडम कोयला खानों के सम्बन्ध में 3.38 लाख रुपये के अनुदान की किस्तें मन्जूर की गईं और सिंगरेनी कोयला खानों के प्रबन्धकों को 2.71 लाख रुपये की आर्थिक सहायता दी गई। बालीस कोयला खानों के सम्बन्ध में जलपूर्ति की समेकित योजनाओं सहित जलपूर्ति की योजनाएँ विचार की विभिन्न अवस्थाओं में थीं। कम लागत आवास योजना के अन्तर्गत 20,773 मकान और नई आवास योजना के अन्तर्गत 50,478 मकान बन कर तैयार हो गए। इन दो योजनाओं के अधीन 14,789 मकान निर्माणाधीन थे।

अभ्रक खान श्रम कल्याण संस्था के अधीन विभिन्न राज्यों में 3 केन्द्रीय अस्पताल, 2 क्षेत्रीय अस्पताल, एक क्षेत्रीय तपेदिक अस्पताल, 2 तपेदिक अस्पताल/वार्ड और 3 अन्तरंग वार्ड हैं, जो अभ्रक खनिकों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके अलावा, 18 आयुर्वेदिक औषधालय, 8 ऐलोपैथिक औषधालय,

4 चलते-फिरते एकक, एक स्थिर एवं चलता-फिरता औषधालय, और 12 प्रसूति तथा शिशु कल्याण/लघु समुदाय केन्द्र हैं। बिहार क्षेत्र में श्रमिकों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए 7.40 लाख रुपये की लागत से 74 कुएँ खोदे गए हैं। अन्य क्षेत्रों में जलपूर्ति योजनाएँ भी मन्जूर की गई हैं। 'अपना मकान बनाओ योजना' के अन्तर्गत आँध्र प्रदेश में 290 आवेदकों को वित्तीय सहायता मन्जूर की गई है। राजस्थान से प्राप्त हुए 35 प्रार्थना-पत्र विचाराधीन हैं। अब तक अभ्रक श्रमिकों सम्बन्धी विभिन्न आवास योजनाओं के अन्तर्गत 421 मकान बनाए गए हैं।

लोह अयस्क खान श्रम कल्याण संस्था द्वारा दी जाने वाली चिकित्सा सुविधाओं में करिमापुर में 25 पलंगों वाला एक केन्द्रीय अस्पताल, जिसे 50 पलंगों वाला अस्पताल बनाने का विचार है, गोवा में 30 पलंगों वाला केन्द्रीय अस्पताल, जिसे 100 पलंगों वाला अस्पताल बनाने का विचार है, बाड़ाजामूँदा में एक आपात् अस्पताल और एक चलता-फिरता औषधालय, उड़ीसा में 2 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और एक चलता-फिरता औषधालय, महाराष्ट्र में एक, मध्यप्रदेश में 3 चलते-फिरते चिकित्सा एकक, कर्नाटक में 2 चलते-फिरते एकक और गोवा में एक चलता-फिरता एकक शामिल है। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत 31 दिसम्बर, 1977 तक 11,882 मकान बनाने की मंजूरी दी गई। इनमें से 7,910 मकान बनकर तैयार हो गए हैं और 757 मकान निर्माण की भिन्न अवस्थाओं में हैं। अनेक जलपूर्ति योजनाएँ भी बनकर तैयार हो गई हैं।

चूना पत्थर तथा डोलामाइट खान श्रमिक कल्याण संस्था के अधीन राजस्थान में जानुआ-रामगढ़ और गोतान में दो, गुजरात राज्य में छोटा उदयपुर में एक और मध्य प्रदेश में जामुल में एक आयुर्वेदिक औषधालय है और गुजरात में डूंगरपुर स्थान पर एक ऐलोपैथिक औषधालय है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में एक स्थिर-एवं चलता-फिरता औषधालय तथा चलते-फिरते चिकित्सा एकक भी खोले गए हैं। सतना सीमेंट वर्क्स, जबलपुर क्षेत्र के प्रबन्धकों की एक जलपूर्ति योजना बन कर तैयार हो गई है और इसे चलाने के लिए 93,000 रुपये की राशि दी गई है। भुवनेश्वर क्षेत्र में 1.43 लाख रुपये की लागत से एक जलपूर्ति योजना का निर्माण-कार्य चल रहा है। कम लागत आवास योजना के अधीन 1,655 मकान मंजूर किए गए हैं जिनमें से 612 मकान बन कर तैयार हो गए हैं।

बीड़ी श्रमिक कल्याण निधि के अन्तर्गत बीड़ी श्रमिकों के कल्याण के लिए वैसी ही आदेश (प्रोटोटाइप) योजनाएँ बनाने का विचार है जैसी कि अन्य कल्याण संस्थाओं ने बना रखी है। आरम्भ में मैसूर में 10 पलंगों वाला अस्पताल (भोजन की व्यवस्था के बगैर), उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के लिए 2 चलते-फिरते चिकित्सा एकक और मंगलौर में एक चलता-फिरता चिकित्सा एकक मंजूर किया गया है।

सुरक्षा और कामकाज की दशाएँ

वर्ष 1977 के अन्तिम आँकड़ों के अनुसार कोयला तथा गैर-कोयला दोनों प्रकार की खानों में 314 व्यक्ति मरे, जबकि 1976 और 1975 में मरने

वालों की संख्या क्रमश 389 और 734 थी। 1977 के दौरान ऐसे व्यक्तियो, जिन्हे गम्भीर चोटे आई हो, की सख्या 2913 थी, जबकि 1976 और 1975 के वर्षों मे ऐसे व्यक्तियो की सख्या क्रमश 2671 और 2879 थी। 1977 के दौरान खानो मे प्रति एक हजार व्यक्ति मृत्यु दर 0 41 थी। 1976 मे यह दर 0 51 और 1975 मे 0 95 थी। गम्भीर चोटो की दर 1977 मे 3 82 रही, जबकि 1976 और 1975 मे यह दर क्रमश 3 50 और 3 75 थी। अक्तूबर, 1977 के अन्त तक कोयला खानो मे 3·45 लाख श्रमिको को और गैर-कोयला खानो मे 0 84 लाख श्रमिको को बूट दिए गए। 3 19 लाख कोयला-खनिकों और 1 14 लाख गैर-कोयला खनिको को हैल्मट दिए गए।

मुख्य कारखाना निरीक्षको का 26वाँ सम्मेलन दिसम्बर, 1977 मे ऐर्णाकुलम् में आयोजित किया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् के सदस्यो ने 4 मार्च, 1977 को देश भर मे छठा राष्ट्रीय सुरक्षा दिवस मनाया। प्रत्युत्तर बड़ा उत्साहजनक था। श्रमिको को प्रेरणा देने और उनमें सुरक्षा चेतना जाग्रत करने के विचार से परिषद् ने सुरक्षा निबन्धो, नारो और पोस्टरो के बारे मे राष्ट्रीय प्रतियोगिता का भी आयोजन किया।

पत्तनो और गोदियो मे दुर्घटनाओ से सम्बन्धित उपलब्ध आंकडो के अनुसार, 1977 मे 17 घातक दुर्घटनाएँ हुई जबकि इसकी तुलना मे 1976 मे 19 और 1975 मे 30 दुर्घटनाएं हुई थी। 1977 के दौरान हुई घातक दुर्घटनाओ की सख्या 2166 थी जबकि 1976 और 1975 के वर्षों मे क्रमश 2070 और 1794 अघातक दुर्घटनाएँ हुई थी। गोदी सुरक्षा निरीक्षणालय ने विभिन्न पत्तनो मे सुरक्षा और गोदी कार्य के बारे मे 95 प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन किया गया। इसमे 65 प्रशिक्षण कार्यक्रम क्षेत्रीय भाषाओ मे थे।

केन्द्रीय सलाहकार ठेका श्रम बोर्ड द्वारा लिए गए निर्णयों के अनुसरण मे केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय क्षेत्र के अनेक सैक्टरो मे ठेका श्रम प्रणाली का उन्मूलन करने के लिए कदम उठाए है। एक मोटे अनुमान के अनुसार केन्द्रीय क्षेत्र के उद्योगो मे लगभग 10 लाख व्यक्ति ठेका श्रमिको के रूप मे नियोजित हैं, जिन्हे मुक्त कराया जाएगा। श्रम मन्त्रालय इन सभी लोगो को अगले 2-3 वर्ष के दौरान मुक्त कराने का प्रयास करेगा ताकि वे ठेकेदारो के रहमोकरम पर न रहे। रेलवे के प्रतिष्ठानो, छावनी बोर्डो, मुख्य पत्तनो, खानो या तेल-क्षेत्रो और बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियो जैसे प्रतिष्ठानो (जिनके सम्बन्ध मे समुचित सरकार केन्द्रीय सरकार है) की मिलकियत वाले या इनके द्वारा अधिवासित भवनो मे झाड़ू लगाने, सफाई करने, धूल झाड़ने और चौकसी करने के काम मे ठेका श्रम प्रणाली अतिषिद्ध कर दी गई है।

एक समिति ने दास्न श्रमिको की दशाओ का अध्ययन किया और जनवरी, 1978 मे सरकार को अपनी रिपोर्ट पेश की है।

शिक्षा एवं प्रशिक्षण

श्रमिक शिक्षा योजना के अन्तर्गत देश भर मे फैले उसके 40 क्षेत्रीय केन्द्रो के माध्यम से श्रमिको को प्रशिक्षण दिया जाना जारी रहा। इस योजना के

प्रारम्भ से दिसम्बर 1977 तक 44,938 श्रमिक शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया गया जिन्होंने आगे चलकर यूनिट एकक के 22 लाख श्रमिकों को प्रशिक्षित किया। इनमें 1977 के दौरान प्रशिक्षित किए गए 3845 श्रमिक शिक्षक और लगभग 1 74 लाख श्रमिक शामिल थे। 1977 के अन्त तक 627 यूनियन/सगठन कार्यक्रमों को आयोजित करने के लिए सहायता अनुदान के रूप में 21 49 लाख रुपये प्राप्त कर चुके थे। इन कार्यक्रमों में 1 87 लाख श्रमिकों ने भाग लिया। वर्ष 1977 के दौरान 4 28 लाख रुपये का अनुदान दिया गया और इन कार्यक्रमों में 25,133 श्रमिकों ने भाग लिया। केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड ने ग्रामीण श्रमिकों के लिए परियोजनाएँ प्रारम्भ की हैं ताकि उन्हें अपने सामाजिक एव आर्थिक वातावरण की समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके तथा इस बात का ज्ञान प्राप्त कर सकें कि ग्राम समुदाय के सदस्यों तथा नागरिकों के रूप में उन्हें क्या अधिकार प्राप्त हैं तथा उनकी क्या जिम्मेदारियाँ हैं। 1977 के दौरान श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम में 7054 श्रमिकों को शामिल किया गया। जहाँ तक श्रमिकों का सम्बन्ध है, विचार यह है कि राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम के साथ केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड को और सक्रिय रूप से सम्बद्ध किया जाए।

1977 के दौरान कारखाना सलाह सेवा श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय के सुरक्षा केन्द्रों के अधिकारियों ने आधे दिन से छः दिन तक की अवधि वाले 910 प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए और प्रबन्ध-कार्मिकों और श्रमिकों दोनों के लाभ के लिए औद्योगिक सुरक्षा के अनेक विषयों के बारे में विचार गोष्ठियों का आयोजन किया। इसके अतिरिक्त सुरक्षा केन्द्रों ने 50 सुरक्षा परियोजनाओं तथा अध्ययनों का सचालन भी किया।

1977 के अन्त तक राष्ट्रीय श्रम सस्थान ने कार्मिकों, औद्योगिक सम्बन्ध अधिकारियों, ट्रेड यूनियन नेताओं आदि के लिए 9 विचार कार्यक्रम आयोजित किए गए। इस सस्थान ने आन्ध्र प्रदेश, बिहार और पश्चिम बगाल में अनेक ग्रामीण श्रमिक शिविरों का आयोजन किया। सेमिनार और परिचर्याएँ आयोजित की तथा अनेक अनुसधान परियोजनाओं का सचालन भी किया। बाहर के चार देशों के माहिर/विशेषज्ञ अपने कार्यों तथा परियोजनाओं को पूरा करने के लिए भिन्न भिन्न अवधियों के लिए इस सस्थान में आए। चार विदेशी नागरिक 'इण्टर्नशिप' पर इस सस्थान में शामिल हुए और इस सस्थान के 5 व्यक्तियों, सेमिनारों, अध्ययन-दौरों और सम्मेलनों के सम्बन्ध में अनेक देशों में गए।

अनुसन्धान तथा आँकडे

श्रम-ब्यूरो, शिमला सर्वेक्षण जाँचें और अनुसन्धान अध्ययन करने के अतिरिक्त, रोजगार, मजदूरी दरों, आय, औद्योगिक विवादों, कामकाज की दशाओं और औद्योगिक तथा कृषि श्रमिकों सम्बन्धी उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के बारे में आँकडे एव अन्य सूचना एकत्र तथा प्रकाशित करता है।

दिसम्बर, 1977 के अन्त तक विभिन्न सरकारी क्षेत्रों के उपक्रमों में श्रमिक दशाओं के अध्ययन कार्यक्रम के अन्तर्गत 45 उद्योगों में अध्ययन किया गया।

43 उद्योगों के बारे में रिपोर्टों को अन्तिम रूप दे दिया गया तथा वे बाँट दी गईं। संशोधित कार्यपद्धति के अनुसार 15 केन्द्रों के सम्बन्ध में संकलित किए तुलनात्मक महँगाई सूचकांक की वित्त मन्त्रालय द्वारा जाँच की जा रही है।

दूसरे व्यावसायिक मजदूरी सर्वेक्षण वाल्यूम-2 का भाग-1 मई, 1977 के दौरान तथा भाग-2 दिसम्बर, 1977 के दौरान प्रकाशित किया गया। इस वाल्यूम के अन्तिम भाग के शीघ्र ही प्रकाशित होने की आशा है। श्रम ब्यूरो ने श्रम सांख्यिकी सुधार योजना के अन्तर्गत 5 से 22 सितम्बर, 1977 तक श्रम सांख्यिकी के सम्बन्ध में 13वें केन्द्रीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का आयोजन किया। इस पाठ्यक्रम में अनेक राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों तथा केन्द्रीय विभागों के 22 अधिकारियों ने भाग लिया।

श्रम ब्यूरो इण्डियन लेबर जर्नल में नियमित रूप से औद्योगिक श्रमिकों के सम्बन्ध में अखिल भारतीय औसत उपभोक्ता मूल्य सूचकांक प्रकाशित करता रहा, जो 1960=100 के आधार पर 50 केन्द्रों के सूचकांकों की वेटिड औसत है। इस रिपोर्ट के परिशिष्ट-1 में एक विवरण दिया गया है, जिसमें 1960=100 के आधार पर अखिल भारतीय श्रमजीवी वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (खाद्य तथा सामान्य) और 1961-62=100 के आधार पर अखिल भारतीय थोक मूल्य सूचकांक (खाद्य तथा सामान्य) के बारे में आँकड़े दिए गए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की बैठकें तथा अन्य महत्त्वपूर्ण विषय

अभिसमय समिति का 12वाँ अधिवेशन 7 अक्तूबर, 1977 को हुआ जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कुछ अभिसमयों की पुनरीक्षा की गई ताकि उनका अनुसमर्थन किया जा सके तथा उन्हें लागू किया जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का 63वाँ अधिवेशन पहली जून, 1977 से 22 जून, 1977 तक जेनेवा में हुआ। कुछ समय तक भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने किया। जेनेवा से उनके जाने के बाद इस प्रतिनिधि-मण्डल का नेतृत्व गुजरात के श्रम मन्त्री ने सम्भाला। इस सम्मेलन में 1978-79 के दो वर्षों का बजट तथा उपचर्या कार्मिकों के काम के वातावरण तथा रोजगार और काम तथा जीवन की दशाओं से सम्बन्धित एक अभिसमय तथा एक सिफारिश पारित की गई। इस सम्मेलन में कुछ निष्कर्ष भी पारित किए गए जो श्रम-प्रशासन तथा संघ बनाने की स्वतन्त्रता और सरकारी सेवाओं में रोजगार की शर्तों को तय करने सम्बन्धी प्रक्रिया के बारे में थे।

वर्ष 1977 के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के शासी निकाय की तीन बैठकें हुईं। भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने इन सभी बैठकों में भाग लिया। इस शासी निकाय के 204वें अधिवेशन में इस बात को नोट किया गया कि संयुक्त राज्य सरकार 5 नवम्बर, 1977 से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से हट गई है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को मिलने वाला अंशदान 25% कम हो गया। आय की इस क्षति की पूर्ति के लिए शासी निकाय ने 1978-79 के दो वर्षों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के बजट तथा कार्यक्रम में 366 लाख डॉलरों की कटौती करना स्वीकार किया।

एशियायी सलाहकार समिति का 17वाँ अधिवेशन 29 नवम्बर, 1977 से 8 दिसम्बर, 1977 तक मनीला में हुआ। समिति द्वारा विचारे गए विषयों में एशिया में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों की पुनरीक्षा तथा मूल्यांकन और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-मानकों का अनुसमर्थन तथा उनका कार्यान्वयन शामिल था। भारत सरकार का प्रतिनिधित्व इस मन्त्रालय के अपर सचिव ने किया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के शासी निकाय ने बहुराष्ट्रीय उद्यमों और सामाजिक नीति से सम्बन्धित सिद्धान्तों का एक विशेष घोषणापत्र स्वीकार किया जिसे श्रम मन्त्रालय के अपर सचिव की अध्यक्षता में हुई अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक त्रिपक्षीय सलाहकार बैठक में अन्तिम रूप दे दिया गया था।

1977 के दौरान हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की अन्य बैठकों में भवन, सिविल इंजीनियरी और लोक निर्माण सम्बन्धी समिति का 9वाँ अधिवेशन, धातु व्यापार समिति का 9वाँ सत्र, व्यवसायी श्रमिकों के रोजगार और कामकाज की दशाओं सम्बन्धी त्रिपक्षीय बैठक सिविल विमानन सम्बन्धी त्रिपक्षीय तकनीकी बैठक, डाक व दूर-संचार सेवाओं में रोजगार तथा काम-काज की दशाओं सम्बन्धी संयुक्त बैठक शामिल हैं। इन बैठकों में भारत के प्रतिनिधित्व भी शामिल हुए थे।

1977 के दौरान अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों सम्बन्धी सैल ने चार शिकायतें प्राप्त की और उनका तुरन्त निराकरण कराया।

प्लान कार्यक्रम

श्रम मन्त्रालय की वार्षिक योजना 1978-79 के लिए 499 05 लाख रुपये के परिव्यय की स्वीकृति दी गई है। विभिन्न मुख्य ग्रुपों के सम्बन्ध में इस परिव्यय का ब्यौरा इस प्रकार है—

रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के कार्यक्रम

	(रुपये लाखों में)
1 प्रशिक्षण योजनाएँ	225 25
2 रोजगार सेवा	11 65
उप जोड़	236 90

मुख्य मन्त्रालय के कार्यक्रम

1 औद्योगिक सुरक्षा स्वास्थ्य विज्ञान और व्यावसायिक स्वास्थ्य	17 65
2 खान सुरक्षा (एस एण्ड टी कार्यक्रम तथा बचाव सेवाओं के कार्यक्रम सहित)	60 00
3 श्रमिक शिक्षा	11 00
4 श्रम अनुसन्धान सांख्यिकी	47·50
5 राष्ट्रीय श्रम संस्थान	21 00
6 कृषि श्रमिक सेल (बन्धित श्रमिक पुनर्वास सहित)	102 00
7 मजदूरी सैल	3 00
उप जोड़	262 15
कुल योग	499 05

प्रश्न-कोश

(QUESTION BANK)

Chapter 1 to 3

1. "श्रम बाजार की आधारभूत विशेषता यह है कि श्रम संघों के अभाव में, इसमें दो असमान पक्षों के बीच सौदा होता है।" विवेचन कीजिए। (1971)

   "The basic character of the labour market is that, in the absence of trade unions, it is a bargain between two unequal parties." Discuss.

2. श्रम-बाजार किसे कहते हैं ? एक पीछे की ओर मुड़ता हुआ श्रम-पूर्ति वक्र बनाइए तथा स्पष्ट कीजिए कि यह ऐसा क्यों होता है। (1977)

   What is a labour market ? Draw a backward bending labour supply curve, and explain why it is so

3. एक पूर्ण-विकसित श्रम-बाजार के क्या तत्त्व हैं ? एक विकसित देश में श्रम-बाजार की क्रिया किस प्रकार होती है ? श्रम-बाजार और वस्तु-बाजार की अपूर्णताओं की तुलना कीजिए। (1973)

   What are the constituents of a well-developed labour market ? How does it function in an industrially advanced economy ? Compare the imperfections of the labour market with those of the product market.

4. भारत की परिस्थितियों के सन्दर्भ में श्रम बाजार के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए। भारत में इस बाजार के विकास एवं सुधार हेतु सुझाव दीजिए। (1976)

   Discuss the main features of the labour market with reference to Indian conditions. Give suggestions for developing and improving this market in India.

5. श्रम बाजार की विशेषताओं को उल्लेखित कीजिए।

   "भारतीय श्रम बाजार एवं विकसित देशों के श्रम बाजारों में भिन्नता सारपूर्ण न होकर केवल मात्रा में ही है।"

   उक्त वाक्यांश का परीक्षण कीजिए। (1975)

   State the characteristics of labour market

   "Differences between the Indian labour market and labour markets in developed countries are not of essence but only of degree."

   Examine the above statement

6. क्या श्रमिक संघ श्रम-पूर्ति को नियमित करते हैं ? यदि करते हैं तो कैसे ? इस सम्बन्ध में भारतीय अनुभव की अंग्रेजी और अमेरिकी अनुभव से तुलना कीजिए। (1973)

   Do trade unions regulate the supply of labour? If so, how? In this context compare Indian experience with experience in the United States and the U K

7. श्रम-दरों में परिवर्तन के अनुसार श्रम-माँग और श्रम-पूर्ति होने में कौन-कौन सी बातें रुकावट डालती हैं ? (1974)

   What are the factors that prevent demand and supply of labour from varying in accordance with the changes in wage rates.

8 मजदूरी-निर्धारण के सबसे मान्य सिद्धान्त की परीक्षा कीजिए। इस सिद्धान्त की श्रेष्ठता स्थापित करने के उद्देश्य से इसकी तुलना मजदूरी के दूसरे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों से कीजिए। (1971)

Examine the most acceptable theory of wage determination With a view to establishing its superiority, compare it with the other important wage theories

9 क्या भारत में व्यवस्थित और अव्यवस्थित क्षेत्रों में वेतन निर्धारण का एक ही सिद्धान्त लागू हो सकता है ? सैद्धान्तिक दृष्टि से तर्क दीजिए। (1973)

Can a single theory of wage determination explain wage behaviour in the organised and the unorganised sectors in India ? Develop your argument with a theoretical framework

10 मजदूरी से क्या आशय है ? द्राव्यिक मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी में अन्तर कीजिए। वास्तविक मजदूरी में परिवर्तन को मालूम करने हेतु आप किन-किन तत्त्वों को विचार में लेंगे ?

What is meant by 'wages' ? Distinguish between nominal and real wages What factors would you take into account estimating changes in the real wages of a labourer ?

"मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण की अपर्याप्त व्याख्या करता है क्योंकि न तो सीमान्त भौतिक उत्पादकता और न सीमान्त मूल्य उत्पादकता मजदूरी के निर्धारण का आधार हो सकती है।" विवेचना कीजिए।

"The Marginal Productivity Theory of Wages offers an unsatisfactory explanation for the determination of wages as neither marginal physical productivity nor marginal value productivity can serve as the basis for determining wages" Discuss

मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। श्रम की सीमान्त मूल्य-उत्पत्ति तथा सीमान्त आय उत्पत्ति में भेद कीजिए। (1977)

Critically examine the marginal productivity theory of wages Distinguish between the marginal value product (MVP) and marginal revenue product (MRP) of labour

13 "आधुनिक मजदूरी सिद्धान्त को यदि मजदूरी नीति निर्धारण हेतु विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक होना है तो उसे आवश्यक रूप से सामाजिक एवं संस्थागत तत्त्वों के प्रभावों को शामिल करना चाहिए।"

इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1976)

'A modern wage theory, if it is to be a reliable guide to wage policy must include the influences of the social and institutional factors '
Discuss the statement

14 मजदूरी के जीवन स्तर सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवरण दीजिए। यह सिद्धान्त मजदूरी के जीवन-रक्षा सिद्धान्त से किस प्रकार श्रेष्ठ है ?

Critically examine the Standard of Living Theory of Wages In what way this Theory is better than the Subsistence Theory of Wages

15 श्रम-संघ मजदूरी की दर को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

How do the trade unions influence wages ?

16 *राष्ट्रीय आय में श्रम का भाग प्रभावित करने वाले तत्त्वों का विवेचन कीजिए।* *(1976)*

Comment on the factors which influence labour's share in National Income.

17 राष्ट्रीय आय वितरण में श्रम के हिस्से की विवेचना कीजिए। क्या मजदूरी-आय अनुपात में स्थिर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है ? (1976)

Discuss the share of labour in national income distribution Does the wage-income ratio tend to be constant ?

18 समय-मजदूरी तथा कार्य-मजदूरी के बीच अन्तर बताइए। इनके गुण-दोषों की भी विवेचना कीजिए।

Distinguish between Time and Piece Wages Also discuss their merits and demerits.

19 भारत में न्यूनतम मजदूरी विधान के प्रावधानों की विवेचना कीजिए। क्या यह उचित प्रकार से लागू किया गया है ? (1977)

Discuss the provisions of the Minimum Wage Law in India Has it been satisfactorily implemented ?

20 श्रमिकों को पारिश्रमिक देने की विभिन्न रीतियों का विवेचन कीजिए। समयानुसार मजदूरी की तुलना में कार्यानुसार मजदूरी की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Discuss the various systems of remunerating labour Critically examine the *chief merits of piece rate overtime rate system*

21 आप इस बात को किस प्रकार समझाएँगे कि विभिन्न व्यवसायों में श्रमिक बहुत अधिक भिन्न मजदूरी-दरें प्राप्त करते हैं ?

How do you explain the fact that labour in different occupations earns strikingly different rates of wages

22 महिलाओं की मजदूरी प्रायः पुरुषों की मजदूरी से कम क्यों होती है ?

Why are generally female workers paid lower wages than male workers ?

23 "मजदूरी में अन्तर होना न्यायसंगत है और इसका कार्य महत्वपूर्ण है।" विवेचन कीजिए। (1974)

"Wage differentials have a sound justification and perform an important function" Discuss

24 मजदूरियों में अन्तर के कारण बताइए। किसी समाज में मजदूरी में अन्तर बने रहने की प्रवृत्ति क्यों पाई जाती है ?

What are the causes of differences in wages ? Why do wage differentials tend to persist in any society ?

25 यह कहना आवश्यक नहीं कि औद्योगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता पर जीवन-स्तर का बड़ा प्रभाव होता है।

इस कथन की व्याख्या कीजिए। भारत में श्रमिकों के नीचे जीवन-स्तर के कारणों को बताइए तथा इसे सुधारने के उपाय बताइए। (1976)

"It goes without saying that the standard of living has got a great influence on the efficiency of the industrial workers"

Discuss this statement Point out the causes of low standard of living of workers in India and suggest measures to raise it.

26 न्यूनतम वेतन के विचार को समझाइए। न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के लिए क्या मानक (norms) होने चाहिए। भारत में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का विवेचन कीजिए। (1976)

Explain the concept of Minimum Wages What should be the norms of fixing Minimum Wages Discuss the salient features of the Minimum Wages Act in India

27 "भुगतान के दोनों तरीकों का अर्थात् समयानुसार मजदूरी तथा कार्यानुसार मजदूरी की उत्पत्ति, उत्पादन साधनों तथा श्रमिकों की आय पर स्पष्ट रूप से भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है।"

इस कथन के आधार पर वेतन भुगतान के दोनों तरीकों के अपने-अपने गुण-दोषों का वर्णन कीजिए।

Both methods of payment i e, time-wages and piece wages differ markedly in their effects on output costs of production and workers' earnings" In the light of this statement discuss the respective merits and demerits of both methods of payment of wages

28 अर्द्ध विकसित देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न उद्योगों के बीच श्रम की मांग एवं पूर्ति में असन्तुलन हेतु कौन से कारक जिम्मेदार हैं—समझाइए। (1976)

Explain the factors which are responsible for the disequilibrium in the demand for labour and supply of labour between different regions and different industries of an underdeveloped country

29 'श्रमिकों के शोषण' के आशय को स्पष्ट कीजिए तथा उन परिस्थितियों को बतलाइए जब श्रम शोषण किया जा सकता है। किसी देश की अर्थव्यवस्था से इस शोषण के उन्मूलन हेतु सुझाव दीजिए। (1976)

Define the concept of exploitation of labour and explain the conditions under which it may occur Suggest remedies to eradicate this exploitation from the economy of a country

30 भारत में प्रचलित मजदूरी भुगतान की पद्धतियों का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए। (1976)

Critically discuss the prevalent systems of wage payment in India

31 मजदूरी प्रोत्साहन योजना लागू करते समय किन सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए? क्या प्रोत्साहन अदायगी हमेशा लाभ में वृद्धि करता है? व्याख्या कीजिए। (1973)

What principles should govern the introduction of an incentive payment plan? Do incentive always lead to higher profit? Explain

32 लाभ भागीदारी के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। कहाँ तक ये सिद्धान्त भारत के बोनस कानून में प्रदर्शित हैं? व्याख्या कीजिए। (1973)

Explain the principles of profit sharing How far are these reflected in the Payment of Bonus Act? Discuss

33 'लाभांश भुगतान (बोनस भुगतान) पद्धतियाँ श्रमिकों एवं सेवायोजकों दोनों को ही प्रोत्साहन प्रदान करती हैं।"—कथन को समझाइए। (1976)

विकासशील अर्थव्यवस्था में लाभांश भुगतान की उपयोगिता का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

Explain that the bonus payment systems provide incentive to workers as well as to employers

Critically discuss the utility of bonus payment in the case of developing economy

34 'मजदूरी श्रम की उत्पादकता से सम्बन्धित होनी चाहिए। एक विकासशील देश के आर्थिक विकास में ऊँची मजदूरी बाधक हो सकती है।" व्याख्या कीजिए। (1973)

Wages should be related to productivity Economic development of a developing country is likely to be retarded by high wages ' Comment

35 मजदूरी एवं उत्पादकता के आपसी सम्बन्ध की विवेचना कीजिए। श्रम की उत्पादकता का माप आप कैसे करेंगे? (1976)

Discuss the relationship between wages and productivity? How would you measure productivity of labour?

36 श्रम उत्पादकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख आर्थिक एवं संस्थागत कारकों को बतलाइए। भारत में वर्तमान आपातकालीन स्थिति का प्रभाव औद्योगिक उत्पादकता पर कैसा पड़ा है लिखिए। (1976)

State the main economic and institutional factors which affect labour productivity Discuss the impact of the present emergency on the industrial productivity in India

37 "उत्पादकता की उपेक्षा करते हुए यदि मजदूरी में वृद्धि की जाती है, तो ऐसा कार्य न केवल अवैज्ञानिक वरन् सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी गलत होगा।"
उपरोक्त कथन की विवेचना कीजिए। (1975)
"It will be not only unscientific but also wrong in principle, if increase in wages are granted without any reference to productivity".
Discuss the statement.

38 लाभ-विभाजन के गुणों की विवेचना कीजिए। नियोक्ता तथा कर्मचारियों के बीच सम्बन्धों को प्रभावित करने में उसका महत्व बताइए।
Discuss the merits of profit-sharing. Indicate its importance in regulating relations between employers and employees.

Chapter 4 to 7

39 अपने अध्ययन किए हुए देशों से उदाहरण देते हुए राज्य द्वारा मजदूरी नियमन के भिन्न प्रकारों का परीक्षण कीजिए। मजदूरी दर निर्धारित करने में कौनसी सामान्य बातें ध्यान में रखी जाती हैं? (1974)
Examine the various forms of state regulation of wages with examples from the countries you have studied. What are the general considerations in fixing wage rates?

40 विकसित अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण रोजगारी प्राप्त करने की एक मजदूरी नीति की सिफारिश कीजिए। (1974)
Recommend a wage policy for full employment in advanced economies

41 कानूनी न्यूनतम मजदूरी निर्धारण किन सिद्धान्तों के आधार पर होना चाहिए। कहाँ तक भारत में इसका अनुसरण होता है? (1973)
Describe the principles that should normally govern the fixation of statutory minimum wages. Discuss how far are these observed in India.

42 एक विकासशील देश में मजदूरी नीति के क्या उद्देश्य होने चाहिए? उन्हें प्राप्त करने में सामने आने वाली कठिनाइयों का उल्लेख कीजिए। भारतीय अनुभव से उदाहरण दीजिए। (1977)
What should be the objectives of wage policy in a developing country? Discuss the difficulties which are faced in achieving them Illustrate from Indian experience.

43 भारत के आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने हेतु सम्पूर्ण स्वस्थ राष्ट्रीय मजदूरी नीति के महत्त्व को उल्लेखित कीजिए। (1976)
Discuss the importance of sound national wage policy for accelerating the economic development in India

44 भारत में कृषि मजदूरों की मजदूरी को सरकार द्वारा नियमित करने की आवश्यकता एवं उसके महत्व को समझाइए। (1975)
Discuss the importance and need for State regulation of wages for agricultural workers in India

45 "भारत में रोजगार दफ्तरों ने श्रम की नियुक्तियों में होने वाले कुछ दोषों को दूर किया है। जो दोष रह गए हैं वे रोजगार केन्द्रों की कमी तथा अकुशलता के कारण है।" विवेचना कीजिए। (1971)
"Employment Exchange have removed some of the abuses associated with the recruitment of labour in India Such of them as still persist are due to either inefficiency or inadequacy of the employment exchanges" Discuss.

46 भारत में रोजगार दफ्तरों के क्या कार्य हैं? उनका काम सुधारने के लिए वास्तविक सुझाव दीजिए। (1973)
What are the functions of employment exchanges in India? Give practical suggestions for improving their effectiveness.

47 रोजगार दफ्तरों के क्या कार्य होते हैं ? भारत में रोजगार दफ्तरों के गठन एवं प्राप्तियों की विवेचना कीजिए। (1977)
What are the functions of employment exchanges ? Discuss the organisation and achievements of employment exchanges in India

48 भारत में रोजगार दफ्तरों के कार्यों तथा उपलब्धियों पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए। (1976)
Write a critical note on the working and achievements of employment exchanges in India

49 एक राष्ट्रीय रोजगार सेवा के क्या उद्देश्य होते हैं ? अमेरिका में इस सेवा के संगठन एवं उपलब्धियों की विवेचना कीजिए। (1976)
What are the objectives of a National Employment Service ? Discuss its organisation and achievements in the U S A

50 पूर्ण रोजगार की परिभाषा दीजिए। क्या मजदूरी दर में कटौती बेरोजगारी के निराकरण का उपाय माना जा सकता है ? समझाइए। (1976)
Define full employment Explain whether reduction of wage rates can be regarded as a remedy for unemployment.

51 भारत में रोजगार सेवा व्यवस्था के कार्यों एवं उसकी उपलब्धियों का विवेचन कीजिए। (1976)
Comment on the functions and achievements of Employment Service Organisation in India

52 शहरी बेरोजगारी की समस्या के निराकरण हेतु भारत तथा अमेरिका के रोजगार दफ्तरों की भूमिका का तुलनात्मक परीक्षण कीजिए। (1976)
Examine and compare the role of employment exchanges of India with that of America, in solving the urban unemployment problem.

53 जनशक्ति-नियोजन के विचार की विवेचना कीजिए तथा भारत में इसकी प्रगति का वर्णन कीजिए। (1977)
Discuss the concept of manpower planning and describe its progress in India

54 भारत जैसी विकासशील अर्थ-व्यवस्था में मजदूरी निर्धारण नीति के क्या आवश्यक तत्व होने चाहिए जबकि बेरोजगारी की समस्या बहुत गम्भीर है ? (1973)
What should be the essential elements of a wage policy in a developing economy like India where the unemployment problem is very acute ?

55 कृषि-श्रमिकों की मजदूरी को प्रभावित करने वाले आर्थिक तथा सामाजिक तत्वों को बताइए। कृषि-श्रमिकों की मजदूरी तथा रहन-सहन की दशाओं में सुधार के लिए आप किस प्रकार के नियमों का समर्थन करेंगे ? (1971)
Point out the economic and social factories which affect agricultural wages What type of legislation would you suggest for improving the wage and living conditions of agricultural workers?

56 किन दशाओं में सरकार को मजदूरी का नियमन करना चाहिए ? सरकार को किन तत्वों पर ध्यान देना चाहिए ? (1971)
When is the State justified in regulating wages? What factors should it take into account?

57 जनशक्ति नियोजन के विचार एवं उद्देश्यों की विवेचना कीजिए। इन नियोजन के क्या तरीके हैं? (1976)
Discuss the concept and objectives of manpower planning. What are its techniques?

58 श्रम शक्ति नियोजन का आशय क्या है? भारत के नियोजन काल में इसे कहाँ तक कार्यान्वित किया गया है? (1976)
What is Man Power Planning? How far has it been done in India during the plan period?

59 भारत में मजदूर भरती की प्रमुख पद्धतियों के गुण एवं दोषों को संक्षेप में लिखिए।
Describe in short the merits and demerits of different main methods of labour recruitment in India

60 "मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती की पद्धति सदैव गम्भीर दोषों से युक्त रही है किन्तु फिर भी जाबर (Jobber) श्रमिकों की नियुक्ति हेतु एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है, जो स्वयं अनेक कार्य करता है।"
इस कथन की विवेचना कीजिए। (1975)
"*The recruitment of labour through intermediaries has always been fraught* with serious evils, but still the jobber is a very important person who combines in himself a formidable array of functions".
Discuss this statement

Chapter 8 to 10

61 सामाजिक सुरक्षा के आर्थिक तथा सामाजिक औचित्यों की परीक्षा कीजिए। सामाजिक सुरक्षा किसी देश की अर्थ-व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करती है? (1971)
Examine the economic and social justification of social security How does social security affect the economy of a country as a whole?

62 सामाजिक सुरक्षा के अर्थ तथा उसके आर्थिक औचित्य की विवेचना कीजिए। भारत में सामाजिक सुरक्षा का क्या प्रावधान है यदि—
(अ) एक श्रमिक दुर्घटनाग्रस्त होता है, एवं
(ब) एक स्त्री श्रमिक प्रसूत हेतु जाती है। (1977)
Discuss the meaning and economic justification for social security. What social security provision exists in India if—
(a) a worker meets with an accident and
(b) a woman worker undergoes confinement?

63 अमेरिका अथवा रूस में सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान पर एक टिप्पणी लिखिए। (1977)
Write a note on the provision of social security either in the U S A. or in the U. S. S R.

64 'सामाजिक सुरक्षा' की परिभाषा दीजिए। सामाजिक सुरक्षा पद्धति के संगठन के लिए आधारभूत सिद्धान्त संक्षेप में बतलाइए तथा उसकी सीमा पर भी प्रकाश डालिए।
Define the term 'Social Security' and briefly summarise the basic principles for the organisation of a social security system and point out its limitations.

65 'सामाजिक बीमा' का क्या आशय है? सामाजिक सुरक्षा से यह किन बातों में भिन्न है? सामाजिक बीमा का क्षेत्र, उद्देश्य तथा महत्त्व बतलाइए।
What is meant by 'Social Insurance'? *How does it differ from* Social Security? Clearly describe the scope, aims and social significance of Social Insurance.

66 सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता में अन्तर बतलाइए। सामाजिक सहायता किन परिस्थितियों में वांछनीय होती है।
Distinguish between Social Insurance and social assistance. Under what conditions is the later advisable?

67 भारत में मुख्य सामाजिक सुरक्षा स्कीमों की सूची दीजिए। उनकी क्या मुख्य विशेषताएँ हैं? ये स्कीमें अंग्रेजी व अमेरिकी स्कीमों से किस प्रकार भिन्न हैं? (1973)
List the principal social security schemes in India and describe their important features In what respects do these differ from the schemes in U S A and the U K ?

68 इंग्लैण्ड अथवा सोवियत रूस में सामाजिक सुरक्षा के प्रावधान पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए। (1976)
Write a detailed note on the provision of Social Security either in the U K or in the U S S R

69 वे कौन से सामाजिक सुरक्षा के उपाय हैं जिन्हें अभी तक भारत में नहीं अपनाया गया है तथा जिन्हें इंग्लैण्ड में अपनाया गया है?
भारतीय अर्थव्यवस्था में उनके महत्त्व पर प्रकाश डालिए। (1976)
What are those social security measures which have not yet been adopted in India but are adopted in England ?
State their importance in the Indian economy

70 "उद्योग में शान्ति एवं समृद्धि उस समय तक स्थापित नहीं हो सकती जब तक कि मजदूर की प्राथमिक आवश्यकताएँ, मानव होने के नाते, अतृप्त रहती हैं।"
इस कथन को भारत के मजदूरों के निम्न रहन-सहन के सन्दर्भ में समझाइए। (1976)
"Industry cannot enjoy peace and prosperity so long as the elementary needs of the worker as a human being remain unsatisfied "
Discuss the statement with reference to the low standard of living of labourers in India

71 श्रमिकों को कल्याणकारी सुविधाएँ उपलब्ध कराने में मालिक, श्रमिक संघ एवं सरकार की भूमिका का उल्लेख कीजिए। भारत में इन सुविधाओं की प्रगति की संक्षिप्त समीक्षा कीजिए। (1975)
Explain the role of employers, trade unions, and government in providing labour welfare facilities Briefly review the progress of these facilities in India

72 भारत में औद्योगिक श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (1975)
Critically examine the scheme of social insurance for industrial workers in India

73 "भारतीय औद्योगिक केन्द्रों की हजारों श्रम-बस्तियों में मानवता को पशुवत् प्रताड़ित किया जाता है महिलाओं के सतीत्व का अपमान किया जाता है एवं शिशुओं को आरम्भ से ही शोषित किया जाता है।"
इस कथन के प्रकाश में श्रमिकों के शील एवं कार्यक्षमता पर गन्दी घनी बस्तियों के पड़ने वाले प्रभाव का परीक्षण कीजिए। (1975)
"In the thousand slums of the Indian Industrial centres, manhood is brutalised, womanhood dishonoured and childhood poisoned at the very sources "
In the light of this statement examine the effect of congestion and insanitation on the morals and efficiency of labourers

74 इंग्लैण्ड में रोग बीमा योजना का वर्णन कीजिए। क्या भारत में संगठित श्रम के लिए ऐसी योजना प्रस्तावित की जा सकती है? यदि नहीं, तो किसी वैकल्पिक योजना की रूपरेखा दीजिए।

Describe the procedure of 'Sickness Insurance' as it obtains in England Can you put up a similar scheme for organised labour in India ? If not offer the outline of an alternative scheme.

75 सोवियत रूस में सामाजिक सुरक्षा योजना की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए। यह योजना अपने उद्देश्यों में कहाँ तक सफल हुई है?

Discuss carefully the distinctive features of the social security schemes prevalent in U S S R How far have they been successful in achieving their objectives ?

76 अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में ये कहाँ तक सफल हुई है?

Discuss carefully the distinctive features of the social security schemes in U S A How far have they succeeded in achieving their objectives ?

77 भारत में फैक्टरी कानून के इतिहास का संक्षिप्त सिंहावलोकन कीजिए। फैक्टरी श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए और क्या उपाय करना चाहिए? (1971)

Briefly trace the history of factory legislation in India What more should be done to protect the interests of the factory workers ?

78 भारत में फैक्टरी विधान के मुख्य लक्षणों की विवेचना कीजिए। क्या आप इसमें सुधार हेतु कुछ सुझाव देंगे? (1976)

Discuss the salient features of the factory legislation in India Would you suggest some improvements in it

79 भारत में विशाल कारखानों में कार्य करते समय श्रमिकों को मिलने वाले कानूनी संरक्षण का स्वरूप बताइए। (1974)

Describe the nature of legal protection that workers in India get during working hours in large factories

80 आधुनिक वर्षों में प्रमुख-प्रमुख परिवर्तनों सहित भारत में कारखाना अधिनियम का संक्षिप्त इतिहास बतलाइए।

Give a brief history of the factory legislation in India pointing out the important changes made in recent years

81 क्या आपकी सम्मति में भारतीय कारखाना अधिनियम सन् 1948 में कुछ दोष है? यदि हैं, तो सुधार हेतु सुझाव दीजिए।

Do you feel that the Indian Factories Act 1948 is still defective in certain respects ? If so, suggest lines of improvement

82 "श्रम परिनियमों का लाभ उनकी संख्या बढ़ाने में नहीं, वरन् उनको कार्यान्वित करने की भावना एवं विधि में निहित है।" विवेचना कीजिए।

"Benefit accruing from labour legislation cannot be the number of laws on the Statute Book, but by the method and spirit on enforcement " Discuss

83 श्रम-कल्याण के विचार एवं परिक्षेत्र की विवेचना कीजिए। श्रम कल्याण सुविधाओं के प्रावधान हेतु किसे उत्तरदायी ठहराना चाहिए और क्यों। (1977)

Discuss the concept and scope of 'Labour Welfare' Who should be made responsible for the provision of labour welfare facilities and why ?

84 श्रम कल्याण सुविधाओं के परिक्षेत्र एवं महत्त्व की विवेचना कीजिए। भारत में इन सुविधाओं के जुटाने में क्या प्रगति हुई है?
Discuss the scope and importance of labour welfare facilities. What progress has been made in India in providing these facilities?

85 भारत के औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों के गृह-निवास की समस्या पर एक लेख लिखिए।
(1976)
Write an essay on the housing problems of workers in industrial centres in India

86 "औद्योगिक श्रमिकों के निवास की समस्या का समाधान हो सकता है यदि नियुक्त तथा सरकार अपनी-अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए सहमत हो जाएँ। दोनों में से किसी एक के लिए यह काम बहुत बड़ा है।" विवेचना कीजिए। (1971)
"The problem of industrial housing can be solved only if the employers and the government agree to discharge their respective responsibilities The task is too big for only one of the two agencies" Discuss

87 स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिए किए गए प्रयासों का मूल्यांकन कीजिए। (1974)
Assess the measures taken in India after Independence to provide housing for industrial workers

88 "जब तक श्रमिक को उसके काम के अनुसार अच्छा तथा सुविधाजनक मकान रहने के लिए नहीं मिलता, तब तक वह एकाग्रता से कार्य नहीं कर सकता।" इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।
"Unless better housing and living conditions are provided to the labourer, he cannot work with full vigour" Give your views on this point

89 भारत के कुछ प्रमुख औद्योगिक नगरों में औद्योगिक श्रमिकों की आवास व्यवस्था का वर्णन कीजिए। वर्तमान व्यवस्था को आप कहाँ तक सन्तोषजनक समझते हैं?
Describe fully the housing conditions of industrial workers in some of the industrial centres of India How far do you think them to be satisfactory?

90 भारतीय औद्योगिक श्रमिकों की आवास सम्बन्धी कठिनाइयों के निवारणार्थ, (i) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों, (ii) सेवायोजकों (iii) स्थानीय संस्थाओं तथा (iv) अन्य निजी एजेन्सीज द्वारा किए गए प्रयासों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
Critically examine the efforts made by the (i) Central and State Governments, (ii) Employers (iii) Local bodies and (iv) Other private agencies to overcome the housing difficulties of Indian industrial workers

91 निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) गन्दी बस्तियों की सफाई
(ब) मजदूरी एवं उत्पादकता
(स) भारत में कारखाना विधान
(द) मजदूरी अन्तर (1977)
Write short notes on any two of the following:
(a) Slum clearance
(b) Wages and productivity
(c) Factory legislation in India
(d) Wage differentials

निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर विचार प्रकट कीजिए—

(अ) 'श्रमिकों का शोषण' सिद्धान्त एक भ्रम है।
(ब) 'बोनस भुगतान प्रोत्साहन मजदूरी है।'
(स) 'श्रमिक दर में कटौती बेरोजगारी हटाने का उपाय नहीं है।'
(द) 'मालिकों द्वारा श्रम-कल्याण-कार्य एक विनियोजन है।' (1974)

Comment on any two of the following :
(a) 'The theory of 'Exploitation of Labour' is a myth'
(b) 'Bonus payment is an incentive wage'
(c) 'Wage cuts are not a remedy for unemployment'
(d) 'Labour welfare work by employers is an investment'

3 निम्न में से दो पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) भारत में कारखाना अधिनियम
(ब) भारत में मानव-शक्ति आयोजन
(स) मालिकों द्वारा आयोजित श्रमिक कल्याण सुविधाएँ
(द) भारत में औद्योगिक श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी की प्रवृत्ति।

Write short notes on any two of the following :
(a) Factory Legislation in India
(b) Manpower Planning in India
(c) Labour Welfare Facilities provided by Employers
(d) Trend in the Real Wages of Industrial Workers in India

4 निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षेप में लिखिए—

(अ) सोवियत रूस में सामाजिक सुरक्षा की प्रमुख विशेषताएँ कौनसी हैं ?
(ब) भारत में कृषि-श्रमिकों की समस्याएँ कौनसी हैं ?
(स) किन परिस्थितियों में श्रम-दरों में वृद्धि का परिणाम बेरोजगारी नहीं होगा ?
(द) श्रमिक-संघों को श्रम-कल्याण के कार्य क्यों करने चाहिए ?
(य) भारत में रोजगारी सेवा संगठन के विरुद्ध कौनसी शिकायतें हैं ? (1974)

Attempt briefly any two of the following
(a) What are the salient features of the social security in the U S S R ?
(b) What are the problems of agricultural workers in India ?
(c) When will the increase in wages not lead to unemployment ?
(d) Why should the trade unions undertake labour welfare activities ?
(e) What are the complaints against Employment Exchanges in India ?

95 निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) भारत में जनशक्ति नियोजन
(ब) भारत में औद्योगिक आवास
(स) भारत में राष्ट्रीय रोजगार सेवा एवं तकनीकी प्रशिक्षण
(द) सामाजिक सुरक्षा की वित्तीय व्यवस्था।

Write short notes on any two of the following :
(a) Manpower Planning in India.
(b) Industrial Housing in India.
(c) National Employment Service and Technical Training in India
(d) Financing of Social Security.

96 निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) अमेरिका में सरकार द्वारा मजदूरी विनियमन ।

(ब) भारत मे कृषि श्रमिकों की मजदूरी ।

(स) भारत म महिला-श्रमिकों की मजदूरी ।

Write brief notes on any two of the following

(a) State regulation of wages n the U S A

(b) Wages of agricultural workers in India

(c) Wages of women workers in India

97 किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा ।

(ब) सामान्य श्रम कल्याण कार्य ।

(स) औद्योगिक उत्पादकता ।

(द) उचित मजदूरी ।

Write notes on any two of the following

(a) Social Security in America

(b) General labour welfare activities

(c) Industrial productivity

(d) Fair wages

98 किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) श्रमिकों का शोषण

(ब) श्रमिक राज्य बीमा अधिनियम 1948

(स) लाभांश (बोनस) भुगतान की उपादेयता

(द) जाबर द्वारा श्रमिकों की भरती

Write notes on any two of the following

(a) Exploitation of labour

(b) Employees State Insurance Act 1948

(c) Utility of bonus payment

(d) Recruitment of labour by Jobber